Foreword

University Colleges of Arts & Commerce
Asutosh Building
Calcutta

Unlike many of the modern Indo-Aryan languages Rajasthani has records going back to the fourteenth century. Although at the moment it lacks recognition as a national language and suffers neglect from the native users, Rajasthani can boast of its achievements during the past centuries. The importance of the language and literature of Rajasthan was fully brought out by L. P. Tessitori but the bardic chronicles of Rajasthan were revealed before the civilized world more than a century ago by Colonel Tod. Tod's Rajasthan was one of most widely read books in India in the last century and it inspired the pen of a host of Bengali poets, dramatists and novelists including Michael Madhusudan Dutt, Bankim Chandra Chatterjee and Ramesh Chandra Dutt.

Tessitori's footsteps have been followed by several Indian scholars, and the latest of them is Dr. Hiralal Maheshwari, the writer of the present book which was originally offered as a doctoral thesis in the Arts Faculty of the University of Calcutta. In this comprehensive work the language has been treated in outline, so to say. The reason being that it had been done by Tessitori and others. A more detailed treatment would have been out of place here because that would have entailed analysis of the main dialects of Rajasthani. The literary records have been treated in full, and this, the major portion of Dr. Maheshwari's **Rajasthani Language and Literature** is the most important. He has brought in here a large number of informations that were not available before and he has presented also known facts with unsuspected significance. Dr. Maheshwari's work is a distinct contribution to the literary and linguistic history of an important Indo-Aryan speech, the study of which has been much neglected. His work has extended the boundary of knowledge in the matter of Indo-Aryan

Languages. I do not know how the native speakers of Rajasthan will react to this detailed study of their old literature but speaking for a person like myself who is interested in the history of Indian literature, it is, as a whole, an exceedingly valuable work and its publication is very welcome.

In the introductory chapter on the Rajasthani language Dr. Maheshwari has given in full all facts and theories on the two linguistic styles, the Pingal and Dingal. It seems that only the Bengali-Assamese group among the modern Indo-Aryan languages, beside Rajasthani, had this distinction at an earlier stage. The language in Bengali-Assamese that correspond to Pingal of Rajasthani is known as Brajabuli. Both Pingal and Brajabuli continued the tradition of Avahattha poetry.

The name Pingal obviously comes from the name of the traditional fountain-head of Indo-Aryan prosody, particularly of Apabhramsa-Avahattha metrics. The name Dingal is surely connected with the late Sanskrit word dingara, "rustic, low class, servant", and originally it must have meant the language of the rustic people.

Old Rajasthani literature is neither bookish nor vulgar. The patrons of the poets, who were itinerants like the troubadours of mediaeval Europe, were chieftains and rulers, and the poetry meant for their ears could not have been otherwise than chaste. In romantic love poetry, Rajasthani literature is the direct successor of popular Avahattha verse. This is true of Old Gujarati literature also.

I am confident that this maiden work of Dr. Hiralal Maheshwari will be welcome to all lovers of Rajasthani poetry, who can follow Hindi. I will be pleased to see that it is translated into English so that it may be read widely in India and abroad.

Sukumar Sen

Khaira Professor of Indian Linguistics and Phonetics and Head of the Department of Comparative Philology, Calcutta University.

Calcutta
15th August, 1960.

निवेदन

इस प्रबन्ध में राजस्थानी भाषा और आलोच्यकालीन साहित्य का यथासम्भव व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पुरानी पश्चिमी राजस्थानी या पुरानी राजस्थानी का भाषा-विषयक अध्ययन आज से ४४-४५ वर्ष पूर्व डा० टैसीटरी ने प्रस्तुत किया था। उनके बाद अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर अपने-अपने ढंग से लिखा है। इस कारण इस पुस्तक में राजस्थानी भाषा पर अपेक्षाकृत संक्षेप में ही विचार किया गया है। यदि विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जाता, तो वह राजस्थानी की विभिन्न बोलियों का ही अध्ययन होता जो यहाँ अभीष्ट न था।

लगभग संवत् ११०० से अन्य देशी भाषाओं की भाँति पुरानी राजस्थानी या जूनी गुजराती अपभ्रंश से विकसित होने लगी थी। इसके साहित्यिक इतिहास का प्रारम्भ तभी से होता है। संवत् १५०० के आस-पास गुजराती और राजस्थानी पृथक पृथक हुईं। इस प्रकार पुरानी राजस्थानी का इन ४०० सालों में रचित साहित्य, इन दोनों का सम्मिलित साहित्य है। प्रस्तुत अध्ययन संवत् १५०० से १६५० तक के राजस्थानी साहित्य का है। संवत् १६५० के लगभग कई कारणों से इस साहित्य में नई प्रवृत्तियों का समावेश होता है और कविता का स्वर भी बदला हुआ पाते हैं। वास्तव में राणा प्रताप (स्वर्गवास—माघ सुदी ११, संवत् १६५३) और पृथ्वीराज राठौड़ (स्वर्गवास—सवत् १६५७) के अवसान समय से ही राजस्थानी साहित्य का काल-परिवर्तन होता है। राजस्थानी के विकसित काल की सीमा, इस कारण मैंने संवत् १५०० से १६५० तक मानी है।

राजस्थानी साहित्य की विशालता को देखते हुए अभी तक उसकी बहुत ही कम रचनाएँ प्रकाश में आई हैं; बाकी हस्तलिखित प्रतियों के रूप में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। अपने काल से संबंधित, प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथो के अतिरिक्त, मैंने यथाशक्य अधिक से अधिक हस्तलिखित प्रतियो के रूप में प्राप्त रचनाओं को सामने लाने की चेष्टा की है। ऐसा करते समय मेरे सामने ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रधान रहा है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया काल-विभाजन और विषयानुसार वर्गीकरण मेरा अपना है, मतभेद की गुंजाइश इस विषय में हो सकती है; पर प्रयास यही रहा है कि इस काल के साहित्य और उसके विभिन्न रूपों का एक साथ ही सम्यक् परिचय प्राप्त हो जाय। अपनी बात को जहाँ तक हो सका है, सप्रमाण कहने की चेष्टा की है और इस कारण प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के चित्र भी यथास्थान दिए हैं। इस काम में कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक और सहृदय समालोचक ही करेंगे। जाने-अनजाने भूलें हुई होंगी, और दोष भी बन पड़े होंगे। एतदर्थ अपनी अज्ञता के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

प्रबन्ध के प्रस्तुत करने में मुझे एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, कुँवर

मोतीचन्दजी खजान्ची संग्रह, बीकानेर और नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस के आर्यभाषा पुस्तकालय की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से विशेष सहायता मिली है। इनके अतिरिक्त बीकानेर के श्रीयुत् गिरधरदास मूंधड़ा और श्री सूरजसिंह टावरी की हस्तलिखित प्रतियों से भी सहायता मिली है। इन संग्रहालय-पुस्तकालयों के अधिकारियों, कार्यकर्ताओं तथा महानुभावों ने अत्यन्त ही सौजन्यतापूर्वक हस्तलिखित प्रतियों को देखने और आवश्यकतानुसार चित्र लेने की सुविधा प्रदान की थी। मैं इन सब के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

इसके अलावा इस पुस्तक के लिखने में मैंने अनेक विद्वानों के ग्रंथों और लेखकों के लेखों से सहायता ली है। मैं उनके प्रणेता सभी साहित्य-मनीषियों का ऋणी हूँ।

यह कार्य श्रद्धेय गुरुवर डा० सुकुमार सेन के निर्देशन का परिणाम है; इसका मार्ग-दर्शन उन्होंने ही किया है। प्रबन्ध में आवश्यक सुधार-संशोधन करने के अतिरिक्त उन्होंने प्रस्तावना लिखकर इसकी गौरव-वृद्धि की है।

डा० फतहसिंह और डा० सत्येन्द्र ने महत्वपूर्ण निर्देश दिए हैं। श्री अगरचन्द नाहटा से उपयोगी परामर्श मिले हैं। मैं इनका कृतज्ञ हूँ। श्री मदनगोपाल सारड़ा, श्री प्रेमवल्लभ शास्त्री, श्री नन्दलाल राठी, डॉ०तारकनाथ अग्रवाल, आचार्य देवीप्रसाद उपाध्याय, श्री अक्षयचन्द्र शर्मा, श्री मदनगोपाल पोद्दार, सर्वश्री किसनदास, ऊधोदास मूंधड़ा, व अन्य शुभैषियों ने मेरे प्रति जिस आत्मीयता और प्रेम का परिचय दिया है वह भूलने की वस्तु नहीं है।

प्रो०रघुनन्दन मिश्र, श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी और श्री माधोदास मूंधड़ा मेरी हर कठिनाई में आड़े आए हैं। इनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

प्रोफेसर चन्द्रदेव शर्मा (डूगर कालेज, बीकानेर) विषय से संबंधित कठिनाइयों को सुलझाने में सदैव ही तत्पर रहे थे। शोक का विषय है कि वे इस संसार में नहीं रहे। दिवंगत आत्मा के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

हस्तलिखित प्रतियों के पाठ और प्रकाशित रूप में उनके परिचय-विवरण को मैंने ज्यों का त्यों उद्धृत करने की चेष्टा की है, अपनी ओर से परिवर्तन-संशोधन नहीं किए हैं। इस कारण कुछ शब्दों की वर्तनी और पाठ अटपटे लग सकते हैं। कुछ प्रान्तीय शब्दों का व्यवहार जान बूझ कर किया है, हिन्दी की अभिव्यंजना-शक्ति इससे बढेगी ही।

यह प्रबन्ध मुद्रित रूप में ही (अध्याय १ से १४ तक) विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था; केवल 'उपसंहार' बाद में लिखा है जिसमें नवीनतम सामग्री का भी उपयोग कर लिया गया है। इस विषय पर आज तक किए गए कार्यों की सूची नहीं दी क्योंकि पुस्तक के अन्त में दी गई सहायक ग्रंथ सूची में प्रायः उन सब का समावेश हो गया है। अन्त में विस्तृत नामानुक्रमणिका भी दी है, विश्वास है पाठकों के लिए यह उपादेय सिद्ध होगी।

३, शशि घोष लेन, कलकत्ता-५ —हीरालाल माहेश्वरी
दीपावली, २०१७

विषय-सूची

Foreword—डॉ० सुकुमार सेन

निवेदन

खण्ड १ : राजस्थानी भाषा

अध्याय १ : राजस्थानी भाषा : सामान्य परिचय

राजस्थान के विभिन्न प्रान्त और उनके विभिन्न नाम; मरुभाषा, उसका उल्लेख; शैलियाँ—जैन शैली, चारण शैली, संत शैली, लौकिक शैली; पिंगल, डिंगल; मरुभाषा और डिंगल एक है; डिंगल का पूर्व-रूप; डिंगल की व्युत्पत्ति और अर्थ, विभिन्न मत; डिंगल का स्वरूप, डा० टैसीटरी की धारणा, उसकी अमान्यता; उदाहरण—अचलदास खीची री वचनिका, छन्द राव जैतसी रो, बीठू सूजा कृत, उसके पाठान्तर, चौहथ का गीत, हेमरत्न कृत गोरा बादल पदमणी चौपई, समयसुन्दर कृत गुजरात का दुष्काल-वर्णन, राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द, जैतसी रासो; काल-विभाजन, उसके कारण। ....पृ० १–३१

अध्याय २ : बोलियाँ, विशेषताएँ, ध्वनि-परिवर्तन, व्याकरण आदि

अपभ्रंश, राजस्थानी; राजस्थानी की बोलियाँ—(१) मारवाड़ी (२) मेवाती-अहीरवाटी (३) ढूंढाड़ी (४) मालवी (५) भीली-बागड़ी; राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ; वर्णमाला; उच्चारण; ध्वनि-परिवर्तन, स्वर, व्यंजन; व्याकरण—लिंग, वचन, विशेष्य-विशेषण, कारक-विभक्ति, परसर्ग, सर्वनाम,क्रिया, कृदन्त, तद्धित, अव्यय—क्रिया विशेषण, उपसर्ग, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक। ....पृ० ३२–६०

खण्ड २ : राजस्थानी साहित्य

अध्याय ३ : चारण साहित्य

(क) पृष्ठभूमि (ख) सामान्य परिचय; चारण साहित्य का विभाजन आदि। ...पृ० ६१–७४

अध्याय ४ : चारण साहित्य : ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य

(१) बादर ढाढी—वीरमायण (२) गाडण सिवदास—अचलदास खीची री वचनिका (३) गाडण पसाइत—(क) राव रिणमल रो रूपक (ख) गुण जोधायण, फुटकर रचनाएँ—कवित्त राव रिणमल चूंडै रै वैर में भाटियां नै मारीया तै समैरा, कवित्त राव रिणमल नागोर रै धणी पेरोज नै मारीया तै समैरा,कवित्त राणा मोकल मुआरी खबर आयां रा (४) पद्मनाभ—कान्हड़दे प्रबन्ध (५) भाण्डउ व्यास—राय हमीरदेव चौपाई (६) राव जैतसी री पाघड़ी छन्द, बीठू सूजै नगराजोत कृत (७) राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द, रचयिता अज्ञात (८) जैतसी रासो, रचयिता अज्ञात (९) रावल माला रो गुण, बारहट आसा रो कहियो (१०) मादू माला—झूलणा महाराज रायसिंघजी रा, झूलणा दीवाण श्री प्रतापसिंघजी रा, झूलणा अकबर पातसाहजी रा (११) बीठू मेहा—पाबूजी रा छन्द, गोगाजी रा रसावला, आदि। .. . .पृ० ७४–११६

अध्याय ५ : चारण साहित्य : ऐतिहासिक मुक्तक काव्य
सिढायच चौमुजा; बारहट चौहथ; खिड़ियो चानण; हरिसूर; बीठू सूरा; लालजी महडू; गोरा—राव लूणकरण रा कवित्त, राव जैतसी रा कवित्त; रामा सांदू—वेलि राणा उदैसिंघ री; बारहट अपो भाणेस—वेलि रा देईदास जैतावत री; रायसिहजी री वेलि; रतनसी री वेलि; बारहट आसा—राउ चन्द्रसेण रा रूपक, उमादे रा कवित्त, वाघजी रा दूहा, अन्य फुटकर गीत आदि; बारहट ईसरदास—हालाँ झालाँ रा कुंडलिया; रंगरेलो बीठू; दूदा आसिया; बारहट शंकर—दातार सूर रौ संवाद; रतनू देवराज; सिढायच गैपो; बारहट लक्खा; दल्ला आसिया; अल्लूजी कविया। ....पृ० ११६–१३६

अध्याय ६ : (क) राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवि
वाल्जी सौदा; जमणाजी बारहट; हरीदास केसरिया; गोरधनजी बोगसा; सूरायच टापरिया; राठौड़ पृथ्वीराज; दुरसा आढा; सांदू माला। ....पृ० १३७–१४७

(ख) स्त्री कवि
झीमा (झीमी) चारणी; पदमा सांदू; चंपादे। ....पृ० १४७–१४९

(ग) कुछ अन्य फुटकर कवि
पीठवा मीसण; अखा बारहट; लूणकरण मेहडू; भीमा आसिया; चूंडोजी दधवाड़िया।
..............पृ० १४९–१५०

अध्याय ७ : पौराणिक और धार्मिक रचनाएँ (प्रबन्ध और मुक्तक)
पूर्व परम्परा—हरिचन्द पुराण, सप्तसती रा छन्द; पृथ्वीराज राठौड़—वेलि क्रिसन रुकमणी री; पृथ्वीराज रचित वेलि तथा सांखला करमसी रूणेचा रचित क्रिसनजी री वेलि। मुक्तक रचनाएँ—ठाकुरजी रा दूहा, गगाजी रा दूहा, अन्य फुटकर दोहे और गीत; माधोदास दधवाड़िया—रामरासौ, गजमोख, जसवन्त-त्रिपुर सुन्दरी री वेलि; साँयाजी झूला—नागदमण, रुकमणी हरण; बारहट आसा—गुण निरजन प्राण; बारहट ईसरदास—उनकी विभिन्न रचनाएँ; केसौदास गाडण—नीसाणी विवेक वार्ता, छन्द श्री गोरखनाथ। गुजराती प्रभावापन्न रचनाएँ—ओपाहरण, उपाहरण, सीता हरण, हरि लीला सोलह कला। महादेव पार्वती री वेलि, किसनउ रचित। ....पृ० १५१–१९४

अध्याय ८ : लोक साहित्य : प्रबन्ध काव्य
पूर्व-परिचय; प्रबन्ध काव्य—(१) दामो—लखमसेन पदमावती चौपई (२) कल्लोल—ढोला-मारू रा दूहा (३) गणपति—माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध (४) तेली पदम भगत—हरजी रो व्यावलो (रुकमणी मगल) (५) रतना खाती—नरसी रो माहेरो; आदि।
..............पृ० १९५–२१७

अध्याय ९ : लोक साहित्य : मुक्तक काव्य
(क) लौकिक प्रेम काव्य—(१) जेठवा-ऊजळी (२) नागजी-नागमती (३) शेणी-बीजाणंद (४) बींझा-सोरठ (ख) फागु काव्य—(१) वसंत विलास फागु (२) भ्रमर गीता फाग

(३) वसंत विलास फाग (ग) लोकगीत—(१) ऐतिहासिक (२) सामाजिक-पारिवारिक (३) समस्यामूलक (४) ऋतु-परक (५) यौवन और प्रेम संबंधी। ....पृ० २१७–२३०

अध्याय १० : जैन साहित्य
पूर्व परिचय; वर्ण्य विषय एवं काव्य-रूप—(१) चरित काव्य, कथा काव्य :—रास-रासो, चौपाई, संधि, चर्चरी, ढाल, प्रबन्ध-चरित-संबंध-आख्यानक-कथा, पवाड़ो-पवाड़ा (२) ऋतु काव्य-उत्सव काव्य :—फागु काव्य, धमाल, बारहमासा, वेलि, विवाहलो-धवल-मंगल (३) नीति, व्यवहार, शिक्षा, ज्ञान :—संवाद, कक्का-मातृका-बावनी, कुलक, हीयाली (४) स्तुति (५) लोक कथानक :—विक्रम संबंधी साहित्य, विभिन्न कथाओं का साहित्य, अन्य लोक-कथानक (६) गेयपद-संतशैली (७) पट्टावलियाँ, गुर्वावलियाँ, विहार-पत्र (८) ज्योतिष, शकुन, रीति ग्रन्थ, अनेकार्थ (९) टीका ग्रन्थ। ....पृ० २३०–२४८

अध्याय ११ : जैन साहित्य : कुछ प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ
(क) सोलहवीं शताब्दी—(१) महोपाध्याय जयसागर दरड़ा गोत्रीय (२) देपाल (३) ऋषिवर्द्धन सूरि (४) मतिशेखर (५) पद्मनाभ (६) धर्मसमुद्र गणि (७) सहजसुन्दर (८) पार्श्वचन्द्र सूरि (९) छीहल—पंच सहेली, बावनी (१० विनयसमुद्र (११) राजशील
(ख) सत्रहवीं शताब्दी प्रथमार्द्ध—(१२) पुण्यसागर (१३) कुशललाभ, ढोला मारू रा दूहा तथा ढोला मारवण री चोपई के कथान्तर (१४) मालदेव (१५) हीरकलश (१६) कनक-सोम (१७) हेमरत्न सूरि, गोरा बादल री चौपई (१८) उपाध्याय गुणविनय (१९) समय-सुन्दर; जैन साहित्य की विशेषताएँ। ....पृ० २४९–२७१

अध्याय १२ : सन्त साहित्य
(क) सामान्य परिचय; कबीर (ख) कुछ प्रमुख सन्त—(१) जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय (२) सिद्ध जसनाथ, जसनाथी सम्प्रदाय (३) दादू, दादूपंथ (४) बखनाजी (५) रज्जबजी (६) वाजिदजी (७) हरिदासजी, निरजनी सम्प्रदाय। ....पृ० २७२–२९४

अध्याय १३ : मीराँबाई
मीराँ नाम, उसकी व्युत्पत्ति; जीवन काल आदि; बहिर्साक्ष्य—(क) मीराँ के सम्बन्ध में मिलने वाले विभिन्न प्रसंग (ख) आधुनिक इतिहास लेखकों और विद्वानों के मत। राज-नैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ, धार्मिक वातावरण, सम्प्रदायों के श्रद्धालुओं की सामान्य मनोदशा, सम्भावनाओं की सृष्टि। नाभादास का छप्पय, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, नन्दराम का बारहमासा तथा भजन। मीराँ की रचनाएँ, पदावली, पदावली की भाषा, इतिहास। अन्तःसाक्ष्य; जीवन और काव्य—उनका क्रमिक विकास—प्रेमाभिव्यक्ति, जोगी से निवेदन, राणा से संघर्ष, साधना कृष्णोन्मुख, निर्गुणोन्मुख, शान्त रसात्मक वाणी। ...पृ० २९५–३३३

अध्याय १४ : गद्य साहित्य
(क) सामान्य परिचय—१४वीं, १५वीं शताब्दी; आलोच्य काल (ख) गद्य : उसके विविध रूप—(१) बालावबोध (२) टब्बा (३) औक्तिक (४) कथा ग्रंथ (५) चरित्र ग्रंथ (६)

चर्चा ग्रंथ (७) प्रश्नोत्तर (८) पट्टावली, गुर्वावली (९) नियमपत्र, समाचारी तथा हित शिक्षा आदि (१०) विहार-पत्री (११) वचनिका,-पद्यबंध, गद्यबंध (१२) काव्यग्रन्थों का गद्य (१३) शिलालेख तथा ताम्र पत्र (१४) पत्र तथा पट्टे-परवाने (१५) वात (१६) ख्यात, विगत, विलास (१७) पीढ़ियाँ-वंशावली तथा जन्मपत्रियाँ (१८) ज्योतिष, शकुन आदि। पृ० ३३४–३४८

अध्याय १५ : उपसंहार

राजस्थानी, डिंगल; काल-विभाजन, पूर्व-परम्परा; चारण-साहित्य—ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य—(१) करण रतनू (२) बीठू मेहा (३) कर्मसी आसिया (४) ईसर रतनू (५) जाडा महड़ू; ऐतिहासिक मुक्तक काव्य—(१) माल्हड बरसड़ा (२) पाता बारहट (३) गांगा मंढायच, मुक्तक-काव्य की विशेषताएँ; पौराणिक और धार्मिक काव्य—कृष्ण काव्य, रामकाव्य; मुक्तक-(१) कर्मसी आसिया (२) जयमल बारहट (३) धन्ना (४) परमानन्द बीठू; लोक-साहित्य; जैन साहित्य—रासक, रास, रासो; जैन साहित्य—सन्त शैली; सन्त-साहित्य : गोरखनाथ, नाथ-सिद्ध; दादूपंथ—गरीबदास, सुन्दरदास; मीराँबाई; गद्य-साहित्य; राजस्थानी—हिन्दी; हिन्दी साहित्य का आदिकाल—हिन्दी (१) खड़ी बोली (२) अवधी (३) ब्रजभाषा—पृथ्वीराज रासौ (४) मैथिली (५) अपभ्रंश-अवहट्ठ (६) पुरानी राजस्थानी—राजस्थानी; राजस्थानी—हिन्दी। ....पृ० ३४९–३७२

सहायक ग्रंथों की सूची ....पृ० ३७३–३८६

नामानुक्रमणिका ....पृ० ३८७–४१७

चित्र-सूची : (१) पृ० १८–१९ (२) पृ० २२–२३ (३) पृ० १६२–१६३ (४) पृ० २६६–२६७

खण्ड १

राजस्थानी भाषा

अध्याय १

राजस्थानी भाषा : सामान्य परिचय

राजस्थान के विभिन्न प्रान्त और उनके विभिन्न नाम :

स्वतंत्रता के पूर्व, राजस्थान छोटे-बड़े २१ देशी राज्यों में बंटा हुआ था तथा अंग्रेज सरकार के अधीन अजमेर-मेरवाड़ा का प्रदेश और अलग था। २१ राज्यों के नाम ये हैं—(१) उदयपुर, (२) डूंगरपुर, (३) बांसवाड़ा, (४) प्रतापगढ़, (५) शाहपुरा, (६) करौली, (७) जैसलमेर, (८) बूंदी, (९) कोटा, (१०) सिरोही, (११) जयपुर, (१२) अलवर, (१३) जोधपुर, (१४) बीकानेर, (१५) किशनगढ़, (१६) दांता, (१७) झालावाड़, (१८) भरतपुर, (१९) धौलपुर, (२०) पालनपुर और (२१) टोंक। इस प्रान्त के लिये सर्वप्रथम 'राजपूताना' शब्द का प्रयोग जार्ज टॉमस ने संवत् १८५७ में किया था[१]। इसके पश्चात् कर्नल टाड ने अपने इतिहास में, संवत् १८८६ में इसके लिए 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग किया है[२]। तब से इसी शब्द का व्यवहार इस प्रान्त के लिए रूढ़ हो गया है। प्राचीन काल में इस प्रान्त के विभिन्न भूखण्ड कई नामों से विख्यात थे। शासकों के परिवर्तन के साथ-साथ, समय-समय पर, उन प्रदेशों के नामों में भी परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन उल्लेखों के अनुसार, राजस्थान के उत्तरी भाग का नाम जांगल; पूर्वी का मत्स्य; दक्षिण-पूर्वी का शिविदेश; दक्षिण का मेदपाट, वागड़, प्राग्वाट, मालव और गुर्जरत्रा; पश्चिम का मरु, माडवल्ल, त्रवणी और मध्य भाग का अर्बुद और सपादलक्ष आदि नाम थे[३]। साल्वजनपद[४] और पारियात्रमंडल[५] भी राजस्थान के ही अंग थे। राजधानी के अर्थ में राजस्थान शब्द का प्रयोग नैणसी की ख्यात[६] (संवत् १६८७–१७२७) और राजरूपक[७] (संवत् १७८८) में मिलता है। प्रदेश के नाम-साम्य के आधार पर राजस्थान की भाषा 'राजस्थानी' कहलाती है। अरावली पर्वत-श्रेणी से यह प्रदेश दो प्राकृतिक भागों में विभाजित होता है—उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी। उत्तरी-पश्चिमी भाग में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर और जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश का कुछ अंश है। सामूहिक रूप से यह भाग मारवाड़ अथवा मरुदेश कहलाता है। दक्षिणी-पूर्वी भाग में बाकी सब देशी राज्य और अजमेर-मेरवाड़ा के प्रान्त सम्मिलित हैं।

---

१. विलियम फ्रेंकलिन-मिलट्री मेमाअर्स आफ मिस्टर जार्ज टॉमस, पृ० ३४७, सन् १८०५ ई०: लन्दन संस्करण : गहलोत द्वारा 'राजपूताने का इतिहास' पहला भाग, पृ० १ में उद्धृत।
२. Annals & Antiquities of Rajasthan, Part I.
३. (क) श्रीमद्‌विजयराजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृ० ७१८;
   (ख) पृथ्वीसिंह महता : हमारा राजस्थान, प्रथम संस्करण, १९५० :
४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : 'साल्व जनपद'—राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३–४ :
५. पृथ्वीसिंह महता : 'हमारा राजस्थान', पृ० २०–२२ :
६. डा० मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ २ में उद्धृत 'ख्यात' का अंश।
७. नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, पृ० १०–११ :

मरुभाषा : उसका उल्लेख :

मारवाड़ अथवा मरुदेश की भाषा (जिसका प्राचीन नाम मरुभाषा था) समूचे राजस्थान प्रान्त की प्रधान भाषा रही है। यही भाषा राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी, जो थोड़े बहुत स्थानीय परिवर्तनों के साथ समूचे प्रदेश में प्रचलित थी। पीछे व्रजमण्डल के निकटवर्ती राजस्थान के भाग पर व्रजभाषा का और गुजरात के निकटवर्ती भाग पर गुजराती भाषा का प्रभाव पड़ा।

मरुभाषा का उल्लेख कई जगह मिलता है। संवत् ८३५ में मारवाड़ के जालोर नगर में, उद्योतनसूरि लिखित कुवलयमाला नामक कथा ग्रन्थ में अठारह देश भाषाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें मरु, गुर्जर, लाट और मालव प्रदेश की भाषाओं के उद्धरण निम्नलिखित हैं—

'अप्पा-तुप्पा', भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो
'न उ रे भल्लउं', भणिरे अह पेच्छइ गुज्जरे अवरे
'अम्हं काउं तुम्हं' भणिरे अह पेच्छइ लाडे
'भाइ य भइणी तुब्भे' भणिरे अह मालवे दिट्ठे

अबुलफजल ने आईने-अकबरी में प्रमुख भारतीय भाषाओं में मारवाड़ी को गिनाया है। जैन कवियों ने भी अपने ग्रन्थों की भाषा को मरुभाषा कहा है। राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' के व्रजभाषा के पद्यानुवादकर्ता गोपाल लाहोरी ने वेलि की भाषा को मरुभाषा कहा है—

"मरुभाषा निरजल तजी करि व्रजभाषा चोज"[1]

इनके अतिरिक्त राजस्थानी की प्रान्तीय बोलियों का परिचय भी कई उल्लेखों से मिलता है। चौदहवी शताब्दी के सुप्रसिद्ध आचार्य जिनप्रभसूरि की परम्परा की संग्रह पुस्तिका में शत्रुंजय तीर्थ पर आई हुई गूजरी, मालवी, पूर्वी और मरहटी स्त्रियों की देशगत तथा भाषागत विशेषताओं का वर्णन किया हुआ मिलता है[2], जिसका प्रकाशन भी हुआ है[3]। विविध प्रान्तीय बोलियों की विशेषताओं का पता देने वाली दो रचनाएँ—(१) 'नौबोली छन्द' और (२) 'आठ देसरी गूजरी', अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में हैं[4]। प्रथम रचना की सत्रहवी शताब्दी की दो प्रतियां और दूसरी की अठारहवी शताब्दी की लिखित एक प्रति मिलती है। प्रथम में गुजराती, घटेची, जैसलमेरी, मुलतानी, उतरादी, पूर्वी, तैलंगी, दिल्लण (दिल्ली की) और खुरासानी—इन नौ बोलियों के पद्य हैं। दूसरी में पंजाबी, व्रज, मेवाती, लाहोरी, मारवाड़ी, ढूंढाहडी, काविली और बागड़ी के पद्य हैं[5]। इनके अलावा श्री अगरचन्द नाहटा को जैन भंडारों में तीन रचनाएं और मिली हैं, जिनमें, एक में पंजाबी, मुल्तानी, दक्षिणी गुजराती और पूर्वी मारवाड़ी के सवैये हैं। दूसरे में *(१) ढूंढाड़ी, (२) मारवाड़ी, (३) गुजराती, (४) गोड़वाड़ी, (५) पंजाबी,* (६) हाड़ोती, (७) दखिणी और (८) चौबोली—भाखा (जिसमें एक प्रथम पंक्ति पंजाबी,

---

१. (क) जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २१५२;
(ख) नरोत्तमदास स्वामी संपादित–'वेलि' (राठौड़ प्रिथीराज), पृ० १६० :
२. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३–४, पृ० १०१; जुलाई १९५३ :
३. राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, जनवरी, १९४० :
४. प्रति नं० ३; ९२(क) तथा १२०(ठ) :
५. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३–४, पृ० ११३, जुलाई, १९५३ :

दूसरी पूर्वी, तीसरी गुजराती और चौथी पंक्ति मारवाड़ी की है) के नमूने मिलते हैं। ये दोनों रचनाएं अठारहवीं शती की लिपिबद्ध प्राप्त हैं। तीसरी प्रति में दिल्ली, बीकानेर, मारवाड़ तथा गुजरात की भाषाओं और ढूंढाड़ी, मेवाड़ी तथा दक्षिणी के एक-एक सवैये हैं। दूसरी प्रति से 'मारवाड़ी भाखा' के सवैये को देखिये[1]—

> रीत नहीं इसी बात री मांहरूं कीजं छै कहि सिखाडं छै कोनुं।
> कासु कहूं कवि मेर कह्यौ कहि ताणं छै हाथ न जांणं छै मोनुं।
> छोड़ दे छेहड़ौ फूठं छं बेहड़ी चौहटा मांहि फजीतस्यां दोनुं।
> नंवरा काह्न न छेड़ रे मारवा खोडा रं मांहि दिराडिस्यां तोनुं॥

मरुभाषा के दूसरे नाम—मरुभूमभाषा[2], मारुभाषा[3], मरुदेशीया भाषा[4], मरुवाणी[5] आदि मिलते हैं। मरुभाषा एक व्यापक नाम है जिसमें राजस्थानी भाषा का, उसकी समस्त विविध बोलियों और शैलियों सहित समावेश किया जा सकता है।

शैलियां—राजस्थानी की चार मुख्य शैलियां हैं—(१) जैन शैली, (२) चारण शैली, (३) संत शैली और (४) लौकिक शैली।

जैन शैली का अधिकांश साहित्य जैन धर्म से संबंधित है। कथा साहित्य की विपुलता और प्रचुर गद्य का निर्माण इसकी विशेषता है। इसमें सर्वत्र भाषा की एक विशिष्टता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अइ और अउ रूपों का प्रयोग अधिक हुआ है, जो आलोच्य काल की समाप्ति के पश्चात् भी चलता रहा। उदाहरण के लिए सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के प्रसिद्ध जैन कवि समयसुन्दर की रचनाओं को देखा जा सकता है। विषय भिन्नता के अतिरिक्त जैन शैली की शब्दावली और भाषा का स्वरूप भी चारण शैली से कुछ भिन्न है। कई जैनेतर विद्वानों ने भी इस शैली में रचनाएं की है। 'कान्हड़दे प्रबन्ध' के रचयिता पद्मनाभ ब्राह्मण थे और 'माधवानल कामकन्दला' के रचयिता गणपति कायस्थ थे। फिर भी ये दोनो काव्य जैन शैली की सुन्दरतम रचनाओं में हैं।

चारण शैली की अधिकाश रचनाएं अब डिंगल नाम से अभिहित हैं। चारणों के अतिरिक्त इस शैली में लिखित राजपूत, ढाढ़ी, ढोली, मोतीसर आदि चारणेतर जातियों के कवियों की रचनाएं भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। डिंगल में तत्सम शब्दों की बजाय तद्भव शब्दों का प्रयोग और अपभ्रंश की व्यंजन-द्वित्व की विशेषता को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इस शैली का प्रधान रस वीर है और विषय अधिकांश में ऐतिहासिक। अन्य रसों की भी रचनाएं मिलती हैं, किन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम ही है। वीररसात्मक ऐतिहासिक कविता की विपुल सृष्टि चारण शैली की प्रमुख विशेषता है। डिंगल के पर्यायवाची, अनेकार्थी और एकाक्षरी

---

१. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३-४, पृ० ११३, जुलाई, १९५३ :
२. कविमंछ कृत—रघुनाथ रूपक : मरुभूम भाषा तणो मारग रमै आछी रीत सूं
३. कवि मौडजी : पाबू-प्रकाश—कर आणंदक वेस वहण मारुभाषा वट
४. सूर्यमल्ल मिश्रण : वंशभास्कर—प्रायो मरुदेशीया प्राकृति मिश्रित भाषा
५. —वही— —डिंगल उपनामक कहुंक, मरुवानीहु विधेय

कोशों से, चारण शैली के शब्द भंडार की समृद्धि का कुछ पता चलता है।[1] डिंगल साहित्य अधिकांश में गीतों, दोहों और छप्पयों (कवित्तों) के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। गीत, चारण शैली की ही विशिष्ट देन है। राजस्थानी की अन्य पड़ोसी भाषाओं में इसका सर्वथा अभाव है। 'वैणसगाई' का यथासंभव पालन इस शैली की एक और विशेषता है। चारण शैली के ये गीत जैन शैली में नहीं लिखे गए।

संत शैली में बोलचाल की राजस्थानी के अलावा, पड़ोसी प्रान्तीय भाषाओं और खड़ी बोली के शब्दों का मिश्रण पाया जाता है।

लौकिक शैली का साहित्य लोकभाषा में लिखित साहित्य है जिसे सामान्य लोक-समूह अपना ही मानता है। इसमें लोक-मानस की सही झांकी दिखाई देती है—लोक की युग-युग की वाणी भावना इसमें सुरक्षित है। इसमें लौकिक प्रेम-काव्य, लोकगीत, लोककथा, जनसाधारण में बहु-प्रचलित ऐतिहासिक, अर्ध-ऐतिहासिक, काल्पनिक और पौराणिक आदि विविध प्रकार के प्रसंगों पर आधारित गेय, श्रव्य-काव्य सम्मिलित हैं। इनकी भाषा तत्कालीन जनसाधारण की बोलचाल की भाषा है, जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी की विभिन्न बोलियों का मिश्रण पाया जाता है। लेकिन संत शैली की भांति इसमें खड़ी बोली का प्रयोग नहीं पाया जाता। लौकिक शैली के छन्दों में गेयपद, दोहा, आदि प्रमुख रहे हैं।

पिंगल . डिंगल

राजस्थानी भाषा की इन शैलियों में रचित साहित्य के अलावा, राजस्थान में 'पिंगल' में रचित साहित्य भी प्रचुर परिमाण में मिलता है। पिंगल साहित्य अधिकांश में भाट जाति की रचना है, जो चारणों से सर्वथा भिन्न है। इस सम्बन्ध में कभी-कभी कुछ विचित्र बातें कह दी जाती हैं। श्री समशेरसिंह नरूला के अनुसार, "हिन्दी के आदि काल में, डिंगल शैली में वीर-गाथा काव्यों की रचना हुई। इन्हें राजस्थान के भाटों ने लिखा, जो या तो किसी राजपूत राजा के आश्रित होते थे या इधर-उधर राजदरबारों में घूमते-फिरते थे। भाटों की इस जाति को चारण कहते हैं और इन चारणों द्वारा गाई गई वीरगाथाओं को चारण काव्य नाम दिया गया है। इस काव्य को डिंगल भी कहा गया है जिसका अर्थ निम्न कोटि का या विरूप पद है, क्योंकि पिंगल काव्य की भांति इसमें छन्दशास्त्र के प्रतिष्ठित नियमों का पालन नहीं किया जाता था।[2]" यह कथन ठीक नहीं है। जिस प्रकार भाट और चारण भिन्न-भिन्न जातियां रहीं हैं, उसी प्रकार उनका साहित्य भी भिन्न-भिन्न रहा है। पिंगल साहित्य अधिकांश में भाट जाति की रचना है। लेखक की अंतिम उक्ति डा० टैसीटरी के कथन का पिष्टपेषण मात्र है, जिसकी

---

१. इसके लिये देखिए : 'परम्परा', (जोधपुर) का "डिंगल कोष" : इसमें निम्नलिखित कोषों का संग्रह है :—(१) पर्यायवाची : (क) डिंगल नाम माळा : कवि हरराज, (ख) नागराज डिंगल कोष : नागराज पिंगल, (ग) हमीरनाम माळा : हमीरदान रतनू, (घ) अवधान माळा : कवि उदयराम, (ङ) नाम माळा : अज्ञात, (च) डिंगल कोष: कविराजा मुरारीदान : (२) अनेकार्थी कोष : कवि उदयराम : (३) एकाक्षरी (क) एकाक्षरी नाम माळा : वीरभाण रतनू, (ख) एकाक्षरी नाम माळा : कवि उदयराम :

२. हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ७७, राजकमल प्रकाशन, १९५५ :

चर्चा आगे की जाएगी। "राजपूताना में भाट जाति जो राव कहलाती है, पूर्व भारत से आई है। असली मरुदेश में यह जाति न तो पहले रहती थी और न अब रहती है। राजपूताना में पिंगल भाषा का नाम "भाट-भाषखा" (भाषा) भी है, जिसकी कविता पिंगल छन्दों में है। इसके प्रमाण में, सोलहवीं शताब्दी के, मारवाड़ के गांव थबूकड़ा के चारण कवि 'उदैराम' रचित "कवि कुल बोध" नामक रीति ग्रन्थ के चतुर्थ तरंग में से, निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया जाता है—

चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकास
गुण संख्या-कल-वरण-गण, यांरो करो उजास[1]।"

पिंगल और डिंगल में अपने-अपने साहित्य-शास्त्रानुसार रचनाएं हुईं। दोनों का व्याकरण, छन्द-शास्त्र और प्रकृति भिन्न है। वास्तव में पिंगल और डिंगल दो भिन्न भाषाएं हैं। पिंगल का विकास शौरसेनी अपभ्रंश[2] से हुआ है और डिंगल का गुर्जरी अपभ्रंश[3] से। पिंगल और डिंगल शब्दों को लेकर विद्वानों में काफी चर्चा रही है। एक मत के अनुसार, 'पिंगल' शब्द 'डिंगल' से ज्यादा पुराना है और पिंगल के वजन पर डिंगल नाम रखा गया है। अधिकांश विद्वानों का यही मत है। दूसरे मत के अनुसार, डिंगल शब्द पिंगल से अधिक पुराना है और इसलिए पिंगल के सादृश्य पर डिंगल नाम रखे जाने की कल्पना निर्मूल है। डा० मोतीलाल मेनारिया इस मत के पोषक हैं। उनके अनुसार, "राजस्थान में व्रज भाषा के लिए 'पिंगल' नाम प्रचलित है, जिसका वास्तविक अर्थ छन्द शास्त्र है। परन्तु इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है। कोई १८ वीं शताब्दी से यह इस अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है और सिख-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरु गोविंद सिंह (सं० १७२३–६५) के 'विचित्र नाटक' में कदाचित् पहले-पहल देखने में आता है। जैसे "भाषा पिंगल दी"[4]। "पिंगल शिरोमणि" नामक छन्द शास्त्र के ग्रन्थ से मारवाड़ी भाषा के लिये, 'डिंगल' शब्द प्रयोग का हवाला देते हुए, वे कहते हैं कि डिंगल शब्द पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और इसलिए पिंगल की ध्वनि पर डिंगल शब्द के गढ़े जाने की बात निर्मूल है। यह बात विचारणीय है। ऊपर दिए गए कवि "उदैराम" के दोहे में डिंगल के साथ पिंगल का भी प्रयोग हुआ है। "पिंगल शिरोमणि" में मारवाड़ी भाषा के लिए केवल "डिंगल" का ही नहीं "उडिंगल" शब्द का भी व्यवहार हुआ है। वस्तुतः "पिंगल शिरोमणि" के एक अध्याय का नाम "डिंगल नांम माळा"[5] है, जिसकी हस्त प्रति संवत् १८०० की लिखित है। मूल प्रति में इसका शीर्षक है, "अथउ डिंगल नांम माळा" और पुष्पिका में है,—"...पिंगल सिरोमणे उडिंगल नाम माळा"। वैसे शीर्षक के प्रथम शब्द के "उ" को यदि द्वितीय "डिंगल" शब्द के साथ मिला दिया जाय तब

---

१. श्री उदयराज उज्ज्वल: 'डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति'–राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २ :
२. (क) Grierson : Linguistic Survey of India, भाग पहला, पृ० १२६ :
 (ख) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : राजस्थानी भाषा, पृ० ६४–६५ :
३. (क) कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी : अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन का विवरण, पृ० ९;
 (ख) डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य।
४. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १३ :
५. 'परम्परा' (जोधपुर)—'डिंगल कोष' में प्रकाशित :

भी "उडिंगल" शब्द बन जाता है। हो सकता है 'डिंगल' के लिए पहले 'उडिंगल' शब्द का प्रयोग रहा हो। किन्तु इससे यह तो फिर भी सिद्ध नहीं होता कि डिंगल शब्द पिंगल से प्राचीन है। "पिंगल शिरोमणि" के "पिंगल" नाम से यह बात स्पष्ट है। मतलब यह कि यहां 'डिंगल' और 'पिंगल' दोनों शब्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है। पहले मत के विरुद्ध भी यही आपत्ति है। इसी प्रकार बाद के प्रायः सभी स्थलों पर डिंगल के साथ-साथ पिंगल का व्यवहार देखने में आता है। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

(१) कविराजा बांकीदास द्वारा संवत् १८७१ में लिखित, 'कुकवि बत्तीसी' नामक रचना में यह दोहा आया है —

डिंगळिया मिळियां करै पिंगल तणो प्रकास
संस्कृति ह्वै कपट सज पिंगल पढियां पास[1]।

(२) महाकवि सूर्यमल मिश्रण अपने पिता के सम्बन्ध में लिखते हैं—

वदन सुकवि सुत कवि मुकट, अमर गिरा मतिमान
पिंगल डिंगल पटु भये धुरंधर चंडीदान[2]।

कवि ने अकेले 'डिंगल' शब्द का प्रयोग भी कई जगह किया है, जिसका हवाला आगे दिया गया है। सो, इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है कि कौन सा शब्द किससे पहले का है और किसके वजन पर कौन सा शब्द गढ़ा गया है। पहले मत के माननेवाले विद्वानों का यह केवल अनुमान ही है कि 'पिंगल' के वजन पर 'डिंगल' का निर्माण हुआ। जहां तक पिंगल का प्रश्न है, वह मूलतः डिंगल से भिन्न है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार भी डिंगल और पिंगल भिन्न भाषाएं हैं[3]।

"पिंगल पूर्व भारत में दिल्ली से लेकर ग्वालियर तक के प्रान्तों में बोली जाती है जिसमें ब्रजादि प्रान्त भी सम्मिलित हैं[4]।" महाकवि सूर्यमल मिश्रण के एक दोहे से यह बात सिद्ध होती है–

पुर दिल्ली ग्वालेर पुर बीच ब्रजादिक देश
पिंगल उपनामक गिरा तिनकी मधुर विशेष[5]।

मरुभाषा और डिंगल एक है :

मरुभाषा के लिए 'डिंगल' शब्द का प्रयोग हुआ है। मरुभाषा और डिंगल भाषा एक ही थी इसके प्रमाण कई जगह मिलते हैं :

(१) महाकवि सूर्यमल लिखते हैं:—

(क) डिंगल उपनामक कहुंक, मरुवानीहु विशेष
अपभ्रंश जामें अधिक, सदा वीर रस शेष[6]।

---

१. बांकीदास ग्रंथावली, भाग दूसरा, पृ० ८१ : ना० प्र० स० :
२. वंशभास्कर, प्रथम राशि : चतुर्थ मयूख : पृ० ४० :
३. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८५, सन् १९५४ :
४. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २, मार्च, १९४९ :
५. वंशभास्कर, प्रथम भाग, पृ० १४० :
६. वही „ „ पृ० १४७ :

इससे दोनों की एकता के साथ-साथ डिंगल की दो विशेषताओं—उसका अपभ्रंश की ओर झुकाव और वीर रस के लिए उसकी उपयुक्तता—का भी पता चलता है।

(ख) मरुभाषा डिंगल भावेत्येके[1]

(ग) इनके अतिरिक्त कवि ने वंशभास्कर में डिंगल भाषा के गद्य या पद्य के साथ अनेक बार "प्रायो मरुदेशीया प्राकृति मिश्रित भाषा" लिखा है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद की राजरसनामृत नामक पुस्तक से भी यही बात सिद्ध होती है :

(क) पहली धारा में, जैसलमेर के प्रकरण में, जैसलमेर के पंडित व्यास सूर्यकरण शास्त्री के पत्र की नकल दी गई है। उसमें शास्त्रीजी ने 'डिंगल', 'मरुभाषा' व 'मरुबाणी' को एक ही भाषा माना है।

(ख) तीसरी धारा में, उदयपुर के प्रकरण में, राणाप्रताप के विषय में लिखा है कि यह महाराणा कवि थे और काम पड़ने पर डिंगल भाषा में कविता कर लेते थे।

(ग) चौथी धारा में, बीकानेर के प्रकरण में, राठौड़ पृथ्वीराज के विषय में लिखा है कि यह पिंगल (ब्रजभाषा) और डिंगल (मरुभाषा)—दोनों भाषाओं में कविता करते थे।

(३) पंडित रामकर्ण आसोपा ने 'राजरुपक' की भूमिका में लिखा है कि डिंगल भाषा राजस्थानी भाषा है, इसीसे राजस्थान के कवियों ने अपनी राजस्थानी भाषा में कविता निर्माण की है।

(४) श्री उदयराज उज्वल अपने 'धूड़सार' नामक काव्य को अपनी मातृभाषा (डिंगल) में रचित बताते हैं[2]।

(५) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने राजस्थानी के लिए 'डिंगल' या 'मारवाड़ी' नाम का प्रयोग किया है[3]।

(६) श्री नरोत्तमदास स्वामी ने भी राजस्थानी के लिए 'डिंगल' शब्द का व्यवहार किया है[4]।

राजस्थानी भाषा, मरुभाषा और डिंगल भाषा की एकता से एक महत्वपूर्ण बात यह भी सिद्ध होती है कि प्रारम्भ में डिंगल बोलचाल की भाषा थी। बाद में, बोलचाल और साहित्य की भाषा में अन्तर होता गया और डिंगल का प्रयोग साहित्य की भाषा के लिए होने लगा। डिंगल वस्तुतः अपभ्रंश शैली का ही विकसित रूप है। उसका राजस्थानी की काव्य-गत शैली विशेष के रूप में प्रयोग होता है। डिंगल का प्रयोग कभी-कभी समस्त राजस्थानी के लिए और कभी कभी चारण शैली के लिए किया जाता है। "चारणों द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी का साहित्यिक रूप "डिंगल" नाम से प्रसिद्ध रहा है[5]।" वास्तव में अब डिंगल का प्रयोग चारण शैली के लिए ही रूढ समझा जाना चाहिए। श्री उदयसिंह भटनागर ने लिखा है कि डिंगल राजस्थान में बोल-

---

१. वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०७३ :
२. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २, मार्च, १९४९, पृ० ५२ :
३. "वीर सतसई" (सूर्यमल मिश्रण)—प्राक्कथन, पृ० ५, बंगाल हिन्दी मण्डल, २००५ :
४. स्व संपादित 'वेलि'—"राजस्थानी (डिंगल) भाषा का सुप्रसिद्ध काव्य"—टाइटल पृष्ठ :
५. संयुक्त राजस्थान, वर्ष ६, संख्या ८, मार्च, १९५७, पृ० ३१ :

चाल की भाषा कभी नहीं रही[1]। किन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। ऊपर किए गए विवेचन से यह बात स्पष्ट है।..."डिंगल मूलतः बोलचाल की राजस्थानी से भिन्न नहीं थी। ...साधारण राजस्थानी और डिंगल में मुख्य अन्तर या तो शब्दावली का है या शब्दों की वर्तनी का; व्याकरण का अन्तर सर्वथा नगण्य है[2]।"

डिंगल का पूर्व रूप :

डिंगल का पूर्व रूप पुष्पदंत के महापुराण, मुनि कनकामर के करकंडु चरिउ, सोमप्रभाचार्य के कुमारपाल-प्रतिबोध तथा श्रीधरकृत रणमल्ल छन्द में देखा जा सकता है :—

(१) पुष्पदंत (उत्तर पुराण से—रचनाकाल–वि० सं० ९९४)

छुडु भड भारें ढलहलिय धरणि। छुडु पहरण-फुरणें हरिउ तरणि।
छुडु चंदवलाइँ पलोइयाइँ। छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ।
छुडु मच्छर-भरियइँ वड्ढियाइँ। छुडु कोसहु लग्गहिँ कड्ढियाइँ।
छुडु धवकइँ हत्थुग्गामियाइँ। छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भीमयाइँ[3]।

× ×

धीरइ हक्कारइ पच्चारइ। हणइ थणइ विहुणइ विणिवारइ।
दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ। संघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ[4]।

(२) मुनि कनकामर (करकंड चरिउ से—रचनाकाल—वि० सं० ११९७ लगभग)

कुंताइँ भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति। रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति।
गत्ताइँ तुट्टंति, मुंडाइँ फुट्टंति। सुंडाइँ धावंति, अरियाणु पावंति।
अंताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति। हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति[5]।

(३) सोमप्रभाचार्य (कुमारपाल प्रतिबोध से—रचनाकाल–१२४१ वि०)

गयण - मग्ग - संलग्ग लोल - कल्लोल परंपरु
निक्करु णुक्कउ नक्क-चक्क - चंकमण - दुहंकरु
उच्छलंत - गुरु - पुच्छ - मच्छ - रिछोलि - निरंतरु
विळसमाण जाळा - जडाळ - वडवानळ दुत्तरु
आवत्त टयायलु जळहि लहु गोपहि जिव ते नित्थरहि।
नीसेस - वसण-गळ - निट्टवणु पासनाहु जे संभरहि[6]।

(४) श्रीधर (रणमल्ल छन्द से—रचनाकाल–लगभग वि० सं० १४५५)

कडक्कि भूंछ भींछ मेच्छ मल्ल मोलि मुग्गरि
धमक्कि वल्लि रणमल्ल भल्ल केरि सङ्गरि

---

१. हिन्दी अनुशीलन, पृ० ३७, वर्ष ७, अंक ४, अगस्त, १९५५ :
२. श्री नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थानी साहित्य : एक परिचय : पृ० १५–१६ :
३. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्य-धारा, पृ० २०८ :
४. वही–पृ० २१० :
५. वही–पृ० ३४२ :
६. (क) झवेरचन्द मेघाणी : चारणो अने चारणी साहित्य, पृ० ४८ में उद्धृत :
(ख) ढोला-मारुरा दूहा, प्रस्तावना, पृ० १२० :

धमक्कि धार छोडि धान छण्डि धाडि - धगडा
पडक्कि धाटि पक्कडन्त मारि मीर मक्कडा[1]।

डिंगल में अपभ्रंश और उससे विकसित अवहट्ट की विशेषताएं अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति रही है। संभवतः इसी को लक्ष्य कर श्री मधुसूदन चिमनलाल मोदी ने कहा है कि 'आज की चारणी भाषा अवहट्ट का विकृत रूप है[2]।' कुछ ऐसी ही राय ओझाजी की है। उनके अनुसार, "राजपूताना, मालवा, काठियावाड़ और कच्छ आदि के चारणों तथा भाटों के डिंगल भाषा के गीत इसी भाषा के (अपभ्रंश के) पिछले विकृत रूप में हैं[3]।"

डिंगल की व्युत्पत्ति और अर्थ : विभिन्न मत :

डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ को लेकर विद्वानों ने तरह-तरह के अनुमान लगाए हैं :—

(१) डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार, जो लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और इससे भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उसी ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा है[4]। तात्पर्य यह कि ब्रजभाषा के अर्थ में पिंगल शब्द डिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, पर इस बात का कोई ठोस आधार नहीं है। यह केवल अनुमान ही है कि पिंगल के आधार पर डिंगल नाम गढ़ा गया। पीछे इसकी चर्चा कर आए है।

(२) डा० टैसीटरी ने भी कुछ इसी प्रकार की राय प्रकट की है। वे लिखते हैं :— The term Dingala - - is a mere adjective meaning probably "irregular", i. e. "not in accordance with standard poetry", or possibly "Vulgar" was applied to it when the use of the Braja Bhasa (Pingala) as a polite language of the poets was in general vogue[5]. इसी स्वर में श्री शमशेरसिंह नरूला ने भी अपनी बात कही है[6]।

डिंगल को गँवारू तथा अनियमित कहना अनुचित है। यह पढ़े-लिखे चारणों की भाषा रही है, जिनका बहुत बड़ा सम्मान राजदरबारों तक रहा था। इसमें छन्द, रस, अलंकार, ध्वनि आदि का उतना ही ध्यान रखा गया है जितना कि ब्रजभाषा में। राजपूताने का अधिकतर साहित्य इसी में रचा गया है। यह लोक भाषा ही नहीं थी अपितु शिष्ट समाज की और साहित्य की भाषा थी।

(३) श्री हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार,—The word Dagara has been changed

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य : पृ० ९ (के. ह. ध्रुव) :
२. अपभ्रंश पाठावली ; उपोद्घात, पृ० २१ :
३. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, (१९२८ ई०) पृ० १३७ :
४. हिन्दी शब्द सागर : भूमिका, पृ० २८ :
५. JASB (NS) Vol. X, No. 10, Page 376.
६. हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास

into Dingala to rhyme with Pingala.... I have the high authority of Mahamahopadhyaya Morardanji in support of the above theory. Quoting a verse from Ala Caran, the protector of Cunda, he showed to me that in the 14th century the Marubhasa was actually called Dagar & the verse is given here—

दीसे जंगल डगल जेथ जल बगल चाटे
अनहुता गल दिये गला हुंता गल काटे—etc.-etc.

From this it is clear that the language of the Jangaladesa, that is Marudesa or Marwar, the jangala of the ancient Kurujangala, was called Dagala[१].

वास्तव में इस दोहे में जंगल देश की भाषा का नहीं जंगल देश और उसके लोगों का वर्णन है। फिर, यह आला चारण का नहीं, सत्रहवीं शताब्दी के कवि अल्लूजी चारण का लिखा हुआ है। यह दोहा उनके छप्पय छंद का एक अंग है। डा० मोतीलाल मेनारिया ने पूरा छन्द दिया है। सम्पूर्ण छन्द पढ़ने से विदित होता है कि उसमें कवि ने ईश्वर की सर्वशक्तिमता का बखान किया है[२]।

(४) श्री गजराज ओझा के अनुसार, डिंगल 'ड' वर्ण प्रधान भाषा है। पिंगल के 'प' वर्ण के स्थान में 'ड' वर्ण की स्थापना द्वारा डिंगल की रचना की गई है। जिस प्रकार बंगला में 'ओ' का तथा बिहारी में 'ल' का प्रयोग पद-पद पर होता है, उसी प्रकार डिंगल में 'ड' वर्ण का प्रयोग बहुतायत से होता है। डिंगल ने यह गुण अपनी मां अपभ्रंश से सीखा[३]। श्री जुगलसिंह खीची का भी ऐसा ही मत है। उनके अनुसार, "'ट' वर्ग की बहुलता राजस्थानी कविता का ठाठ है। बात बात में 'ड' कार की भरमार होने से इस भाषा को डिंगल कहा जाने लगा। भरत ने निज-नाट्य-शास्त्र में विभिन्न प्रान्तों की उच्चारण सम्बन्धी विशेषताओं में इस प्रान्त की "टकार बहुला नित्यम्" प्रकृति का उल्लेख किया है[४]।"

'ट' वर्ग को अपनाने की प्रवृत्ति डिंगल में पाई जाती है, किन्तु वह सर्वथा नगण्य है। 'ड' वर्ण के आधार पर डिंगल नाम पड़ना क्लिष्ट कल्पना मात्र है। फिर, किसी अक्षर की विशेषता के कारण, भाषा का नाम कभी नहीं पड़ा। इसके अलावा डिंगल को मरुभाषा भी कहा गया है।

(५) श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार, "डिंगल शब्द डिम+गळ से बना है। डिम का अर्थ डमरू की ध्वनि और गळ का गले से तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रणचंडी

---

१. Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic chronicles, Page 15.
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २३ :
३. "डिंगल भाषा", ना०प्र०प० (न०सं०), भाग १४, अंक १, वैशाख, १९९०, पृ० १२२-१४२ :
४. "राजस्थानी भाषा और साहित्य की झांकी", साहित्य-सन्देश, जुलाई, १९५४ :

का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करनेवाली है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम् डिम् की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिये वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई[1]।"

"वीर रस के देवता महादेव नहीं इन्द्र हैं। महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भांति उत्साह-वर्द्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबन्धन तो बिल्कुल युक्ति-शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है[2]।"

(६) श्री नरोत्तमदास स्वामी ने श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य के मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार डिंगल शब्द "डीङ् विहायसा गतौ" अर्थात् उड़ना अर्थवाली डी धातु से बना है और इसका अर्थ है उड़नेवाली। श्री बदरीदान कविया और सत्यदेव आढा बार्हस्पत्यजी का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि डिंगल कविता ऊंचे स्वर से पढ़ी जाती है, अतः उसे उड़नेवाली कहा गया है[3]।

(७) कुछ ऐसा ही मत उदयराज उज्ज्वल का है[4]। उनके अनुसार, "पिंगल भाषा गंगा यमुना के निकटतम प्रदेशों की भाषा है जो साहित्य-शास्त्र के नियमों की शृंखला में जकड़ी हुई है। अतः डिंगल के कवि पिंगल को पांगली (पंगु) भाषा कहते है। और ठीक इसके विरुद्ध में डिंगल भाषा को उड़नेवाली भाषा कहते हैं। डिंगल में साहित्य-शास्त्र के बन्धन प्रायः नहीं हैं और छन्दों का अधिक विस्तार न होने से कवि को इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग होता है—इस कारण उनकी घटत बढ़त सरलता से हो सकती है। "डगल" शब्द इन विशेषताओं का सूचक है। इसी से डिंगल बना है"। अपने मत की पुष्टि में उज्वलजी ने "डगल" के कुछ अर्थ इस प्रकार किए है :—

(क) डग=पाँखें। ल—लिये हुए। पाँखें लिये हुए—पाँखोंवाली—उड़नेवाली=स्वतंत्रता से चलनेवाली।

(ख) डग=लम्बा कदम=तेज चाल। ल=लिये हुए। =तेज चालवाली।

(ग) डगल—ढीला, जिसके अंग या जोड़ दृढ़ता से गठे हुए नहीं होते, ढीले होते हैं, उसको भी डगल, या डगलो या डगला कहते हैं। डिंगल भाषा भी पिंगल के समान नियमों से सुगठित नहीं है।

(घ) डगल—रूई से भरा हुआ शीत काल में पहनने का वस्त्र विशेष। यह ढीला होने से डगल, डगलो या डगला कहलाता है जो शरीर की चलने-फिरने व मुड़ने की स्वतंत्रता को नहीं रोकता, इसी प्रकार डिंगल भाषा में कवि की गति स्वतंत्र रहती है।

---

१. ना० प्र० प०, भाग १४, पृ० २५५ :
२. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५ :
३. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० ११ :
४. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २, मार्च, १९४९, पृ० ४५—५८ :

इस मत के मानने में भी आपत्ति हो सकती है। डिंगल के छन्द शास्त्र आदि के नियम न तो पिंगल से सरल ही हैं और न ही स्वतंत्र। डिंगल के रीति ग्रन्थों में गीत छन्द के कहीं ९९ और कहीं ९४ भेद माने गए हैं जिनका पिंगल में कहीं पता भी नहीं है। इनके अलावा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने छप्पय के[1] ३, नीसाणी के १२, गीतों के ७५, उक्तियों के चार, जथा के ११ भेदों और १० दोषों की सविस्तर चर्चा की है[1]। डा० मोतीलाल मेनारिया ने भी कुंडलिया[3] और दोहे[4] के चार-चार भेदों का वर्णन किया है। 'वैणसगाई' के नियम की कठोरता तो सर्व विदित है ही। 'वैणसगाई' और उसके भेदों-उपभेदों की व्याख्या करते हुए कुं० चन्डीदान सांदू ने इसके ६१५ भेद बताए हैं[5]। फिर, भाषा विकास की दृष्टि से भी ड्गल का डिंगल बनाना खेंचतान ही है।

(८) श्री जगदीशसिंह गहलोत के अनुसार, "राजपूताने की कविता की भाषा 'डिंगल' है जो प्राकृत का ही रूपान्तर है। यह डिंगल शब्द "डीग" और "गल" शब्द मिल कर बना है। इसका अर्थ ऊंची बोली का है। क्योंकि इस भाषा के कवि उच्च स्वर से अपनी कविता का पाठ करते हैं। ब्रजभाषा की कविता में ध्वनि उच्च नहीं होती और उसमें मधुरता विशेष होती है[6]।"

राजस्थान-भारती और राजस्थानी-हिन्दी कोष के सम्पादक श्री बदरीप्रसाद साकरिया का भी ऐसा ही विचार है किन्तु उन्होंने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति यों बताई है :

डिंगल (डिंगी+गल । डीघी+गल) > डिंगळ।

डिंगी, डीघी=ऊंची । गळ=बात, स्वर।

किन्तु ये अर्थ भी खेंचतान के हैं। इसमें सन्देह नहीं कि डिंगल के एक काव्य रूप-गीत-ऊंचे स्वर से पढ़े जाते थे, लेकिन इससे डिंगल साहित्य के सम्पूर्ण स्वरूप और उसकी विशेषता का पता नहीं चलता। ऐसा ही मत मुंशी देवीप्रसाद का है। वे लिखते हैं— "मारवाड़ी भाषा में 'गल्ल' का अर्थ बात या बोली है। "डीगा" लम्बे और ऊँचे को और "पांगला" पंगे और लूले को कहते हैं। चारण अपनी मारवाड़ी-कविता को बहुत ऊँचे स्वरों में पढ़ते हैं और ब्रजभाषा की कविता धीरे-धीरे मन्दे स्वरों में पढी जाती है। इसीलिए डिंगल और पिंगल संज्ञा हो गई—जिसको दूसरे शब्दों में ऊँची बोली और नीची बोली की कविता कह सकते हैं[7]।"

---

१. राजस्थानी (कलकत्ता) : भाग ३, अंक ४, अप्रैल, १९४० :
२. महाकवि सूर्यमल आसन, उदयपुर से, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य, पर दिये गये भाषण : (अप्रकाशित)
३. हालाँ : झालाँरा कुंडळिया भूमिका :
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य :
५. मरु-भारती, वर्ष १, अंक १, सितम्बर, १९५२ :
६. राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० १११–११२; जुलाई, १९३७; जोधपुर :
७. "चाँद" के "मारवाड़ी अंक" में "भाट और चारणों का हिन्दी भाषा सम्बन्धी काम" पृ० २०५; वर्ष ८, खण्ड १, नवम्बर, १९२९ :

(९) डा० मोतीलाल मेनारिया का मत है कि "डिंगल शब्द डींगळ का परिवर्तित रूप है। प्रारम्भ में जिस समय मारवाड़ी के लिए इस शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ, उस समय यह डींगळ ही बोला और लिखा जाता था। वृद्ध चारण आज भी डिंगल न बोलकर डींगळ ही बोलते हैं। इसकी उत्पत्ति डींग शब्द के साथ 'ल' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। और इसका अर्थ है, डींग से युक्त अर्थात् अतिरंजनापूर्ण[१]।"

यह मत भी ठीक प्रतीत नहीं होता। वृद्ध चारण डिंगल को ही 'डींगळ' नहीं पिंगल को भी 'पींगळ' बोलते हैं। फिर, पिंगल की कविता भी बहुत अतिरंजनापूर्ण है। और पिंगल ही क्या किसी भी भाषा की कविता अतिरंजना से अछूती नहीं रह सकती। मूल शब्द डिंगल ही प्रतीत होता है।

(१०) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार,—"मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक भाषा "डिंगल" भी प्रकट हुईं।...राजपूताने के भाट और चारणों ने पिंगल की अनुकारी एक नई कवि-भाषा मारवाड़ी के आधार पर बनाई, जो "डींगल" या डिंगल नाम से अब परिचित है[२]।" डा० उदयनारायण तिवारी का भी यही विचार है कि "पिंगल के सादृश्य पर ही डिंगल शब्द की रचना हुई है[३]।"

भाट और चारण दो भिन्न जातियां हैं और उनकी भाषाएँ भी भिन्न हैं। डिंगल शब्द का प्रयोग पिंगल के साथ बराबर मिलता है, अतः कौन किसके आधार पर बना, यह कह सकना कठिन है।

(११) श्री गणपतिचन्द्र के अनुसार, "राजस्थान में बहुत पहले कोई डगल नाम का अत्यन्त छोटा-सा प्रदेश था जो अब शायद इतिहास के गर्त के कारण लुप्त हो गया है। इसी डगल के रहनेवालों की भाषा डिंगल कहलाई।" श्री हरप्रसाद शास्त्री द्वारा उद्धृत दोहे का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि "दोहे के अर्थ से स्पष्ट है कि लेखक का अर्थ सिवा किसी प्रदेश विशेष के नाम के और कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता है[४]।"

प्रदेश विशेष के नाम के आधार पर भाषाओं का नामकरण होता है। किन्तु राजस्थान में "गर्त के कारण लुप्त हुए" किसी छोटे से डगल प्रदेश की संभावना केवल कल्पना है, इतिहास से इसका समर्थन नहीं होता। 'बहुत पहले' से तात्पर्य कितना पहले से है, इसका अभिप्राय: स्पष्ट नहीं है। दोहे के अर्थवाली लेखक की दूसरी उक्ति भी अमान्य है। प्रथम तो दोहे का अर्थ पूरे प्राप्त छन्द के साथ ही करना चाहिए और दूसरे, यदि केवल इसी दोहे का अर्थ लिया जाय तो वह भी लेखक की धारणा के विरुद्ध पड़ता है।

(१२) श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार, "डिंगल केवल अनुकरण शब्द है, 'काफिया न

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २७—२८:
२. राजस्थानी भाषा, पृ० ५८:
३. वही, पृ० ६५:
४. वीर काव्य, भूमिका, पृ० ५८: (सं० २००५)
५. साहित्य-सन्देश, मार्च, १९५१:

मिलेगा तो चोंसों तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना लिया गया है। ..डिंगल एक यदृच्छात्मक शब्द है, डित्थ.. आदि की तरह इसका कोई अर्थ नहीं है। निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखलाने के लिए, उसी की छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते हैं। उदाहरण के लिए कर्म (प्रधान कर्म) की छाया पर कल्म (अप्रधान कर्म) और कँवर (कुमार, जिसका पिता जीवित हो) की छाया पर भँवर (जिसका दादा जीवित हो)[1]।"

(१३) श्री नरोत्तम दास स्वामी ने दो संभावनाएं प्रकट की हैं:—

(क) "अपभ्रंश ने लोक साहित्य से अनेक नए छन्द बनाए। देश भाषाओं के विकास के समय लोक साहित्य के आधार पर और नए प्रकार के छन्द बनाए गए। पूर्वी कवियों ने, जिनमें भाट (ब्रह्मभट्ट) प्रधान थे, पदों का आविष्कार किया और पश्चिम के चारण कवियों ने (चारणी) गीतों का। ब्रह्मभट्ट लोग पिंगलानुमोदित छन्दों में भी रचना करते थे, उनकी रचनाओं में पदों की अपेक्षा पिंगलानुमोदित छन्दों की ही प्रधानता रही। पर चारणों ने इन छन्दों की अपेक्षा गीतों को प्रधानता दी। पिंगलानुमोदित छन्दों में लिखी गयी कविता की भाषा (ब्रजभाषा) पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के वजन पर पिंगल के छन्दों से भिन्न गीतों में लिखी कविता की भाषा का डिंगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिंगल शब्द, जैसा कि गुलेरीजी कहते हैं—निरर्थक है और पिंगल के वजन पर गढ़ा गया है।"

(ख) "कुशललाभ रचित पिंगल शिरोमणि ग्रन्थ में उडिंगल नागराज का एक छन्द शास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है। ..जब डिंगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक जान पड़ा और पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गई। यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है[2]।"

पिंगल के वजन पर डिंगल शब्द के बनने की बात सदेहपूर्ण है। पिंगल और डिंगल की प्रकृति और विकास स्रोत भिन्न हैं, अत उनमें तदनुसार ही विषय, भाषा और छन्द आदि प्रयोग में लाए गए। प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी प्रकृति और विशिष्टता होती है, जो अन्य भाषाओं से उसे पृथक करती है। गीत साहित्य चारण शैली की विशेष देन है, किन्तु इसके अलावा दोहा छन्द का भी प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। वास्तव में गीतों के बाद परिमाण और महत्व की दृष्टि से सर्वाधिक साहित्य दोहा साहित्य ही है। इसी प्रकार छप्पय छन्द भी काफी प्रचलित रहा है। एक छन्द विशेष के आधार पर दूसरी भाषा से भेद करने के लिए, किसी भाषा का कोई विशिष्ट नामकरण करने की आवश्यकता पड़े, यह न तो आवश्यक ही है और न ही संभव।

---

१. ना० प्र० प०, भाग ३, अंक १, पृ० ९८ :

२. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय : पृ० १२-१३ :

इसी प्रकार, पिंगल नागराज की समानता पर उडिंगल नागराज की कल्पना का कोई ठोस आधार न होकर अनुमान ही है।

प्रतीत होता है, डिंगल डित्थ-डवित्थ आदि यदृच्छात्मक निरर्थक शब्दों की भांति तद्भव अनुकरणात्मक शब्द है। हो सकता है उडिंगल शब्द डिंगल का मूल रहा हो। अन्य ठोस प्रमाणों के अभाव में इस अनुमान को स्वीकार किया जा सकता है।

डिंगल का स्वरूप : डा० टैसीटरी की धारणा : उसकी अमान्यता

यहां डिंगल के स्वरूप संबंधी डा० टैसीटरी की धारणा पर भी विचार कर लेना चाहिए। उनके अनुसार डिंगल के दो स्वरूप हैं—(१) प्राचीन डिंगल, जिसका समय लगभग तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक है और (२) अर्वाचीन डिंगल, जिसका समय सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर आज तक है। उनकी धारणा है कि प्राचीन डिंगल में अइ और अउ का प्रयोग होता था जबकि अर्वाचीन डिंगल में उनके स्थान पर क्रमशः ऐ और औ का[1]। अपनी इस धारणा के आधार पर उन्होंने अपने संपादित प्राचीन डिंगल ग्रन्थ 'छन्द राव जैतसी रो' और फुटकर गीतों में सब जगह ऐ के स्थान पर अइ और औ के स्थान पर अउ कर दिया है। यहां तक कि उन्होंने व्यक्तिवाचक संज्ञाओं-जैतसी, जोधौ, नागौर आदि का क्रमशः जइतसी, जोधउ, नागउर कर दिया है। उनके इस स्वरूप-भेद का आधार डिंगल में प्रयुक्त कुछ शब्दों के हिज्जे और उच्चारण संबंधी कुछ विशेषताएं है, व्याकरण-भेद या शब्द-भेद नहीं। इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि ...The difference between the two stages is more in points of phonetics and morphology than lexicography[2]. डा० टैसीटरी का यह मत भ्रमपूर्ण है। "प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल का यह भेद डिंगल की प्रकृति एवं उच्चारण शैली के विपरीत है। ...दूसरे, शब्द रचना का उनका उक्त तरीका भी ठीक नहीं है। सिर्फ डिंगल का प्राकृत अपभ्रंश से संबंध बतलाने के लिए इसकी कल्पना कर ली गई है[3]।" भाषा स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। अपभ्रंश से जब देश भाषाओं का विकास हुआ तो उनमें अपभ्रंश से मिलते-जुलते कुछ रूप भी परम्परानुसार चलते रहे। यह स्वाभाविक ही था। डा० टैसीटरी के अनुसार, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की उन मुख्य विशेषताओं को समेट कर दो में इस प्रकार रखा जा सकता है जिनके द्वारा वह एक ओर अपभ्रंश से अलग हो जाती है और दूसरी ओर आधुनिक गुजराती और मारवाड़ी से। वे विशेषतायें यों हैं—

(१) अपभ्रंश के व्यंजन द्वित्व का सरलीकरण और पूर्ववर्ती स्वर का प्रायः दीर्घीकरण हो जाता है।

---

१. (क) वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासौत री : Introduction, Page IV :
   (ख) JASB(NS), Vol X, No. 10, Page 375–377.
   (ग) वही–(NS), Vol XIII, Page 231–232.
२. JASB (NS), Vol. X, No 10, Page 376–377.
३. डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३० :

(२) अपभ्रंश के दो स्वर-समूहों-अइ, अउ के उद्वृत रूप सुरक्षित हैं, अर्थात् इनमें से प्रत्येक समूह के दो स्वर तब तक दो भिन्न अक्षर माने जाते थे[१]।

जहा तक पहली विशेषता का प्रश्न है, उसकी "ध्वन्यात्मक प्रक्रिया समान रूप से सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में भी पाई जाती है"[२]। यदि अपभ्रंश 'अज्ज' के सरलीकरण रूप 'आज' का प्रयोग प्राचीन डिंगल में या प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में पाया जाता है, तो वह बराबर रूप से अर्वाचीन डिंगल में भी पाया जाता है। अतः इसके आधार पर प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल जैसा कोई भेद खड़ा नही किया जा सकता। इस भेद का कारण दूसरी बात ही है। डा० टैसीटरी के अनुसार आधुनिक मारवाड़ी में अइ से दीर्घ ऐ और अउ से दीर्घ औ हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में अपने "Notes on the Grammar of the old Western Rajasthani with special ref. to Apabhramsa, Gujarati & Marwari" की एक भूल का सुधार करते हुए वे लिखते हैं—

In the first chapter of the aforesaid "Notes" I had stated that the aï and aü of all old Western Rajasthani become ê, ô in modern Gujarati & ai au in modern Marwari. This is inaccurate. In both modern Gujarati & Marwari, the aï and aü of old Western Rajasthani become è and ò What I mean by è and ò is a wide sound of the e and o vowels[३].

डा० टैसीटरी की यह अइ और अउ वाली धारणा निराधार प्रतीत होती है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों से इसका समर्थन नही होता। डिंगल में अइ और अउ के साथ क्रमशः ऐ और औ का प्रयोग विक्रम की पंद्रहवी शताब्दी से पहले ही हो चुका था और इस शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक तो ऐ और औ का प्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलता है। बहुत से शब्द तो अइ और अउ तथा ऐ और औ दोनो रूपों में एक साथ ही पाए जाते हैं। इस बात के प्रमाण स्वरूप "अचलदास खीची री वचनिका" की भाषा देखी जा सकती है।

रचनाकाल और लिपिकाल की दृष्टि से यह चारण साहित्य की सबसे प्राचीन रचना है। इसकी रचना, जैसा कि अन्यत्र लिखा गया है, विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में संवत् १५०० के आसपास हुई थी। संवत् १६३१ की लिखी हुई इसकी हस्तप्रति अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में है[४], जिसमें से इसके आदि और अन्त के दो पृष्ठों के चित्र यहा दिए जा रहे हैं। इस प्रति में अपने रचनाकाल की भाषा का बहुत कुछ मूल रूप सुरक्षित है। स्वयं डा० टैसीटरी इसे स्वीकार करते हैं। इसका विवरण देते हुए वे लिखते हैं—The copy....is very important on account of the old readings

१. पुरानी राजस्थानी, (ना० प्र० स०); पृ० ७–८:
२. वही:
३. JASB (NS), XII, 1916, page 74.
४. प्रति नं० ९९:

'अचलदास खीची री वचनिका'—गाडण सिवदास-कृत] [देखिए—पृ० १८–२० तथा

ग्रन्थ के अन्त का पृष्ठ। लिपिकाल—संवत् १६३१। हस्तलिखित प्रति नं० ९९ से,—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी,

—महाराजा बीकानेर के

which it has preserved[1]. अन्यत्र इसे प्राचीन डिंगल की रचना मानते हुए इसके महत्व को वे यों आंकते हैं —...The great classical model, is a work of the old Dingala period[2].

इसमें एक ही शब्द के दो रूप पाये जाते हैं—अइ के साथ ऐ और अउ के साथ औ। अर्थात् एक ही शब्द दो भिन्न प्रकार से लिखा मिलता है। ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१ एक ही शब्द के दो रूप—

(क) "ऐ" के साथ "अइ"—

गलै : गलइ<गलति; नै : नइ<कर्ण; हैं : हइं<भवति;
छै : छइं<*अच्छति; मैंगल : मइंगल<मदकल; दिहाडै : दिहाडइ<दिवस;
लीजै : लीजइं<लीयन्ते; कीजै : कीजइ<क्रियते; दीजै : दीजइ<दीयते;
हुवै : हुवइ<*भुवति=भवति; तणै : तणइ<आत्मनकं; जैत : जइत<जयन्त्;
कहै : कहइ<कथयति ।

(ख) "औ" के साथ "अउ"—

कुण, कौण : कउण<कः पुनः; *कमन्त्; हौ : हुउ<भवतु;
जौंहर : जउंहर< जतुगृह; दूसरौ : दुसरउ<*द्विसरकः=द्वितीय;
माहरौ, हमारौ : हमारउ<*अस्मारक=अस्मदीय; तणौ : तणउ<*आत्मनक;
दीठौ : दीठउ<दृष्टकः इसौ : इसउ <ईदृशकः

(२) इनके अतिरिक्त "ऐ" और "औ" के अनेक प्रयोग मिलते हैं। कुछ उदाहरण यों हैं—

(क) "ऐ"—

छुटै<*क्षुतंति; कन्है<कर्णेभिः; पडै<पतति; कहै<कथयति;
मिलियै<*मिलयन्ते; ऊपरै<उपर; लहै<लभते; राहै<*राहति;
तुहारै<*तुष्मारक=युष्मदीय; संभारै<सम्भारयति ; आवटै<आवृत्त;
अवहटै<अवघट्ट; कमवटै<कर्पपट्टके।

(ख) "औ"—

लागौ<*लग्यतु; विहूणौ<*विमनक.=विहीनकः; आवरयौ<आवारितकः;
सारियौ<सदृक्ष=सदृश; सोनौ<सुवर्ण, परीछायौ<परिच्छद,
लीयौ<लीयतु; जीयौ<जीवतु; गजियौ<गर्जितकः ; *गज्यतु;
मान्यौ<मान्य; किसौ<कीदृशः।

---

१. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 41–42.
२. वचनिका राठोड़ रतनसिंहजी री महेसदासोत री : Introduction, Page VI,

इनके साथ कुछ प्राचीन प्रयोग "अइ" और "अउ" के भी हैं, यथा—

(क) "अइ"

जपइ<जपति; तुहालइ<*तुष्मार; आछइ<*अच्छति; घडइ (देशी);
कइ<कति (कितने); कइ<कृत (प्रत्यय); आगिलइ<अग्रल; पाछिलइ<*पश्चल;
एकइ<एकक; विकाइ<विक्री+; राइ<राजा।

(ख) "अउ"—

वाघउ<वाघा; रापउ<रक्षतु; घणउ<घनकः; भलउ<भद्रकः;
कितणउ<कियत्तकः; मउं<समं; आवतउ<*आयान्तकः; लीजउ<*लीयतु;
नीकउ<नवीकृतः।

इनके अतिरिक्त इन दोनों विशेषताओं से मिश्रित कुछ शब्दो का भी प्रयोग हुआ है—

चाल्यौउ<√चालय+; घाल्यौउ<*घल्ल<√क्षर्+; करउज्यौं<√कृ+।

जहां तक प्रान्तीय बोलियो के प्रभाव का प्रश्न है, इसकी भाषा में मालवी के सम्बन्ध सूचक *"का" या "की" तथा संबंध परसर्ग "कउ" और जैसलमेरी या उत्तरी-पश्चिमी "उवै" तथा* दक्षिणी-पूर्वी "इवै" का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं "उ" की जगह "व" तथा "इ" की जगह "य" श्रुति का आगमन हुआ है।

उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक, संवत् १५०० के आसपास "पुरानी पश्चिमी राजस्थानी," या "प्राचीन डिंगल" अपना पुराना स्वरूप छोड कर नया ग्रहण कर चुकी थी। प्राचीन 'अइ' और 'अउ' के स्थान पर नवीनरूप क्रमशः 'ऐ' और 'औ' प्रतिष्ठित हो चुके थे। भाषा के विकास का यह क्रम धीरे धीरे आया। इस दृष्टि से, 'अइ' और 'अउ' के स्थान पर क्रमशः 'ऐ' और 'औ' का प्रचलन कम से कम विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी के पूर्व ही होने का अनुमान किया जा सकता है। इस 'वचनिका' में जो 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग आता है, वह पुरानी परम्परा का निर्वाह मात्र है। पुराने रूपों के साथ नवीन रूपो का बहुतायत से प्रयोग, भाषा के विकसित स्वरूप की सूचना देता है। कोई भी भाषा सहसा सभी पुराने स्वरूप छोड़ कर नए ग्रहण नहीं कर लेती।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि डा० टैसीटरी ने जो प्राचीन डिंगल का काल सन् ईस्वी १६०० तक माना है, वह मान्य नही हो सकता। अब यदि डा० टैसीटरी के अनुसार भाषा के, प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल, ये दो भेद माने ही जाएँ तो अधिक से अधिक प्राचीन डिंगल का काल, संवत् १५०० तक या सन् ईस्वी १४५० के लगभग होना चाहिए, उससे आगे नहीं। प्रस्तुत 'वचनिका' की भाषा इसी तथ्य की ओर इशारा करती है।

इस मत की पुष्टि डा० टैसीटरी द्वारा संपादित 'प्राचीन डिंगल' के ग्रन्थ—चारण वीठू सूजा कृत 'छन्द राव जैतसी रो' तथा ऐतिहासिक गीतों से भी की जा सकती है।

छन्द राव जैतसी रो : वीठू सूजा कृत—

डा० टैसीटरी ने दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया है। सम्पादन में उन्होंने वैज्ञानिकता और तटस्थता का उतना ध्यान नहीं रखा जितना अपनी 'अइ' और

'अउ' वाली पूर्व-निर्धारित धारणा को पुष्ट करने का। जिन दो प्रतियों का उल्लेख उन्होंने किया है, उनमें पहली संवत् १६२९ की लिखी हुई है और दूसरी संवत् १७९७–१८११ की लिखी हुई है। उनके इस ग्रन्थ-सम्पादन का मुख्य आधार संवत् १६२९ वाली प्रथम प्रति ही रही है, जिसके विषय में वे लिखते है—Apart from the fact that it is dated only about thirty years from the composition of the poem, is generally very accurate and reliable and that the reading, except in very few places, is absolutely safe[१].

डा० टैसीटरी का निश्चित मत है कि विक्रम सौलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक, जो इस काव्य का रचनाकाल (संवत् १५९१–१५९८) है—...The normal form of spelling was still considered to be ai (अइ), aü (अउ). In fact, this form of spelling is the one generally followed in the Ms. P, which, as stated above was *written in the year Samvat 1629*[२]. परन्तु प्रति को देखने से पता चलता है कि बात ऐसी तो है ही नहीं, अपितु इसके ठीक उलटी है, अर्थात् "ऐ" और "औ" का प्रायः सर्वत्र प्रयोग पाया जाता है, "अइ" और "अउ" का नही। प्रति में सर्वत्र "अइ" और "अउ" के स्थान पर डा० टैसीटरी के कथन के विपरीत क्रमशः "ऐ" और "औ" का व्यवहार ही मिलता है। किसी-किसी स्थल पर जो "अइ" और "अउ" का प्रयोग मिलता है, वह अपवाद स्वरूप ही है और कहीं-कहीं तो वह छन्द के आग्रह से है। इस बात के प्रमाण स्वरूप उपर्युक्त हस्तलिखित प्रति को ध्यानपूर्वक देखने का निवेदन किया जाता है[३]।

डा० टैसीटरी ने अपने संपादित इस ग्रन्थ मे, उल्लिखित प्रति के, भाषा स्वरूप की तत्कालीन स्थिति का पता देने वाले कुछ महत्वपूर्ण पाठों का, अपनी धारणानुसार, बिना किसी आधार के, परिवर्तन करके पाठ रखे है। इससे उनकी तथाकथित मान्यता को तो बल मिला, किन्तु डिंगल के स्वाभाविक विकास, प्रकृति, उच्चारण शैली और शब्द रचना का गलत रूप भी सामने आया। मोटे रूप से ऐसे पांच परिवर्तन डा० टैसीटरी ने किए हैं, जो हस्तलिखित प्रति में नही हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) ऐ का अइ करना;
(२) औ का अउ करना।
इनके उदाहरणों की आवश्यकता नही है, क्योंकि ऐसा तो सर्वत्र ही किया गया है।
(३) व और य श्रुति को किसी स्वर में बदलना;
(४) व्यंजन द्वित्व का प्रयोग;
(५) अनुस्वार को अनुनासिक में बदलना।

१. छन्द राव जइतसी रउ वीठू सूजइ रउ कहियउ : Introduction Page–XIV.
२. वही : Page, XIV–XV.
३. देखिए : प्रति नं० ९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

व और य श्रुति में किए गए कुछ परिवर्तन यों हैं—

(क) व :	व का अ :	कुंवर का कुंअर	(७६)	< कुमार
	व का उ :	आव का आउ	(६६)	< आयात
		गाव का गाउ	(७१)	< गाया
		राव का राउ	(९५)	< राजा
		चँवर का चउँर	(९५)	< चामर
	व का इ :	राव का राइ	(१२९)	< राव
	वा का आ :	हींदुवां का हिन्दुआं	(१२९)	(फारसी-हिन्दु)
	वि का इ :	भुवि का भुइ	(१३१)	< भूमि
	वु का उ :	रावुत का राउत	(७२)	< राजपुत्र
	वे का ऐ :	भवे का भए	(७९)	< भावित
	वौ का अउ :	हूवौ का हूअउ	(५७)	< भूतक
(ख) य :				
	य का इ :	वयरागर का वइरागर	(१३२)	< वैराग्यकर
		रयण का रइण	(२०)	< रजनी
		मयल का मइल	(५५)	< मल
		रंणायर का रइणायर	(२८)	< रजनीकर
		हय का हइ	(९६)	< हय
	ये का ए :	घाये का घाए	(३१)	< घात(क्रिया)

हस्तलिखित प्रति के दो छन्द (नं० ४६ तथा ५६) ही ऐसे हैं जिनके पाठ को डा० टैसीटरी ने बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण किया है। दो छन्द (नं० ५८ तथा ३५०) और ऐसे हैं जिनके पाठ को एक-एक परिवर्तन के साथ ग्रहण किया है। अन्यथा, एकाध अपवाद को छोड़ कर डा० टैसीटरी ने उपर्युक्त पाच परिवर्तन और तद्नुकूल पाठान्तर अपने संपादित ग्रन्थ में कर दिए हैं, जो हस्तलिखित प्रति में नही पाए जाते। यही नही, पाठान्तर ग्रहण करते समय, हस्तलिखित प्रति में जो मूल पाठ मिलते हैं, उन सबका हवाला भी फुटनोट में नही दिया गया है। संपादित ग्रंथ में आधारभूत हस्तलिखित प्रति के महत्वपूर्ण पाठान्तरों का पूरा हवाला न मिलने और मनमाने ढंग से शब्दों के पाठ-परिवर्तन से, भाषा के सही स्वरूप और प्रकृति को समझने में कठिनाई खड़ी हो जाती है। यही नही, उससे भ्रम उत्पन्न हो जाने की संभावना रहती है। खास तौर से, राजस्थानी भाषा के साथ तो यही हुआ। भाषा के आधार पर किया गया काल-विभाजन इसका प्रमाण है। यहां यह लिख देना भी आवश्यक है कि संपादन-कार्य में जिस दूसरी प्रति का हवाला डा० टैसीटरी ने दिया है, उसका पाठ प्राय- सर्वत्र ही आधुनिक है। अइ और अउ जैसी कोई विशेष प्रवृत्ति उसमें नहीं है।

इस सिलसिले में संवत् १६२९ की हस्तलिखित प्रति के दो पृष्ठों के चित्र यहां दिए जा रहे हैं, जिनके पाठ को संपादित पाठ से मिलान करने पर इस बात की पुष्टि होगी। सारे ग्रन्थ के पाठान्तर

मिलान की अपेक्षा दो पृष्ठों की बानगी ही पर्याप्त समझी गई है। पहला चित्र हस्तलिखित प्रति के ग्रंथारंभ होनेवाले पृष्ठ का है और दूसरा मध्य का। पहले पृष्ठ में, ग्रंथ के श्रीगणेश से लेकर दसवें छन्द की प्रथम तीन पंक्तियों तक का पाठ आया है और दूसरे में ९३ वें छन्द की अंतिम अर्ध-पंक्ति से लेकर १०२ छन्द तक का। स्मरणीय है कि ये चित्र बिना किसी आयास और पाठ-विशेष का ख्याल किए साधारण तौर पर यों ही ले लिए गए हैं। इनके और डा० टैसीटरी द्वारा संपादित ग्रंथ के कुछ पाठान्तर नीचे दिए गए हैं। *यह ध्यान देने की बात है कि यहां पाठान्तर* वे ही दिए गए हैं जिनका हवाला डा० टैसीटरी ने फुटनोट में नहीं दिया है। जिस शब्द का पाठान्तर एक बार दे दिया गया है, उसे दुबारा नहीं लिया गया। ल तथा ळ वाले पाठान्तर भी नहीं दिए गए हैं। (पाठान्तर के लिए देखें—पृष्ठ २४–२५)।

अनुस्वार का अनुनासिक होना तो कोई विशेष बात नहीं है, किन्तु ऐ, औ का अइ, अउ कर देना महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनका मत मुख्यतया इसी पर आधारित है। 'छन्द राव जैतसी' के संपादन में प्राय: सभी जगह डा० टैसीटरी ने इसी प्रकार पाठान्तर किए हैं।

'छन्द राव जैतसी' के अतिरिक्त ऐसे ही पाठान्तर उन्होंने स्व-संपादित प्राचीन डिंगल गीतों में भी किए हैं। उदाहरण के लिए, उनके द्वारा संपादित चौहथ[1] के एक गीत को देखा जा सकता है। जिस हस्तलिखित प्रति से यह गीत लिया गया है, वह संवत् १६१५ और सं० १६३४ के बीच लिखी गई थी[2]। बहुत संभव है कि यह गीत संवत् १६१७–१८ के आसपास लिपिबद्ध किया गया है। हस्तलिखित प्रति देखने से ऐसा ही अनुमान होता है। इसके पाठ में अन्य परिवर्तन तो किए ही गए हैं, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के रूप भी बदल दिए गए हैं, यथा—

वीकै का वीकइ; वीकौ का वीकउ तथा वैरसलपुर का वइरसल्लपुर।

कुछ अन्य परिवर्तन यों हैं :

	हस्त० प्रति :		संपादित	
ऐ का अइ :	रापे	:	रापइ	< रक्षति
	आपणै	:	आपणइ	< आत्मन्+
	उबारियै	:	उबारियइ	< उद्भार (क्रिया)
	कियै	:	कियइ	< क्रियते
औ का अउ :	किसौ	:	किस्यउ	< *किस्य=कस्य
	प्रवाडौ	:	प्रवाडउ	< प्रवाद+
	कियौ	:	कियउ	< कृत+

इस प्रकार डा० टैसीटरी ने अपने इस मत को प्राचीन रचनाओं के सम्पादन करने में सब जगह लागू किया है, जो सर्वथा अनुचित और भ्रामक है।

---

१. JASB (NS), Vol. XIII, 1917, Page 233–234.

२. वही; तथा प्रति नं० ९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

मिलान की अपेक्षा दो पृष्ठों की बानगी ही पर्याप्त समझी गई है। पहला चित्र हस्तलिखित प्रति के ग्रंथारंभ होनेवाले पृष्ठ का है और दूसरा मध्य का। पहले पृष्ठ में, ग्रंथ के श्रीगणेश से लेकर दसवें छन्द की प्रथम तीन पंक्तियों तक का पाठ आया है और दूसरे में ९३ वें छन्द की अंतिम अर्ध-पंक्ति से लेकर १०२ छन्द तक का। स्मरणीय है कि ये चित्र बिना किसी आयास और पाठ-विशेष का ख्याल किए साधारण तौर पर यों ही ले लिए गए हैं। इनके और डा० टॅसीटरी द्वारा संपादित ग्रंथ के कुछ पाठान्तर नीचे दिए गए हैं। यह ध्यान देने की बात है कि यहां पाठान्तर वे ही दिए गए हैं जिनका हवाला डा० टॅसीटरी ने फुटनोट में नहीं दिया है। जिस शब्द का पाठान्तर एक बार दे दिया गया है, उसे दुबारा नहीं लिया गया। ल तथा ळ वाले पाठान्तर भी नहीं दिए गए हैं। (पाठान्तर के लिए देखें—पृष्ठ २४–२५)।

अनुस्वार का अनुनासिक होना तो कोई विशेष बात नहीं है, किन्तु ऐ, औ का अइ, अउ कर देना महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनका मत मुख्यतया इसी पर आधारित है। 'छन्द राव जैतसी' के संपादन में प्रायः सभी जगह डा० टॅसीटरी ने इसी प्रकार पाठान्तर किए हैं।

'छन्द राव जैतसी' के अतिरिक्त ऐसे ही पाठान्तर उन्होंने स्व-संपादित प्राचीन डिंगल गीतों में भी किए हैं। उदाहरण के लिए, उनके द्वारा संपादित चौहथ'[1] के एक गीत को देखा जा सकता है। जिस हस्तलिखित प्रति से यह गीत लिया गया है, वह संवत् १६१५ और सं० १६३४ के बीच लिखी गई थी[2]। बहुत संभव है कि यह गीत संवत् १६१७–१८ के आसपास लिपिबद्ध किया गया है। हस्तलिखित प्रति देखने से ऐसा ही अनुमान होता है। इसके पाठ में अन्य परिवर्तन तो किए ही गए हैं, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के रूप भी बदल दिए गए हैं, यथा—

वीकै का वीकइ; वीको का वीकाउ तथा वैरसलपुर का वइरसल्लपुर।

कुछ अन्य परिवर्तन यों हैं :

	हस्त० प्रति :	संपादित	
ऐ का अइ :	रायै :	रायइ	< रक्षति
	आपणै :	आपणइ	< आत्मन्+
	उबारियै :	उबारियइ	< उद्भार (क्रिया)
	कियै :	कियइ	< क्रियते
औ का अउ :	किसौ :	किस्यउ	< *किस्य=कस्य
	प्रवाडौ :	प्रवाडउ	< प्रवाद+
	कियौ :	कियउ	< कृत+

इस प्रकार डा० टॅसीटरी ने अपने इस मत को प्राचीन रचनाओं के सम्पादन करने में सब जगह लागू किया है, जो सर्वथा अनुचित और भ्रामक है।

---

१. JASB (NS), Vol. XIII, 1917, Page 233–234.

२. वही; तथा प्रति नं० ९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

छन्द संख्या	१ "ऐ" का "अइ" :		२ "औ" का "अउ"		३ व्यंजन द्वित्व का प्रयोग :		४ 'व' श्रुति में परिवर्तन :		५ अनुस्वार का अनुनासिक	
	हस्त लिखित प्रति का पाठ :	संपादित ग्रंथ का पाठ	ह० प्र० का पाठ :	सं० ग्रं० का पाठ	हस्त० प्रति का पाठ .	सं० ग्रं० का पाठ	ह० प्र० का पाठ :	सं० ग्रं० का पाठ	ह० प्र० का पाठ :	सं० ग्रं० का पाठ
प्रारंभ	जंतसी, मूर्ज :	जइतसी, मूजइ	री, कीयौ :	रउ, कहियउ	×	×	×	×	×	×
१	×	×	×	×	अनाहुत : अपर .	अन्नाहुत अवसर	राठवडौ :	राठउडौ	×	×
२	वेगडै :	वेगडइ	×	×	हठमल :	हठमल्ल	वियाव :	वियाउ	×	×
३	×	×	चौंड :	चउंड	जगी :	जग्गी	राव, घाव, रावत :	राउ, घाउ, राउत	×	×
४	×	×	×	×	विडारि :	विड्डारि	×	×	×	×
६	×	×	वधियौ :	वाधियउ	×	×	×	×	×	×
७	×	×	×	×	मारग :	मारग्ग	×	×	×	×
८	रंवास :	रइवास	लीयौ :	लियउ	×	×	×	×	×	×
९	×	×	छापरौ : कियौ :	छापरउ कियउ	राहाचरक :	राहाचरक्क	चवंड :	चउंड	×	..
१०	फेरियै :	फेरियइ	×	×	×	×	×	×	:	.

	१	२	३	४	५
९३	× ×	विवंनौ : विवन्नउ	कारंन : कारन्न थंन : थन्न	× ×	× ×
९४	थिड़तं : थिड़तइ	उठियौ : उठियउ राखियौ : राखियउ	× ×	× ×	असंभ : असम्भ थंभ : थम्भ
९५	वैठौ, ढलकं : वइठउ ढलकइ	मारवौ : मारुअउ :	छत : छत्र अविचल : अविच्चल	× ×	× ×
९६	सोहैं, सेवं : सोहइ, सेवइ	× : ×	गढपति : गढपत्ति	× ×	व्रंन : व्रन्न
९७	जंति : जइति	गड़ड़ियौ : गडडियउ	सांमंद : सामन्द्र	× ×	× ×
९८	पं : पइ	× ×	हलावि : हल्लावि	× ×	हींदू : हिन्दू
९९	नरवं : नरवइ पहरिजं : पहिरिजइ मुणियं : मुणियइ	× ×	× ×	× ×	× ×
१००	दियं : दियइ नं : नइ	× ×	× ×	× ×	× ×
१०१	वधं : वधइ रहवहं : रहवहइ	× ×	× ×	× ×	सोवंन : सोवन्न धंन : धन्न
१०२	मिलं : मिलइ	× ×	चउहट : चउहट्ट मांणिक : माणिक्क	× ×	× ×

यह आश्चर्य की ही बात कही जानी चाहिए कि उनके बहुत अधिक सावधानी और सतर्कता बरतने के बावजूद भी 'छन्द राव जैतसी' में एकाध स्थल पर नवीन रूप "ऐं" और "औ" झांक लेते दिखाई देते हैं, जैसे—

ऐ : बीकनेर; नैर; (छन्द ५७)

औ : नारनौल; छौल (छन्द ७६)।

संभवतः इटैलियन भाषा में प्रयुक्त औ और ई के बाहुल्य, और राजस्थानी में इनके ध्वनि-सादृश्य, जैन ग्रंथों के आधार पर पुरानी पश्चिमी राजस्थानी विषयक अध्ययन और जैन धर्म तथा साहित्य के प्रति अनन्य अनुराग आदि के कारण, उनकी यह धारणा बनी और पुष्ट हुई हो। इसका एक और भी कारण हो सकता है। सन् ईस्वी १६०० से पहले का लिखित चारण साहित्य कम ही मिलता है। इसके बाद में लिखित जो चारण साहित्य मिलता है, उसमें प्रायः सर्वत्र भाषा के नवीन रूप ऐ और औ पाए जाते हैं। इधर जैन साहित्य सन् ईस्वी १६०० से पहले का लिखित प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। यदि इसके पश्चात् प्राचीन जैन रचनाओं की नकलें भी हुईं, तो उनमें भाषा का बहुत कुछ मूल रूप ही सुरक्षित रखा गया। शब्दों की कपाल-क्रिया उनमें कम, बहुत ही कम, की गई है। जैन साहित्य में 'अइ' 'अउ' की प्रवृत्ति विशेष है, जो आलोच्य काल के बहुत पश्चात् भी अबाध गति से चलती रही। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है। अतः डा० टैसीटरी ने सन् ई० १६०० की एक विभाजक रेखा खींच कर प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल का भेद खड़ा कर दिया। परन्तु मुख्य बात यह है कि जैन शैली में यदि सन् ई० १६०० से पहले, 'अइ' और 'अउ' की प्रवृत्ति पाई जाती है, तो वह बराबर रूप से उसके बाद में भी पाई जाती है। उदाहरणों से यह बात सिद्ध की जा सकती है।

इसके लिए संवत् १६४५ में मेवाड के सादड़ी गांव में लिखित जैन कवि हेमरत्न के 'गोरा-बादल पदमणी चौपई'[1] काव्य तथा विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के सुप्रसिद्ध जैन कवि समयसुन्दर की रचना[2] के कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'गोरा बादल पदमणी चौपई' में तो व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के रूप भी परिवर्तित मिलते हैं, यथा—

बादलै का बादलइ, गोरै का गोरइ तथा गोरौ का गोरउ आदि।

नीचे "चौपई" से अइ तथा अउ रूपों के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

'अइ' :

वसइ<वसति; तणइ<आत्मन्; आवइ<आयाति; दापइ<*द्रक्षति=पश्यति;

होवइ<भवति; भाषीयइ<भाष्यते; दीयइ<दीयते; कहीयइ<कथयते; छइ<*अच्छति;

लाभइ<लभ्यते; जाणइ<जानाति; बइठी<उपविष्ट+; दीसइ<दृश्यते; नइ<कर्ण+;

पइसी<*प्रविशित=प्रविष्ट; तपइ<तपति; अछइ<*अच्छति;

तिणइ<*तीणाम्=तेषाम् ; तासाम्; नासइ<नश्यति; सकइ<शक्नोति;

बइसणइ<उपवेशन (क्रिया); लागइ<लग्न+; वदइ<वदति; बोलइ<*बोल्लति=ब्रवीति;

---

१. हस्तलिखित प्रति नं० २९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

२. नाहटा : 'समयसुन्दर-कृति-कुसुमांजलि', से :

जिसइ<*यिस्य=यस्य; टलइ<टलति; ठयइ<*स्थपति=तिष्ठति; बइठा<उपविष्ट;
करइ<करोति; डरइ (देशी)<*डरति; मायइ<मस्तके।

"अउ" :

सांभलउ<सम्भालयतु; साव्यउ<स्थापितव्य:; लीयउ<*लीयतु;
चउसाल<चतुश्शाला; जिगउ<*यिग्य=यस्य; तणउ<आत्मनक:; जाण्यउ<*ज्ञायतु;
चउरासी<चतुरशीति; चउहटा<चतुर्पट्टक; गउख<गवाक्ष; सूधउ<शुद्धक; घणउ<घनक;
नउं<कर्ण+; कीधउ<कृत+; बइठउ<उपविष्ट; कीयउ<कृत+; किसउं<*किष्य=कस्य;
थयउ<स्थितक; ऊभउ<उर्ध्वक; एकलउ<*एकल्लक=एकाकी; गयउ<गतक;
भलउ<भद्रक; सुणउं<श्रृणोतु; हूवउ<भूतक: जीवतउ<जीवन्तक: ;
दीधउ<*दितक=दत्तक: ; इसउ<ईदृशक: ; किसउ<कीदृशक: ; पहुतउ<प्रभूतक: ;
हीयउ<हृदयकम्; कीयउ<कृतक: ;

पडीयउ <√पत्; रंजीयउ <√रंज्; चालीयउ <√चल्; गाजीयउ<√गर्ज्;
मांडीयउ <√मण्ड्। अन्तिम पांच कर्मवाच्य क्रियाऐं हैं।

(ख) समयसुन्दर कृत संवत् १६८७ के गुजरात के दुष्काल वर्णन से—

अइ :

भरइ<भरति; चुणइ<*चुनोति=चिनोति; कहइ<कथयति; पीयइ<पिबति;
भइण<भगिनी; उपाडइ<उत्पाटयति; दीसइ<*दृश्यति; थायइ<स्थापयति।

अउ :

दीधउ<*दितक=दत्तक:; तणउ<आत्मनक; पडिकमणउ<प्रतिक्रमणक; छांडउ<*छर्दक;
जीवाडउ<*जीवन्तटक:; काढियउ<*कढ्ढ=कृष्ट (नामधातु)।

इस सिलसिले में राव जैतसी रो संबंधित, बीठू सूजे के "छन्द" की समकालीन दो अन्य रचनाओं के भाषा-स्वरूप की भी चर्चा कर लेनी चाहिए। ये दो रचनाएं है—(१) राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द[1] तथा (२) जैतसी रासौ[2]। दोनों के रचयिता अज्ञात हैं।

इनमें प्रथम रचना "पाघड़ी छन्द" की भाषा की प्रवृत्ति अइ और अउ की ओर है। इसमें ऐ और औ का प्रयोग सर्वथा नगण्य है। "जैतसी रासौ" में इसके विपरीत सर्वत्र ऐ और औ का प्रयोग मिलता है।

पूछा जा सकता है कि लगभग एक ही समय में रची हुई इन तीनों रचनाओं की भाषा में दो प्रवृत्तियों के पाए जाने के क्या कारण है। उत्तर स्पष्ट है। जैन शैली या उससे प्रभावित रचनाओं में सब जगह अइ और अउ की विशेष प्रवृत्ति लक्षित होती है। चारण साहित्य और जैन साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है। अवश्य ही "पाघड़ी छन्द" का कवि जैन शैली से प्रभावित था और जैतसी रासौ का कवि चारण शैली का था। नहीं तो

---

१. प्रति नं० १००, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २, मार्च, १९४९ में प्रकाशित :

कोई कारण नहीं कि लगभग एक ही समय में रचित वीठू सूजे के काव्य और अज्ञात कवि के काव्य "पाघड़ी छन्द" की भाषा के स्वरूप में इतना अन्तर पाया जाए। ऊपर दिए गए जैन साहित्य की रचनाओं के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है।

डा० टेसीटरी के तथाकथित मत ने भ्रान्त धारणाओं की भी सृष्टि की जिसके प्रमाण स्वरूप नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित "ढोला-मारुरा दूहा" की भाषा देखी जा सकती है। इसमें सर्वत्र मौके बेमौके अइ और अउ की भरमार की गई है और कहीं कहीं तो, इस प्रवृत्ति ने शब्दों का असली रूप ही बदल दिया है, जैसे—ढोला का ढउलउ; घोड़ो का घउडउ; पैलं का पहलइ और केरै का कइरइ आदि। स्वयं इसके सम्पादकों ने स्वीकार किया है कि "समानता रखने के लिए ऐ और औ की मात्राओं को अइ और अउ में परिवर्तित कर दिया है[1]।" किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने तो शैली ही एक प्रकार से बदल दी है। "ढोला-मारूरा दूहा" की ऐसी अनेक शिथिलताओं की ओर स्व० मुंशी अजमेरी पहले ही इंगित कर चुके हैं[2]। कहना न होगा कि संपादकों ने 'ढोला-मारु' को पुरानी डिंगल की रचना मानते हुए, डा० टेसीटरी के मत के आधार पर ही इसका संपादन किया है। अइ और अउ का यह मोह श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित "वेलि क्रिसन रुकमणी री" में भी पाया जाता है, जबकि डा० टेसीटरी तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाली "वेलियों" में ऐसा नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए ये शब्द देखे जा सकते हैं—

	"वेलि" : (स्वामी)		"वेलि" : (हिन्दुस्तानी एकेडेमी)		
छन्द ३४ :	ऊफणियउ	:	ऊफणियौ	<	उत्फाणक;
३५ :	हुवइ	:	हुवै	<	भवति;
	वरइ	:	वरै	<	वरयति
	लियउ	:	लियौ	<	√ली;
	गयउ	:	गयौ	<	गतकः;
	वडउ	:	वडौ	<	*वड्रः;
३७ :	घणइ	:	घणै	<	घनः;
	जाणइ	:	जाणै	<	जानाति;
३८ :	छाइजइ	:	छाइजै	<	छाद्य (कर्मवाच्य क्रिया)

दूसरी भ्रान्त धारणा राजस्थानी साहित्य के काल विभाजन की भी इस मत के कारण सामने आई।

काल विभाजन : उसके कारण

लगभग सभी विद्वानोंने डा०टेसीटरी के भाषा सम्बन्धी मत के अनुसार ही राजस्थानी साहित्य का काल-विभाजन किया है। पीछे सिद्ध कर आए हैं कि अधिक से अधिक प्राचीन डिंगल का काल सं० १५०० तक है, अतः सन् ई० १६०० तक (या लगभग विक्रम संवत् १६५० तक)

---

१. ढोला-मारुरा दूहा, (द्वितीय संस्करण) : प्रस्तावना, पृ० १४१ :

२. ना० प्र० प० (नं० सं०), भाग १८, अंक ३, सं० १९९४; भाग १९, अंक ४, सं०१९९५ :

जो प्राचीन डिंगल का काल मान जाता रहा है वह निराधार है। काल विभाजन करने वाले विद्वानों ने कोई ठोस कारण भी नहीं बताए है। इस विषय में डा० मोतीलाल मेनारिया तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा प्रस्तुत किया गया काल विभाजन उल्लेखनीय है—

डा० मेनारिया[1]		श्री स्वामी[2]	
प्रारंभ काल	: सं० १०४५–१४६०	प्राचीन काल	: सं० ११५०–१५५०
पूर्व मध्य काल	: „ १४६०–१७००	मध्य काल	: „ १५५०–१८७५
उत्तर मध्य काल	: „ १७००–१९००	अर्वाचीन काल	: „ १८७५ के पश्चात्
आधुनिक काल	: „ १९००–२००५		

उपर्युक्त विभाजन मोटे तौर पर ही किया गया प्रतीत होता है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने *आधुनिक भाषाओं को अपभ्रंश से अलग करनेवाली आठ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते* हुए लिखा है कि "ये विशेषताएं सं० १२०० के आसपास स्पष्ट हो जाती हैं, अतः तभी से आधुनिक भाषाओं का काल मानना उचित होगा[3]।" इस उक्ति में बल है, उस पर दो मत नहीं हो सकते। अनुमान किया जा सकता है कि संवत् १२०० के पहले ही उन विशेषताओं के कुछ रूप अवश्य उभरने लगे होंगे और इस कारण लगभग संवत् ११०० से प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदि काल माना जा सकता है। एक और प्रकार से भी इस बात पर विचार किया जा सकता है।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रारंभिक गुजराती और राजस्थानी एक ही भाषा थी। हेमचन्द्राचार्य कृत व्याकरण में जो दोहे उदाहरण रूप से दिए गए हैं उनके संबंध में विद्वानों का यही मत है कि वे उस समय के प्रचलित साहित्य से लिए गए हैं[4]। प्रसिद्ध विद्वान् बेचरदास जीवराज दोशी ने हेमचन्द्र के समय में प्रचलित लोकभाषा, जिसको विद्वान अंतिम अपभ्रंश की संज्ञा देते हैं, की चर्चा करते हुए लिखा है कि अंतिम अपभ्रंश "ऊगती गुजराती" ही है,—"मारा नम्र कथन प्रमाणे तेओ जे भाषा ने "अंतिम अपभ्रंश" कहे छे ते ज आ आपणी ऊगती गुजराती छे[5]।" अपने मत के समर्थन में उन्होंने बारहवीं शताब्दी के धर्मघोषसूरि नामक जैनाचार्य को रचना का उदाहरण दिया है। हेमचन्द्र ने अपने समय की "ऊगती गुजराती" को व्याकरण द्वारा नियंत्रित करने के लिए, जिन जिन नियमों का उल्लेख किया है, उनकी सविस्तर भाषा-शास्त्रीय समीक्षा की है और उसमें "ऊगती गुजराती" के चिन्हों को लक्षित किया है। इसी सिलसिले में हेमचन्द्र की भाषा का उल्लेख करते हुए, वे लिखते हैं कि, "तेमणे रचेलां उक्त पद्यो अने बीजां उदाहरणोथी पण एम जणाई आवे छे के तेओ पोताना समयनी गुजराती भाषाने समझावी रह्या छे जेने में अही "ऊगती गुजराती" नाम आप्यु छे[6]"। गुजराती भाषा के विकास-क्रम के विषय में उनका कथन

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १०३ :
२. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० २२ :
३. वही : पृ० ५
४. पाहुड दोहा, भूमिका, पृष्ठ २३ :
५. गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति : पृ० १८५ :
६. वही : पृ० २०४ :

है कि, "आदिम अपभ्रंश द्वारा हेमचंद्रे बतावेला अंतिम अपभ्रंशनी के ऊगती गुजरातीनी उत्पत्ति थई अने ते द्वारा आ आपणी वर्तमान गुजराती आवी एटले वैदिक कालनुं उत्तम अपभ्रंश, ऊगती गुजरातीनी जननी थाय अने वर्तमान गुजरातीनी मातामही थाय[1]।"

कुमारपालचरित में हेमचन्द्र का जन्म संवत् ११४५ और मृत्यु संवत् १२२९ में मानी गई है[2]। देसाई भी यही मानते हैं[3]। हेमचन्द्र के समय में जो बोलचाल की भाषा थी वह 'ऊगती गुजराती" कही जा सकती है, और उसका प्रचलन उनसे पूर्व ही हो जाना चाहिए। दीवेटीया ने गुजराती भाषा की उत्क्रान्ति बारहवीं शताब्दी से मानी है। यही नहीं अन्य देशी भाषायें भी इसी समय विकसित हो रही थीं। १२ वीं शताब्दी में रचित 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की भाषा को प्राचीन कोसली कहा गया है[4]। इन सब बातों पर विचार करने से यही समझ में आता है कि जूनी गुजराती, या प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी अथवा ऊगती गुजराती का आदि काल मोटे रूप से संवत् ११०० से माना जाना चाहिए। इस काल की अंतिम सीमा संवत् १५०० है। इस प्रकार प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल संवत् ११०० से १५०० तक है, जिसे विकास काल कहा जा सकता है। संवत् १५०० के लगभग राजस्थानी या नवीन राजस्थानी, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से अपना अलगाव कर लेती है। भाषा के क्षेत्र में अइ के स्थान पर ऐ और अउ के स्थान पर औ का चलन हो जाता है। यहां यह भी स्मरणीय है कि प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के इस आदि काल का साहित्य, राजस्थानी और गुजराती, दोनों भाषाओं की सम्मिलित थाती है, दोनों का उस पर बराबर अधिकार है। भाषा के स्वरूप, साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों और धाराओं के प्रस्फुटन, प्रचलन और समावेश, शैली वैशिष्ट्य, विविध विचार धाराओं के प्रणेता, प्रेरक और प्रसाहक मनीषियों के प्रादुर्भाव, तथा सम्मिलित रूप से इन सबके प्रवाह-नैरन्तर्य के कारण यही समीचीन जान पड़ता है कि संवत् १५०० के आसपास से ही नवीन राजस्थानी के साहित्यिक इतिहास का प्रारंभिक काल मानना चाहिए।

इसके कुछ मुख्य कारण ये हैं—

(१) संवत् ११०० से लेकर संवत् १५०० तक का साहित्य विकास को प्राप्त होती हुई प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का साहित्य है। गुजराती और राजस्थानी, दोनों का उस पर समान अधिकार है।

(२) संवत् १५०० के आसपास राजस्थानी के नए रूप ऐ तथा औ विकसित हो चले थे।

(३) इस संवत् के लगभग प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से चारण शैली अपना अलगाव कर रही थी। 'अचलदास खींची री वचनिका' चारण शैली की सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है।

(४) इससे पहले चारण शैली की कोई अन्य रचना प्राप्त नहीं होती। 'वीरमायण' और 'वचनिका' लगभग एक ही समय की रचनाएं हैं, किन्तु तत्कालीन भाषा का बहुत कुछ सही

---

१. गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति : पृ० २१७ :
२. कुमारपालचरित : Introduction, Page, XXIII–XXV. (१९३६) :
३. जैन गुर्जर कविओ, प्रथम भाग, 'जूनी गुजराती भाषानो संक्षिप्त इतिहास', पृ० ११३:
४. उक्ति व्यक्ति प्रकरण : 'स्टडी'—डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, (सं० २०१०) :

स्वरूप 'वचनिका' में ही सुरक्षित है। 'वीरमायण' की भाषा लिपिकारों द्वारा किए गए परिवर्तनों के कारण अपेक्षाकृत आधुनिक है। इससे पूर्व रचित 'रणमल्ल छन्द' उपलब्ध है, किन्तु उसकी भाषा को अवहट्ट कहा गया है।

(५) जैनाचार्यों और कवियों का सम्बन्ध प्रारंभ से ही गुजरात और राजस्थान दोनों प्रदेशों से रहा है, इस कारण उनकी भाषा में गुजराती का सम्मिश्रण स्वाभाविक है। इस समय तक जैन शैली यद्यपि पूर्ण-रूपेण गुजराती प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी तथापि विक्रम सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में रचित (संवत् १५१२ में) 'कान्हड़दे प्रबन्ध' में राजस्थानी रूप देखा जा सकता है। यहां यह भी कह रखना आवश्यक है कि कुछ राजस्थानी रचनाओं का श्रद्धालुओं द्वारा गुजरातीकरण भी हो गया है। जैन शैली की प्रारंभिक रचनाओं में जो गुजराती प्रभाव पाया जाता है, वह कुछ इस कारण भी है।

(६) संवत १५०० के पश्चात् लिखित जैनाचार्यों के गद्य में राजस्थानी रूप भी मिलता है।

(७) संवत् १५०० से पूर्व चारण शैली का गद्य उपलब्ध नहीं होता। 'वचनिका' में सर्वप्रथम सुन्दर गद्य का नमूना प्राप्त होता है जो उसके बाद क्रमशः विकास को प्राप्त होता गया।

(८) ऐतिहासिक काव्यों की अविच्छिन्न परम्परा-विशेषतया चारण शैली में, संवत् १५००के लगभग ही मिलती है।

(९) राजस्थानी लोक काव्य-परम्परा, इस समय से धारावाहिक रूप में और विपुल परिमाण में मिलती है। 'लपमसेन पदमावती चौपई' और 'ढोला-मारु' सोलहवी शताब्दी के प्रारंभिक लोक काव्य हैं।

(१०) जांभोजी, जसनाथ आदि महान आत्माओं का प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक सालों में हुआ। राजपूतों और चारणों की उपास्य देवी करणीजी के महत्वपूर्ण राजनैतिक-सामाजिक कार्य-कलाप इस शताब्दी में फलीभूत होने लगे थे।

(११) पांच हिन्दु वीर जुझारू पुरुषों को निश्चित रूप से इस शताब्दी के प्रारम्भ तक सिद्ध पुरुष मान लिया गया था। पांचों सिद्धों के नाम हैं—पाबूजी राठौड़, हड़बूजी सांखला, रामदेव जी तंवर, मेहाजी मांगलिया, तथा गोगाजी चौहान। चारण साहित्य और लोकगीतों में इनकी स्मृतिया और प्रशस्तियां सुरक्षित हैं। राजस्थान के लोकजीवन में इन सिद्धों की बहुत बड़ी मान्यता है।

इन सब कारणों के आधार पर राजस्थानी का विकसित काल संवत् १५०० से ही मानना चाहिए।

अध्याय २

बोलियाँ, विशेषताएँ, ध्वनि-परिवर्तन, व्याकरण आदि

अपभ्रंश : राजस्थानी

राजस्थानी राजस्थान प्रान्त और मालवा[1] की भाषा है। इसके बोलनेवालों की संख्या डेढ़ करोड़ से भी ऊपर है। भारत के सभी प्रान्तों में, सुदूर देहातों तक में, इसके बोलने वाले मिलेंगे[2]। भाषा विज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिन्दी से पृथक भाषा माना है, किन्तु साहित्य जगत में यह हिन्दी की ही एक शाखा मानी जाती है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से राजस्थानी हिन्दी से बहुत दूर है। उसका निकट सम्बन्ध गुजराती से है न कि हिन्दी से[3]। प्राचीन राजस्थानी और गुजराती एक ही भाषा थी[4]। विद्वानों का अनुमान है कि लगभग सोलहवीं शताब्दी में राजस्थानी और गुजराती भाषाएं पृथक हुईं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के शब्दों में—Gujarati and Rajasthani are derived from the one and same source dialect to which the name of old Western Rajasthani has been given...Gujarati must have differenciated from old Western Rajasthani in the Sixteenth century into a separate language[5].

अपभ्रंश से भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। अतः आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं की जननी वही है। दण्डी के अनुसार काव्य में आभीरादि की बोलियां अपभ्रंश कहलाती हैं[6]। अनुमान है कि उनमें से एक जाति गुर्जर अवश्य होगी[7]। 'गुर्जर' जाति के कारण गुजरात नाम पड़ा। राजशेखर ने मरुभू, टक्क और भादानक को अपभ्रंश से मिलती-जुलती भाषा का प्रयोग करने वाला क्षेत्र बतलाया है[8]। भरत के अनुसार हिमवत् सिन्धु और सौवीर की भाषा उकार-बहुला थी[9]। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में पुरुषोत्तम नामक पूर्वी बौद्ध प्राकृत वैयाकरण ने अपभ्रंश को उस समय के शिष्ट लोगों की भाषा बताया है और अपभ्रंश की विशेषताओं के लिए सुसंस्कृत

---

१. (क) Grierson : Linguistic survey of India, खंड १, पृ० १७१;
   (ख) जयचन्द्र विद्यालंकार : भारत भूमि और उसके निवासी, पृ० २१९-२२१, (१९३९):
२. Linguistic Survey of India, खण्ड १, पृ० १७५ :
३. डा० श्यामसुन्दरदास : हिन्दी भाषा और साहित्य :
४. डा० टैसीटरी : "Notes"—Indian Antiquary, 1914–16.
५. Origin & Development of the Bengali Language, Vol. I, Page 9.
६. काव्यादर्श १.३६ : आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः
७. नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : पृ० २९, (१९५४) :
८. काव्य मीमांसा : सापभ्रंश प्रयोगाः सकल मरुभुवष्टक्कभादानकाश्च:
९. नाट्यशास्त्र : हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः
   उकार बहुला तज्ज्ञस्तेषु भाषा प्रयोजयेत्

लोगों के व्यवहार का निर्देश किया है[१]। वाग्भट्ट के वाग्भट्टालंकार की टीका में सिंहदेव ने, तथा मार्कण्डेय ने भी कुछ अपभ्रंश बोलियों का स्थान द्रविड़ प्रदेशों में निर्धारित किया है, किन्तु यह ठीक नहीं है[२]। ए० सी० वूल्नर के अनुसार, द्राविड़ शब्द का अर्थ यहां तामिल् आदि द्राविड़ी भाषा नहीं है किन्तु एक प्रकार की टूटी-फूटी आर्यभाषा है जो द्राविड़ देश में प्रचलित थी[३]। प्रारम्भ में अपभ्रंश को आभीरों की भाषा माना जाता था। वास्तव में आभीर या उनके साथी जहां-जहां गये, उन्होंने तत्तत्स्थानीय प्राकृत को अपनाया और उसमें निज स्वभावानुकूल स्वर या उच्चारण संबंधी परिवर्तन कर दिए। आभीर स्वभाव के कारण इसी परिवर्तित एवं विकृत या विकसित भाषा को ही अपभ्रंश का नाम दिया गया[४]। 'अपभ्रंश भाषा का प्रचार लाट (गुजरात में) सुराष्ट्र, त्रवण (मारवाड़ में), दक्षिणी पंजाब, राजपूताना, अवंती, मंदसोर, आदि में था।...उसका प्रायः भारत के दूर-दूर के विद्वान प्रयोग करते थे[५]।' भौगोलिक दृष्टि से वह पश्चिम भारत की बोली थी। नागर अपभ्रंश अर्थात् परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी बोली का साहित्यिक रूप था[६]। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के शब्दों में—The Western or Saurseni Apabhransa became current all over Aryan India from Gujarat and Western Punjab to Bengal; probably as a Lingua Franca, and certainly as a polite language, as a bardic speech which alone was regarded as suitable for poetry of all sorts[७]. अपभ्रंश के कई भेद माने गये हैं। मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व से अपभ्रंश के सत्ताईस भेदों का पता चलता है। रुद्रट ने देश भेद से, अपभ्रंश के अनेक भेदों की ओर इशारा किया है[८]। नमिसाधु ने उपनागर, आभीर और ग्राम्या तीन भेद माने हैं[९]। शारदा-

---

१. Dr. V. G. Tagare : Historical Grammar of Apabhramsa, Poona, 1948 : ...In the 11th cent. A. D. Purusottama, an 'Eastern' Budhist Pkt. grammarian regarded Ap. as the speech of the elites 'Sistas' of the day, and asks us to refer to the usage of the cultured people for the remaining characteristics of Ap...., पृ० ३ :

२. वही : पृ० ३ :

३. प्राकृत प्रवेशिका, (अनु०—डा० बनारसीदास जैन), दसवां अध्याय, पृ० १०७, (१९३३) :

४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, (१९४८) ;

५. ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : पृ० १३७, (१९२८) :

६. नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ३१ :

७. Origin & Development of the Bengali Language, Intro. Page 161.

८. काव्यालंकार : २.१२ : षष्ठोऽत्र भूरि भेदो देशविशेषादपभ्रंशः

९. काव्यालंकार वृत्ति : तथा प्राकृतमेवापभ्रंशः स चान्यैरुपनागराभीरग्राम्यावभेदेन त्रिधोक्त-स्तन्निरासार्थमुक्तं भूरि भेद इति। कुतो देशविशेषात्। तस्य च लक्षणं लोकोदेव सम्यगवसेयम्।

तनय ने भी नागरक, ग्राम्य और उपनागरक तीन भेदों का वर्णन किया है[1]। मार्कण्डेय ने नागर, उपनागर और ब्राचड तीन भेद माने हैं[2]।

राजस्थानी भी अपभ्रंश से ही निकली है, किन्तु किस अपभ्रंश से निकली, इस विषय पर विद्वानों में अनेक मत हैं। डा० ग्रियर्सन इस क्षेत्र की अपभ्रंश को नागर अपभ्रंश, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी सौराष्ट्री[3] अपभ्रंश और श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी[4] व श्री नरसिंहराव भो० दिवेटिया[5] गुर्जरी व गुर्जर अपभ्रंश कहते हैं। ऐतिहासिक, भौगोलिक, एवं भाषा वैज्ञानिक आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी की उत्पत्ति हुई। शौरसेनी प्राकृत से गुर्जरी और शौरसेनी अपभ्रंश का विकास हुआ। गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी और गुजराती तथा शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी का विकास हुआ। डा० मोतीलाल मेनारिया का भी यही मत है[6]।

राजस्थानी की बोलियां : राजस्थानी की पांच मुख्य बोलियां है—

(१) मारवाड़ी :

इसके अन्तर्गत शेखावाटी और मेवाती भी हैं। यह मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर तथा सिरोही में थोड़े-थोड़े स्थानीय भेदों के साथ बोली जाती है। इसका विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आस-पास के स्थानों में देखने में आता है। मोटे रूप से यह समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है। मारवाड़ी का साहित्य बहुत विशाल और वैविध्यपूर्ण है। इसकी कुछ अपनी विशेषताएं भी हैं। यह ओजगुण प्रधान भाषा है और राजस्थान का प्रसिद्ध मांड राग इसमें बहुत खिलता है। इसमें व कार का प्रयोग विशेष है और प्राय. इ कार और उ कार के स्थान पर अ कार करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है, पर इसके अपवाद भी बहुत हैं। इसमें वर्तमान काल के लिए 'है', 'छै', भूत के लिए 'हा', 'छो' तथा सम्बन्ध कारक के लिए रा, रो, री, काम में आते हैं। और के लिए नैं का प्रयोग होता है। यह राजस्थान की 'स्टैण्डर्ड' बोली है।

(२) मेवाती : अहीरवाटी :

यह अलवर, भरतपुर तथा दिल्ली के दक्षिण में रोहतक, गुड़गाव जिलो के अंशों में बोली जाती है। इस पर ब्रज भाषा का प्रभाव लक्षित होता है। चरणदासी पंथ के प्रवर्त्तक महात्मा चरणदास और उनकी दो शिष्याओं—दयाबाई और सहजोबाई की रचनाएं इसी

---

१. भावप्रकाशन, G. O. S. संख्या ४५ :
एता नागरक ग्राम्योपनागरक भेदतः-
त्रिधा भवेयुरेतासां व्यवहारो विशेषतः।
२. प्राकृतसर्वस्व : ७: नागरो ब्राचडश्चोपनागरश्चेति ते त्रयः
अपभ्रंश परे सूक्ष्म भेदत्वान्न पृथङ्मता।
३. राजस्थानी भाषा :
४. अ०भा० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के तैंतीसवें अधिवेशन (उदयपुर) का विवरण, पृ० ९ :
५. कान्हडदे प्रबन्ध : प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ५ में मुनि जिनविजय द्वारा निर्देशित :
६. राजस्थानी भाषा और साहित्य: पृ० २—५ :

में है। इसमें वर्तमान के लिए 'है', भूत के लिए 'हो' तथा संबंध कारक के लिए का, को, की, का प्रयोग होता है। महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है।

(३) ढूंढाड़ी :

यह जयपुर, लावा, किशनगढ़ और अजमेर मेरवाड़ा के उत्तरी-पूर्वी अंश तथा टोंक में बोली जाती है। हाड़ौती इसकी उपबोली है जो कोटा बूंदी में बोली जाती है। इसमें कहीं-कही मारवाड़ी तथा ब्रज और गुजराती का प्रभाव लक्षित होता है। इसका साहित्य भी विशाल है। दादूदयाल और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाएं इसी में हैं। इसमें प्राय: व कार का ब कार कर दिया जाता है। वर्तमान के लिए 'छे', भूत के लिए 'छो', भविष्य के लिए 'ला' तथा सम्बन्ध कारक के लिए का, को, की, का प्रयोग होता है। इ कार और उ कार को अ कार करने की प्रवृत्ति भी कुछ पाई जाती है। किसी शब्द के साथ कभी-कभी स जोड़ दिया जाता है, पर इससे अर्थ में परिवर्तन नहीं होता, जैसे सां गयोस (वह कहां गया), मैंस तो ऐंडई छो (मैं तो यहीं था)। इसी प्रकार परिमाण वाचक और प्रकार वाचक विशेषणों में कभी-कभी क भी जोड़ दिया जाता है, यथा—कतरोक, कतरीक, कस्योक कसीक[१]।

(४) मालवी :

यह मालवा प्रदेश में बोली जाती है। इसमें कुछ विशेषताएं मारवाड़ी और ढूंढाड़ी की पाई जाती है। इसमें वर्तमान के लिए 'है', भूत के लिए थो, था, थी, भविष्य के लिए गो, गा, गी, और संबंध कारक के लिए को, का की, काम में लाए जाते है। संबंध परसर्ग के लिए कउ का प्रयोग होता है। बोलने में स कार के स्थान पर ह कार की ध्वनि बोली जाती है।

मोटे रूप से ग्रियर्सन[२], डा० श्यामसुन्दरदास[३] तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा[४] ने राजस्थानी के अन्तर्गत इन चार बोलियों को ही माना है।

(५) भीली या बागड़ी :

यह समूचे अरावली प्रदेश और उसके आगे मालवे के पहाड़ों में बोली जाती है। अरावली प्रदेश में, मेरवाड़ा की सीमा से शुरू होकर मेवाड़ के समूचे पहाड़ी प्रदेश, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ, रतलाम आदि इसके क्षेत्र में सम्मिलित हैं। भीली को ग्रियर्सन ने राजस्थानी से बिलकुल अलग एक स्वतंत्र भाषा माना है। लेकिन भीली कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। उसका मुख्य अंश राजस्थानी के ही अन्तर्गत है। यह अपनी पड़ोसी राजस्थानी

---

१. G. Mecalister : "specimens with a dictionary and a Grammar of the Dialects spoken in the state of Jeypore, (Allahabad Misson Press, 1898):
२. Linguistic survey of India.
३. भाषा रहस्य :
४. हिन्दी भाषा का इतिहास :

की विभिन्न बोलियों की उपबोलियों का समुच्चय मात्र है[१]। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार[२], पृथ्वीसिंह महता[३], डा० सुनीतिकुमार चटर्जी[४], डा० उदयनारायण तिवारी[५], श्री नरोत्तमदास स्वामी[६], डा० मोतीलाल मेनारिया[७] प्रभृति विद्वानों का ऐसा ही विचार है। गुजरात के निकटवर्ती होने के कारण इस पर गुजराती का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें च कार और छ कार के स्थान पर कहीं कहीं ह कार की ध्वनि बोली जाती है और महाप्राण का अल्पप्राण प्रयोग भी पाया जाता है। सबंध के लिए नो, ना, नी का प्रयोग होता है।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी तो भीली उपभाषा समूह के अतिरिक्त दक्षिण-भारत के तमिळ देश में प्रचलित सौराष्ट्री तथा पंजाब और काश्मीर की गूजरी को भी राजस्थानी के ही अन्तर्गत मानते हैं[८]। इनके अतिरिक्त बंजारी भाषाओं का मूलाधार भी राजस्थानी ही है[९]। पहाड़ी बोलियां भी राजस्थानी से निकली हुई मानी जाती हैं।

यहां यह भी लिख देना आवश्यक है कि कभी-कभी भीली की भांति 'मालवी' को भी एक स्वतंत्र भाषा मान लिया जाता है। श्री श्याम परमार के अनुसार...'वास्तव में मालवी एक पूर्ण विकसित सम्पूर्ण शक्तिशाली और विस्तीर्ण भाषा है। जो इसे राजस्थानी का एक भेद मानते हैं, वे भूल करते हैं[१०]।' इस धारणा से सहमत होना कठिन है। उपर्युक्त सभी विद्वानों ने एक स्वर से मालवी को राजस्थानी की ही एक बोली माना है। राजस्थानी की विभिन्न बोलियों पर पड़ोसी भाषाओं के प्रभाव के सबंध में डा० ग्रियर्सन लिखते हैं—Taking the dialects separately, Mewati is one which most nearly resembles Western Hindi. Here and there we find in Malwi a point of agreement with Bundeli, while Jaipuri and Marwari agree most closely with Gujarati[११].

राजस्थानी भाषा की विशेषताएं :

(१) डिंगल का शब्दकोष प्राय: अपभ्रंश का शब्द कोष ही है। अपभ्रंश के व्यंजन द्वित्व का सरलीकरण भी राजस्थानी में हुआ, यथा—काम<कम्म, काज<कज्ज। कुछ

---

१. पृथ्वीसिंह महता : हमारा राजस्थान, पृ० १० :
२. भारतभूमि और उसके निवासी, (१९३९ ई०) :
३. हमारा राजस्थान : पृ० १० :
४. राजस्थानी भाषा : पृ० ९ :
५. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १७९, (सं० २०१२) : तथा वीर काव्य, पृ० ५२ :
६. राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १५, (सं० २०००) :
७. राजस्थानी भाषा और साहित्य : (सं० २००८) :
८. भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ : पृ० ५६, (१९५७ ई०) :
९. (क) स्वामी : राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १५, (सं० २०००) :
   (ख) Grierson : "Note on the principal Rajasthani dialects."
१०. मालवी और उसका साहित्य : (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) :
११. "Note on the principal Rajasthani dialects."

शब्द संस्कृत के आधार पर भी बने हैं, जैसे—कारज<कार्य। मुसलमानी प्रभाव के कारण कई अरबी फारसी के शब्द भी इसमें मिल गए हैं और आधुनिक काल में कुछ अंग्रेजी शब्दों का भी राजस्थानीकरण हो गया है। कुछ शब्द अनुकरणात्मक हैं, जैसे—कँवर—भँवर; भरत—चरत। कुछ शब्द राजस्थानी के अपने हैं, यथा—रूड़ो (अच्छा), डूंगर, भाखर (पहाड़), गंडक (कुत्ता), टावर (बच्चा), लुगाई (स्त्री), डावो (बांया), सारू (लायक), नाहर (शेर), मगरो (पथरीली जमीन), जीवणो (दाहिना), आदि। अपने अर्थ का चित्र-सा खड़ा कर देने वाले ध्वन्यात्मक शब्द भी इसमें पर्याप्त हैं। ऊपर के डूंगर और भाखर ऐसे ही शब्द हैं। इसी प्रकार भोभर (अंगारे) और भभूंळियो (वात्याचक्र) भी।

(२) इसमें एक ही शब्द के कई रूप प्रचलित हैं, जैसे—

राठोड़ के : राठवड़, राठउड़, राठोड़, राइठोड़, रट्ठवड़, रट्ठउड़, राठौहड़; राउठउड़।
चौहान के : चाहवांण, चाहमाण, चहुआण, चहुवाण, चवाण, चुहाण, चोहाण, चोहान।

(३) शब्दों को संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति है—

टीकम<त्रिविक्रम; जगीस<जगदीश;
मैंमंत<मदोन्मत्त; आलौ<सीगालौ<*शृंगाल।

(४) शब्द युग्म के प्रयोग कई प्रकार से होते हैं—

(क) विपरीत अर्थवाले :
पी'र : सासरो; ऊँच : नीच; भोळो : स्याणो।

(ख) छोट बड़े के भाव वाले :
माळा : मिणियो; रोटी : टुकड़ो; नदी : नाळो।

(ग) समान पद :
सांठ : गाँठ; देव : पितर; माँ : बाप; काळी : पीळी।

(घ) एक अर्थ वाले :
पूत-बायरो; जड़ा-मूळ; डर-भै; घर-गिरस्ती।

(ङ.) भाषा विभिन्नता वाले :
हाट-बजार; कुटम-कबीलो; धन-दौलत।

(च) अर्थ विशेष पर जोर दने के लिए :
धोळो-सफेद; काळो-स्याह; लाल-सुरख।

(छ) पूर्वपद की ध्वनि पर परवर्ती पद का आगमन—
कमाई-कजाई; काम-काज; फूल-फाल; रीत-रात।

(५) मधुरता के लिए कई शब्दों के साथ ड़ी और ली का प्रयोग—
ली : चिड़कली; धोवड़ली।
ड़ी : सहेलड़ी; रावळड़ी; पणिहारड़ी; सींगड़ी।

(६) परम्परागत संबंध बताने के लिये वत और पिता-पुत्र का संबंध बताने के लिए ओत प्रत्यय का प्रयोग—
बीदावत (बीदा की परम्परा में)
कांधलोत (कांधल का पुत्र)
इसी प्रकार निवास के लिए इयो (एकवचन) इया (बहुवचन) और अण (स्त्री लिंग एक वचन) का प्रयोग—
पूगळियो; मेड़तिया; नागोरण; मारवण।

(७) क, ज, त, म, र, और स का विशेष प्रयोग—
क : परिठिउ जांणि क चंग ज : रतन ज काढइ आइ
ज : त : मुया त उणहि ज देस त : मिलइ त विछुड़इ कांइ
म : हियड़इ साल म देह स : आज स कांइ उदास
(ये उदाहरण 'ढोला-मारू' से लिए गए हैं)।
र : मीरां कहै प्रभु कब र मिलोगे तुम चरणां आधार (मीरां)

(८) विपर्यय की प्रवृत्ति—
(क) शब्द विपर्यय : सौ चार<चार सौ।
(ख) ध्वनि विपर्यय : हिरण<हरिन; गुरड़<गरुड़; छिब<छवि।

(९) पाद पूर्ति के लिए र और ह का आगम—
र : सरजळ<सजळ<सजल; अंबहर<अंबर; समहर<समर।
ह : रजपूतांह<रजपूतां<राजपुत्र; गल्लांह<गल्लां; सहनाणीह<सहनाणी।

(१०) ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए अनुस्वार अथवा वर्ण द्वित्व का प्रयोग—
कनंक<कनक; गजसाह<गजसाह; कटक्क<कटक; अम्मर<अमर; ध्रम्म<ध्रम<धर्म।

(११) शब्द के मध्य में अ, इ, य, व आदि का आगम—
अ : जंबुअहदीप<जंबुहदीप<जंबूदीप<जंबुद्वीप।
इ : राइठौड़<रायठौड़<राठौड़; हइत्थळ<हईथळ।
य : हयत्थळ<हत्थळ; रयक्खण<रक्खण।
व : चंदेवरी<चंदेरी<चंद्रगिरि।
संयुक्त व्यंजनों के मध्य में स्वरागम—
परब<पर्व; करम<कर्म; धरम<धर्म।

(१२) अघोष महाप्राण ध्वनियों का न बदलना—
खेत, मुख, छै, थळी, आछो, पीठ, रथ।

(१३) घोष महाप्राण यदि शब्द के मध्य या अन्त में रहे तो उसका प्रभाव शब्द के आदि अक्षर पर पड़ता है—
जोध=जो'द; बाघ=बा'ग; लाभ=ला'ब; सिंघ=सिं'द; सघला=स'गला; पाघड़ी=पा'गड़ी।

परन्तु *य या र का संयोग होने पर उच्चारण में पूर्व स्वर पर प्रायः जोर* नहीं पड़ता—
कर्‌यो, चल्यो, उठ्यो, मुक्यो, हर्‌यो।

(१४) राजस्थानी की उच्चारण सम्बन्धी विशपता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शब्द की उदात्त और अनुदात्त ध्वनियों में अन्तर करते ही अर्थ भेद हो जाता है, यथा—

अनुदात्त	उदात्त
कान (कर्ण)	का'न (कृष्ण)
नानो (मातामह)	ना'नो (नन्हा, छोटा)
कोड (चाव)	को'ड (कुष्ट रोग)
कद (लम्बाई)	क'द (कब, किस समय)
सारो (सब)	सा'रो (थेगी, सहायता, आधार)
पीर (पीड़ा)	पी'र (पीहर)
धुर (ऋण लेने वाला)	धु'र (अनादर बोधक)
मोळी (हलकी, हेठी, नीची)	मो'ळी (पंचरंगा सूत)
मैल (मैल, नीच)	मै'ल (महल)
मोर (पीठ, मोर)	मो'र (सोने की मोहर)
नार (स्त्री)	ना'र (सिंह)
नाथ (स्वामी)	ना'थ (आभूषण विशेष)
बोळो (वधिर)	बो'ळो (वहुत)

(१५) अपभ्रंश की भांति 'ण' को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति विशेष है। संस्कृत के नकारान्त शब्द राजस्थानी में प्रायः ण कारान्त हो जाते हैं, किन्तु इसके अपवाद भी हैं।

(१६) डिंगल में अनुस्वार की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से पाई जाती है। हस्तलिखित प्रतियों में अनुस्वार का अनावश्यक प्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलता है।

वर्णमाला :

स्वर : अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः।

ह्रस्व स्वर जो प्रायः कविता में आते हैं—

आ, ए, ऐ, ओ, औ।

व्यंजन : क ख(ष) ग घ ङ; च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण; त थ द ध न
प फ ब भ म; य र ल व
श ष स ह; ळ, ढ़, ड़।

डिंगल में विसर्ग (:) का प्रयोग नहीं है।

ङ, ड़, ञ, ण, और ळ शब्दों के आदि में नहीं आते।

ऋ का प्रयोग स्वतंत्र न होकर किसी दूसरे वर्ण के साथ होता है।

रेफ या तो र कार हो जाता है अथवा स्थानांतरित हो जाता है, यथा—

कीरत<कीर्ति; दुरलभ<दुर्लभ; ध्रम<धर्म; न्रिमल<निर्मल।

डिंगल की वर्ण माला में तालव्य श नहीं है, उसकी जगह दन्त्य स ही लिखा जाता है, पर पढ़ते समय जहां तालव्य श होना चाहिए, वहां वही पढ़ा जाता है। मूर्धन्य ष का उच्चारण 'ख' होता है। 'ख' के लिए प्रायः 'ष' ही लिखा मिलता है। किसी किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रति में 'श' और 'स' लिखा भी मिलता है, किन्तु वह अपवाद स्वरूप ही है। संवत् १६४३ में लिखित 'त्रिपुर सुन्दरी री वेलि'[1] में 'श' और 'ख' का प्रयोग मिलता है—

सीह वाहन संचरइ गिरवरि शिखरि मझारि।

इसी प्रकार किसी अज्ञात कवि रचित 'छन्द राव जैतसी' की हस्तलिखित प्रति[2] में एक जगह 'ख' और 'ष' का 'स' के लिए प्रयोग मिलता है—

नर भीड़ु चढिउ वंधियइं नेत्रि। खंडरण घडा मूंगली पेत्रि।

यह प्रति संवत् १६७६ की लिखी हुई है।

उच्चारण सम्बन्धी :

य का उच्चारण य और ज दोनों प्रकार से होता है। शब्द का प्रथम अक्षर यदि य होता है, तो वह प्रायः ज हो बोला और लिखा जाता है। यदि प्रथम अक्षर के बाद य आता है तो वह य बोला और लिखा जाता है, जैसे—

आद्य य परिवर्तन :

जम<यम; जुद्ध<युद्ध; जुगति<युक्ति; जुवती<युवती; जदि<यदि।

मध्य य : पयोहर, न्याव, ख्यात, अळियळ।

डिंगल में ल, ळ तथा व व़ का उच्चारण-भेद महत्वपूर्ण है।

ल, ळ : 'ल' कहीं दन्त्य 'ल' और कहीं मराठी, गुजराती, आदि के 'ळ' की भांति मूर्धन्य होता है। कई जगह 'ल' को 'ळ' कर देने से अर्थ परिवर्तन हो जाता है, यथा—

ल	ळ
सूल (आसानी से)	मूळ (कांटा)
कालो (कपटी)	काळो (काला)
पोली (थोथी)	पोळी (प्रवेश द्वार)
आलो (गीला)	आळो (दीवार का हिस्सा)
चंचल (चपल)	चंचळ (घोड़ा)
पाल (बिछाने का कपड़ा)	पाळ (बांध)
खाल (चमड़ा)	खाळ (पनाला, नाला)
बोलो (कहो, कहना)	बोळो (बहुत)
गाल (कपोल)	गाळ (गाली, दुर्वचन)

१. प्रति नं० २७२/४, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

२. प्रति नं० १००, 〃 〃 〃 〃

ल	ळ
कुल (वंश)	कुळ (सब, तमाम)
काल (समय)	काळ (मृत्यु)

व, व़ : व का उच्चारण दो तरह से होता है। एक 'व' का अंग्रेजी W की तरह और दूसरे 'व़' का V की तरह। कहीं-कहीं 'व' के स्थान पर 'व़' का प्रयोग होने से शब्दार्थ भिन्न हो जाता है, जैसे—

व	व़
वात (वायु)	व़ात (कहानी)
वास (गन्ध)	व़ास (निवास स्थान)
वचियो (बच गया)	व़चियो (छोटा बच्चा)
वल (टेढ़ापन)	व़ळ (जलने का आदेश)
वलती (लौटती हुई)	व़ळती (जलती हुई)

संस्कृत तत्सम शब्दों में, स्वरों के बीच में यदि 'ड', 'ल' और 'व' आते हैं, तो उनका उच्चारण क्रमशः 'ड़', 'ळ' और 'व़' होता है—

पीड़ा, कोड़; जळ, काळ, माळा, निरमळ; सरोव़र, पव़न, देव़ी।

तद्भव शब्दों में ऋ, ङ, ञ, श, ष, क्ष, ज्ञ, प्रायः प्रयुक्त नहीं होते।

राजस्थानी की बोलियों में कहीं कहीं श का प्रयोग देखा जाता है, जैसे—

जाईश (जाएगा), खाईश (खाएगा)।

लघु उच्चारण :

आ : सावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण-अधार (ढो० मा० ४९)
सायधण लाल कबाण ज्यउ ऊभी कड़मोड़ेह („ ३५५)
वाउवा हुओ कि वाउलो ('वेलि' ४)
जागियौ परभाति जगति ('वेलि' ४७)

ए : चारण एक ऊँमर तणउ, मिलियउ एह आसन्न (ढो० मा० ४४१)
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि (ढो० मा० ४५)
वळि रितुराइ-पसाइ वैसन्नर ('वेलि' २५४)

ऐ : पंथी एक संदेसड़उ, लग ढोलइ पैंहचाइ (ढो० मा० १२३)
उवै बोल्या सर ऊपरइ, थाँ कीधी अणुराव („ ५२)

ओ : संजोगणी सोहामणइ विजोगणी अँग दाधि (ढो० मा० २९८)
लोकमाता सिंधु सुता सी लिखमी ('वेलि' २७३)

औ : मारु देस सौहागणउ सावँणि साँझी वार (ढो०मा०, पाठान्तर, २५१)
आरोपित हार घणौ थियौ अंतर ('वेलि' ९४)
किहि करगि कुमकमौ कुंकुम किहि किरि ('वेलि' १०२)

ध्वनि-परिवर्तन :

स्वर :

अ : आदि लोप—

काळ<अकाल; हंकार<अहंकार

अन्त्य लोप—

तन्<तनु; मन्<मनस्

स्वरागम :

आदि में : जंबुअदीप<जंबुद्वीप; दुअट्ठ<दुष्ट

मध्य में : धरम<धर्म; करम<कर्म; मगन<मग्न; जतन<यत्न

अ>आ : भाराथ<भारत; काजल<कज्जल; आज<अज्ज<अद्य;
आम<अम्भ<अभ्र; माहेसुर<महेश्वर; नाटेसुर<नटेश्वर; साजन<सज्जन

अ>इ : जिग<जग<जग्ग<यज्ञ; धिन<धन्य; किरोड<करोड<कोटि
पातिक<पातक

अ>उ : जम्मु<जन्म; वायसु<वायस; मेहु<मेह<मेघ; रघवीर<रघुवीर;
अज्जु<अज्ज<अद्य; मुसाण<मसाण<स्मशान

अ>ए : जेहाज<जहाज (फारसी); साथे<साथ<सार्थ

अ>ओ : पोयण<पद्म; पोहरे<प्रहर

मध्यवर्ती अ>य :

रयण<रअण<रतन<रत्न; वयण<वअण<वयण<वचन

आ : आदि लोप : दीतवार<आदीतवार<आदित्यवार

आदि में आगम : आराण<रण; आथांन<स्थान

अन्त्य आ>अ : धर<धरा; रसण<रसना; रेह्<रेखा

आ>अ : हथ<हाथ<हस्त; वत<वात<वार्ता; रजपूत<राजपूत<राजपुत्र;
कज<काज<कार्य

इ : इ>अ . कव<कवि; हर<हरि; रीत<रीति; दन<दिन

इ>ई : मुनी<मुनि; भूमी<भूमि; कवी<कवि

इ>ई : (व्यंजन द्वित्व के कारण) :
भील<भिल्ल; भीख<भिक्ख<भिक्षा; टीपणी<टिप्पणी;
पवीत<पवित्त<पवित्र

इ>ए : पुणे<पुनि<पुनः; नेसास<निःश्वास; जाणिजे<जाणिज्जइ<ज्ञायते

ई : अन्त्य लोप : पदमण<पदमणी<पद्मिनी; कामण<कामणी<कामिनी;
केहर<केहरी<केशरिन्

ई>इ : मुनिंद<मुनीन्द्र; गिरिंद<गिरीन्द्र; कपिंद<कपीन्द्र

ई>ए : मुनेसर<मुनीश्वर; उमेद<उम्मीद (फारसी); रिषेसर<ऋषीश्वर

उ : आदि लोप : पनही<उपानह; दध<उदधि; वइसै<उविसइ<उपविशति

उ>अ : साध<साधु; धनख<धनुष; कँवर<कुमार; चतर<चतुर; पुरख<पुरुष

उ>ऊ : पसू<पशु; मूगलों<मुगलों; गरू<गुरु

उ>ऊ : (व्यंजन द्वित्व के कारण) : ऊजळो<उज्ज्वल; पूंछ<पुच्छ; पूत<पुत्र;

मूढ<मुड्ढ<मूढ़

उ के परवर्ती अ का लोप :

रूडउ<रूअडउ<रूढ़; हुउ<हूअउ<भूत

उ>ओ : ओपमा<उपमा; पोथी<पुस्तक

उ<अउ : कुण<कउण<कः पुनः; करु<करअउ<√कर्; करोतु

ऊ : ऊ>अ : मालम<मालूम

ऊ<अव : लूण<लवण; पून<पवन; पांडू<पाण्डव

ए : आदि लोप : ग्यारस<एकादशी

ए>हे : हेक<एक

ए>इ : नरिंद<नरेन्द्र; इकंत<एकान्त

ऐ : ऐ>ए : केवट<कैवर्त्त; तेल<तैल

ओ : ओ<अय : समो<समय; हिमाळो<हिमालय

ओ<अव : माधो<माधव; राधो<राघव; ओतार<अवतार; धोळो<धवल;

ऊधो<उद्धव

ओ>औ : पौलि<पओलि<प्रतोलिका

ओ>उ : गुवाळ<गोपाल; हुंतो<होंतउ<भवन्त्+

ओ>ऊ : जूण<योनि

औ : औ>व : चवदह्<चौदह्<चतुर्दश

औ>ए : बेपार<व्यौपार

औ>ऊ : चूतरो<चौतरा<चतुरक

औ>ओ : गोरो<गौरो<गौर; गोतम<गौतम; कोतिग<कौतुक

चँद्र बिन्दु (ँ) और अनुस्वार (ं) : इनके लिखने में अन्तर नहीं है, पर उच्चारण में अन्तर है। अनुस्वार तीव्र और उदात्त है, चँद्रबिन्दु धीमा और अनुदात्त है।

संयुक्तास्वर :

अइ : अछइ<*अच्छति; वइसइ<उपविशति

अउ : म्हारउ<*अस्मार=अस्मदीय; जिसउ<यस्य

अई : नई<कर्ण; हुवई<भवति

आऊ : वटाऊ<वर्त्तक; वरसाऊ<वर्षक
आइ : रामाइण<रामायण
इअ : पालिअ<पालित; मारिअ<मारित
इऔ : किऔ<कृत
उअ : हुअ<भूत
उआ : मुआ<मृत; हुआ<भूत
उऔ : हुऔ<भूतक; मुऔ<मृतक
एइ : केइ<के अपि; देइ<दयति
एई : देई<दयति
ओई : संजोई<संयोग
ओऊ : संजोऊ<संयोग; विगोऊ<विगत

व्यंजन :

क : लोप : पांत<पंक्ति; माथो<मस्तक
क का महाप्राण : रुखमणी<रुक्मिणी
क>ग : उपगार<उपकार; कोतिग<कौतुक
क>य : सयल<सकल; दिणयर<दिनकर

ख : ख>ह : रेह<रेखा; मूंह<मुख

ग : ग का महाप्राण : मिरघ<मृग
ग>य : सायर<सागर; गयण<गगन

घ : घ का अल्पप्राण : रुगनाथ<रघुनाथ; महंगा<महार्घ
घ>ह : मेह<मेघ; दीह<दीर्घ

च : च का महाप्राण : पछै<पश्चात्; तिरछी<तिरश्च+
च>ज : पंजो<पंच; कजौं<क्रौंच
च>स : (केवल उच्चारण में) : समार<चमार
च>य : लोयण<लोचन

ज : ज का महाप्राण : झिहाज<जहाज (फारसी)
ज>द : कागद<कागज (फारसी)
ज>य : गय<गज
ज>म : भमंग<भुजंग

ट : ट का महाप्राण : दीठ<दृष्टि; लाठी<यष्टिका
ट>ड, ड़ : कोड<कोडि<कोटि; घोड़ो<घोड़उ<घोटक; भड़<भड<भट

ड : ड>ड़ : मोड़<मउड<मुकुट; किवाड़<कपाड; कवाड<कपाट;
पड़<पड<प्रति; पत्

ड>ळ : सोळा<षोडश
प्राकृत ड्ड>ड : वडो<वड्डउ; खाड<खड्ड; हाड<हड्ड; गाडणो<गड्ड
ण>न : किसन<कृष्ण; बिसन<विष्णु; कान<कर्ण

त : लोप : उछाह<उत्साह; उपनिया<उत्पन्न
त का महाप्राण : भरथ<भरत; भाराथ<भारत; कंथ<कंत; थी<त्रिया<स्त्री
त>द : बिपदा<विपत्; वदीत<व्यतीत
त>च : सांच<सत्य; मीच<मृत्यु; नाच<नृत्य
त का मूर्धन्य : वाट<वर्त्म; काटणो<कर्तन
त>य : सय<शत; गय<गत; पायाल<पाताल
त>व : बावळो<वातुल

थ : थ का मूर्धन्य : ठांव, ठाण<स्थान
थ>ह : नाह<नाथ; गाहा<गाथा

द : लोप : बार<द्वार; बारा<द्वादश; बाईस<द्वाविंशति
ग्यारा<एकादश; बीजो<द्वितीयक
द का महाप्राण : धीवड़ी<दुहिता; धियाड़ो<दिवस
द>न : सँनेसो<संदेश
द>ज : आज<अद्य; कजली<कदली
द>ड : डेडर<दर्दुर; डिगमर<दिगम्बर
द>य : मयण<मदन; पोयण<पद्म
द>व : भेव<भेद; पसाव<प्रसाद; पाव<पाद

ध : ध का अल्पप्राण : समाद<समाधि
ध>झ : मज्झ<मध्य; सांझ<संध्या; झींवर<धीमर
ध>ह : जलहर<जलधर; रुहिर<रुधिर; विसहर<विषधर; बहू<वधू;
ससहर<शशधर
ध का मूर्धन्य : बूढो<वृद्ध

न : लोप : जमी<जमीन; बाचा<वचन
न>ण : जण<जन; जूण<योनि
न>ल : जलम<जन्म; लीलो<नीलो<नील
न>ड़ : हड़मान<हनुमान
न>द : वीरोचंद<वरोचन

प : प का महाप्राण : फरसो<परशु
प>व : नेवर<नूपुर; किंवाड़<कपाट; भुवाल<भूपाल; केवाण<कृपाण;
अवर<अपर; दिवलो<दीपक; रूव<रूप; कूव<कूप

ब : लोप : कदम<कदम्ब; चोईस<चौबीस<चतुर्विंश

भ : भ>म : ओळमो<उपालम्भ; सोरम<सौरभ

भ>ह : सहाव<स्वभाव; करह<करभ; वल्लहा<वल्लभ

म : म>व : सींव<सीमा; गांव<ग्राम; चँवर<चामर

म>न : सनमुख<सम्मुख; मनमान<सम्मान

म>व : ऐसे स्थलों पर पूर्व अक्षर की ध्वनि में नासिका भाव होता है, यथा—
आंबो<आम्र

य : य का आगम : रायठोड़<राठौड़<राष्ट्रकूट; हयत्थळ<हत्थळ<हस्ततल

य का लोप : पुन<पुण्य; मझ<मध्य; जोत<ज्योति; नेम<नियम;
नाळेर<नारियल<नारिकेल; नीत<नीयत<नियति

य>इ : पोइण<पोयण<पद्म; राइसिंघ<रायसिंघ<राजसिंह; दोइ<दोय<द्विक

य>ऐ : नैण<नयन; अजै<अजय; निर्भै<निर्भय

य>ज : जोगी<योगी; जुग<युग; जुगति<युक्ति

य>व : न्याव<न्याय; आवध<आयुध

य>ल . पलाथी<पर्यस्त; पिलाण<पर्याण; पिलंग<पर्यंक; लाठी<यष्टि

र : र लोप : पण<प्रण; भँवर<भ्रमर; सांवण<श्रावण; सीस<शीर्ष;
आभ<अभ्र; भादवो<भाद्रपद; सहस<सहस्र; धू<ध्रुव

र का आगम : सरजळ<सजल; कालिन्द्री<कालिन्दी

र>ड़ : विड़द<विरुद; मकड़धज<मकरध्वज; अड़व<अर्बुद

र>ळ : दाळद<दारिद्र्य; हळदी<हरिद्रा; जुजठ्ठळ<युधिष्ठिर

र का श्रम परिवर्तन : स्रग<स्वर्ग; ग्रीत<कीर्ति; नृमल<निर्मल;
करम<कर्म; धरम<धर्म

ल : ल>ळ : माळा<माला; सूळ<शूल; मंगळ<मंगल; हळ<हल;

ल>ड़ : धूड़<धूलि

प्राकृत ल्ल (संस्कृत-ल्य, ल्ल)>ल : काल<कल्ल<कल्य; साल<सल्ल<शल्य

प्राकृत ल (सं० ळ)>ळ : काळ<काल; माळा<माला

ल>म : नीपइ<लिप्पइ<लिप्यते

ल : लोप : फागण<फाल्गुन; मेछाण<म्लेच्छ

व : व>प : ऐरापत<ऐरावत

व>ब : बात<वात; बन<वन; बिरछ<वृक्ष

वँ>म : किमाड<किंवाड

व>म : रामण<रावण; हैमर<हयवर

व>ओ : ओसर<अवसर; भो<भव

व : लोप : देहरी<देहरउ<देवघरउ<देवगृहम्

प्राकृत व्व (सं० र्व, व्य)>ब : सरब<सब्व, सव्व<सर्व; परब<पव्व<पर्व;
गरब<गव्व<गर्व

व : व>उ : सुर<स्वर

व>अ : सरसती<सरस्वती

दो स्वरों के मध्य में व श्रुति का आगमन—

जावइ<जाइ<याति; पीवइ<पिअइ<पिवति

संस्कृत शब्दों के आदि में आनेवाला व हिन्दी में ब बन जाता है, पर प्रायः राजस्थानी में व न बनकर व बनता है जैसे वन (राज०), बन (हिन्दी) <सं० वन

ह : लोप : दरगा<दरगाह (फारसी); संस<सहस्र; विरमा<ब्रह्मा; नयणे<नयणहि

ह का आगम : ल्हास<लास; ल्हसकर<लश्कर; सत्रहरां<शत्रु

ह का सिंघ होकर सी होना—

रामसी<रामसिंघ<रामसिंह

ह>ए : फते<फतह (फारसी)

ह>घ : सिंघल<सिंहल; सिंघ<सिंह; संघार<संहार

ह>व : जुलावो<जुलाहा (फारसी); सेवरो<सेहरा<शिखर; ब्याव<विवाह;

पावणो<पाहुना<प्राघुणक; मनवार<मनुहार<मनोहर

तद्भव शब्दों में ह श्रुति से पूर्व यदि अ कार होता है, तो दोनों मिलकर ऐ हो जाते हैं, जैसे—

गैणो<गहणो; चैरो<चहरो; जैर<जहर; कैणो<कहणो; रैणो<रहणो

इनके अतिरिक्त ण, न, म, ल आदि की महाप्राण ध्वनियां भी पाई जाती हैं, यथा—

ण्ह : कण्ह<कन्ह<कृष्ण

न्ह : न्हाण<स्नान; उन्हाळो<उष्णकाल

म्ह : म्हारो, म्हानें<अस्म+

ल्ह : काल्हि, काल्ह<कल्य

ञ : ण :

क्रमशः च वर्गीय और ट वर्गीय ध्वनियों के पहले आनेवाले अनुनासिक व्यंजन का न् के समान उच्चारण होता है।

प्राकृत ण्ण (सं० र्ण, ण्य, ष्ण, न्य, ज्ञ)>न :

पान<पण्ण<पर्ण; कान<कण्ण<कर्ण; पुन<पुण्ण<पुण्य;

किसन<कसण<कान<कण्ह<कृष्ण; सूनो<सुण्णउ<शून्यक;

भीनो<भिण्णउ<भिन्नक

प्राकृत ण (सं० ण, न)>ण :

सण<शण; जण<जन; घणो, घणउ<घनक; पुण<पुणि<पुनि; कणक<कनक;

नैण<नयण<नयन

व्याकरण :

लिंग :

राजस्थानी में स्त्रीलिंग और पुल्लिग—दो लिंग होते हैं। कहीं-कहीं प्राचीन साहित्य में नपुंसक लिंग के भी उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे—

ऊ, ऊतरयुं, ऊतारियउ, घणउं, घणूं, थियुं, थियउ, तणउं, तणूं, प्रगट्टिउं, प्रगट्टियउ, निकस्यू, निकस्यो, भूंडउं, भूंडं, पहिलउं, पहिलूं, किसउं, किसूं।

किन्तु ये अपवाद स्वरूप ही हैं। वास्तव में अब नपुंसक लिंग और पुल्लिंग में कोई अन्तर नहीं है। अधिकांश अकारान्त शब्द पुल्लिग हैं और जिन शब्दों के अन्त में आर, आल तथा आंन है वे भी प्राय: पुल्लिग हैं। स्त्रीलिंग बनाने का मुख्य प्रत्यय 'ई' है। कहीं-कही स्त्रीलिंग शब्दो का अन्त्य स्वर लुप्त और दीर्घ हो तो ह्रस्व हो जाता है, यथा—सुंदरी का सुदर, सुंदरि।

अधिकांश तकारान्त और ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग हैं। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं, यथा—

ईकारान्त पुल्लिग : मोती, दही, घी, पांणी।

तकारान्त पुल्लिग : दांत, खेत, भूत।

इसी प्रकार कुछ अकारान्त शब्द स्त्रीलिंग भी हैं, यथा—दुकान, किताब।

स्त्रीलिंग के अन्य प्रत्यय णी (हंसणी), इणि (मालिणि), अण (मारवण) और ति (संगति, गति, मति) आदि हैं। कुछ प्राणी वाचक शब्द केवल पुल्लिग या केवल स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे—

स्त्रीलिंग : कोयल, मैना, बतक, चील, मकड़ी, ईली, उदेई, चुड़ेल।

पुल्लिग : पपैयो, बाबहियो, माछर, कागलो।

कुछ शब्द पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनो में काम आते हैं, जैसे—

माइत, माईत, टाबर, बडेरा, बूढिया।

वचन :

राजस्थानी में दो वचन होते हैं—एक वचन और बहु वचन। एक वचन से बहु वचन बना॰ के कुछ साधारण नियम यो हैं—

(क) अ (ए० व०), आं (ब० व०), स्त्री लिंग और पुल्लिग दोनों में, जैसे—

स्त्रीलिंग		पुल्लिग	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
रात	रातां	दांत	दांतां
आंख	आंखां	नर	नरां

(ख) इ, ई (ए० व०); यां (ब० व०), स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनों में, जैसे—

स्त्रीलिंग		पुल्लिग	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
चोटी	चोट्यां	अरि	अरियां
घोड़ी	घोड़्यां	तेली	तेल्यां

(ग) ओ (ए० व०); आ, आं (ब० व०), पुल्लिग में—

ए० व०	ब० व०
घोड़ो	घोड़ा, घोड़ां;
भालो	भाला, भालां।

(घ) आ, ऊ, ओ (ए० व०); वां (ब० व०), स्त्रीलिंग में—

ए० व०	ब० व०
मा	मावां,
भासा	भासावां,
बहू,बहु	बहूवां, बहुवां
गौ	गौवां

विशेष्य-विशेषण :

विशेषणों के लिंग, वचन और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के समान होते हैं, किन्तु स्त्रीलिंग सूचक विशेषणों के प्रायः समस्त रूप इकारान्त हुआ करते हैं।

कारक, विभक्ति :

राजस्थानी में ६ विभक्तियाँ और आठ कारक होते हैं। उनका सम्वन्ध इस प्रकार है—

	कारक	विभक्ति
१	कर्ता	पहली, दूसरी, तीसरी
२	कर्म	पहली, चौथी
३	करण	तीसरी
४	संप्रदान	चौथी
५	अपादान	तीसरी
६	संबंध	छठी
७	अधिकरण	पाचवी
८	संबोधन	दूसरी

स्पष्ट है कि कुछ विभक्तियाँ दो-दो तीन-तीन कारकों में लगती हैं।

कुछ कारक सविभक्तिक, कुछ निर्विभक्तिक और कुछ परसर्ग विशिष्ट (Post Position) हैं। कुछ निर्विभक्तिक रूप इस प्रकार हैं—

कर्त्ता	राइ
कर्म	वेस नवी विधि वाणि वखाणि
करण	प्रीति कियाँ दुख होय
अधिकरण	सावण आवण कह् गया रे हरि आवण की आस
सम्वन्ध	मीराँ दासी राम भरोसे जमका फंदा निवार

विभिन्न कारकों में प्रयुक्त विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कर्ता　: इ,　उ;　आ (ब० व०)
कर्म　: अइ,　उ,　ऐं;　आ,　आं,　ए,　ऐं (ब० व०)
करण　: अइ,　इ,　इइ,　इह,　एह;　आं, ए, एण,　(ब० व०)
संप्रदान : अइ,　आं,　इ,　ए (आं का प्रयोग सर्वनाम रूपों में अधिक मिलता है)
अपादान : ऊं;　अह,　आ,　आं,　ए　(ब० व०)
संबंध　: ह;　आं,　हां, (ब० व०)

'ह' का प्रयोग डिंगल के प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। अब इसका प्रयोग प्रायः शब्द-पूर्ति अथवा छन्द के आग्रह से होता है।

अधिकरण : अइ,　अइं,　इ;　आं,　ए,　(ब० व०)

कर्त्ता और कर्म कारकों में स्त्रीलिंग शब्द प्रायः इकारान्त और आकारान्त होते हैं। बहु वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप ज्यों के त्यों रहते हैं। ए विभक्ति संबोधन को छोड़ कर बाकी प्रायः सभी कारकों में, पुल्लिंग एक वचन में लगती है। कुछ विभक्तियाँ ऐसी हैं जो प्राचीन डिंगल के ग्रन्थों में तो मिलती हैं, पर अपेक्षाकृत अर्वाचीन डिंगल के ग्रन्थों में नहीं। संबंध कारक की 'ह' विभक्ति ऐसी ही है। इसी प्रकार संबंध कारक की 'हां' विभक्ति अब 'आं' के रूप में मिलती है।

परसर्ग :

कर्म :　कूं, को, नइ, नां, नूं, ने, नै, नैं, प्रति, यां, रहइ।

करण :　ऊं, करि, तो, ते, तें, तं, थी, नइ, नइं, पाहि, सउं, सात, साथि, सिउं, से, मेतीं, सैं, सां, सु, सू, सें, स्यउं, ह, हूंत, हूंता, हूंती।

संप्रदान : कजि, कन्ह, काजि, कारण, कू, कं, को, कौ, त्रित, तांई, नइ, नइं, नू, ने, नं, नु, नूं, नें, प्रति, वंइ, वंइ, माटै, रहइ, रेस, रै, रै तांई, रै वास्तै, लियै, सारू, हि।

अपादान : कनै, कन्है, कन्हइ, तउ, थउ, थकउ, थकि, थी, पा, पासइ, पासइं, पाहि, प्रति, लगि, लागि, सउं, सूं, हउं, हुंत, हुंता, हुंति, हुंती, हुंतो, हुंतां, हुंवां, हुं, हुंत, हुंता, हूती, हूतो, हूंतउ, हूंतां।

संबंध :　कइ, कउ, का, कां, की, कै, केर, केरा, केरी, केरो, कैरउ, कं, को, कौ, च, चइ, चउ, चा, ची, चं, चो, चौ, जी, तण, तणइ, तणउ, तणा, तणी, तणो, तणौ, तनि, दा, दी, नउ, ना, नी, नो, रइ, रउ, रहइ, रा, री, रुं, रे, रै, रो, रौ, संदइ, संदउ, संदा, संदी, हंदउ, हंदा, हंदी, हुंदउ।

अधिकरण : ऊपरै, कनै, कन्हइ, खनै, तक, तांइ, ताई, दीसा, दीहा, पर, पसवाड़े, परि, पागती, पाड़े, पास, पासइ, पासइं, पासड़े, पासै, पाहं, पां, पै, बिच, मइ, मइं,

मझारि, मझारी, मधि, महि, महिं, महीं, महे, मायँ, माहि, मैं, मंझ, मंझार, मंझारि, मंझि, मंही, मां, मांझ, मांझल, मांझि, मांय, मांह, मांहि, मांहिने, मांही, में, मैं, लगि, लगी, लगै, सिर, सिरि, ह।

सम्बोधन : अरे, अरैं, ओ, यां, रे, हे, हो।

सर्वनाम :

पुरुषवाचक : उत्तम पुरुष : हूँ (मैं)

कारक	एकवचन	बहु वचन
कर्ता :	मइं, मूं, मैं, म्हैं, हुं, हउं।	अमां, अमे, म्हां, म्हे, हम।
कर्म :	अम्ह, मनां, मने, मुझ, मुज्झ, मूझ, मो, मोइ, मोकूं, मोको, मोनूं, मोहि, मूं, म्हनां, म्हने, म्हनै, हूं।	म्हानैं, म्हां, म्हांने, म्हांनै।
करण :	मोइं, मोयी, मोसूं, म्हाराऊं, म्हारासूं, म्हासूं, म्हारैंऊं, म्हारैंसूं, म्हैती, म्हांऊं, म्हैंऊं, म्हैंसू।	म्हाणैऊं, म्हाराऊं, म्हांऊं, म्हांती, म्हांरासूं, म्हांरैंऊं, म्हांरैंसूं, म्हांसु, म्हांसूं।
संप्रदान :	मने, मुज्झ, मोइ, मोकूं, मोहि, म्हने, म्हारै वास्तै, म्हांनूं, म्हांनै।	म्हांकै, म्हांजै, म्हांणै, म्हांने, म्हांरै वास्तै, म्हां वास्तै।
अपादान :	मोसूं, म्हाऊं, म्हाराऊं, म्हारासू, म्हारै, म्हारैंऊं, म्हेती, म्हैऊं, म्हासू, म्हैसू।	म्हाणेऊं, म्हाराऊं, म्हारैंऊं, म्हांऊं, म्हांती, म्हांराऊं, म्हांरासूं, म्हारैंसूं, म्हांसू।
संबंध :	अम्हीणि, अम्हीणौ, माहरो, माहरौ, मुझ, मुज्झ, मूझ, मूं, मेरा,-री,-रे, रो; मो, मोरा,-री,-रो; म्हाका,-के; म्हारउ, म्हारा,-री,-रैं,-रो,-रौ।	अम्हां, अम्हीणइ, अम्हीणी, अम्हीणौ, म्हारौ, म्हाकउ, म्हांका,-की, -के; म्हांमें, म्हांरउ, म्हांरा,-री,-रैं,-रो; म्हांरामें,-रैं में; हमारउ, हमारी।
अधिकरण:	अम्हां, मो परि, म्हारामांय, म्हारामें, म्हामें, म्हांरेमांय।	म्हांमें, म्हांरामें, म्हांरेमांय, म्हारेमें, म्हांरै में।

मध्यम पुरुष

कर्ता :	तम, तुम, तू, तूं, तैं, थूं, थैं।	थमां, तमैं, तुम्हां, त्यां, थां, थे, राज, राजि।
कर्म :	तइं, तनां, तनं, तुम्ह, तूनैं, तोइ, तोनैं, थनां, थनै।	तुम्ह, तुम्हां, थे, थां, थांना,-ने,-नै।

कारक	एक वचन	बहु वचन
करण :	तुज्झ, तुम्हांसूं, तोसूं, तोसों, थाऊं, थारासू, थारेऊं,-सू; थंती।	थांऊं,-रा सूं,-रे सूं,-रैं ऊं; थांसूं।
संप्रदान :	तांजै, तुज्झ, तोह, तोई, तोनइ, तोनूं, तोहि, थारैं, थारैं वास्तै, थांणे।	थांणे, थांनै, थारैं, थारैंवास्तै, थांवास्तै।
अपादान :	थाऊं, थाराऊं, थारासूं, थारैंऊं-सूं; थैंऊं,-सूं।	थांऊं,-सूं; थांराऊं,-सूं; थांरैंऊं,-सूं; थंती।
संबंध :	तमीणो, ताहरो, तिहारो, तिहाळो, तुज्झ, तुझ, तूझ, तुम्हीणों, तोरइ, तोहारो, थारउ, थारा,-री,-रैं,-रो; थाहरइ।	तुमरी, तुम्हारी, थांकउ, थांको,-की, के,-कैं; थांणे; थांरउ, थांरा,-री,-रैं,-रो; रावरी।
अधिकरण :	ताहरो, तुम्हीणों, तूझ, तेरेमां, तोमें, थामें, थारामें, थारेमाय।	थांमें, थांरामांय, थांरामें, थांरेमांय, थांरैंमें।
	निश्चयवाचक : यह	
कर्ता :	अउ, अण, अणी, आ, इण, इणि, ई, ईं, ए, एण, एह, ओ, ओ़, ये, यो।	अइ, अणां, आ, इणां, ए, एह, एँ, यां, ये, यो।
कर्म :	अण, अणीनें, आ, इण, इणनें, इयेंनें, ईनें, ईंनें, ए, एण, एह, ऐनें, याको, यानें।	अण, अणानें, आनें, आंनें, इण, इणांनें, इयानां, एह, ऍनें, यांको, यांनें।
करण :	अणऊं, अणीसू, अणीहूंत, इण, इणइ, इणऊं,-सू; इणि, इणिन, इयेंऊं,-सूं; ईऊं-सू; ईंऊं,-सूं; एइ, एणइ, एणि, ऐऊं,-सूं; याऊं,—सू।	अणाऊं, -सूं; अणांहूंत, आंऊं,-सू; इणांऊं,-सूं; इयाऊं,-सूं; ऍऊं,-सू; यांऊं,-सूं।
संप्रदान :	अणी, अहां, इण,-रैं वास्तै; इयेंरैं, इहं, ईयेंरैं, ईरैं, ईंरैं,-वास्तै; एहं, ऐरैं, मह्, यारैं।	अणा, आंरैं,-वास्तै; इणां,-रैं वास्तै; इयांरैं, ईयांरैं, ऍरैं वास्ते, यांकैं, यांरैं,—वास्तै।
अपादान :	अणीऊं,—सूं; इणऊं,—सूं; इयेंऊं,—सूं; ईयेंऊं,-सू; ईऊं-सू; ईंऊं,-सू; ए, एह, ऐऊं,-सूं; याऊं, सू।	अणांऊं,-सूं; आऊं,-सू; इणांऊं,-सू; इयांऊं,-सूं; ईयांऊं,-सूं; ऐऊं,-सूं; यांऊं,-सूं।

कारक	एक वचन	बहु वचन
संबंध :	अणीरो, इणइ, इणरा,-री-रै,-रो; इणि, इयैंरो, ईको, ईयैंरो, ईरो, ईंको, ईंरा,-री, रै,-रो; ए, एणइ, एणि, एह, एहि, ऍरो, याको, यारो।	अणांरो, आंरा,-री,-रै,-रो; इणारा,-री,-रै,-रो; इयांरो, ईयांरो, ऐरां,-री,-रै,-रो; यांको, यांरा,-री,-रै,-रो।
अधिकरण:	अणीमें, इणमें, इणि, इयैंमें, ईमें, ईयैंमें, ईंमें, एणइ, एणि, एहि, ऍमें, यामें।	अणांमें, आंमें, इणांमें, इयांमें, ईयांमें, ऍमें, यांमें।

निश्चयवाचक : वो=वह

कारक	एक वचन	बहु वचन
कर्ता :	उ, उआं, उण, उणि, उवा, ऊ, तइ, ता, ताइ, तिका, तिको, तिण, तिणि, तियां, तीयां, ते, तेण, तेणि, त्यां, वीं, बै, बैं, बो, वण, वणी, वा, वीं, वैं, वो, स, सउ, सा, सु, से, सो, सोइ, सोय।	उणां, उवां, उवै, तांह, ति, तिके, तिकै, तिणां, ते, तेह, त्यांह, वां, बियां, बैं, वणां, वां, वियां, वे, वै, सू, से, सो, सोइ।
कर्म :	उण, उणनैं, उवैनां, ऊनै, तइ, तसु, ता, ताइ, तासु, तिणनै, तिणि, तिहि, तेण, त्यां, वियेनें, बीको, वीनें, बैनै, बैं, वणनां,-नूं,-नें; वणीनें, वींको, वीनें, वे।	उणांनैं, उवां, उवांनां, तांह, तिणांनैं, त्यां, वांको, बांनें, बियांनें, वणांनां,-नूं,-नैं; वांको, वांनें, वियांनें।
करण :	उणऊं,-सूं; उवैंऊं,-सूं; ऊंसूं, ताहसूं, तिणि, तेणि, बियैंऊं,-सूं; बीऊं,-सूं, बैऊं,-सूं; बैऊं,-सूं; वणऊं,-सूं; वणीऊं,-सूं; वीऊं,-सूं।	उणांऊं,-सूं; उवांऊं,-सूं; बांऊं,-सूं, वियांऊं,-सूं; वणाऊं,-सूं; वांऊं-सूं; वियांऊं-सूं।
संप्रदान :	उणरै,-वास्तै; उवैरै, ऊंरै वास्तै, बियैंरै, बीरै, बैरै, बैरै, वणरै, वणीरै, वीरै, वै।	उणांरै,-वास्तै; उवारै, वारै, बियारै, वणांरै, वां, वांरै,-वास्तै; वियांरै।
अपादान :	उणऊं,-सूं; उवैऊं,-सूं; ऊंसूं, बियैंऊं,-सूं; वीऊं-सूं; बैऊं,-सूं; वैऊं,-सूं; वणऊं,-सूं; वणीऊं,-सूं; वीऊं,-सूं; वै।	उणाऊं,-सूं; उवाऊं,-सूं; वांऊं,-सूं; वियाऊं,-सूं; वणांऊं,-सूं; वांऊं,-सूं; वियाऊं,-सूं।
संबंध :	उणरउ, उणरा,-री,-रै,-रो; उवैंरो; तस, तसु, ताइ, तास, तासु, तिणरा, बियैंरो, बीको, बींरो, बैरो, बैरो, वणरो, वणीरो, वीको, वींरो, वैं।	*उणांरा, उवांरो, तांहका, तिणका,* तिणांरा, तिहांका, त्यांहीकइ, वांको, बांरो, वियांरो, वणांरा,-री,-रै,-रो,-का,-की,-के,-को; वांरा,-री,-रै,-रो; वियांरो, वैरां,-री,-रै,-रो।

कारक	एक वचन	बहु वचन
अधिकरण :	उणमें, उवेमें, ऊंमें, तिणपइ, तेणि, वियेमें वींमें, वैमें, वेमें, वणमें, वणीमें वींमें, वें ।	उणांमें, उवामें, वांमें, वियामें, वणांमें, वांमें, वियांमें ।
	सवंधंवाचक : सो	
कर्ता :	उण, तिको, तिण, तीं, वो, सा, सु, सो, सोइ, सोय ।	उणां, तिकां, तिकै, तियां, तीयां, तै, वां, वै ।
कर्म :	उणनें, ऊंनें, तिकेंनें, तिणनें, तींनें, सा, सु, सोइ, सोय ।	उणांनें, तिकांनें, तिणांनें, तियांनें, तीयांनें, तेह ।
करण :	उणसूं, तिकेंऊं,-सूं; तिणइ, तिणऊं,-सूं; तींऊं,-सूं ।	उणांऊं,-सूं; तिकांऊं,-सूं; तिणांऊं-सूं; तियांसूं, तियारें, तीयारें, तीयासूं, तेइ, तेह, तेहि, वांसू ।
संप्रदान :	उणरै वास्तै, तउ, तहं, ता, तिकै, तिणरै, -वास्तै; तींरै, तू ।	उणारै वास्तै, तिकांरै, तिणांरै,-वास्तै; तियारै, तिह, तीयारै, तै, तेह, तेहं, वांरै वास्तै ।
अपादान :	उणसूं, तस, तसु, तह, तास, तिकेंऊं,-सूं; तिणऊं,-सूं; तिह, तीऊं,-सूं; तै, तेह ।	उणांसूं, तिकाऊं,-सूं; तिणांऊं,-सूं; तियांऊं,-सूं; वांऊं,-सूं ।
संबंध :	उणरा,-री,-रै,-रो; तस, तसु, तह, तास, तिकेंरो, तिणरा,-री,-रै,-रो; तिह, तींरो, ते, तेह ।	उणारा,-री,-रै,-रो; तिकांरो, तिणांरा,-री,-रै,-रो; तियांरो, तीयांरो, वांरा,-री,-रै,-रो ।
अधिकरण :	उणमें, ताहि, ताहिं, तिकेंमें, तिणइ, तिणमें, तिणि, तीमें, तेणइ, तेणि ।	उणामें, तिकांमें, तिणांमें, तियामें, तीयांमें, वांमें ।
	संबंधवाचक : जो	
कर्ता :	जउ, जको, जणी, जा, जिका, जिकै, जिको, जिण, जिणि, जु, जे, जेण, जेणि, जेहि, जो, जोइ, जं, जां, जांह, जी, जैं, ज्यउ, ज्यां, ज्यांह ।	जकै, जकां, जिका, जिकै, जिकां, जिणां, जे, जो, जां, जियां, ज्यां ।
कर्म :	जणीनें, जा, जां, जांह, जिकेंनें, जिण, जिणनें, जिणानें, जीनें, जु, जे, जेण, जेहि, जंनें, जैंनें, जो, ज्यां ।	जणांनें, जांनें, जिकां, जिकानें, जिणांनें, जियानें, जे, जेहु, जेनें, ज्यांनें ।

कारक	एक वचन	बहु वचन
करण :	जणीऊं,-सूं; जिकैऊं,-सूं; जिणऊं,-सूं; जिणइ, जिणि, जींऊं,-सूं; जेणइ, जेणि, जेणिइ, जेहिं, जैसूं, जेसूं, जो।	जणांऊं,-सूं; जांसूं, जिकांऊं,-सूं; जिणाऊं,-सूं; जियांसूं, जेहिं, जेसूं, ज्यांसूं।
संप्रदान :	जउ, जणी, जा, जिकै, जिण,-रै-वास्तै; जिहिं, जीं, जीरै वास्तै, जू, जैरै, जेरै।	जणां, जांरै,-वास्तै; जिकांरै; जिणनूं, जिणां, जिणांरै वास्तै, जिणि, जियां, जे, जेणि, जेरै वास्तै, ज्यां।
अपादान :	जणीऊं,-सूं; जस, जास, जिकैऊं,-सूं; जिणऊं,-सूं; जिह, जीऊं,-सूं; जे, जेह, जैसूं, जेसूं।	जणाऊं,-सूं; जांऊं,-सूं; जिकाऊं,-सूं; जिणांऊं,-सूं; जैऊं, ज्यांऊं,-सूं।
संबंध :	जणीरो, जस, जसु, जास, जासु, जिए, जिकैरो, जिणको, जिणरा,-री,-रै,-रो; जिह, जींको, जींरा,-री,-रै,-रो; जेह, जैरो, जेरा,-री,-रै,-रो; ज्यांरो।	जणांरो, जांरा,-री,-रै,-रो; जाहको, जिकांरो, जिणको, जिणांरा,-री,-रै,-रो; जियांरो, ज्यांको, ज्यांरा,-री,-रो।
अधिकरण :	जणीमें, जहिं, जिकैमें, जिणइं, जिणमें, जिणि, जिहिं, जींमें, जेणइ, जेणि, जैमें, जेमें।	जणांमें, जांमें, जिकांमें, जिणांमें, जियांमें जेमें, ज्यांमें।

प्रश्नवाचक : कुण

कारक	एक वचन	बहु वचन
कर्ता :	कउंण, कवण, का, किण, किणि, कीं, कुण, कुंण, कूण, कूंण, केण, को, कौण।	किणां, कीं, कुण, केइ, केवि।
कर्म :	कवण, किण, किणनै, किणि, किनैं, कीनै, कोनै, कुणनैं, केण, को।	कणांनै, किणांनै, कींनै, कुणनैं, केह।
करण :	कउणइं, कउणिइं, कणइं, कणि, किणइं, किणऊं,-सूं; किऊं,-सूं, कीऊं,-सूं, कुणइं, कुणऊं,-सूं।	किणांऊं,-सूं; कुणऊं,-सूं; कुणि, क्यांऊं,-सूं।
संप्रदान :	कं, किणरै वास्तै, किहं, किरै, कीरै-वास्तै, कुणरै।	किणांरै वास्तै, कुणरै, केइ, केहि, क्यांकै,-रै।
अपादान :	कह, कहि, किण, किणऊं,-सूं; किऊं,-सूं; कीऊं,-सूं; कुणऊं,-सूं; केह।	किणांऊं,-सूं; कियं, कुणऊं,-सूं; केह, केहं, क्यांऊं,-सूं।

कारक	एक वचन	बहु वचन
संबंध :	किणरा,-री,-रै,-रो; किरो,-को; कीको, कीरा,-री,-रै,-रो; कुणहु, कुणरो ।	किणांरा,-री,-रै,-रो; कियं, कुणरो, केंह, केहूं, कयाकों,-रो ।
अधिकरण :	काहुइं, किण, किणमें, कहि, किमें, कीमें, कुणइं, कुणमें, कुणहुइं ।	किणामें, कुणमें, कयामें ।

अनिश्चयवाचक : कोई

कारक :

कर्ता : कउ, काइ, काइक, किणी, किही, कोइ, कोइक, कोई ।
कर्म : किणीनै, कीनैई, केह, कोइ, कोई, कोईनै, कोय, कोवि ।
करण : किणीसूं, कीसूंई, कोईऊं,-सूं ।
संप्रदान : किणी रै वास्तै, कीरैई वास्तै, कोईरै ।
अपादान : किणीऊं,-सूं; कीसूंई, कोईऊं, कोईसूं ।
संबंध : किणीरा,-री,-रै,-रो; कीराई,-रीई,-रैई; कोईको,-रो ।
अधिकरण : किणीमें; कीमेंई, कोईमें ।

आदरबोधक : आप; राज

कर्ता : आप; राज ।
कर्म : आपनै; राजनै ।
करण : आपसूं, आपऊं; राजसूं, राजऊं ।
संप्रदान : आपरै; राजरै ।
अपादान : आपसूं,-ऊं; राजसूं,-ऊं ।
संबंध : आपरा,-री,-रै,-रो; राजरा,-री,-रै,-रो ।
अधिकरण : आपमें; राजमें ।

क्रिया :

राजस्थानी में क्रियाओं के रूप कहीं अपभ्रंश, कही पश्चिमी हिन्दी और कहीं गुजराती के रूपों से मिलते हैं ।

वर्तमानकालिक क्रिया :

यह मुख्यतया दो प्रकार से व्यक्त की जाती है—

(१) मूल क्रिया के अन्त में, छै, छइ, अछइ, छू, छा आदि लगाकर, यथा—

	एक वचन	बहु वचन
प्र० पु० :	छूं	छां,
म० पु० :	छइ, अछइ,	छउ,
अ० पु० :	अछइ, छइ,	अछइ, छइ ।

(२) मूल क्रिया में अइ (हुवइ, करइ), अउ (कहउ), अत (वसत, वाढ़त), अति (मोहति, सोहति), असि (कलपसि), अंत (काढंत, आवंत), अंति (रहंति), आं (आणां), इ (कहि, समाइ), इयइ (वहियइ, ढलियइ), इयँ (मांडियँ), ऊं (नकूं), एं (चुगें, रोकें), औ (कहौ), ती (मूकती) आदि लगाकर।

आज्ञार्थक में अ (ग्रब), इ (कहि), इसि (करिसि) आदि प्रयुक्त होते हैं।

भूतकालिक क्रिया :

भूतकाल की क्रियाएँ एक वचन में बहुधा ओकारान्त और बहु वचन में आकारान्त होती हैं। भूतकालिक मूल क्रिया में प्रायः अउ (हुवउ), आ (भग्गा, भागा), इ (करि), इउ (रहिउ), इयउ (आइयउ), इया (कहिया), इयां (जागिया), इयौ (कहियौ), ई (कही, आयी), ए (कहे), ठउ (दीठउ), यउ (आयउ), या (आया), यां (जाग्यां) आदि प्रयुक्त होते हैं।

भविष्यत् काल के रूप भी दो प्रकार से बनाये जाते हैं—

(१) मूल क्रिया के अन्त में, सी (करसी), स्यूं (करस्यू) स्यां (करस्या), लगाकर, और

(२) मूल क्रिया के अन्त में ला (करैला) ली करैली) लो (करैलो) आदि लगाकर।

कृदन्त :

मूल क्रिया में लगनेवाले कुछ मुख्य प्रत्यय इस प्रकार हैं—

अइ (करइ), अउ (लागउ, जागउ), अण (ज़ावण, कहण), अणउ (कहणउ), अणौ (कहणौ), अत (सांभलत), अतइ (पसरतइ), अतउ (वणतउ), अतां (क्रीड़तां), अति (वरखति), अती (वळती), अतै (करतै), अतौ (वणतौ), आ (धोया, खोया), आमणउ (वधामणउ), आळू (धंधाळू), आवउ (सुहावउ), इ (लज्जि), इउ (करिउ), इयइ (छंडियइ), इयउ (लियउ), इया (जागिया), इयँ (मारियँ), इयौ (कूटियौ), इवा (कहिवा), इवौ (कहिवौ), इसि (करिसि), इस्यइ (कहिस्यइ), ई (लागी), ए (कहे), एउ (करेउ), एवा (मरेवा), एस्यां (जाणेस्या), ऐ (कहै), औ (करौ), अंत (करंत), अंतां (करंता), अतइ (पहरंतइ), अंतउ (चलंतउ), अंति (वाजंति), अंती (विललती), अंतै (करंतै), अंतौ (चलंतौ), आं (करा, कीधा), तउ (रहतउ), ता (हुंता), तो (हुंतो), तौ (रहतौ), या (पाया), हार (वल्लणहार), आदि।

तद्धित :

विशेष्य तद्धितांत शब्द : इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

आडी (खेल से खिलाड़ी), आणो (निजर से निजराणो), आपो (बूढ़ै से बुढापो), आयत (आपणं से अपणायत), आर (सोनो से सुनार), आरो (लाख से लखारो), आवौ (मेल से मेलावौ), आंण (ऊदै से ऊदाण), आंणी (माळै से मालांणी), इयो (गधो से गधियो, कामळ से कामळियो), ई (तेल से तेली), एण (राम से रामेण), एती (खेत से खेती), ओ (कूद से कूदो), ओत (राम से रामोत), ओती (कानां से कांनोती), ओलियो (बावो से बावलियो, गावो से गावलियो), कली (चिड़ी से चिड़कली), कारो (हां से हांकारो), गत (देव से देवगत), गर (सौदा से सौदागर)

गी (सादो से सादगी), ड़ी (पिणिहारी से पिणिहारड़ी), ड़ो (वडो से वडोड़ो), चार (दुरा से दुराचार), चारो (भाई से भाईचारो), ट (चरपरो से चरपराट), णी (काम से कामणी), दार (दुकान से दुकानदार), प (मेल से मिलाप), पणो (गुणी से गुणीपणो), याप (घिणि से घिणियाप), याळ (सींगड़ी से सींगड़ीयाळ), ली (आंबो से आंबली), लो (गाडो से गाडूलो, खेजड़ो से खेजड़लो), वट (सिला से सिलावट), वाड़ो (पख से पखवाड़ो), वत (वीदा से वीदावत), वांन (बाग से बागवांन), वार (उम्मेद से उम्मेदवार), वाळो (पांणी से पांणी-वाळो), स (पीळो से पिळास, खाटो से खटास)।

विशेषण तद्धितांत : इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

आऊ (लूट से लुटाऊ), आट (भुज से भुजाट), आळ (दूध से दूधाळ), आळो (नखरो से नखराळो), इयांण (सुभ से सुभियाण), इयो (सूतक से सूतकियो), ई (रोग से रोगी), ईली (पथर से पथरीली), ईलो (रंग से रंगीलो), ऊ (बजार से बजारू), एतण (जांन से जांनेतण), एती (मांन से मांनेती), ओ (मैल से मैलो), कारी (गुण से गुणकारी), की (लड़ाक से लड़ाकी), गारो (औगण से औगणगारो), टो (चोर से चोरटो), बाज (दगो से दगेबाज), यण (कवि से कवियण), यारी (सुख से सुखियारी), री (सोनो से सोनेरी), ळ (किरपा से किरपाळ), ळू (बरसा से बरसाळू, झगड़ो से झगड़ाळू), लो (रोग से रोगलो), वान (धन से धनवान), वाळो (सींग से सींगाळो), वी (पाट से पाटवी), वंत (धन से धनवंत), वान, (भाग से भागवांन)।

अव्यय

१ क्रिया विशेषण

अउझकड़, अउथि, अगाडी, अचाणक, अचाणक, अजई, अज्ज, अजे, अजै, अठै, अठैइ, अठैईज, अणूंतो, अत, अत-अति, अतरो, अतरोक, अधक, अने, अपूठा, अपूठौ, अब, अबार, अबारइज, अबारु, अबी, अबरा, अबरांह, अवस, आगल, आगलौ, आगैं, आगो, आगौ, आज, आजइ, आयूणूं, आपस, आरपार, आसइपासड, आसेपासै, इ, इणकारण, इणवगत, इणवास्तै, इणसायत, इणां, इणीजतरै, इणीतरै, इतरो, इथै, इनै, इम, इमि, इसोउसो, इहा, ई, ईठैई, ईठै, ईया, ईह, उचाणक, उठीनै, उठै, उठैई, उठैईज, उणतरै, उणवगत, उणीजतरै, उणीजवगत, उणीतरै, उणीवगत, उतरो, उतरोक, उतरौ, उतावळी, उतावळी, उतोक, उतोसौ, उतौ, उनै, उवा, उवां, उवांहि, उवाइज, ऊगमणूं, ऊपर, ऊपरनीचै, ऊपरि, एकदम, एकवार, एकवार, एकाएक, एकैसाथै, एथि, एम, एैयइ, ऐथि, कड़ाकड़, कठीनै, कठाताई, कठै, कठैई, कठैई-कठैई, कठैईसेक, कठैताई, कठैनकठै, कठैही, कणताई, कणां, कणाई, कद, कदको, कदकोई, कदा, कदास, कदि, कदी, कदीको, कदीनकदी, कदीरो, कदेनकदे, कदे, कदेई, कदेई-कदेई, कदेको, कदेनकदे, कदेरो, कदेसेक, कदधाई, कनै, कमी, करै, काज, काठी, कारणि, काल, कालपिरमूं, काल्ह, काल्हि, कालै, कांईवास्तै, कांहि, कांइक, कांकर, किउं, किउंकरि, किण, किणतरै, किणवगत, किणवास्तै, किणभारू, कितोसोक, कितरो, कितरोक, किनै, किम, किमहि, किमि, किर, किरि, किसूं, किह, किहा, कोहां, कुत्र, केकारण, केणइ, केणक, केणि, केय, केथि, केम, केवल, कैम, कोनी, कोयनी, कयउं, कया, क्यूं, क्यूं, क्यूनयूंकर, क्यं, खटाक, खटाखट, खनै, खबरदारीऊं, खबरदारीसूं, खळखळ, खातौ, गटगट, गटागट, गबागब,

घड़ीघड़ी, घणकरा, घणु, घणो, घणोकरनै, घमाघम, घरघर, घाटघाट, चपाचप, चाह्तरफ, चिनको, छानै, जइ, जई, जउ, जऊ, जठातक, जठातांई, जठीनै, जठै, जठैई-जठैई, जठैकठै, जणां, जथा, जद, जदकद, जदपि, जदीं, जदै, जदैकदैई, जदभां, जय, जरां, जरांई, जरूर, जरै, जल्दी, जहं, जं, जाणि, जाणे, जादातर, जांण, जांणक, जांणि, जांणे, जिउं, जिणतरै, जिणबगत, जिणि, जितरो, जिन, जिम, जिमि, जिमी, जिह, जिहां, जी, जूं, जे, जेज, जेण, जेणि, जेम, जै, जो, जं, ज्यउं, ज्युं, झट, झटक, झटपट, झटाक, झटाझट, झपाझप, झाबकि, झूटांणि, ठीक, ठीकठाक, ठौड़ठौड़, ढमढम, ण, त, तई, तउ, तकड़ो, तड़कै, तड़ातड़, तठै, तद, तदि, तदी, तरां, तळे, तलै, ताइ, ताकड़ो, तिउं, तिणि, तिणिबारइ, तिम, तिरसूं, तिहां, तीनबार, तीरै, तु, तुरत, तुं, तेण, तेणि, तो, तोइ, त्यों, त्योंई, त्यौ, थोड़ो, थोड़ोक, थोड़ोथोड़ो, थोड़ोसो, थोड़ोसोक, दिन, दिनरात, दूर, दूरइ, दूरौ, देसदेस, दोयबार, धड़ाधड़, धमाधम, धीमैंधीमैं, धीमैं, धीरै, धुआंधोर, न, नई, नजीक, नव, नवि, नह, नहिं, नही, नहु, ना, नाई, नाहक, नाहिन, नाय, नि, निकमों, नित, नितनितु, नित्त, निरथक, निश्चइ, निश्चै, निहचइ, नीं, नीचै, नीठ, नेड़ो, नैड़ो, पड़ापड, पछे, पछै, पण, परइ, परभातै, परि, परै, पाइदल, पाखलि, पाछइ, पाछलौ, पाछे, पाछौ, पायदल, पार, पास, पासवाड़ै, पासै, पां, पिण, पीछे, पुणि, पुणोवि, पुनरपि, पूरवलौ, पैलेदिन, फिरि, फेर, बस, बहु, बारबार, बारंबार, बांसै, बाहरि, बिरथा, बिलकुल, बेगि, बेसक, बीत, भड़ाभड़, भारी, भी, म, मउड़इँ, मत, मतही, मती, मा, माऊं, माहइ, मां, मूं, य, यू, यों, रात, रातइ, राति, राति-दिवसि, रातै, रूड़इ, रूड़इं, रूड़ा, रेवणदो, लगि, लगी, लगै, लपालप, लारै, वच, वठीनै, वठैइ, वठैही, वत, वळि, वळी, वळे, वार, वारवार, वासड़ै, विचलै, विचै, वीचि, वेगोई, वैगो, सड़ासड़, सटकै, सदा, सवारे, सवारै, सरवदा, सहजि, सही, साचमांच, साची, साचेई, साथई, साथै, साफसाफ, सामत्, सायत, सारू, साझसबेरै, सांची, सांझइ, सामनै, सांमी, ह, हणां, हवकैं, हमार, हमारइज, हमारु, हमैं, हव, हवै, हाथोहाथ, हालताई, हां, हि, हित, हिव, हिवड, ही, हीं, हूँ, हेठलि, हेठली, हेठै, हेव ।

(२) उपसर्ग :

अ (अदीठ, अभंग), अण (अणभै, अणभंग), अध (अधपत), अप (अपजस), अभ अभमांन, अभलाषा), उ (उचाळौ), उप (उपगार), औ (औघट), क (कपूत), कठ (कठरूप), कम (कमजोर), कु (कुठोड), न (नचीतो), नि (निबळ), नु (नुगरो), पर (परदेस, पर-कम्पा, परजळ), भर (भरपेट), बिड (बिडरूप), बि (बिदेस), विड (विडरूप), सं (संजम), स (सपूत), सत (सतपुरस), सर (सरजळ), सा, (सापुरसां), सु (सुजस), हर (हरदिन) आदि।

(३) संबंध बोधक :

अगाड़ी, अठै, अधीन, आगलि, आगै, उलटो, ऊपर, ऊपरइ, ओले, अंतरे, कउ, कज्ज, कनै, कनैं, कन्हइ, कन्हा, कन्हे, का, काजि, कारण, कारणै, केरउ, चउ, चा, जिसो, जिसौ, जीवणो, जोग, डावो, ढूकड़ा, तक, तणउ, तरै, तलै, तुल्य, तांई, दांई, दिसि, नउ, नीचै, नेड़ि, पछइ, पछवाड़े, परइ, परि, पाछे, पास, पासइ, पाहै, प्रति, बरोबर, बारै, बीसइ, बिचमै, बिना, भणी, भत्त, भर, भेळो, मझारि, महीं, मंइ, मंझ, मंझार, मंझि, मंहि, मांहि, मां, माझि, मांय, मुजब, मुताबक, में,

रउ, रहित, रा, लग, लगइ, लगि, लारै, लियइ, लिये, लेखे, वदलै, वस, वास्तै, विच, विचि, विचै, विण, विन, सत्य, सये, सनमुख, समेत, सहित, साटइ, साथ, साथइ, साथि, साथै, सारीखौ, साम्हा, सिवाय, सिरि, सूधो, से, सो, संग, हेटै।

(४) समुच्चय बोधक :

अगर (गर), अथ, अथवा, अनइ, अर, ई, और, क, कइ, का, कांइ, कि, किरि, कै, च, चावै, जइ, जउ, जका, जकै, जको, जथेतो, जया, जदि, जदी, जिका, जिकै, जिको, जे, जो, तउहि, तो, तोहि, नइ, नई, नवि, नहींतो, ने, नै, पण, पणि, पहि, पिण, पिणि, पुणि, पुनर, फेर, बलि, भावइं, रूड़ा, वळे, वा।

(५) विस्मयादिबोधक :

अरे, अरै, ओयरे, ओह, जा, परिहां, भलां, रह, रहरह, रांमरांम, रे, वाहरेवाह, हइहइ, हायहाय, हे हे।

व्याकरण के विशेष परिचय के लिए देखिए :

(क) पं० रामकर्ण आसोपा : 'मारवाड़ी व्याकरण';

(ख) श्री सीताराम लाळस : 'राजस्थानी व्याकरण' :

यहां इनसे आवश्यकतानुसार सहायता ली गई है।

खण्ड २

राजस्थानी साहित्य

अध्याय ३

चारण साहित्य

(क)—पृष्ठभूमि :

७ वीं शताब्दी के मध्य से १२ वी शताब्दी का काल राजपूत काल कहा जाता है[१]। राजपूतों के ३६ वंश माने जाते हैं जिनमें कुछ वंशों का परिचय कविराजा श्यामलदास ने दिया है[२]। स्वतंत्र मुस्लिम शासन सिंध तथा मुल्तान में ८७१ ई० में, पंजाब में ११६० ई० के लगभग और शेष हिन्दुस्थान में १२०६ ई० में आरम्भ हुआ। प्रारंभिक मुस्लिम युग (१२०६ से १५२६ ई० तक), मुगलयुग के बीजारोपण का समय था[३]। प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रमणकारियों को किसी शक्तिशाली भारतीय शासक का सामना नहीं करना पड़ा। उनके आक्रमणों को रोकने के लिए अशोक, कनिष्क और हर्ष सरीखे शासक खड़े नहीं हुए थे[४]; और न ही हिन्दू उनको ग्रीक, मंगोल, सिदियन, हूण आदि की भांति आत्मसात् कर सके, क्योंकि दोनों की संस्कृति और धर्म में आधारभूत अन्तर था[५]। सामाजिक दृष्टि से सन् ६४७ से १००० ई० तक, हिन्दू-समाज के लिए आरम्भ से ही संगठन और नियमन का काल था। लगभग १००० ई० से १३१० ई० तक, मुस्लिम प्रभुत्व के धीरे-धीरे फैलने से प्रभावित होकर, भारतीय समाज के अधिक क्रम नियमन और संगठन का काल था। सन् १३१० से १५२६ तक के काल में दिल्ली की बादशाही का पतन हुआ जिससे बहुत-सी छोटी-छोटी स्वाधीन रियासतें बन गईं और इस कारण भारत में राष्ट्रीयता की दृष्टि से एकता के व्यवहार का लोप हो गया था जिसका फल यह हुआ कि मुगलों ने भारत पर अधिकार कर लिया[६]। सन् १५२६ तक, यद्यपि बहुत से निम्न जाति के हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म अंगीकृत कर लिया था, तथापि उन्होंने बहुत से हिन्दू संस्कार और रीति रिवाज सुरक्षित रखे थे। शासकों के परिवर्तन नैरन्तर्य से उच्चवर्ग तो बहुत अधिक प्रभावित होता था, किन्तु कृषक-वर्ग पर उसका कोई खास असर नहीं पड़ता था[७]। अलाउद्दीन खिलजी के समय से ही राजपूताने की रियासतों ने दिल्ली सल्तनत के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया था[८]। राजपूताने की रियासतों में मेवाड़ का स्थान अग्रगण्य रहा है। वहां के राणा कुंभा भारतवर्ष के इतिहास में एक अत्यन्त प्रसिद्ध शासक गिने जाते हैं। उनकी परम्परा में सुप्रसिद्ध राणा सांगा हुए, जो दिल्ली सल्तनत के छिन्न-भिन्न होने और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की सोच रहे थे। खानवा का

---

१. V. A. Smith : Oxford History of India, Page 172, (2nd Edition, 1923) :
२. वीर विनोद, भाग १, पृ० ३–४ :
३. एस० आर० शर्मा कृत Crescent in India का हिन्दी अनुवाद, (१९५४) :
४. Cambridge History of India, Vol. III, Page 506, (1928) :
५. जदुनाथ सरकार : India through the Ages, (Calcutta, 1928) :
६. अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफअली : मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, (१९२८) :
७. H.G. Rawlinson : A concise History of the Indian People, (1952) :
८. डा० ईश्वरीप्रसाद : मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय २, (१९५२) :

युद्ध इसका स्वाभाविक परिणाम था[1]। खानवा के युद्ध की पराजय एवं इसके कुछ ही समय बाद राणा सांगा की मृत्यु के फलस्वरूप मेवाड़ का महत्त्व बहुत ही घट गया। राणा सांगा की यह हार तथा तदनन्तर उनकी मृत्यु,केवल मेवाड़ के लिये ही नहीं अपितु समस्त राजस्थान के लिए भी बहुत ही घातक प्रमाणित हुई। राजस्थान की सदियों पुरानी स्वतंत्रता तथा उसकी प्राचीन हिंदू संस्कृति को सफलतापूर्वक अक्षुण्ण बना रख सकने वाला अब यहां कोई नहीं रह गया[2]।

भक्ति का उत्थान मध्ययुग के साधना-जगत की विशेषता है। साधना के तीन पथ, ज्ञान, कर्म, और भक्ति हैं। उपनिषद् इनके आदि स्रोत हैं। तन्त्रों का भी एक मुख्य अंग भक्ति है, किन्तु वैराग्य-भावना, कर्मकाण्ड आदि के कारण दोनों में भिन्नता है[3]। इस देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की पृथकता का मुख्य कारण उनके ब्रह्म, जीव तथा जगत सम्बन्धी विचार वैषम्य और धार्मिक कृत्यों एवं उनके उपकरणों की विभिन्नता रही है। भारतीय धार्मिक आन्दोलन मुसलमान धर्म-प्रचार की प्रतिक्रिया रूप में होने के अतिरिक्त, जैन, मायावाद, शून्यवाद, शैव, शाक्त, वैष्णव, ज्ञानी, योगी, भक्त-अनेक रूपों में एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में भी फँस रहा था[4]। ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक भक्ति के तत्ववाद का नवनीत इसी प्रकार ऊपर उठता रहा और विविध भक्ति-सम्प्रदायों की धर्मसाधना के मेरुदण्ड-रूप तत्त्ववाद क्रमबद्ध दर्शन का रूप धारण करते रहे[5]। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक आस्तिक मत यहाँ प्रचलित रहे हैं। इनके अनेक अनुयायी भक्तों में, कुछ तो बहुत ही प्रसिद्ध कवि हुए हैं। वैष्णव दर्शनों में ज्ञान की अपेक्षा मोक्ष-साधन में भक्ति की ही प्रधानता है। भगवान का साकार, सगुण तथा सविशेष स्वरूप ही मान्य है[6]। गोरखनाथ तथा नाथपंथ का प्रभुत्व राजस्थान में बहुत अधिक रहा है। गोरखनाथ अपने युग के सबसे महान् धर्मनेता थे। उनकी संगठन शक्ति अपूर्व थी। उनका ज्ञान केवल बुद्धि-विलास नहीं है, वह साधना का विषय है। दीर्घ अभ्यास के बाद, उसे प्राप्त किया जाता है[7]। नाथ पथ, प्रत्येक प्रान्त में, नए सम्प्रदायों के सम्पर्क में आया था, जिनकी कितनी ही प्रवृत्तियां उसमें समाविष्ट होती गईं। विद्वानों का अब इस विषय में विशेष मतभेद नहीं रहा कि सन्त-परम्परा निर्गुण को मान्यता देते हुए भी केवल ज्ञानाश्रयी नहीं और उसका मूल स्वर भक्ति का स्वर है[8]। गोरखनाथ की साधना-पद्धति राजस्थान में बहुत प्रचलित रही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कबीर पंथ तथा निर्गुण संप्रदाय का प्रभाव राजस्थान में सीधा, दादू और

---

१. मजुमदार, रायचौधरी और दत्त : An Advanced History of India, (1948) :
२. डा० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान :
३. नरेन्द्रनाथ ला : Studies in Indian History & culture, (London, 1925) :
४. डा० दीनदयाल गुप्त: अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३५, (२००४) :
५. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० ७१, (१९५६) :
६. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० ५०८, (१९४८) :
७. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ संप्रदाय, पृ० १८८—१८९,(१९५०) :
८. डा० धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ० ३२६, (१९५५) :

उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा विशेष पड़ा, किन्तु आलोच्य काल में उसका प्रभाव, दादूपंथ को छोड़ कर नगण्य सा ही रहा है। राजस्थान की संत-साधना गोरखनाथ और नाथ पंथ से सीधे प्रभावित थी और अपने ढंग से धीरे-धीरे प्रसार पा रही थी।

जहां तक सूफीमत का संबंध है, आलोच्य काल में, राजस्थान पर उसका विशेष प्रभाव लक्षित नहीं होता। कुछ विद्वानों ने मीराँ की प्रेम भावना में सूफीमत का मादन भाव लक्षित किया है[1], किन्तु यह धारणा निर्मूल प्रतीत होती है[2]। मूल रूप में इस्लाम और सूफीमत अधिक भिन्न नहीं है। वास्तव में इस्लामी रहस्यवाद का नाम सूफीमत है[3]। भारतीय सूफीमत फारसी रहस्यवाद के आधार पर बना है जहां वह पन्द्रहवी शताब्दी में अपनी पूर्णता पर पहुंचा[4]। मीराँ की प्रेमाभिव्यक्ति अनुभूतिजन्य है। उसके कुछ पदों में सर्वेश्वरवाद की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है (जहँ जहँ देखूं म्हारो राम, तहँ सेवा करूँ)। हिन्दी के मुसलमान सूफी कवियों ने भी सर्वेश्वरवाद को स्वीकार किया किन्तु इनके सर्वेश्वरवाद में कवि की भावुकता और रहस्यवादी की अनुभूति दोनों का सम्मिश्रण है। सूफियों ने जहां एक ओर सर्वेश्वरवाद का प्रतिपादन किया वहां दूसरी ओर उन्होंने सृष्टिवाद का आख्यान किया। यह विरोध है जो सिद्ध करता है कि उनका सर्वेश्वरवाद रहस्यवाद था या कल्पना जगत् की भावना मात्र था[5]। इस प्रकार, मीराँ की प्रेमाभिव्यक्ति पर सूफी प्रभाव देखना संगत प्रतीत नहीं होता।

(ख)—सामान्य परिचय :

चारण साहित्य से यहा तात्पर्य चारण शैली में लिखित साहित्य से है। यह साहित्य चारण कुलोत्पन्न कवियों द्वारा ही नहीं, अपितु अन्य जातियों के कवियों द्वारा भी रचा गया है। इन जातियों में ब्राह्मण, राजपूत, ढाढी, ढोली, राव, सेवक और मोतीसर आदि मुख्य हैं। पर अधिकांश मे चारण साहित्य के रचयिता चारण ही है।

चारणों और राजपूतों का संबंध इतना घनिष्ट और अन्योन्याश्रित रहा है कि चारण साहित्य को ठीक से समझने और उसका उचित मूल्याकन करने के लिए तत्तत्कालीन राजपूती जीवन को भली भांति समझना होगा। मध्ययुग में राजपूत ही भारतीय वीरता के प्रतीक थे। उनके

---

१. (क) विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बिहारी की वाग्विभूति, पृ० ३३–३४, (२००७) :
   (ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, पृ० ११४, (तृतीय संस्करण) :

२. 'मीरा स्मृति ग्रंथ' में श्री ललिताप्रसाद सुकुल और डा० तारकनाथ अग्रवाल के लेख.

३. A.J. Arbery : Sufism; Page 11–12, (First Edition, 1950) :—
   "Sufism is the name given to the mysticism of Islam. Sufism may be defined as the mystical movement of an uncompromising Monotheism".

४. John A Subhan : Sufism, its Saints & Shrines; (Lucknow, 1938) :—
   "The Indian Sufism has largely been built upon the mystical ideas of Persia where it has reached the point of its highest attainment by fifteenth century."

५. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८२१–८२२, (२०१५) :

संदर्भ में, राजस्थान में, हमारी संस्कृति और सभ्यता बची तथा फली फूली। हंसते-हंसते प्राणों की आहुति दे देना राजपूतों की ही विशेषता थी। कर्नल टाड के शब्दों में...There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas. ऐसी वीर जाति और वीरभूमि की उज्ज्वल कीर्ति-गाथाएं चारण साहित्य में ही सुरक्षित हैं। यहां के कवियों के विषय में टाड के कथन से भी एक कदम आगे बढ़ कर श्री रामनिवास शर्मा हारीत और श्री नरोत्तमदास स्वामी लिखते हैं कि "कर्नल टाड यह लिखते समय इतना और लिखना भूल गए हैं कि शब्दों से रणखेत तैयार करने वाले वीर सैनिक कवियों से भी राजस्थान का साधारण से साधारण गांव भी खाली नहीं रहा है[1]।" इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं है। राजस्थान वीरों और वीर कवियों की क्रीड़ास्थली रहा है। चारण जितना कवि होता था, उतना ही वीर भी। यदि वह किसी राजा अथवा सरदार की विरुदावली गा सकता था, तो अवसर पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध में भी कूद पड़ता था। वह स्वयं वीर होता था और वीरता का पूर्ण अनुभव उसे रहता था। यही कारण है कि चारणों ने अपने साहित्य में वीरत्व की जीवन्त झांकी के सही दर्शन कराए हैं। उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है। इस साहित्य में प्राणदायिनी प्रेरणा, ओजस्विनी शक्ति, कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, हंसकर प्राण त्यागने की अजीब मस्ती और अनूठे तथा पावन प्रभाव के दर्शन होते हैं। राजपूती चरित्र की जो विशेषताएं हैं, वे इस साहित्य में पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुई हैं। वीरता राजपूत की कसौटी रही है और मरण उसका त्योहार। एकता की कमी उसकी कमजोरी है, किन्तु आदर्श और आत्म-सम्मान की टेक उसका सबसे बड़ा ध्येय रहा है। मृत्यु का तो जैसे वह अवसर ही ढूंढता है। डा० हरमन गोज के शब्दों में–Weak in their recklessness and disunion, the Rajputs proved nevertheless invincible because of that same pride and sense of honour unto death[2] फ्रांसीसी यात्री बर्नियर का कथन है—If the Rajput is a brave man he need never entertain an apprehension of being deserted by his followers, they only require to be well led for their minds are made up to die in his (Lord) presence rather than abondon him to his enemies[3]. नारी जाति का सम्मान और स्वामिभक्ति राजपूत जाति की एक और विशेषता रही है।

संक्षेप में राजपूती चरित्र की विशेषताएं हैं—मन, वचन और कर्म से प्रतिज्ञा-पालन, स्वावलम्बन-पूर्ण जीवन, सत्य में आस्था, अचल संयमशीलता, सहिष्णुता, धैर्य, निर्भीकता, प्रतिशोध की तीव्र भावना, शरणागत-रक्षा, दानशीलता, आत्म-गौरवार्थ मर मिटना तथा उच्च आदर्श और अनुपम वीरता। अपवादों की बात अलग है। और यही चारण साहित्य की भी विशेषताएँ हैं। वह शौर्य, औदार्य, देशप्रेम, आत्माभिमान, बलिदान, त्याग, ईश्वर-भक्ति आदि मानव-

---

१. राजस्थान रा दूहा, (संपा०—नरोत्तमदास स्वामी), प्रस्तावना, उत्तरार्ध, पृ० ६७ :
२. The Art and Architecture of Bikaner State; Intro, Page 21, (1950) :
३. H.G. Rawlinson: India–A Short cultural History, Page 201, 4th. Edi. 1952

हृदय के उदात्त भावों से ओत-प्रोत है। चारण वीरत्व के पुजारी, स्वामिभक्त और ईश्वर में श्रद्धा रखने वाले होते थे। उनका प्रधान ध्येय राजपूत जाति में साहस तथा वीरता का संचार करना एवं उनको सन्मार्ग पर चलाना था। मुर्दा दिलों में जान फूंक देने वाली और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने अथवा मर मिटने की वाणी इसी साहित्य में मिलती है। वह शूर-वीरता का निर्माता और उसका जागरूक पहरेदार है।

चारण और राजपूत का संबंध भाई-भाई का है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह का इस विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

'चारण क्षत्री भाइयां जा घर खाग तियाग
खाग तियागा बाहिरां, तासुं लाग न भाग।

आपत्तिकाल में चारण अपने स्त्री पुत्रों को राजपूतों के घर में सौंपते और राजपूत उनको अपनी माता-बहन समझ कर उनके धर्म की रक्षा करते थे। राजपूत भी मोटी आपत्ति के समय, लाचार होकर, अपने स्त्री पुत्रों को चारणों की रक्षा में सौंपते थे। उस समय चारण अपना स्वामि-धर्म बराबर बजाते थे[1]। पवित्रता, विश्वास और धर्म अखण्ड रूप से दोनों जातियों में बराबर रहे हैं। मारवाड़ के राव चूंडा को बालकपन में चारण आला ने पाला था। इन्हीं राव चूंडा की लड़की और राव रणमल की बड़ी बहन हंसाबाई का विवाह मेवाड़ के राणा लाखा से कराने और उनसे उत्पन्न हुए पुत्र को राज्याधिकार दिलाने में चारण चानण खिड़िया का विशेष हाथ था[2]। मेवाड़ के राणा हम्मीर की विजय में 'चारणी-शक्ति प्रेरणा-स्रोत' रही थी[3]। दयालदास की ख्यात में आसिया दूदा द्वारा सिरोही के राव सुरताण को, राजा रायसिंहजी के पास से छुड़ाने का उल्लेख मिलता है[4]। ओझाजी ने लिखा है कि, "कुंभा की दादी हंसाबाई के कहने पर कुंभा इस पर राजी हो गया कि—आप जोधा को लिख दें वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मैं इस बात से नाराज न होऊंगा। हंसाबाई ने आशिया चारण डूला के द्वारा यह समाचार जोधा को भिजवाया[5]।" इस प्रकार के और भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है, जिनसे राजपूतों और चारणों के परस्पर गहरे संबंधोका पता लगता है। चारणोका प्रादुर्भाव राजपूत जातिसे है। चारण-जाति में ज्यों-ज्यों कमी आती गई, त्यो त्यों उन्होने राजपूतो के लड़कों को अपना-अपना कर अपने कुल की रक्षा की। यही कारण है कि चारण और राजपूत-जाति का बहुत घनिष्ट संबंध प्राचीन काल से चला आ रहा है[6]। राजपूत राजाओं के आश्रय में रह कर चारण ने जितना लिखा, उतना जैन यतियों के अतिरिक्त और किसी ने नही। ..राजा के जन्म की बधाई गाई तो

१. मावदानजी भीमजी भाई रतनू · श्रीयदुवंशप्रकाश अने जामनगरनो इतिहास, तृतीय खण्ड, (पहली आवृत्ति, १९३४ ई०)
२. वीर विनोद, प्रथम भाग, पृ० ५:
३. शोध-पत्रिका, भाग ३, अंक २, पौष २००८, "राजस्थानी साहित्य, भारत की आवाज" :
४. ख्यात, भाग २, पृ० १०७–१०९
५. जोधपुर राज्य का इतिहास, छठा अध्याय
६. किशोरसिंह बार्हस्पत्य : करनी चरित्र, पृ० १५, (सन् १९३८) :

चारण ने, राज्याभिषेक का गीत गाया तो चारण ने, विवाह का मंगल-गान गाया तो चारण ने, युद्ध भूमि में गीत सुनाकर प्रोत्साहित किया तो चारण ने; सौन्दर्य की, गुण की, कायरता की, वीरता की और दानशीलता की आलोचना की तो चारण ने। राजपूत के जीवन में चारण प्राण बन कर समाया हुआ था। मध्ययुग में तो राजपूत और चारण इतने घुलमिल गए थे कि इन दो शब्दों में अत्यधिक साम्य ही नहीं, एक से दूसरे का बोध भी स्वतः ही होने लग गया था[1]..। राजपूतों द्वारा चारणों को लाखपसाव, कोड़पसाव, सिरोपाव तथा भूमि आदि दिए जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

चारण राजपूतों की याचक जाति है। राजपूतों से उन्हें जो दान मिलता है, उसे त्याग कहते हैं। उनके रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि राजपूतों के समान ही हैं। अपने पवित्र आदर्श और नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा के कारण चारणों को समाज में सदैव सम्मान तथा आदर प्राप्त रहा है। प्राचीन काल में चारण जाति भारतवर्ष के प्राय सभी प्रान्तों में निवास करती थी[2]। मध्यकाल के कुछ पहले से अब तक, वह अधिकतर राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठिया-वाड़, और कच्छ में निवास करती चली आ रही है[3]। स्व० किशोरसिंह बार्हस्पत्य के अनुसार, "चारयन्तीति चारणा", अर्थात् जो देश का संचालन कार्य, नेतृत्व करे एवम् देशभक्ति को प्रोत्साहन दे वही चारण है[4]।

इसी चारण जाति में करणीजी का प्रादुर्भाव हुआ था। करणीजी राजस्थान की सुप्रसिद्ध देवी हैं जिनको देवी या आवड़माता का अवतार माना जाता है। समस्त चारणों और राजपूतो की तो ये उपास्य देवी हैं ही, कुछ अन्य जातियां भी इन्हें पूजती हैं। ये किनिया शाखा के मेहा चारण की पुत्री थी और देखने में कुरूप थी। इनका जन्म संवत् १४४४ की आश्विन शुक्ला सप्तमी को सुवाप नामक गाव में हुआ था। २७ साल की अवस्था में साठीका गाव के बीठू शाखा के चारण केलू के पुत्र देपाल के साथ इनका विवाह हुआ। देपाल की मृत्यु संवत् १५११ की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को हुई और स्वयं करणीजी का महाप्रयाण १५१ वर्ष की अवस्था में, संवत् १५९५ चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ[5]। इनके विषय में अनेक चमत्कारिक और अलौकिक घटनाएं प्रसिद्ध हैं। एक प्रकार से ये सदेह देवी ही थी। जोधपुर और तत्पश्चात् बीकानेर के राठौड नरेशों से इनका घनिष्ट संबंध रहा था। बीकानेर राज्य के निर्माण में करणीजी का बहुत बड़ा हाथ रहा है[6]। छोटे-छोटे सरदारों के ठिकानों और उनकी आपसी कलह को दूर करने और तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक एकता को एक सूत्र में पिरोने की प्रेरणा इन्होंने दी। यही नही, उसे कार्य रूप में परिणित भी किया। इसी प्रकार पूगल

---

१. राजस्थान-भारती, भाग १, अंक १, अप्रेल, १९४६,–रावत सारस्वत: 'राजस्थानी-साहित्य':
२. कविराजा मुरारीदान, जोधपुर: 'संक्षिप्त चारण ख्याति', पृ० ९:
३. शुभकर्ण बदरीदान कविया: नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अंक ३, संवत् १९९७:
४. अखिल भारतीय चारण सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन की रिपोर्ट, पृष्ट ४१:
५. Captain P.W. Powlett: Gazetteer of the Bikaner State, Page 14.
६. देखिए–वही: तथा—दयालदास की ख्यात, भाग २:

के राव शेखा को भी इनके द्वारा वरदान दिए जाने की बात प्रचलित है[1]। बीकानेर के पास देशनोक में इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग बिताया था। आज भी वहां इनका प्रधान देवरा है और हर रोज इनकी पूजा होती है। चारण कवियों ने करणीजी की स्तुतियां बनाई हैं, जिन्हें चरजाएं कहते हैं। चरजाएं दो प्रकार की होती हैं—(१) सिगाऊ और (२) चाडाऊ[2]। पहली में देवी की प्रशंसा और चरित्र वर्णन आदि रहते हैं। दूसरी में देवी के प्राचीन कृत्यों की याद दिला कर सहायता की याचना की जाती है, पर इनको संकट के समय ही पढ़ने की आज्ञा है। बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह के समकालीन कवि बारहट चौहथ[3] ने, ४४ कवित्तों (छप्पय) में "करणीजी रा कवित्त" नाम से करणीजी की सिगाऊ चरजाओं की रचना की है, जिसमें से दो छन्द नीचे दिये जाते हैं[4]—

आज हुया आंणंद आज ओवंण आलोवल
आज हुया आंणंद आज मंन खुसी स कोमल
आज हुया आंणंद आज छत तोरण छाया
आज हुया आंणंद आज घर विद्या पाया
आंणंद हुया ओछाद सुं देवलाभ संनमुख वीयो
सुप्रसंन मुझ मेहासधु कर प्रणांम दरसंण कीयो।

सीता छांडै रात्त जत्त लिछमण सूं जावै
महाजोध हणवंत, फळा बळहीण कहावै
नारद जुध निरपता, तिको पण हांसी तज्जै
भुषण अंन भोजंन भूख जोमां न भज्जै
जावै न तृपा पीधां सुजळ, निज भ्रम कीधां नह फलै
सेवगां तणा मेहासधू, साद न करनी संभलै।

कहना न होगा कि करणीजी ने अपने ढंग से, राजस्थान की सामाजिक विचार धारा को दूर तक प्रभावित किया है।

चारण साहित्य समुन्नत और समुज्वल है। उसका स्थान संसार में निराला है। विद्वानों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर[5], ग्रियर्सन[6],

---

१. ह० प्रति नं० 189. III. I (IV); एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता: (डा० सुकुमार सेन द्वारा निर्देशित):
२. किशोरसिंह बार्हस्पत्य: करनी चरित्र, परिशिष्ट 'ग', पृ० २५०–२५१:
३. Tessitori: Descriptive Catalogue, See II, Pt. I, Page 66
४. ह० प्रति नं० १२६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर:
५. राजस्थानी गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है! *वे लोगों के स्वाभाविक* उद्‌गार है। मैं तो उनको संत साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूं।
६. There is an enormous mass of literature in various forms in Rajasthani, of considerable historical importance, about which hardly anything is known.

सर आशुतोष मुखर्जी[1], डा० टैसीटरी[2], डा० सुनीतिकुमार चटर्जी[3] प्रभृति देशी-विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से उसके महत्व को स्वीकार किया है।

चारण साहित्य प्रधानतया वीर और श्रृंगार रसात्मक है। इनके अलावा अन्य रसों में भी सुन्दर रचनाएं हुई। चारणों में उच्च कोटि के भक्त भी हुए। बारहठ ईसरदास, सांया झूला, माधोदास दधवाड़िया आदि ऐसे ही हरिभक्त कवि हैं। चारण शैली में लिखने वाले राठौड़ पृथ्वीराज उच्च कोटि के कवि होने के साथ साथ उच्चकोटि के भक्त भी थे। इस साहित्य में सभी विषयों की रचनाएं मिलती हैं। नीति, वैराग्य, ज्ञान, व्यावहारिक धर्म आदि आदि विषयों को भी अछूता नहीं छोड़ा गया है।

वीररस, दान, धर्म, युद्ध और दया की दृष्टि से, चार प्रकार का माना गया है। इसी कारण दानवीर, धर्मवीर, दयावीर और युद्धवीर चार प्रकार के वीर माने गए हैं। रचना-बाहुल्य की दृष्टि से, चारण-साहित्य में, सबसे अधिक वर्णन युद्ध वीर का हुआ है। पश्चात् क्रमशः दान, धर्म और दया वीर का। वीररसात्मक चारण साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्राय. सारा का सारा ऐतिहासिक है। इस भ्रम का शीघ्र ही निराकरण हो जाना चाहिए कि भारतवर्ष में ऐतिहासिक ग्रन्थों की कमी है अथवा ऐतिहासिक साहित्य उपलब्ध नहीं होता। ऐतिहासिक साहित्य का बाहुल्य चारण-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है।

जैसे राजपूत पुरुष, वैसी ही राजपूत नारियां। दोनों एक से। राजस्थानी सपूतों ने अपने प्राण देकर भी नारी का सम्मान और गौरव अक्षुण्ण रखा है। स्वयं नारी भी वीर होती थी। अवसर पड़ने पर रणचण्डी का रूप भी वह धारण करती थी और होड़ लगाकर हंसते-हंसते जौहर की ज्वाला को भी वरण करती थी। इनके उदाहरण एक दो नहीं अनेक हैं। डिंगल साहित्यकारों ने जिस आदर और श्रद्धा से नारी जीवन की मीमांसा की है, उसे देखते ही बनता है। नारी के शक्ति रूप में उन्होंने सर्व प्रथम पूजा की है, मा के रूप में उसका वंदन किया है, वीरांगना के रूप में उसकी तलवार का लोहा माना है, निर्देशक के रूप में उसकी सीख मानी है, बहन के रूप में उससे प्रेरणा ली है और गृहलक्ष्मी के रूप में उसका स्वागत किया है[4]।

पुरुष और स्त्री दोनों की ऐसी भावनाओं का यथातथ्य वर्णन अपभ्रंश के फुटकर दोहों में मिलता है। वही विरासत राजस्थानी साहित्य को भी मिली। ऐसे कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं—

---

१. The bardic poems are also important as literary documents. They have a literary value and taken together form a literature which, when better known, is sure to occupy a most distinguished place amongst the literatures of the New Indian Vernaculars.

२. The vast literature flourished all over Rajputana and Gujrat whereever Rajput was lavish of his blood to the soil of his conquest.

३. There is, however, a very rich literature, in Rajasthani, mostly in Marwari...Rajasthani literature is nothing but a message of brave flooded life and a brave stormy death.
नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ७–८, (वैशाख सं० २०००), से :

४. हनुवंतसिंह देवड़ा : डिंगल साहित्य में नारी, पृ० १५, (१९५५) :

(१) एक्क जम्मु निग्गुहं गिउ, भडसिरि लग्गु न भग्गु
तिक्खां तुरया न माणियां, गोरी गलि न लग्गु। (प्र० चि०)
(२) भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु
लज्जेजं तु वयंसि अहु जइ भग्गा घरु एन्तु।
(३) पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण
जा बप्पी की भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण।
(४) जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु प्रिएण
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण।
(५) पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउ खन्धस्सु
तो वि कडारइ हत्थडउ बलि किज्जउं कन्तस्सु। (हेमचन्द्र)[1]

फुटकर दोहों के अतिरिक्त अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यों में, वीररस के पर्याप्त उदाहरण पाए जाते हैं। इसके नमूने स्वयंभू के पउमचरिउ, पुष्पदंत के रिट्ठणेमिचरिउ; भरतबाहुबलिरास[3] आदि[2] ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। ये जैन कवियों की रचनाएं हैं।

पन्द्रहवीं और उससे पूर्व शताब्दियों की प्रमुख ऐतिहासिक रचनाओं में पृथ्वीराज रासो, कीर्तिलता, तथा रणमल्ल छन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्तिम दो रचनाओं का समय लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में आंका गया है। ..पृथ्वीराज रासो की भाषा तथा रचनाशैली के भिन्न-भिन्न साम्यों से यह प्रतीत होता है कि रासो का मूल ग्रंथ अपभ्रंश भाषा में ही रचा गया, जो कालान्तर में बढ़ते-बढ़ते अनेक भाषाओं के पुट के साथ आधुनिक रूप में परिवर्तित हो गया। इस आधुनिक पृथ्वीराज रासो का समय यद्यपि १५ वी १६ वी शताब्दी के लगभग है किन्तु प्राचीन मूल रूप १२ वी १३ वी शताब्दी का माना जा सकता है[4]। जहा तक रासो की भाषा का प्रश्न है, .मध्ययुगीन तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के विशेषज्ञ, गार्साँद तासी, बीम्स, होर्नले, ग्रियर्सन, टेसितोरी, आदि यूरोपीय तथा डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, नरोत्तमदास स्वामी आदि भारतीय विद्वानों ने एक स्वर से रासो की भाषा को प्राचीन पश्चिमी हिन्दी अथवा प्राचीन ब्रजभाषा कहा है[5]। डा० नामवरसिंह इसमें इतना और जोड़ते हैं कि रासो की भाषा पुरानी ब्रजभाषा होती हुई भी सूरसागर की भाषा से कुछ पछाह की तथा काफी पूर्ववर्ती प्रमाणित होती है[6]। रणमल्ल छन्द तथा कीर्तिलता[7] की भाषा को अवहट्ठ कहा गया है।

---

१. अपभ्रंश-व्याकरण : अनु०—के० का० शास्त्री, (सं० २००५), से :
२. डा० हरिवंश कोछड अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ३६३—३६४ :
३. (क) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह में विजयसेन सूरि की रचना;
(ख) हिन्दी काव्य-धारा, पृ० ४५६, अज्ञात कवि कृत काव्य :
४. डा० हरिवंश कोछड़ : अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ११६ :
५. डा० नामवरसिंह : पृथ्वीराज रासो की भाषा, पृष्ठ ४४ :
६. वही :
७. शिवप्रसादसिंह : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, (१९५५) :

अध्ययन की सुविधा के लिये हम चारण साहित्य को पहले दो प्रमुख भागों में बांट सकते है—(१) ऐतिहासिक काव्य और (२) पौराणिक-धार्मिक काव्य। इन दोनों में प्रत्येक को फिर प्रबन्ध और मुक्तक के भेद से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे—
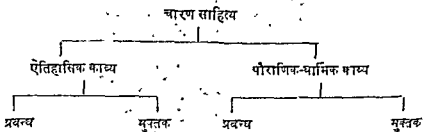
प्रबन्ध काव्य प्रायः गाहा, दोहा, पाघड़ी, मोतीदाम, कवित्त (छप्पय), झूलणा, नीसाणी, चौपाई, वेलिया आदि आदि छन्दों में लिखे गये हैं।

मुक्तक रचनाएं गीत, दोहे, नीसाणी, कवित्त (छप्पय), वेलियो, आदि आदि अनेक छन्दों में मिलती हैं। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि राजस्थानी 'गीत' 'दोहे' और 'वातें' (वार्ते) असंख्य है। 'वातें' गद्य का एक रूप है। ये सुनने के लिए वनी हैं, पढ़ने के लिए नहीं। वातों के बीच में कहीं कहीं पद्य के भी दर्शन हो जाते हैं।

'गीत' डिंगल साहित्य की विशिष्ट देन है, जिसका जोड़ अन्य भारतीय आर्य भाषाओं, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, सिंधी आदि में नहीं मिलता। गीत एक प्रकार की छोटी सी कविता है जिसमें प्रायः चार दोहले होते हैं। तीन दोहलों से कम किसी गीत में नहीं होते। पांच दोहले भी होते हैं। ये गीत गाने की चीज नहीं हैं। एक लय-विशेष से, ऊंचे स्वर में इनका पाठ *किया जाता है। ध्यान रखने की बात है कि पिंगल के पद-साहित्य और डिंगल के गीत-साहित्य* में कोई समानता नहीं है। गीतों में इतिहास की अलभ्य और अक्षय सामग्री भरी पड़ी है। ऐसा कोई भी वीर, जुझार या त्यागी पुरुष नहीं हुआ होगा जिस पर एकाध गीत न बने हों। जिन पुरुषों और घटनाओं को इतिहास ने भुला दिया है, उनकी स्मृति को गीतों ने ही सुरक्षित रखा है। श्री नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार, 'वास्तविक डिंगल साहित्य, इस गीत साहित्य को ही कहना चाहिए'[1]।

रासमाला की भूमिका मे लिखा है—"As rivers show that brooks exist, as rain shows that heat has existed so songs show that events have happened"[2] इससे गीतों के ऐतिहासिक महत्व पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। डिंगल गीतों के विषय में डा० सी० कुन्हन राजा का विचार है कि, "These songs are natural and spontaneous. The songs came from the heart and the soul of the charans. They flourished like the rippling brook in the mountain slope, sweet and fresh"[3]. इन गीतों में एक अडिग शक्ति और आत्मविश्वास के दर्शन होते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के शब्दों

१. गीत मंजरी; प्रस्तावना :
२. Forbes :रासमाला, पृ० २६६ :
३. गीत मंजरी; Introduction :

में—It was in these songs that foaming streams of infalliable energy and indomitable iron courage had flown and made the Rajput warrior forget all his personal comforts and attachments in fight for what was true, good & beautiful[1]. अनेक हस्तलिखित प्रतियों में हजारों की संख्या में उपलब्ध डिंगल गीत अपने प्रकाशन की राह देख रहे हैं।

दोहा राजस्थानी का सबसे अधिक लोकप्रिय छन्द है। प्रायः सभी विषयों और रसों का प्रवाह दोहों में हुआ है। अनेक दोहों और गीतों के रचयिताओं का कुछ पता नहीं चलता। वे अपनी रचना में ही घुलमिल गए हैं। किसी स्मृति को, किसी घटना को और किसी पुरुष को कवियों ने तो कविता के माध्यम से जीवित रखा किन्तु वे स्वयं सृष्टिकर्ता की भांति अपनी अपनी रचनाओं में ही अन्तर्धान हो गए हैं। उन्हें खोज निकालने की चेष्टा अवश्य होनी चाहिए।...छोटा होने के कारण दोहे को याद रखने में सुभीता होता है। बात को संक्षेप में और चुभते हुए ढंग से कहने के लिए दूहा बहुत ही उपयुक्त छन्द है। राजस्थानी जनता की सर्वप्रिय माड राग का माधुर्य और आकर्षण भी उसके दूहों पर ही निर्भर है। दूहा छन्द और दूहा साहित्य राजस्थान को अपभ्रंश से बपौती के रूप में प्राप्त हुआ है[2]...। कई रचनाएं केवल दोहा छन्द में ही लिखी गई हैं। लोक काव्यों में, 'ढोला-मारु रा दूहा' तथा 'माधवानल कामकन्दला-प्रबन्ध', ऐसी ही रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त 'जेठवा-ऊजळी', 'सोणी-बीजानंद', 'बींझा-सोरठ', 'नागजी-नागमती' आदि शुद्ध लौकिक प्रेम कथाओं की स्मृतियां दोहों ने ही संजोके रखी हैं।

गीतों, दोहों और वार्तो की अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियां विभिन्न स्थानों में उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक फुटकर रचनाओं की एक विशेषता यह है कि वे प्रायः घटना की समसामयिक हैं, जो 'साख री कविता' के नाम से विख्यात है। दोहा, गीत और छप्पय छन्दों में ऐसी कविताएं अधिक मिलती हैं।

राष्ट्रीय कविता का उद्घोष सर्व प्रथम हमें चारण साहित्य में ही सुनाई देता है। पानीपत के युद्ध में जूझनेवाले राणा सांगा को प्रोत्साहित करने वाले गीत डिंगल साहित्य की ही देन है। कहना न होगा कि उस युग में राणा सांगा ही राष्ट्रीयता के प्रतीक थे। जो लोग भूषण को सर्व-प्रथम राष्ट्रीय कवि के रूप में सोचने के अभ्यस्त हैं, उन्हें इस पर पुनर्विचार करना चाहिए। राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवियों का परिचय, इस कारण अलग से दिया गया है।

इसी प्रकार स्त्री कवियों का परिचय भी अलग दिया गया है।

प्रसंगवश, एक और भ्रम का निराकरण कर देना भी आवश्यक है। आज तक भी यह धारणा बनी हुई है कि चारण साहित्य अपने आश्रय-दाताओं की कोरी प्रशंसा में ही लिखा गया है[3]। ठीक है, उसमें प्रशंसा है, किन्तु कौन सा साहित्य उससे बचा हुआ है? फिर, वही तो सम्पूर्ण राजस्थानी साहित्य नहीं है, वह तो उसका एक अंश मात्र है।

---

१. श्री नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थानी भाषा और साहित्य, (सं० २०००), से :
२. " " " : राजस्थान रा दूहा; प्रस्तावना, पृ० ५३–५४ :
३. डा० टीकमसिंह तोमर : हिन्दी वीरकाव्य, भूमिका, पृ० ९ :

इसी प्रकार पं० किशोरीदास वाजपेयी ने, (१) ब्रजभाषा, (२) अवधी, (३) मेरठी और (४) राजस्थानी, इन चारों को हिन्दी की साहित्यिक रूप प्राप्त करनेवाली, "बोलियाँ" मानते हुए लिखा है कि, "हिन्दी की जितनी भी 'बोलियां' हैं, सबसे बढ़ कर ब्रजभाषा का पुराना साहित्य है और सबसे ज्यादा"[१]। किन्तु यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं[२]। किन्तु चारण साहित्य की रचनाओं की परम्परा विक्रम पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से तो अविछिन्न रूप से मिलती है। 'अचलदास खीची री वचनिका' इसका प्रमाण है। जैन साहित्य की परम्परा तो उससे भी बहुत पहले से प्राप्त है।

आगे, सर्वप्रथम ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों और मुक्तक रचनाओं का परिचय देकर पश्चात् पौराणिक धार्मिक काव्यों के विषय में लिखा गया है।

अध्याय ४

ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य

(१) बादर ढाढी : वीरमायण[३]

वीरमायण के रचयिता बादर या बहादर[४] जाति के ढाढी थे। पं० रामकर्ण आसोपा ने इसके रचयिता का नाम रामचन्द्र लिखा है[५], जो ठीक नहीं है। स्वयं कवि ने एक स्थल पर अपना नाम बादर ढाढी बताया है—

सामां वीरम सारका विण उभा कौला
बादर ढाढी बोलीयो नीसांणी गला।(नीसाणी ८०)

इसके रचनाकाल के संबंध में डा० मोतीलाल मेनारिया ने दो मत दिए हैं। 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा'[६] तथा 'डिंगल में वीररस'[७] में इसका रचनाकाल संवत् १४४० के आसपास मानते हुए वे, कवि को मारवाड के राव वीरमजी के आश्रित बताते हैं। दूसरी ओर 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखते हैं—"परन्तु जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, यह वीरमजी की

---

१. ब्रजभाषा का व्याकरण : पृ० १० तथा ७०, (द्वितीय संस्करण, १९४३ ई०) :
२. डा० धीरेन्द्र वर्मा . 'ब्रजभाषा'—"नाम-माहात्म्य," 'श्री ब्रजांक', अगस्त, १९४० ई० :
३. ह० प्र० नं० P. 23. 128 : A Descriptive Catalogue of Rajasthani Mss. Pt. I, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, के आधार पर यहां विवेचन किया गया है।
४. Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. I. Pt. II, Page 30 :
५. मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० ८७ :
६. प्रथम संस्करण, अगस्त, १९३९, "परिशिष्ट" के अन्तर्गत, पृ० २२१ :
७. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, (सं० २००८), भूमिका, पृ० ३६ :

समकालीन रचना नहीं है। कोई अठारहवीं शताब्दी के मध्य में यह रची गई है"[1]। इस विषय में डा० सुकुमार सेन का मत अधिक संगत है। उनके अनुसार, It is an anonymous Dhadi composition of the 15th. century. It deals with the chivalry of Rao Biramji Rathora, who reigned C.V.S. 1435 (A.D. 1378). The Rao was the patron of the poet[2]. श्री नरोत्तमदास स्वामी भी इस काव्य की गिनती चारण शैली की प्रारम्भिक रचनाओं, रणमल्ल छन्द तथा अचलदास खीची री वचनिका के साथ करके इसी मत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं[3]। इसके कुछ छन्दों के आधार पर अन्यत्र भी ऐसी ही धारणा व्यक्त की गई है[4]। इसकी पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। बीकानेर के राजा रायसिंहजी के समकालीन सांदू माला के काव्य *"झूलणा महाराज रायसिंघजी रा"* में, इस काव्य में आई हुई एक प्रसिद्ध पंक्ति 'तेरह तुंगा तड़छीया[5] माले सलषाणी' की ध्वनि मिलती है—

दसवाटां सोगां कीया ज्यूं जैत हुंवालै
तेरै तुंगा भांजीयां ज्यूं रावल मालै।

काव्य में वर्णित कुछ घटनाओं के आधार पर भी रचनाकाल का अनुमान लगाया जा सकता है। ओझाजी के अनुसार, वीरमदेव की मत्यु संवत् १४४० में हुई[6]। इसमें राव वीरम के द्वितीय पुत्र चूंडा के साथ ईंदों के मुखिया उगमसी की पोती का विवाह और दायजे में मंडोवर दिए जाने का उल्लेख है—

करवा सगपण कारणै उठ ईंदा आया
हरष करै हित दाव नै चुंडा परणाया
मंडोवर मुगलां लई ईंदा कहलाया
पडीयारां घर पालटी थिर नाहीं थाया। (नीसाणी ९९)

× × ×

चामंड चामंड मुप चवै जैकार जपाया
राज मंडोवर चुंड कुं चामंड बगसाया। (नीसाणी १०१)

मंडोवर पर चूडा का अधिकार संवत् १४५१ में हुआ था[7]। इसी प्रकार, बीरम के पुत्र गोगा का जोइयों के साथ युद्ध में आहत होने, जलंधरनाथ द्वारा उसकी काया अमर बनाने तथा उसे दसवां सिद्ध मानकर अपने साथ लिवा ले जाने का भी वर्णन है—

घण बोले जोइयां घड़ा जीते कर समर
कटीयं पग गोगे कीयो निज साइ नरेसर

---

१. प्रकाशक: हि० सा० स०, प्रयाग, (सं० २००८), पृ० २२६ :
२. A Descriptive Catalogue, Pt. I, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, Page 3 :
३. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय; पृ० २९ :
४. श्री गजराज ओझा : 'डिंगल भाषा'=ना०प्र०प० (न०सं०), भाग १४, अंक १, वैशाख १९९० :
५. पाठान्तर—'भाजीया' :
६. जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, 'राव वीरम' शीर्षक के अन्तर्गत :
७. रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६१, फुटनोट :

बरसाण सिध आय'र दीयौ मार्य कर मेंहर
पाव् उलटा संधिया ओलयांण तरो पर
इळ अंबर गोगा इतं तो काया अमर
हुय सिध दसमो हालीयो संग नाथ जळंधर।(११९)

जलंधरनाथ द्वारा गोगे के अमर किए जाने का वर्णन अन्तिम गीत में भी है—

भांज रांणक देव भाटी सवळड़ो अर साथ
कमंध गोगो अमर कीयो नमो जळंधरनाथ।

रेउजी ने गोगा का जन्म संवत् १४३५ तथा स्वर्गवास संवत् १४५९-६० में माना है[1]। अतः प्रतीत होता है कि संवत् १४६० के पश्चात् किसी समय ही इसकी रचना होनी चाहिए, पहले नहीं। अनुमान है कि इसकी रचना संवत् १५०० के आसपास हुई होगी जबकि गोगाजी के उलटे पांव जुड़ने, काया अमर होने और दसवें सिद्ध के रूप में जलंधरनाथ के साथ चले जाने की किंवदंती लोक-जीवन में प्रचलित हो गई थी। काव्य में आई हुई कुछ पंक्तियों से भी यही ध्वनित होता है कि रचना के समय गोगाजी को हुए कुछ समय अवश्य व्यतीत हो गया था—

वंर वीरम तणो वाळपो नीसंध हुय नीडार
हात गोगादेव् हुतां धपाई रत धार
तो रतधार जी रतधार धापी रळतळी रतधार
कटे उदल दलो कटीयो धीरहे सुं वेर
वंर वीरम तणो वाळे वाळजे इम वेर
तो इम वंर जी इम वंर गोगं वाळीयो इम वंर। (गीत)

काव्य के अन्त में छन्दों की संख्या भी बताई गई है[2]।

इसमें इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है। ओझा, रेउ तथा आसोपा प्रभृति विद्वानों के इतिहास-ग्रन्थों से यह बात स्पष्ट है। इसमें रावल मल्लीनाथजी और उनके ज्येष्ठ पुत्र जगमाल के वीर-कृत्यों, राव वीरमजी का इतिहास और अन्त में उनके पुत्र गोगादेव का अपने पिता की मत्यु का बदला लेते हुए, युद्ध में वीरगति को प्राप्त करना सविस्तर वर्णित है। भाषा ओज-गुण-सम्पन्न बोलचाल की राजस्थानी है जिसमें उमड़ती हुई पहाड़ी नदी की सी गति पाई जाती है। चलचित्रों की भांति, एक के बाद एक, घटनाएं आती हैं और कवि उन सबका सरस वर्णन करता चलता है। समस्त काव्य वीररस की फड़कती हुई रचना है। सबसे बड़ी बात यह है कि कवि अपने चरित-नायक का यथातथ्य वर्णन करता है—उसके गुणों को कहीं अतिशयोक्ति-पूर्ण नहीं दिखाता। यही कारण है कि वीरम का विरोधी जोइया दला, काव्य के अन्त तक, पाठक की सहानुभूति नहीं खोता, उलटे जोइयों के विनाश पर दुःख ही

१. मारवाड़ का इतिहास, प्र० भा०, पृ० ५६-५७, फुटनोट :
२. सात वीस नीसाणियां ऊपर पांच सवाय
एक गीत इतरा दुहा भणीया सुभ गुण म ।

होता है। दला की वीरम के प्रति कृतज्ञता, सहज मानवीय सहानुभूति और वीरोचित क्षमा-भावना इसके कारण है। कवि ने तीन विशिष्ट पात्रों की सृष्टि की है—वीरम, उनकी पत्नी मांगलियाणी और जोइया दला। रावल मल्लीनाथ, वीरम, जगमाल और गोगा से संबंधित विविध घटनाओं एवं उनके वीरकृत्यों की पृष्ठभूमि में तत्कालीन सामन्ती एवं राजपूती समाज अपने समस्त वैभव तथा दुर्बलता के साथ उभर आया है। प्रतिशोध-भावना, प्रतिज्ञा-पालन, आन-मान की टेक तथा भीषण युद्धों के झूले में झूलते हुए राजपूती जीवन का बड़ा अनूठा चित्र कवि ने उतारा है। सिवदास[1] की तरह वीरमायण के कवि ने भी इतिहास के विस्मृतप्राय जीर्ण-शीर्ण-पन्नों की रक्षा की है। एक धुंधली किंतु जीवन्त घटना की स्मृति सुरक्षित रखी है। कुछ चमत्कार-पूर्ण बातों का भी समावेश किया गया है और सेना की संख्या आदि में अतिशयोक्ति हो सकती है, किन्तु यह तो एक प्रकार से तत्कालीन काव्य पद्धति ही बन गई थी।

राणी मांगलियाणी का अपने पति वीरम की गलतियां जान, उनको जोइयों के साथ युद्ध में जाते हुए रोकना, और वीरम की गर्वोक्तियां, काव्य-सौन्दर्य और तत्कालीन राजपूत-मनोवृत्ति के स्पष्टीकरण की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। घात-प्रतिघात के कारण कभी कथा घटना-प्रधान और कभी वर्णन-प्रधान होती हुई चरम-सीमा तक पहुंचती है। वर्णन की त्वरा और घटना की तेजी एक दूसरे को ठेलते हुए गन्तव्य स्थान तक चलते हैं। काव्य के कुछ पदों ने तो आज कहावतों का सा रूप धारण कर लिया है, जिससे इसकी प्रसिद्धि का पता चलता है—

(क) पग पग नेजा पाड़ीया पग पग पाड़ी ढाल
बीबी बूझै खान नै, जोध किता जगमाल ?

(ख) गींदोळी बांधी गळै जगमाल अनाड़
जको न देवै जीवतो, कुण मार लीराड़

(ग) भूपा तीरसा आपरा, बांधीजै घोड़ा
ढळीया हत न आवही, गोगा दे घोड़ा। आदि।

कवि का जो गौरव इन सब कारणों से है, उसकी पुष्टि काव्य के कथानक से भी होगी।

कथानक :

राव सलखा के चार पुत्र थे—मल्लीनाथजी, जैतमालजी, वीरमजी और सोभितजी। जैतमालजी ने जब गुजरात पर चढ़ाई की, उस समय अम्बा और नन्दा राड़धरे से आए और अपने भाइयो के मना करने पर भी उनसे गोठ की मनवार की। गोठ के समय अधिक शराब पिलाकर, जैतमालजी ने दोनों को, साथियो समेत मार दिया और ४८ गांवों सहित उनका राज्य राड़धरा छीन लिया।

मल्लीनाथजी का राज्य नागर में था जो मणियड परगने में था। मणियड के घोड़े बहुत अच्छे होते थे, इसलिये मांडू के बादशाह महमंदशाह बेगडा ने मरदनशाल पठाण को वहां के घोड़े लाने को भेजा। उसने मणियड के शहर भिरड़कोट के सिणलागर तालाब पर डेरा डाला।

---

१. 'अचलदास खीची री वचनिका' के रचयिता :

उस दिन सावन सुदी तीज थी और तीजणी स्त्रियां वहां झूला झूलने आई थीं। उनको रूपवती देख, मुसलमान सैनिक एक एक स्त्री को अपने अपने घोड़ों पर बैठाकर मांडू ले गए। इसका पता जब मल्लीनाथजी को लगा, तो उनके पुत्र जगमालजी १४० घुड़सवार लेकर मांडू गए और बादशाह के यहां नौकर रह गए।

वे सब तीजणियें बादशाह की लड़की गींदोली की सेवा में थीं। ईद के मेले के दिन गींदोली के साथ सब किले के बाहर आईं। उस समय जगमालजी के आदमी इन सबको घोड़ों पर बैठाकर भिरड़कोट ले आए। जगमालजी गींदोली को भी ले आए। अब बादशाह ने जूनागढ के एवज में गींदोली को मांगा, परन्तु जगमालजी नहीं माने। इस पर दिल्ली के बादशाह गौरी और मांडू के सुल्तान, दोनों की सम्मिलित सेना भिरड़कोट पर चढ़ आई। मल्लीनाथजी के हाथों उनकी हार हुई। दूसरी बार के आक्रमण में भी मुसलमान पराजित हुए। एक बार फिर संगठित होकर, उन्होंने प्रबल वेग से आक्रमण किया। इस बार बीस हजार भूतों ने आकर राजपूतों की ओर से युद्ध में तलवारें चलाईं। इसका किस्सा इस प्रकार है—जब आल्हणसी व कूंपजी ने कुंवर जगमाल को भूतों के यहां ब्याहा, तो उन्होंने दायजे में अभरंग नामक नगारा, अरगंज नामक खड्ग तथा कवलिया नामक घोड़ा, इन तीनों चीजों सहित युद्ध में याद करते ही आने का वचन दिया था। इस युद्ध में उक्त तीनों वस्तुओं का संयोग था, अतः भूतों ने आकर मदद की। बड़ी भयंकरता से युद्ध होने लगा—

> खटका उडगा बगतरां झटका कर झाड़ै
> पतसाहां दळ पाधरै राठौड़ रमाड़ै
> घोड़ां आगळ गैब का बाजा बजवाड़ै
> तेग बहे भुतां तणी राठौड़ अगाड़ै
> मारे दळ मुंगलांण का तरवार चलाड़ै
> धड़ लूटता दीसै धरा मसतक भमाड़ै
> पग पग नेजा पाड़ीया पग पग ढल पाड़ै
> अबकै ओ मोटो परब, मैंहमंद मीलाड़ै।

बहुत सी सेना कट गई और बची-खुची गुजरात की ओर भाग गई।

सिंध में जोइया मुसलमान रहते थे। उन्होंने गुजरात के बादशाह महमूद के खजाने के ४ करोड़ मोहरों की थैलियों से लदे हुए खच्चर लूट लिए और वहा से रवाना हो मल्लीनाथजी की शरण में आ गए। वीरमदेवजी की राणी मांगलियाणी ने जोइयों के बड़े भाई दला को अपना भाई बनाकर राखी बांधी। उसने बहन को ७०० मोहरें और तीस पोशाकें दी। पर जोइए जगमालजी की ओर से सशंकित थे। इस पर वीरमजी ने उन्हें अभय दिया।

घोड़ी की एक बछेरी को लेकर मल्लीनाथजी और जोइयों में वैर हो गया। मल्लीनाथजी ने जोइयों से जवाद नाम की घोड़ी की बछेरी समाद को मांगा और बदले में दस हजार रुपए, दस घोड़े तथा आधा गांव सीणली देने को कहा पर जोइया मदू नहीं माना। इस पर मल्लीनाथजी तथा जगमालजी ने इन्हें दावत में बुलाकर छल से मारना चाहा। एक मालिन ने यह

भेद दले तक पहुंचा दिया। जोइए रातों रात वीरमजी के पास खेड़ चले आए। वीरमजी ने उनको सकुशल सिंध में उनके गांव पहुंचा दिया, जिससे वे लोग इनके बहुत ही कृतज्ञ हुए। मार्ग में जाते हुए वीरमजी से जगमालजी ने युद्ध किया, किंतु वे कुछ न कर सके। रास्ते में वीरमजी ने आरायच राजपूतों का भावा नामक गांव अधिकार में कर, अपने पुत्र को वहां रखा तथा कुंडल में भाटियों के यहां विवाह किया। इन्हीं भटियाणी से गोगाजी उत्पन्न हुए।

वीरमजी वापिस खेड़ पहुंचे, तो जगमालजी ने फिर युद्ध किया। इस पर मल्लीनाथजी ने इनको जांगळू भेज दिया। वहां ये लूट-खसोट करने लगे। इसी समय दिल्ली के बादशाह के यहां भेंट की जाती हुई मोहरें इन्होंने लूट लीं, जिस पर मंडोवर से बादशाही सेना चढ़ आई। यह देख वीरमजी सिंध में जोइयों के यहां जा रहे। उन्होंने इनका बहुत सम्मान किया और १२ गांव दिए। यहां से जोइयों और वीरम के बीच विग्रह का सूत्रपात हुआ।

एक दिन वीरमजी ने जोइयों की सांढों (ऊंटनियों) को तालाब पर पानी पीती देख छीन लिया और उन पर अपने दाग लगवा दिये। इस पर जोइयों ने उन पर चढ़ाई करनी चाही, पर दले ने इनको घर आया मेहमान बताकर उनको ऐसा करने से मना किया। वीरमजी वहां से दले के जमाई मोटल के गांव आए, जिसने इनकी खूब आवभगत की। परन्तु इन्होंने उसको सेना-समेत मार दिया और दले की बेटी को बाहर निकाल गढ़ ले लिया। वह रोती-चिल्लाती जोइयों के यहां गई, तो दस हजार जोइये युद्ध के लिये तैयार हो गए। दले ने इस बार भी उन्हें समझा बुझाकर शांत किया। इधर वीरमजी ने फिर डांड लेने वाले जोइयों के आदमियों को मार कर अपने आदमी रख दिए और उनका खाजरू (शिकार) लूट कर खा गए। जोइए अपने को धिक्कारते हुए, क्रुद्ध हो उन पर चढ़ दौड़े, पर किसी प्रकार इस बार भी दले ने उनको शान्त किया—

अधिक ऊंच आपां दई वधो अपणाया
आपां ऊभां आपणां मांणस मरवाया
जमो गमावै जीवतां ज्यांनै धयुं जाया
त्यांरो जननी जनमतां धारा नह पाया
दस हजार चढोया दुसल रज गैण ढकाया
लखवेरै ऊपर लहर दरीयाव् हलाया
दोय कोसां पुगो दलो वातां विलमाया
सो पाछा साहीवांण में ओठा ले आया।

पूगल के भाटी बूकण की बेटी कशमीरदे जोइए मदू को ब्याही थी। उसकी छोटी बहन से मदू का छोटा भाई जमू विवाह करना चाहता था। कशमीरदे अपनी बहन का विवाह किसी हिंदू से करना चाहती थी और मना किए जाने पर भी उसने वीरमजी को वर चुना। वीरमजी ने शादी की रात ही अपने श्वसुर को सात पुत्रों और संबंधियों सहित मारकर सब धन लूट लिया। अब तो जोइयों का रहा सहा धैर्य भी जाता रहा। इस बार दले के अलावा राणी मांगलियाणी ने भी जोइयों से रुक जाने का अनुरोध किया—

देषे सब नीजरां दलो समसे मन भाया
दिन कितरा टाले दली अंत वीरम आया
मे तो मांरा आज लग सब वचन नीभाया
कांमेती कहकर इसो आतुर उठ आया
मांगळीयाणी मोट मन भीतर बुलवाया
दले अब देपाळ कुं एंजाव कहाया
भोजायां भायां कनें मुजरा मेलाया
पाळघो रंच न पाइयें जो छांह अछाया
मारो पीहर थां घरें पे सातुं भाया
में घर छांड़े मांहरा घर थांरें आया।

इसके बाद वीरमजी ने रास्ते में एक पुरानी प्रतिष्ठित बादशाही मसजिद में, वृक्षों पर खड़े मुसलमानों के धर्मवृक्ष फरांस को काट लिया और उसका ढोल बनाकर बजाया। उसकी आवाज वीरम के गांव लखवेरे से १२ कोस दूर जोइयों के गांव साहवाण तक गई। दले को वीरम पर बादशाही फौज चढ़ आने की आशंका हुई, क्योंकि उन्होंने इन्हीं दिनों शाही मोहरें लूट ली थीं। इधर ममजिद के काजियों ने सब समाचार जोइयों को दिए। उन्होंने दले की कुछ न सुनी और उन्मत्त हो लड़ मरने को तैयार हो गए। इस पर दले ने लड़ने की बजाय, वीरम की गाएं घेर लेने को कहा, जिसे उन्होंने मान लिया। ऐसा ही हुआ। वीरमजी की गाएं घेर ली गईं। वीरम का युद्ध करने का अटल विचार और मांगलियाणी द्वारा, विपरीत स्थिति देखकर, उनको बरजना पढ़ते ही बनता है—

मांगळीयांणी सांवली धण उभी पले
रहज्या माहर वरजीयो सुण मेरी गलें।
× ×
पहीयो कमधज रीस कर रहज्या अब रांणी
में पण नेम ज बंधीयो पीवण मुप पांणी
रावत सारा रोस में जम रुठा जांणी
धन नह जावें धाड़ में उभां सलपांणी।
× ×
एक गुनो दिन आंजरो बगसो वरदाई
मुझ तणो कथ मांन कें ठहरो ठकुराई
ऐ सब गायां आपरी, वीगड़ें नह काई
दलो सवारें देवसी लपवेरें लाई।

परन्तु वीरम का इरादा अटल था, चाहे कुछ भी हो जाए। वे बोले—

फणघर छाडे फुंणद सुं नह भार संभावें
अरक पिछम दिस उगवें, विप्र वेद वीसावें

वेग घटै विहंगेस को सिव ध्यांन भुलावै
गोरख भूलै ग्यांन कुं जत लिछमण जावै
सत छाड़ै सीता सती हणमंत घबरावै
धणीयां धाड़ेतां तणी कि धबरां पावै
हुं संक कर बैसुं घरे, जग उलटो जावै ।

राणी रोकती रही, किंतु वीरम और उनके दो हजार वीर घोड़ों पर चढ़ गए—

रांणी पाणी राळीयो अंपीयां अणपारो
वरजै चढ़ता वीरमो ग्रह चाळप चारो
रह रह ठाकुर समझ उर सुणीयै गल मारी
जो फरहास न बाढ़ता टळ जाती सारो
सांणी करो समाध कुं तद वेग तयारी
पाव रकेबां परठकै फोयी असवारी
दोय सहंस चढीया दुझल पमंगां पपराळा
वीर समाध कुदाड़वै झल शाबळ झाळा
आज न छोड़ां एक ही विच थेत चडाला
श्रापे श्रापे आवीयां मोहोल मतवाळा ।

इधर जोइयों को भी वीरम की कीर्ति सुनाई गई, किन्तु वे लड़ने से न रुके—

लोप भवंर गीर लंकरो कुण जावै बारै
आभ भुजां कुण ओळमै कुंण सायर जारै
मीणधर दे मुख अंगळी मीण कवण लीवारै
सिंह पटा झर सांमहो कुण पेट पधारै
तेरु कुण सायर तीरै जमकुं कुण मारै ?
वाद करे रीण वीरमो नर कौण वकारै
मधु सौ विन मार का कुण आसंग धारै
ऐ राठोहड़ आजरा पोरस अणपारै
दसां हजारां दोटसी हय दोयं हजारै
मत धड़पो दावे मधु छै साहीब सारै
राठोड़ां रिण रोठसां दे धोठ अकारै
जळ चाडां धुळ जोइयां कथ रावां लारै
वाथ घलां असमांण सुं लज हात अलारै ।

× ×

भळ भळ वाढ भळकीया धूरसांण दुधारा
झवर कसेळां आग झड़ उर फूट अफारा
पड़ीया असभड़ पावतो धड़ न्यारा न्यारा
जांणक आय घोमांन मे ढळीया विणजारा ।

इस युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक वीर मारे गए। वीरमजी वीरगति को प्राप्त हुए और दले के चार भाई भी खेत रहे। जोइए विजयी हो अपने गांव साहवांण को लौटे। इस विनाश से दला अत्यन्त दुखी हुआ। उसने वीरम के पुत्र चूंडा को रणवास-सहित थळी में कालाऊ गांव में आल्हा चरण के पास पहुंचा दिया। आला ने बहुत दिनों तक चूंडे को अपने यहां रखा और फिर ले जाकर मल्लीनाथजी से मिलाया। उन्होंने बहुत खातिर की और अपने आदमियों के साथ चूंडे को कायलांणे के मुसलमानी थाने को तोड़ने के लिये भेजा। घास की गाड़ियों में छिप कर चालाकी से इन्होंने अपना राज्य वहां कायम कर लिया। इसमें ईंदे ने बहुत मदद की थी। मल्लीनाथजी ने चूंडे को मंडोवर का शासक स्वीकार कर लिया। यहां इनके तीनों भाई, देवराज, जयसिंह और गोगादे आकर इनसे मिले।

मंडोवर में एक भोमिया देव बलिदान लिया करता था, जिसे गोगाजी ने बन्द कर दिया और उस दैत्य पर अपने बाहुबल से विजय पाई। उसने जलंधरनाथजी से इनको मिलाया, जिन्होंने आशीर्वाद दे रळतळी नामक तलवार गोगा को दी, जो प्रहार के समय सात हाथ लंबी हो जाती थी।

जोइयों के यहां दले के पोते का विवाह था, जिसमें उन्होंने एक जाट की गाड़ी इस उत्सव के लिए जबरदस्ती छीन ली। जाट ने मंडोवर आकर चूंडा से कहा कि अपने बाप के वैर का बदला लेने का यही उपयुक्त अवसर है, पर चूंडा ने अपने मामा पर प्रहार करना अनुचित समझकर, उसे गोगा के पास भेज दिया, जो इसके लिये तैयार बैठा ही था। वह पांच सौ आदमियों सहित, साहवाण पर चढ़ आया और आधी रात को युद्ध करके उसने दले को मार डाला। तब दला की बेटी देऊ ने गोगा को अपना भाई बनाकर तिलक लगाया और अपने भाई हांसू को बचा लिया। हांसू ने यह खबर, दले के पोते धीरू को जहां शादी हो रही थी, वहां जोइयों को दी। उन्होंने ऊंटों पर रवाना हो गोगा का पीछा किया, पर उसका पता नहीं लगा। इसी समय एक राइके ने आकर कहा कि गोगाजी लछूसर तालाब पर ठहरे हैं। इस राइके का बकरा गोगाजी ने जबरन ले लिया था। जोइयों ने वहां जाकर गोगा को घेर लिया। उस समय अपने घोड़ों को चरने छोड़कर वह तालाब पर रोटी बना रहा था। गोगा के घोड़ा हाथ नहीं आया, इसलिये वह पैदल ही लड़ने लगा। घनघोर युद्ध हुआ, जिससे वह आहत हो गया—

रजवट आईया राठवड़, जुटा भड़ जकै
सेल भचईका मुं सहै किरमाल कड़कै
आपाड़ै असमांन में रयमांण ठहकै
तेग भड़ाथर बोछड़ै पड़ लोप दड़कै
भड़ धमसांण प्रमाण भल जमरांण जड़कै
जांण क भरी पथालदा मुष पोला सीर्कै।

इसी समय पूगल के भाटी रांणकदे ने रळतळी तलवार मांगी। गोगा ने उछलकर उसकी टांगें काट डालीं।

तदनन्तर गोगा ने जलंधरनाथजी को याद किया। वे आए और उसके शरीर को अमर

कर दिया, पर गोगा के पैर उलटे जुड़ गए। दसवां सिद्ध मानकर, जलंधरनाथजी उसको अपने साथ ले गए।

(२) गाडण सिवदास : अचलदास खीची री वचनिका[1]

यह तुकान्त गद्य और पद्य मिश्रित छोटी सी रचना है। छन्दों में दोहा, सोरठा, छप्पय और कुंडलियों का प्रयोग हुआ है। गद्य-सम्मुच्चय और छन्दों की संख्या १२० है। यद्यपि हस्तलिखित प्रति में, अन्तिम छन्द संख्या १२१ दी गई है और श्री जुगलसिंह खीची[2] भी १२१ ही मानते हैं, तथापि एक गद्य-खंड, जिसका हवाला आगे दिया जाएगा, दो बार प्रयुक्त होने पर वस्तुतः कुल संख्या १२० ही रहती है। इसके रचयिता चारण सिवदास हैं, जिन्होंने रचना-काल अथवा अपने वंश के बारे में कुछ नहीं कहा है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की एक और हस्तलिखित प्रति से पता चलता है कि ये गाडण शाखा के चारण थे[3]।

इसमें मांडू के बादशाह होसंग गोरी और गागरोणगढ़ के राजा अचलदास खीची के युद्ध तथा राजपूत स्त्रियों के जौहर का बड़ा सजीव वर्णन पाया जाता है। डा० टैसीटरी के अनुसार, यह युद्ध की समकालीन रचना है और सिवदास ने आंखों देखा वर्णन इसमें किया है[4]। टाड के अनुसार युद्ध का समय वे संवत १४७५ मानते हैं[5]। डा० मोतीलाल मेनारिया के दो मत हैं। एक जगह[6] उन्होंने इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १४७० के आसपास माना है और दूसरी जगह[7] संवत् १४८५। खिलचीपुर राज्य की ख्यात के अनुसार भी युद्ध का समय संवत् १४८५ है[8]।

ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध का समय संवत् १४९० तथा इसका रचनाकाल संवत् १५०० के आसपास है। इसके कारण हैं।

इसमें अचलदास के पुत्र धीरज का मेवाड़ के राणा मोकल के पास युद्धार्थ सहायता मांगने जाना वर्णित है। श्री जगदीशसिंह गहलोत[9] तथा श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ[10] के अनुसार, बादशाह की चढ़ाई के वक्त मारवाड़ के राव रणमल अचलदास की सहायता को रवाना हुए थे, किन्तु रास्ते में ही 'चाचा' और 'मेरा' द्वारा राणा मोकल के मारे जाने का समाचार सुनकर, वे सीधे मेवाड़ पहुंचे। नैणसी की ख्यात से भी इस बात की पुष्टि होती है[11]। पं० रामकर्ण आसोपा के अनुसार, "अचलदास की मदद पर रणमलजी नहीं गए थे, मोकलजी गए थे और वे बाघोर पर चाचा मेरा

---

१. अ० सं० ला०, बीकानेर, की ह० प्रति नं० ९९ के आधार पर यहां विवेचन किया गया है।
२. राजस्थान-भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६, पृ० ९१ :
३. प्रति नं० १ :
४. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 41.
५. वचनिका राठोड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री : Introduction, Page VI.
६. डिंगल में वीररस : भूमिका, पृ० ३७ :
७. राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १३३ तथा ३६२ :
८. राजस्थान-भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६, पृ० ८४ :
९. मारवाड़ राज्य का इतिहास : पृ० ११५ :
१०. राष्ट्रकूट : पृ. १४३ : (आसोपा के 'मारवाड़ का मूल इतिहास', पृ. १०० की टिप्पणी में उद्धृत) :
११. ख्यात, भाग २, पृ० ११६ :

के हाथ मारे गए"[1]। दोनों ही परिस्थितियों में, इस युद्ध के समय मोकल का मारा जाना सिद्ध होता है। मोकल संवत १४९० में मारे गए थे[2], और इसलिये यही समय युद्ध का भी होना चाहिये। इसमें नो बार 'अथ वात', 'वले वात' इत्यादि शब्दों तथा दो बार 'तिवरै वात कहतां वार लागै' आदि वाक्यांश प्रयुक्त हुए हैं। इससे पता चलता है कि अन्य राजस्थानी 'वातों' की तरह, अचलदास की कीर्ति गाथा भी, उनकी मृत्यु के पश्चात् जन-साधारण में कही और सुनी जाने लगी थी। यह सर्वमान्य है कि राजस्थानी 'वातें' अधिकतर कहने और सुनने के लिये होती थीं, पढ़ने के लिये नहीं। अतः कवि ने जन-साधारण की भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए 'वचनिका' की रचना की और जिसके द्वारा अचलदास की कीर्ति को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया।

लोक-प्रचलित 'वात' शैली में जन-जीवन की भावनाओं को सुरक्षित रखने के प्रमाण स्वरूप, यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, ग्रन्थ-रचना के समय, युद्ध को हुए कुछ समय व्यतीत हो गया प्रतीत होता है। इसका कुछ आभास निम्नलिखित अवतरणों से मिलता है—

(१) साइ सारदा मनि संभरी वाधउ ग्रंथ अपार
सूरत रायउ अचलकउ पवंदालं मसिकार।

(२) आगिलउ राजा सभा सहित सुचित हुइ सुणइं।
तउ सुकवि कुकवि क पंजणइ।

इसी प्रकार ग्रन्थकर्ता का सातल, सोम, हम्मीर और कान्हड़दे के प्रवाड़ों (वीरकृत्यों) की पृष्ठभूमि में अपने चरित नायक को उतारना, मृत्यु के बाद प्रचलित अचलदास की कीर्ति का ही द्योतक है। इसमें कुछ समय अवश्य लगा होगा। इन सब कारणों से 'वचनिका' का रचना काल संवत् १५०० के आसपास होना चाहिए।

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों का बहुतायत से पाया जाना और कालान्तर में राजस्थान के अन्य जुझाऊ सिद्ध-पुरुषों गोगाजी, पाबूजी आदि की भांति अचलदास को मालवा में पूजनीय मान लिया जाना[3], 'वचनिका' और उसके नायक की प्रसिद्धि का पुष्ट प्रमाण है। आलोच्यकाल की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण चारण-कृति है। इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति संवत् १६३१ की लिपिबद्ध मिलती है[4]। रचना और लिपि काल की प्राचीनता तथा ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने के अतिरिक्त इसका महत्व भाषा के क्षेत्र में भी बहुत है, जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

इसमें बनाव-शृंगार का प्रयास अथवा शब्दों की अधिक तोड़-मरोड़ नहीं है और न ही

---

१. मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० १००, फुटनोट :
२. (क) वही, पृ० १०१ : (ख) गहलोत : राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०७ :
३. सर मनुभाई महता : मालव राज्य मंडल (गुजराती इतिहास) :
४. प्रति नं० ९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

अनावश्यक अनुस्वार-बहुलता तथा द्वित्व-वर्णों का प्रयोग है। यह एक वीररस-प्रधान कृति है, जिसमें एक स्थल पर गौणरूप से करुणरस का भी दिग्दर्शन होता है।

कथानक :

जैसा पहले कहा जा चुका है, इसमें युद्ध और जौहर के दो वर्णन प्रधान हैं। रचना का प्रारंभ देवी की स्तुति से होता है। तत्पश्चात् शारदा की स्तुति है।

मालवा के बादशाह गोरी ने गागरोणगढ़ पर चढ़ाई की। उसकी सेना में मियां उसमानषान, फतेषान, गजनीषान, अमरषान, हैबतिषांन आदि उमराव और अनेक हिन्दू राव-राजा सम्मिलित हुए। सेना चलने लगी—

इसा एकते पातसाह का, कटक थंद देस देस का। षंड षंड का नगर नगर का।
षांन मीर ऊंमराव चवुरंग दल चडि चाल्या। पातसाह आपुणपौ पलाण घाल्या।

इधर अचलदास की सहायता के लिये भी कल्याणसिंह, जैणसी, कंवलसी, अरजन, सुरजन, सतसल (शत्रुसाल ?), रिणमल कछवाहा आदि आ जुटे। अचलदास के पुत्र धीरज को राणा मोकल के पास सहायतार्थ भेजा गया, परन्तु दुर्भाग्यवश सहायता नहीं मिल पाई। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ—

बिहूं छेहि बांणावली। सरपुंडिग सलली।
अणी अणीं अतुली। पग पगां पली।
रुधिर धर रलतली। बहु नाचै कमंद महाबली।
आलझै आंत्रावली। आलम अचलेसरि अडचां।
सेन बिनं इम संमिली। सहू कुण सुभरी। एक एक ऊपरि।
लागि लागइं परी। ठांइ नह ठठरी।
दिन राति न जांणइ दूसरो। नींद भूष त्रिस वीसरी।
पौंदालमि पीची परी। सेन बिनं इम संमिरी।

× ×

आलम अचलेसरि अडयां एही एक अवक।
पिडिसै जेता हींदू पडै, तेता सहस तुरक॥

युद्ध चैत्र की महाअष्टमी से आरंभ होकर दूसरी अष्टमी तक चलता रहा—

इसी परि त्यौ लड़तां लागतां मरतां मारतां महाष्टमी
भारथ जुध मातौ थौ त्या दूसरी अष्टमीं आइ संप्राप्ती हुई।

घमासान युद्ध में इतना नर-संहार हुआ कि रुधिर का प्रवाह नदी में जा मिला। राजपूत महिलाएं युद्ध में अपने-अपने देवर, जेठ और पति के पराक्रमों को देखती हुई फिरने लगीं—

अस्त्री जन सहस चालीस कउ संघाट आइ संप्राप्तौ हुवौ छ।
बाली भोली अबला प्रौढ़ा षोडस.वारषी रांणीं रयतांणीं वहदा

बहविहो आपणां आपणां देवर जेठ भरतार का सत देषती फिरै छ।
यह महलि तौ बाई सफलादे भोज की कांता अचल की जनेता[1]।

जब परिस्थिति विकट हो गई, तो जौहर के लिये वे आतुर हो उठीं और कहने लगीं—

इन्हकौ सत तेज अहंकार देषतां विहाडा दस ग्यारः बीस हुवा छ।
न ए हमारो सत तेज अहंकार देषै न हमहू संभारै।

अचलदास ने उनको समझाया कि मनुष्यों का क्या तेतीस कोटि देवताओं सहित स्वयं सृजनहार तुम्हारा जौहर देखेंगे। कल दिन हम्मीर के रणथंभौर में जो हुआ था, वही तुम भी करके दिखाना—

मांनवी की कहा रे! बावली हो! तेतीस कोडि देवतां
सहित सिरजणहार तौ तुहारै कौतिग क देषणहार।..
कालि्ह कै दिहाडै रिणथंभउरि राजा हमीरदौ कइ घरि जौंहर हूवा।
तिणू जउंहरां जिका बात ऊंणीं हुई हुवै त्या तम्हे पूरी करि दिपालउ।
पूरी हुई हुवै त्या पुनेरपि बाहुडि उजालउ।

युद्ध में विजय की आशा न देखकर बालक राजकुमार पाल्हणसी को वंश-रक्षा निमित्त किले से बाहर अन्यत्र भेजने की योजना हुई। इधर वीरांगनाओं ने जौहर की तैयारी की और उधर राजकुमार ने सदा के लिये सबसे विदा ली। भरे हृदय से संसार का ऊँच-नीच उसको समझाया गया। बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित हो गया—

पाल्हणसी भलां भलां लोकां का कह्या करणा धार सांभल्या आंसू पूंछि अंकमाल लीयौ।
विजइ बंभ वगडी की नांई सकल हीं प्रियमीं प्रतिपिज्यौ यौ गड लीजउ। हमारउ
वइर सुरितांण गोरी राजा सउं कीज्यौ।

पाल्हणसी पुहविहि रह्यौ अनि संमह्या सरगि।
तिणि वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लगि।

अब जौहर के लिये पावक तैयार की गई। प्रत्येक क्षत्राणी ज्वाला में एक के बाद एक 'शिव' 'शिव', 'हरि' 'हरि', कहती हुई कूदने लगी। प्रत्येक को जल मरने की जल्दी थी—

चींतवियौ चहवांणि जउंहर की मांडउ जुगति।
हव हुइस्यां हर पुर दिसा वेगा वेगि विहांणि॥

व्यामोह्यौ वर वीर, घरि घरि सत देषै घणउ।
आयौ राइ हरि आपरइ, समहरि अचल सधीर॥

वेला तिणि बसुहागि, धडहडती धूवा धयइ।
तणं अंतेवर ऊठिसो, अंग हूं जांणे आगि॥

ते चाली तिणि ठाहि, आइसि अचलेसर तणैं।
ससि वयणी सिव सिव करे, पइसैं पावक माहि॥

---

१. यह गद्यखण्ड दो बार प्रयुक्त हुआ है।

छूटि न जांई छेहि माहे जउंहर मेछलै ।
आइ आइ चडै उतांवली पटरांणीं पागेंहि ॥

जउहर जालणहार अनइ जलइ ताइ ऊचरे ।
हरि हरि हरि होइ रह्यौ विसन विसन तिणि वार ॥

इधर, तलवारें लिए, अचलदास सहित, सब योद्धा गढ़ से निकलकर शत्रु सेना पर टूट पड़े और उन्होंने हंसते-हंसते प्राणों की आहुति दी। संसार में उनका नाम अचल हो गया—

सातल सोम हमीर कंन्हजिम जौंहर जालिय
चढिय पेति चहुवांण आदि कुलवट उजालिय
मुगत चिहुर सिरि मंडि वपि कंठि तुलसी वासी
भोजाउति भुज बलंहि करिहिं करिमर कालासी
गढ़ पंडि पडंतो गागुरणि, दिढ दाये सुरिताण दल
संसारि नांव आतम सरगि अचल येवि कीधा अचल।

(३) गाडण पसाइत :

(क) राव रिणमल रौ रूपक;

(ख) गुण जोधायण :

ये दोनों रचनाएं अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की एक हस्तलिखित प्रति में मिलती हैं[1], जिसका हवाला डा० टैसीटरी ने दिया है[2]। डा० टैसीटरी के अनुसार, यह प्रति संवत् १७०० के मध्य लिखी गई थी। इस प्रति से की गई नकल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में भी है, जिसका विवरण डा० सुकुमार सेन ने दिया है[3], किंतु इसमें लिपिकार की भूल से कई छन्द छूट गए हैं और पाठ की अशुद्धियां तो सर्वत्र पाई जाती हैं। गाडण पसाइत की निम्नलिखित फुटकर रचनाएं भी मिलती हैं[4]—

(१) कवित्त राव रिणमल चूंडै रै वैर मैं भाटियां नैं मारीया तै समैरा;
(२) कवित्त राव रिणमल नागौर रै धणी पेरोज नैं मारीया तै समैरा;
(३) कवित्त राणै मोकल मूओ री खबर आयांरा।

इनके विषय में आगे लिखा गया है।

प्रथम फुटकर कवित्त संग्रह, 'कवित्त राव रिणमल' में रणमल द्वारा जैसलमेर के भाटियों से अपने पिता राव चूडा की मृत्यु का बदला लेने का वर्णन है। चूडा की मृत्यु संवत् १४८० में

---

१. प्रति नं० १३६ :
२. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, प्रति नं० I (d) तथा (h), Page 5 :
३. Descrip. Cata. of Rajasthani Mss. Pt. I, प्र० नं० C. 70. 69 तथा 71. C. 64 :
४. (क) प्रति नं. १३६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर;
   (ग) Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. 1, Page 4-5;
   (ग) Sukumar Sen : ,, ,, ह० प्र० C. 75. 68 तथा C. 76. 69.

हुई थी[1]। तदुपरान्त ही रणमल ने भाटियों से बदला लिया था। 'गुण जोधायण' में, जोधाजी के झुंझनूं, फतहपुर और हिसार तक राज्य-प्रसार तथा बहलोलखां की सेना से सफलतापूर्वक लोहा लेने के वर्णन पाये जाते हैं—

(१) पसरीयो जोघ त्रिहुं ए गढे, एकै रवि ओ भार
झाझें आरंभ झूंझणूं फतैपुर (व) हंसार।

(२) बहलोल सेन मुंबका सनाह। संचरै सूई नह तीहि माहि।
अढार टंक तांणं कमांण। ग्रहस दस आया पगांण।

ये घटनाएं संवत् १५३१[2] के आसपास की हैं। जोधाजी की मृत्यु संवत् १५४५ में हुई थी[3], जिसका उल्लेख इसमें नहीं है। अतः कवि का रचनाकाल संवत् १४८० से १५३१ के बीच होने का अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः कवि रणमल और जोधा का आश्रित था।

(क) राव रिणमल रो रूपक :

यह दोहा, गाहा, पाधड़ी, कवित्त (छप्पय) आदि ७१ छन्दों का काव्य है, जिसमें मारवाड़ के राव रणमल की कीर्ति और राणा कुम्भा द्वारा उनकी मृत्यु का वर्णन है। रणमल के जीवन से संबंधित घटनाएं प्रायः क्रमानुसार नहीं दी गई हैं।

रणमल, राव चूंडा के बड़े पुत्र थे और अपने पिता की आज्ञानुसार उन्होंने राज्याधिकार छोड़ दिया था। मारवाड़ से वे मेवाड़ के राणा लाखा के पास चले गए थे। तबसे जीवन भर इनका विशेष सम्बन्ध मेवाड़ से बना रहा। इनका जन्म संवत् १४४९ और मृत्यु संवत् १४९५ में हुई।

काव्य का प्रारम्भ सरस्वती की वन्दना से होता है, जिसमें कवि अपने काव्य का विषय भी स्पष्ट कर देता है—

वधवाणी ब्रहमाणी कोमारी सरसत्ति।
कीरत रिणमलनुं करूं देवी देहि सुमत्ति।

तदुपरान्त रणमल द्वारा नागौर के शासक फीरोजखां और जैसलमेर के भाटियों पर आक्रमण, चाचा और मेरा द्वारा राणा मोकल के मारे जाने पर इनका उनसे बदला लेना, मालवा विजय, मारवाड़ के राव सत्ता और रणधीर के बीच झगड़ा होने पर, रणधीर के कहने से मंडोर पर अधिकार, गया और प्रयाग की तीर्थ-यात्रा आदि आदि प्रमुख घटनाओं का अत्यन्त त्वरा के साथ वर्णन किया गया है। *राणा कुम्भा के महल में सोते हुए, रात्रि के समय रणमल के वध का वर्णन* काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। प्रकृति के परिपार्श्व में रणमल की दुखद मृत्यु का वर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। एक ओर चिर नवीन और सदा सुहागिन प्रकृति का और दूसरी ओर मृत्यु की विभीषिका का वर्णन वातावरण में वेदना की अमिट गन्ध छोड़ जाता है—

---

१. रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६५ :
२. वही : पृ० ९९–१०० :
३. ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, छठा अध्याय :

पावस सरद ति सरद हेमंत ससिर हेम थरीसणी।
धर्म्माणि ग्रीषम धर्म्म घोरी बोहो जेतौ बीराणी।
त्रिण काल बारह मास षट रित एक एका तूलए।
रिणमल राव मयंक रेणू सुयण मांणक सलए।

परी रित्त ग्रीषम अरो वहीयो वेसासे
संप्रतो पावस सहेड तंडव कर वारो
बलि करन दधीच समिर सारीयो चाएं
गलै गलंती रात महा गरवा गुण गाएं
राठौड राव परलोईयें संसर हि विजोईयौ
विसेष वरने दरसणे, रंण सद्रुप रोइयौ।

(ख) गुण जोधायण :

यह राव जोधा की प्रशंसा में लिखा गया वीररस का छोटा सा काव्य है जिसमें दोहा, कवित्त, भुजंगप्रयात और पाधड़ी, सब मिलाकर ७५ छन्द हैं।

कथानक :

जोधाजी ने अपनी वीरता का परिचय अपने पिता राव रणमल के जीवनकाल में ही देना प्रारम्भ कर दिया था—

एक एक हूं अगला, वडायर चकपाल
जोधै प्रवाडा कीया जीयंतं रिणमाल।

रणमल को मारकर राणा कुम्भा ने मंडोर पर अधिकार कर लिया। जोधाजी लड़ते-लड़ते, मेवाड़ से बचकर, मारवाड़ के मरुस्थल में आ गए और वहां उन्होंने दिन-रात सामरिक तैयारी की। धीरे-धीरे उन्होंने मेवाड़ी सेना से अपने सब थाने छीन लिए, मंडोर ले लिया तथा राणा कुम्भा का अजमेर और आबू के बीच का प्रदेश उजाड़ कर दिया—

नित नित गोहिलोतां तणा, आंमूलै आयांण
जोधौ उत्तारै नहीं, घोड़ां हूंत पलांण।

× ×

जेय हुता धरपंद्र तेथ ऊडै रापोडा
बेठा जेय सारंग, जेय बंधीता घोड़ा
मंडी ती मंडही वचा तित घूघू जाया
चरता जेय चौपद वेह तिण बाघ विआया
अजमेर अनै आबू विचै, मांणस दीसै थाटीया
कमंधज राव कूंभै तणा, जोधै देस उजाडीया।

मंडोर को सुरक्षित कर, अब जोधाजी ने अपने पिता के वैर का बदला लेने की ठानी और सुसज्जित सेना ले मेवाड़ पर चढाई कर दी। चित्तौड़-दुर्ग के कपाट उन्होंने जला दिये, मेवाड़ को तहस-नहस कर दिया और इस प्रकार बदला लेकर वापिस आए—

यलौ प्रबत लंघीयो चडे पाखरीये घोडे
जाए दीन्हा घाव, कोट बीग्रोड किमाडे
बोल ढोल बोलीयो, त्यार थमणे उत सुणीया
कूंभनेर नारीयां ग्रभ पेटा हूं छणीया
चीतोड तणे चूंडाहरा किमाडे परजालीये
जोहार जाय जोधं कीयो, राव रिणमल पालीये।

तत्पश्चात् उन्होंने तीर्थ-यात्रा की और गया में अपने स्वर्गस्थ पिता का पिण्डदान कराया। उन्होंने फतहपुर, झुंझनू और हिसार तक अपने राज्य की सीमा बढ़ाई और अनेक प्रवाड़े किए। कवि यहां तक वर्णन करे—

बाप तणो वैर लयो, गैहलोतां उतवंग
जोध प्रवाडा तेतला जेता गंग तरंग।
जिता गंग तारंग ध्रू भार ढारा
जिता वींझ नागा जिती मेघ धारा।
जिता आवीया कपि लंका उजाडा
तिता जोध कमंधज तूस प्रवाडा।

फुटकर रचनाएं[1]—

(१) कवित्त राव रिणमल चूंडे रे वैर में भाटियां नें मारीया तै समैरा :

इसमें पाच कवित्त हैं। जैसलमेर के केलण भाटी ने ओडींट के मोहिलों तथा मुल्तान के शासक वलियाखान के सेनापति सलीम की सम्मिलित सहायता से संवत् १४८० में रणमल के पिता राव चूडा पर नागौर में घेरा डाला। युद्ध में राव चूडा वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आए। इसकी खबर जब रणमल को मिली, तो उन्होंने भाटियों से इसका बदला लिया। इन कवित्तों में, रणमल की उन पर चढ़ाई और विजय का वर्णन किया गया है। एक कवित्त देखिए—

कोल कंप आकंप दीप साते थरहरीया
गिर सिरंग डोलीया रजी अंबर ऊभरीया
सुहड़ थट मेवट्ट अति आरूढ तुरंगे
सत्रहथ आवधा हुयंता स जूसण अंगे
मूसंत मृग संघ स मंहि पडे भाड थर भंडाणौ
आसणी कोट ऊपर इसौ कीयौ रिणमल पयांणौ।

(२) कवित्त राव रिणमल नागौर रे धणी पेरोज नें मारीया तै समैरा :

इसमें सात कवित्त हैं। संवत् १४८५ में, मंडोर लेने के पश्चात् रणमल ने मेवाड़ के

---

१. ह० प्रति नं० C. 76.69, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता :

राणा मोकल की सहायता से नागोर के शासक फीरोज खां पर आक्रमण करके वहां अपना अधिकार जमाया था। युद्ध में फीरोजखां मारा गया। इसमें रणमल के इसी पराक्रम का वर्णन है—

मलीयानल फरहरे कुसम ध्रू स धंसझे
ऐर भार अढार पंथ सारंग विवजे
रितराव संप्रति भ्रमणपुर कोयल लग्गी
तरणी मन उल्हसे प्रेम विरहानल जग्गी
महमद जिसा मछर चड़े वूहा ज्यां रिणमल वर
नागोर नार रोवै नितूं घोयौ वसंत अवतंस घर।

(३) कवित्त राणै मोकल मूआंरी खबर आयांरा :

इसमें पांच कवित्त हैं। जब अहमदाबाद का सुल्तान, डूंगरपुर राज्य में होता हुआ, जिलवाड़े की तरफ बढ़ा और वहां के मन्दिरों को तोड़ने-फोड़ने लगा, तो मेवाड़ के राणा मोकल ने उस पर चढ़ाई की। मार्ग में उन्होंने किसी वृक्ष को देखकर उसका नाम अपने पासवान काका 'मेरा' और 'चाचा' से पूछा। उन्होंने इसे अपमान समझा, क्योंकि उनकी माता बढ़ई (खाती) जाति की थी। उन्होंने महपा पंवार आदि कई लोगों को अपने साथ मिलाकर महाराणा को अचानक मार डाला। यह घटना संवत् १४९० में हुई थी। मोकल रणमल के भानजे होते थे। जब इसकी खबर रणमल को लगी, तो उन्होंने 'मेरा' और 'चाचा' को मारने की प्रतिज्ञा की और उसे पूर्ण किया। इनमें उनके इस बदला लेने का वर्णन किया गया है। रणमल की प्रतिज्ञा सुनिए—

जेय चडै आकास ताम आयास उतारूं
जे पैसे पाताल काढ पायाला मारूं
जेथ जाय तेय जाय पित पेलू पत्र साचौ
जाऐं किम जीवतौ अति ओगारी चाचौ
यावन वीर बीरमहर कोय जु जुध मंडे कया
मालवै वीर मोकल तणा रिणमल लई प्रतंग था।

(४) पद्मनाभ : कान्हड़दे प्रबन्ध[1]

इसकी रचना जालौर के चौहान अखैराज के आश्रित वीसनगरा नागर ब्राह्मण पद्मनाभ ने संवत् १५१२ में की थी। इसमें अखैराज से १५० वर्ष पूर्व, पांचवी पीढ़ी में हुए उनके पूर्वज, सोनगिरा चौहान कान्हड़दे के साथ अलाउद्दीन के जो युद्ध हुए उनका वर्णन प्रमुख है। चौपाई, दोहों तथा सवैयों की देशियों में लगभग दो हजार पंक्तियों में रचित, यह प्रबन्ध चार खण्डों में विभाजित है। बीच में भाव-प्रवण पांच गीत तथा दो स्थलों पर गद्य का प्रयोग है।

---

१. राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ११, (जयपुर) :

इसे राजस्थानी महाकाव्य कहा गया है[1]। 'पुरानी हिन्दी' के पृथ्वीराज रासो के साथ तुलनीय बताते हुए, प्रो० व्यास इसे 'epic of glorious age' कहते हैं[2]।

कई कारणों से, विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के अन्य काव्यों में, इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तरकालीन अपभ्रंश से विकसित होती हुई पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए, इसमें मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है। 'राजस्थानी ही नहीं हिन्दी के भी प्रारम्भिक युग के ग्रन्थों में कदाचित् ही कोई ऐसा माना जा सकता है जिसकी रचना-तिथि इतनी निश्चित हो। इस प्रकार इस ग्रन्थ का पाठ भी अपने मूलरूप में प्रायः सुरक्षित है और अपने युग की भाषा के अध्ययन के लिए दृढ़ आधार प्रस्तुत करता है'[3]। इतिहास की दृष्टि से यह अनूठी रचना है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं का ब्यौरा बहुत ही सही है। इस सम्बन्ध में इसकी तुलना 'वीरमायण' और राव जैतसी से सम्बन्धित 'पाघड़ी छन्द' से की जा सकती हैं। तीनों ही काव्यों में तत्तत्कालीन इतिहास की जीवन्त झांकियां मिलती हैं। इस प्रबन्ध में जहां वर्णित घटनाओं का इतिहास से मेल नहीं खाता, उसका कारण यह है कि, 'पद्मनाभ कोरा ऐतिहासिक ही नहीं था, वह कवि भी था, अतः उसे ऐसी कथाओं की कल्पना और उनके समावेश का भी पूर्ण अधिकार था'[4]। कवि के तत्कालीन भौगोलिक वर्णन भी बहुत ही ठीक हैं। समाजशास्त्र के अध्येताओं के लिए इसमें तत्कालीन रीति-रिवाजों, तौर-तरीको, मान्यताओं, परम्पराओं, रूढ़ियों और विश्वासों आदि के रूप में पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।

साहित्यिक दृष्टि से यह एक सुन्दर कलाकृति है। सीधी-सादी प्रसाद-शैली में, कवि ने सरल किन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की है। स्वदेशाभिमान और जातीय गौरव से ओतप्रोत कान्हड़दे, उसके सम्बन्धियों और वीरो के मुसलमानी सेना के साथ लगातार दुर्धर्ष युद्ध, उनके अडिग आत्मविश्वास और अन्त में उनका अवसान—इन सबके सरस वर्णन हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। स्वदेशी राज्यश्री के धीरे-धीरे होनेवाले अधःपतन तथा उच्चादर्शों के लिए प्राणोत्सर्ग की मर्मभरी कहानी, हमारे हृदय में जहां गौरव-भावना भरती है, वहां करुणा मिश्रित टीस भी उत्पन्न करती है। प्रसंगवश, नगर रचना के वर्णन, सेना के अंगों की सजावट, उसके कूच का वर्णन, छावनी की जमावट तथा युद्धों के ओजस्वी वर्णन हैं। समस्त काव्य वर्णनात्मक ढंग से लिखा गया है, अलंकृत शैली और अभिव्यक्ति-चमत्कार के विशेष दर्शन नहीं होते। केवल दो स्थल—कान्हड़दे की सेना तथा जालौर नगर की रचना के वर्णन अलंकारिक गद्य में हैं। अलाउद्दीन की पुत्री कुमारी फीरोजा और कान्हड़दे के पुत्र वीरमदे के पूर्वभव सम्बन्ध और इस जन्म के प्रेम की असफल कहानी तथा कुछ अन्य चमत्कारिक बातें कवि

---

१. कान्हड़दे प्रबन्ध, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ३ :
२. वही : Introduction, page 1.
३. डा० माताप्रसाद गुप्त : 'कान्हड़दे प्रबन्ध और उसका पाठ'—'आलोचना', वर्ष ४, अंक २, जनवरी १९५५ :
४. डा० दशरथ शर्मा : 'कवि पद्मनाभ के कान्हड़दे प्रबन्ध का संक्षिप्त वृत्त और ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षण'—शोध-पत्रिका, भाग ३, अंक १, पौष, २००८ :

की अपनी सृष्टि है। सम्पूर्ण काव्य में वीररस प्रधान है। आनुषंगिक रूप में अद्भुत्, रौद्र, विप्रलंभ शृंगार और करुण आदि रस भी यथा स्थान मिलते है। दो विशिष्ट पात्र हैं—कान्हड़दे तथा फीरोजा। एक बलिदान होता है जातीय गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए और दूसरी सती होती है जन्म-जन्मान्तर के प्रेम के लिए। कवि ने बीच-बीच में कुछ सिद्धान्त वाक्य कहे है जो अपनी छटा अलग ही दिखाते हैं—

(क) पदमनाभ पंडित भणइ, जनमंतरि जे रीति।
जाति हुई जूजूई, पूठि न छांडइ प्रीति ।३।२०६

(ख) पदमनाभ पंडित भणइ, प्रीति परीक्षा एह।
अंग विहूं जण उल्हसइ, नर नारी नवनेह ।३।२३०

(ग) पदमनाभ पंडित भणइ, जउ द्रू चंचल होइ।
सज्जन जे अंगीकरइ, वचन न चूकइ तोइ ।४।११२

(घ) पदमनाभ पंडित भणइ, जउ जस संपति होइ।
अंग तणउ आदर किसउ, वीर न वंछइ सोइ ।४।१४१

सब मिलाकर रचना बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है।

कथानक :

सोनगिरा चौहानवंशी कान्हड़दे जालौर का शासक था, जिसका छोटा भाई मालदेव तथा पुत्र वीरमदेव था। जालौर के निकट स्थित समीयाणा उसके भतीजे सातलसिंह के अधिकार में था। इस समय गुजरात का राजा सारंगदे था जिसने माधव नामक एक ब्राह्मण का अपमान किया। विग्रह का कारण यही माधव हुआ। वह (माधव) क्षुब्ध हो दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से मिला और उसे गुजरात पर चढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया। उसने कहा—

पहिलू राइ हूं अवगण्यउ, माहरउ बंधव केसव हण्यउ ।१।२५
तेह घरणी घरि राखी राइ, ए बहु रोस न सहिणउ जाइ।
गुजरातिस्यूं मांडिसि कलहु, माहरइ साथि कटक मोकलउ ।१।२६

अलाउद्दीन ने उसकी बात मानकर अलफखान के नेतृत्व में गुजरात पर चढ़ाई करवा दी। दिल्ली से गुजरात का मार्ग जालौर होकर था, अतः कान्हड़दे से सेना के लिए राह मांगी गई पर उसने अस्वीकार कर दिया। इस पर मेवाड़ होकर चढ़ाई की गई, जहांके रावल राहसी ने मार्ग दे दिया। सुल्तान की रणवाहिनी ने पाटण को कुचल दिया—

एहवी वात हुई नवि होसइ, अणहलपुरह मझारि।
जीणइ ठामि हूंता देहरासर, बांगि दीयइ सिल्लारी ।१।६५

और आगे चलकर गुजरात तथा सौराष्ट्र पर भी अधिकार कर लिया। सोमनाथ की रक्षा का प्रयत्न राजपूतों ने प्राण-पण से किया किन्तु वे असफल रहे। यहां दूसरे दिन के युद्धमें, अनर्थ की जड़ माधव मारा गया। सोमनाथ को गाड़ी में लादकर अलफखान दिल्ली ले चला। इन विजयों के उपरान्त सुल्तानी सेना मारवाड़ की ओर मुड़ी। वहां स्वागत करने के लिए, कान्हड़दे तैयार मिला। दोनों तरफ की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ—

तीन्हा तुरी ऊडयइ राउत, भला वावरइ भाला ।
सासिम राति म्लेच्छ मारंतां, दह दिसि हींडइ भूला ।१।२०८

सपराणा सींगिणि गुण गाजइ, तीन्हा तूर विछूटइ ।
जरहजीण आंगा वीधीनइ, अंगि सूंसरा फूटइ ।१।२०९

अंगोअंगि पटे अणीयाले, प्राणइ पाखर फोडइ ।
धांडा तणे घाइ सपराणे, सांघिइ सांधि विछोडइ ।१।२१०

रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटाकडि ऊडइ ।
तुरक तणा पाखरीया तेजी, ते तरूआरे गुडइ ।१।२११

माल तणी परि बाथे आवइ, प्राणइ विलगइ झूंटइ ।
गुडवा पाटू दोट वजावइ, भिडइ प्रहारे मोटइ ।१।२१२

ऊपरिया पूंतार विछूटइ, भूतलि भाजइ पाउ ।
वाढी सूंढि डोलीइ डांचा, धरणि वलइ नीहाउ ।१।२१३

भाजइ कंध पडइ रिण मायां, धगड तणा धड धाइ ।
माहोमांहि मारेवा लागा, विगति किसी न लहाइ ।१।२१४

इसमें मुसलमानों की हार हुई । एकबार फिर उन्होंने हमले की योजना बनाई । इस बार जालौर के समीपस्थ समीयाणे पर आक्रमण हुआ । कान्हड़दे ने यहां के शासक राव सातलसिंह की मदद की और मुसलमान फिर पराजित हुए ।

अलाउद्दीन इन पराजयों से बड़ा ही क्षुब्ध हुआ । अब उसने, स्वयं सैन्य-संचालन का भार ले, समीयाणे पर घेरा डाल दिया । जब सात साल के घेरे के बावजूद भी यहां अधिकार नहीं हो सका, तो उसने एक घृणित उपाय का आश्रय लिया । गढ़ के भीतर दीवालों से हटकर बना हुआ एक तालाब था, जिस पर सारा जन-जीवन निर्भर करता था । उसने गायें कटवाकर रातोंरात किले की दीवालों पर से उसमें डलवा दीं । सवेरे इस दुष्कृत्य को जब लोगों ने देखा, तो उन्होंने पानी ग्रहण करने की अपेक्षा लड़ मरना ही श्रेयस्कर समझा । खुलकर युद्ध हुआ, जिसमें प्रत्येक वीर ने लड़ते-लड़ते अपने प्राण बलिदान किए और यहां की वीरांगनाओं ने जौहर किया । सुल्तान का समीयाणे पर अधिकार हो गया ।

अब सुल्तान ने कान्हड़दे के पास सन्देश भेजा कि वह उसका आधिपत्य स्वीकार कर ले, किन्तु कान्हड़दे ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया । सुल्तानी सेना का पड़ाव जालौर के निकट ही पड़ा । इस आक्रमण में सुल्तान की बेटी कुमारी फीरोजा भी साथ थी । वह कान्हड़दे के पुत्र कुमार वीरमदे के गुणों पर मुग्ध होकर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी । अलाउद्दीन ने उसके विवाह की इच्छा जान, कान्हड़दे के पास दोनों के विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव भेजा, किन्तु जाति-कुल-गौरव का ध्यान कर, उसने वह भी अस्वीकार कर दिया । इसपर आगे बढ़कर सुल्तान ने, जालौर पर घेरा डाल दिया । जब सफलता नहीं मिली, तो उसने वापिस लौटने की तैयारी की । कुमारी फीरोजा वीरमदे के दर्शन के लिए लालायित थी; अतः कुछ सैनिकों के साथ वह गढ़ में गई, जहां पर कान्हड़दे ने उसका स्वागत किया । कुमारी ने स्वयं वीरम से विवाह

का प्रस्ताव किया, पर उसने भी अस्वीकार कर दिया। कान्हड़दे ने सब सुविधाएं देकर, जालौर नगर दिखाया और प्रचुर भेंट के साथ उसे विदा किया। सेना लौट गई।

आठ वर्ष बाद मुल्तानी सेना ने फिर जालौर पर घेरा डाला। मालदेव और वीरमदे के नेतृत्व में राजपूत सेना ने चार वर्षों तक उनका मुकाबिला किया। वहां के राजकीय भाण्डारों के रिक्त होने पर, व्यवसायियों ने अपनी समग्र सामग्री देश के लिए अर्पण कर दी जिससे आठ और सालों तक मुकाबिला किया गया। इसी बीच एक सेजवाल विक्रम ने प्रलोभन में आकर, शत्रुओं को एक गुप्त मार्ग का भेद बता दिया, जिससे होकर मुल्तानी सेना किले में घुस आई। सेजवाल की स्त्री हीरादेवी को जब इस विश्वासघात का पता लगा, तो उसने अपने पति का वध कर डाला और समस्त सूचना कान्हड़दे को दी। अब तो युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने अथवा वश्यता स्वीकार करने के दो ही विकल्प शेष रह गए। उन्होंने युद्ध करने का ही निश्चय किया। कान्हड़दे ने युद्ध में अपने प्राण दिए। साढ़े तीन दिनों तक वीरमदे ने और युद्ध चलाया, पर अन्त में, पराजित होने पर बन्दी होने की सम्भावना जानकर, उसने पेट में कटार भोंक ली और अनेक सैनिकों को मारते हुए प्राणोत्सर्ग किया। इसी बीच राणियों ने जौहर किया। कुमारी फीरोजा ने इस युद्ध में अपनी एक धाय को भेजा था कि यदि वीरम बन्दी हो जाए तो वह जीवित लाया जाय और धराशायी होने पर उसका सिर लाया जाए। धाय ने उसका सिर लाकर राजकुमारी को दिया। यमुना तट पर फीरोजा सती होने को तैयार हुई। एक गीत में उसकी करुण भावनाओं को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

॥ राग मालपसू सामेरी ॥ (खंड ४ से)

पूरब प्रेम संभारीउ, आंसूडे भीनउ हारजी।
गुण फीटी अवगुण थया, अम्ह कहि कारणि सिणगारजी ॥३२६

॥ द्रुपद ॥ सगुण सलूणा राउल रूसणूं किस्यूं।

हूं ता प्रेम गहेलडी, तूं सोनगिरउ चहुआण जी ॥ सगुण ॥३२७
तूं तां प्राणव माहरउ, हूं ताहरडी घरि नारि जी।
जनम एक अंतरि गयउ, सो नेहलु म वीसारिजी ॥ सगुण ॥३२८
होयडलूं घणूं गहिबरिजं, तुं सुणि न अम्हारा नाथ जी।
तुं अमरापुरि संचरयउ, हुं मरणि न मेल्हुं साथ जी ॥ सगुण ॥३२९

और उसका दाह-संस्कार कर वह यमुना में कूद गई।

(५) भांडउ व्यास : राय हमीर देव चौपाई[1]

इसका विवरण जयपुर के दिगम्बर तेरह पन्थी शास्त्र भण्डार की सूची के गुटका नं० २६० में 'रायदेव हम्मीरदेव चौपाई' नाम से दिया गया है, जो वस्तुतः 'राय हमीर देव चौपाई' होना चाहिए। यह दोहा, गाहा और चौपाई आदि सब मिलाकर ३२१ छन्दों की रचना है।

१. मरु-भारती, वर्ष ४, अंक ३, अक्टूबर, १९५६, में श्री अगरचन्द नाहटा के लेख 'महान वीर हमीरदेव चौहान सम्बन्धी एक प्राचीन राजस्थानी रचना' से विशेष सहायता ली गई है।

इसके कवि भांडउ जाति के व्यास थे। एक जगह इसका नाम 'हमीरायण' भी दिया गया है। संवत् १५३८ में इसकी रचना हुई थी। निम्नलिखित उद्धरणों से इन बातों का पता चलता है—

(क) तिणि राउण जुगतउ नहीं इम बोलइ भांडउ व्यास।

(ख) दूहा गाहा वस्तु चपही, तिनसई इकचोसा हुई।
पनरहसइ अठतीसइ सही काती सुदी सातमि सोम नै कही।

(ग) रामायण महाभारत जिसउ हमीरायण तिसउ।

कवि ने प्रारम्भ में ही काव्य की विषय-वस्तु की ओर संकेत कर दिया है—

राय हमीर तणी चौपई सांभलिज्यों एक मणह थई
रणथम्भवरि जे विग्रह हुआ राय चहुयाण तिहां झूझिया।

इसमें रणथंभौर के प्रसिद्ध चौहान-वीर हम्मीरदेव की शरणागत-रक्षा, उनके पराक्रम और अन्त में उनके वीरगति प्राप्त करने का सुन्दर वर्णन हुआ है। रचना जैन शैली से प्रभावित प्रतीत होती है। मुख्य कथानक को छोड़कर, कई बातों में यह कान्हड़दे प्रबन्ध से मिलती है। सेना की संख्या आदि में अवश्य ही अत्युक्ति है।

कथानक :

संक्षेप में कथा इस प्रकार है :—एकबार अलाउद्दीन के दो अपराधी पठान हम्मीर की शरण में आए। नगर के महाजनों द्वारा मना किए जाने पर भी, हम्मीर ने उनको अपने पास रख लिया। जब अलाउद्दीन को यह मालूम हुआ, तो उसने अलूखान को चढ़ाई का हुक्म दिया। दल बल सहित सुल्तान की सेना ने रणथंभौर का घेरा डाला, परन्तु हम्मीर ने उसे वीरतापूर्वक सामना करके भगा दिया। इस पर बादशाह ने कुपित होकर, सत्तरखान और बहत्तरखान को अपार सेना के साथ फिर आक्रमण करने के लिए भेजा। यही नहीं, स्वयं सुल्तान ने भी आकर घेरा डाल दिया। उसने अब हम्मीर से किसी मौतदुल नामक भाट के द्वारा कुछ अपमानजनक शर्तें मान लेने का प्रस्ताव किया। एक शर्त यह थी कि हम्मीर अपनी लड़की कुंवरी देवलदे का विवाह सुल्तान के साथ कर दे। हम्मीर यह मान ही कैसे सकते थे? भाट ने आकर हम्मीर का निश्चय सुल्तान से कहा—

न परणाऊं डीकरी, न आपों देऊं मीर।
हाथी गढ आवउ नहीं, इसउ कहई हमीर॥
तूं सरीखा सुरताण सूं, करई विग्रह निशी-दीस।
हमीर देव कपउ इसउ, तब इब नामे शीश॥

इस पर खूब जोरों से युद्ध हुआ पर बारह साल तक सुल्तान किला न ले सका। अन्त में उसने छल से काम लिया। हम्मीर के मन्त्री रणमल को अपनी ओर मिलाकर, उसने सब राजकीय भण्डार खाली करवा दिए। अब तो सिवाय युद्ध करने के और कोई उपाय शेष नहीं रह गया! शरणागत पठानों ने हम्मीर को इस निश्चय से रोका भी, परन्तु वे न रुके। राजपूत योद्धाओं ने प्रबल वेग से शत्रु-सेना पर आक्रमण किया और सबने लड़ते-लड़ते मृत्यु का वरण किया।

पश्चात् सुल्तान ने रणमल से पूछा कि हम्मीर की लाश कौन सी है। उसने पैर से हम्मीर की लाश की ओर संकेत किया। यह देख, पास में खड़े नल नामक भाट से न रहा गया। उसने सुल्तान को प्रसन्न कर एक चीज मांगी और वह थी नमकहराम मन्त्री रणमल की मौत। सुल्तान ने इसे उचित समझ कर मन्त्री की खाल खिंचवाने की आज्ञा दी। इस प्रकार भाट ने अपने स्वामी के कार्य को पूरा किया—

भाट घणउ सनमानउ ताम, स्वामि काज कीधौउ अभिराम।
बंबर वाल्यो हमीरदे तणउ, कलि मांही नाम राउ आपणउ।

हम्मीरदेव-सम्बन्धी एक मुक्तक रचना, "राणं हमीर रिणयंभीर रॅं रा कवित" नाम से मिलती है जिसकी हस्तप्रति एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में है[1]। इसका विवरण डा० टैसीटरी ने भी दिया है[2]। इसमें २१ कवित्त (छप्पय) और ३ दोहे हैं। मुसलमानों के रणथंभौर पर आक्रमण और हम्मीर के वीरतापूर्ण सामना करते हुए, युद्ध में काम आने के सजीव और फड़कते हुए चित्रण इसमें मिलते हैं। रचयिता अथवा रचनाकाल का विशेष पता नहीं चलता, किन्तु अनुमान है कि आलोच्य काल के भीतर किसी समय इसकी रचना हुई होगी। रचना के कुछ उदाहरण देखिए:

देवागिर मम जांण नहीं ओ जोदव नरवं
चत्रकोट मम जांण करण चालक न होवं
गुजरातहि मम जांण कोडि कूडे कहि प्रहीयौ
मंडोवरि मम जांण हेलि मातहि वोग्रहीयो
अलावदीन हमीर हूं खित किमाड आडो खडो
रे रिणथंभ गढ़ रोही ज तै पाइ स अबं पटंतरो।

× ×

रजह पलटं दिन यले, दिनह पलटे जांहि
वडा मिनखां बोलीयां, वचंन पलटे नांहि।
जो जायो तं से जणे, जाजो कहे सु जाहि
रिणथंभ नुं रूडो करे, त्रित देसां गढ मांहि।

(६) राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द: बीठू सूजे नगराजोत कृत[3]

इसमें बीकानेर के राव जैतसी के पूर्वजों के–राव चूंडा से लेकर राव लूणकरण के पराक्रमों. तथा जैतसी की हुमायू के भाई कामरां पर विजय-प्राप्ति के हृदयग्राही वर्णन है। जैसा कि नाम से विदित होता है, काव्य मुख्यतया पाघड़ी छन्द में ही लिखा गया है। प्रयोग में आने वाले अन्य छन्द हैं—गाहा, दोहा और कलस। सब मिलाकर ४०१ छन्दों में काव्य समाप्त हुआ है। इसकी रचना संवत् १५९१ और १५९८ के बीच किसी समय हुई थी।

---

१. प्रति नं० C. 100. 93.
२. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 67.
३. डा० टैसीटरी द्वारा सम्पादित और एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित (सन् १९२० ई०): छन्दों के उदाहरण यहा पर, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की ह० प्रति नं० ९९ से दिए गए हैं।

इसका महत्व कई कारणों से है। यह राजस्थान ही नहीं, अपितु भारत के इतिहास का भी एक प्रकार से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत है, जिसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से विद्वानों ने अपने अपने ढंग से की है। डा० टैसीटरी के शब्दों में—The fact that the Muhammadan historians do not even mention this unfortunate adventure of the son of Babar, only enhances the value of the poem, which may thus claim the credit of filling a small gap in the history of India[१]. डा० दशरथ शर्मा लिखते हैं—As the earliest and most reliable account of the Bikaner Royal family, it is of great historical value[२]. ओझाजी के अनुसार, 'बीठू सूजा के कथन में अतिशयोक्ति अवश्य पाई जाती है, परन्तु मूल कथन विश्वसनीय है। उसका अधिकांश ठीक होना चाहिए'[३]। इसी प्रकार डा० रघुवीरसिंह इस काव्य को परिवर्तन-कालीन राजस्थान (सन् १५२७–१५५८ ई०) की एक महत्वपूर्ण रचना बताते हैं[४]। कामरां के बीकानेर पर आक्रमण और जैतसी के हाथों उसकी पराजय की पुष्टि, अज्ञात कवि कृत 'जैतसी रो पाघड़ी छन्द,' 'जैतसी रासो'[५], साख के गीतों[६], नैणसी[७] और दयालदास[८] की ख्यातों तथा बीकानेर के चिन्तामणि श्री चौबीसटाजी के जैन मन्दिर के मूलनायक की प्रतिमा के शिलालेख[९] से भी होती है।

यह काव्य अपनी रचना के लगभग ३० साल बाद, संवत् १६२९ में लिपिबद्ध किया गया था, अतः उस समय की भाषा का स्वरूप इसमें सुरक्षित है। यही नहीं, विदेशी आक्रमणकारियोंके प्रति राजपूतो की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण इसमे मिलता है। एक ओर विदेशियों की मदान्धता तथा विजय-लिप्सा, और दूसरी ओर, स्वदेश-प्रेम, आन-मान, तथा जाति-कुल गौरव की भावनाओ से ओत-प्रोत राजपूतों का उनसे जूझना, काव्य का प्रधान विषय है। गौण घटनाओं में, राव के पूर्वजों के विभिन्न कारणों से युक्त अन्य राजपूत-नरेशों और मुसलमानों से हुए युद्ध प्रधान हैं। उस समय युद्धों के कारण कुछ इसी प्रकार के हुआ करते थे। अतः सामूहिक रूप से, तत्कालीन युग-व्यापी, सामरिक मनोवृत्ति के चित्रण एवं घटना-क्रम के स्पष्टीकरण के लिए, इस काव्य को, एक प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है। यह काव्य वर्णन-प्रधान और वीररस से परिपूर्ण है। युद्ध और उससे सम्बन्धित प्रायः प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु का वर्णन कवि की पैनी दृष्टि का परिचायक है। भाषा में ओज एवं स्वाभाविक प्रवाह है। यथावसर यह प्रवाह तूफान की सी तेजी धारण कर लेता है। शैली में सादगी

---

१. *छन्द राउ जइतसी रउ वीठू सूजइ रउ कहियउ; Introduction, Page I.*
२. दयालदास की ख्यात, भाग २, Introduction, Page 3.
३. बीकानेर राज्य का इतिहास, (१९३९ ई०) :
४. पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ३७–३८, (१९५१ ई०) :
५. इनके विषय में आगे लिखा गया है।
६. Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec II, Pt. I, Page 43, प्रति नं० (c).
७. ख्यात, भाग २, पृ० १९३ :
८. ख्यात, भाग २, पृ० ५३–५४ :
९. (क) नाहटा : बीकानेर जैन लेख संग्रह;
   (ख) राजस्थान-भारती, भाग १, अंक २–३, जुलाई-अक्टूबर, १९४६ :

किन्तु प्रभावोत्पादक शक्ति है। काव्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले में राव चूंडा से लेकर जैतसी के पिता राव लूणकरण तक के वर्णन और दूसरे में मुगलों के साथ राव जैतसी के हुए युद्ध-वर्णन सम्मिलित हैं।

कथानक :

सालवड़ी थाने के अतिरिक्त चूंडा के पास कुछ न होते हुए भी, उन्होंने नागौर और मंडोर विजय कर लिए और राव की उपाधि धारण की। उनकी बढ़ती हुई शक्ति देखकर मुल्तान, पूगल और जागलू के शासकों ने सम्मिलित होकर, अचानक नागौर के समीप धावा मारा, जिसमें वे खेत रहे।

उनके पुत्र रणमल ने मेवाड़ के राणा मोकल की सहायता से मंडोर और सोजत के परगने हस्तगत कर लिए। किन्तु उनका तो और भी खेदजनक अन्त हुआ, क्योंकि राणा कुंभा ने उनको रात्रि में सोते हुए मरवा दिया और उनकी सब जागीर छीन ली।

उनके पुत्र जोधा ने मरुस्थल में आकर, सैनिक तैयारी की और एक के बाद एक वहां पर स्थित चित्तौड़ के थानों को तोड़ते हुए, मंडोर पर अधिकार कर लिया। यही नहीं, उन्होंने मेवाड़ पर भी आक्रमण किया और इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। पश्चात् उन्होंने अपने स्वर्गस्थ पिता के पिण्डदान के निमित्त गया की तीर्थ यात्रा की और फतहपुर के पठानों पर भी विजय प्राप्त की।

उनके पुत्र बीका अपने पिता का राज्य छोड़ जांगलू में आ बसे और अपने साहस और धैर्य से संवत् १५४२ में, उन्होंने विशाल बीकानेर राज्य की स्थापना की और अपनी शक्ति बढ़ाकर इस राज्य को समृद्धिशाली बनाया।

राव बीका के बाद राव लूणकरण गद्दी पर बैठे। वे बड़े दानी और प्रतापी शासक हुए। बीकानेर के वैभव को उन्होंने बहुत बढ़ाया। नागौर के खान और जैसलमेर के भाटियों पर, उन्होंने विजय प्राप्त की और युद्ध में जोधपुर के राव की सहायता की। पूर्व की ओर विजय-यात्रा करते हुए, वे नारनौल तक पहुंच गए, पर पंचेरी के पास पठानों से, उनकी गहरी मुठभेड़ हुई, जिसमें अपने दो पुत्रों सहित वे खेत रहे।

अब राव जैतसी गद्दी पर बैठे। राज्य की समृद्धि इनके समय में चरम सीमा तक पहुंच गई। बीकानेर की गलियों में रेशम ही रेशम नजर आने लगी। हर जगह सुशील और सुन्दर रमणियों के झुण्ड और हाथ में तलवार थामे सैनिक दिखाई देने लगे। जल से परिपूर्ण सरोवरों तथा धनधान्य से पूर्ण शहर की शोभा निराली ही लगती थी। वैभव और शक्ति के उपकरणों से मरुधरा पर मानो राम-राज्य लौट आया—

तारुणी सऊजळ सैत वंत, बांणी सुवांणि नै लाजवंत।
सोहिली भोमि बांका सुभट्ट, झूझार दियै करिमाळ झट्ट॥१००॥
लाखीक मिलैं मांडहो लोक, घउहट हाट मांणिक चौक।
अंतरी गवख ऊजळा ओप, अंमली कोट लाई अलोप॥१०२॥
नेहलीं नीर भरिया नयह्ड, बांको दुरंग पाखी विहड्ड।
सारीख बहत सुरितांण साज, रामावतार राठउड़ राज॥१०३॥

इसी समय बाबर के नेतृत्व में मुगलों का बड़े प्रबल वेग से आक्रमण हुआ। वे एकाएक पश्चिमोत्तर भारत पर छा गए। उनको रोकने की चेष्टा में, बादशाह इब्राहिम की हार हुई। दिल्ली तथा आगरा सहित अन्य दूर दूर के प्रदेश उनके आधिपत्य में आ गए। राणा सांगा ने उनके विरुद्ध शस्त्र संभाले, किन्तु भारत की भाग्यलक्ष्मी रूठ गई थी। राणा की हार हुई। अब तो बीकानेर को छोड़कर उनका सामना करने वाला कोई नहीं रहा।

बाबर की मृत्यु के पश्चात्, कामरां के हाथ में लाहौर का शासन आया। बीकानेर की स्वाधीनता उसकी आंखों में खटकी और एक विशाल प्रबल सेना के साथ, उसने मरुस्थल पर चढ़ाई कर दी—

दीवांण तणां फिरिया दरक्क, कळळिया ठाहि ठाहे कटक्क।
चंमराळां हूई असंख चाल, छोगाळ छिलइं करिमाळ काळ ॥१४५॥

जोड़ाल मिलइ जमदूत जोध, काइरा कपीमुखी सक्रोध।
कुवरंत केवि काला किरिट्ठ गड़दनी गोल गांजा गिरिट्ठ ॥१४६॥

बांका विचित पाघोर वंक, तांणइ कमाण पंइंतीस टंक।
आयासि पंखि पाड़इ अभुल, मांकड़ामुक्ख मुंडा मुगुल ॥१४८॥

चलचलिय चक्रवं च्यारि चंद, दळ रजी पाइ छायौ दुजिंद।
मूगले जंनावर वांणि मारि, आयास हूंत आंणइ उतारि ॥१६०॥

उनका पहले आक्रमण जैतसी के अधीनस्थ भटनेर के किले पर हुआ, जहां का किलेदार खेतसी कायल था। उसने उनका सामना किया। जब किला तहस-नहस होने लगा, तो गले में तुलसी की माला और हाथ में तलवार लेकर, घनघोर युद्ध करते हुए, अक्षुण्ण कीर्ति पीछे छोड़ कर, उसने वीरगति प्राप्त की। भटनेर पर मुगलों का अधिकार हो गया—

चड़िया नींसंरणी चडी चोट, काबिली कटके भेळि कोट।
सनान करे साऊ सकार, हींडोलिय तुलसी कंठि हार ॥१७१॥

सुरितांण तणा सेलार सक्ख, लसमूलइ ऊपरि लूंबि लक्ख।
छेलियौ खेतसी खग्ग छोहि, लसकरी लाल ऊपरं लोहि ॥१७५॥

पडियौ रिणि खेतल पिसण पाड़ि, मालहरि चाड़ि धज मारवाड़ि।
कांधाल किंवाड़ बसो करेय, लोपियौ मीर भटनेर लेय ॥१७६॥

उनकी विशालवाहिनी अब मरुस्थल में दक्षिण की ओर चली। चलती हुई सेना का दृश्य देखिए—

क्रिय हूकळ चंचल कलल, गय प्रांबक गड़क्क।
दरस्यौ सरि सुरितांण दल, चलचल च्यारे चक्क ॥१८५॥

दल सुरितांण जांण डूंगरि दव, कंपी धरा हुइ प्रज लवभव।
ग्रह सुरितांण आवियौ अवधरि, करम तणा ऊठिय गज केसरि ॥१८६॥

बीकानेर से कुछ दूर वे रुके। इस आक्रमण की खबर तुरन्त फैल गई। इसी समय कामरां ने दूत द्वारा राव जैतसी को एक करोड़ रुपए तथा एक वधू के साथ तुरन्त अपने पास

आने के लिये कहलवाया। यह सुनकर उनका खून खौल उठा। अपने पूर्वजों के प्रवाड़ों (वीर-कृत्यों) का उल्लेख करते हुए, दूत से उन्होंने कहा कि रणक्षेत्र में ही हमारा मिलन होगा। यह जानकर, मुगल सेना भर रात्रि चली और सूर्योदय के समय बीकानेर शहर की दीवारों के पास, उसने रणभेरी बजाई। इसी समय, मुगलों के देखते देखते, नगारे बजाते हुए राव जैतसी, अपनी प्रजा के साथ किले के बाहर निकल गए। उनके कुछ बिगाड़ का साहस मुगल न कर सके। उन्होंने तंबू लगाकर, सेना की एक टुकड़ी को किला दखल करने के लिये भेजा, पर उसकी रक्षा भोजराज रूपावत और चार माटी राजपूत कर रहे थे।

इस बीच राव जैतसी ने अपने सैनिकों को एकत्र किया और उपयुक्त अवसर जानकर युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए। एक एक करके १०९ चुने हुए वीर घोड़ों पर चढ़े। यहां पर कवि ने प्रत्येक वीर और उसके घोड़े का नाम सहित वर्णन किया है[1]। घोड़ों के कान उल्लू जैसे, गर्दन मुर्गे अथवा मयूर जैसी, लंबी वलिष्ट टांगें बंदर जैसी और मुंह इतना छोटा कि हथेली पर से भी पानी पी सके। सबके बाद, राव जैतसी गरुड़ के समान अपने घोड़े सरूप पर चढ़े। अस्त्र शस्त्र से लैस होकर, संवत् १५९१ को मिगसर बदी ४, शनिवार की अर्द्ध रात्रि को उन्होंने द्रुत-गति से मुगल-सेना पर छापा मारा। रात्रि की निस्तब्धता भंग करते हुए, 'जयराम' कहकर वे पिल पड़े, मानों हाथियों के झुण्ड पर क्रुद्ध सिंह झपट पड़ा हो। 'मुहम्मद', 'मुहम्मद' कहते हुए मुगलों ने भी हथियार संभाले। घनघोर युद्ध हुआ। राजपूतों ने प्रलय मचादी और मुगल सेना लाहौर की ओर भाग पड़ी। जैतसी की विजय हुई। राम ने जिस तरह सीता को छुड़ाया था, उसी तरह जैतसी ने अपनी मरुधरा को—

> घूघाहर साँमी सेन ढोइ, हद्दवे वळि हुई होइ होइ।
> मुहमंद नांव जंपिय मुहाह, तेग गहि उठिया मीर ताह ॥३७३॥
> ताँणिय कँमाँण कंनाड तुँग, बाँणाउलि ऊडिय लोहि बूंग।
> जइ राँम जपिय हींदू जणेंहि, घातिया ताँम घोडा घणेंहि ॥३७४॥
> राउडड़ि रोलि रेवंत रघ, विछूट जाँणि संकली बघ।
> पतिसाह सेन हुवतइ पगेहि, मार्थं असि चाढ़िय मारवे हि ॥३७५॥
> काफराँ जद्दल वाहइ खड़ग्ग, वासदे जाँणि वने विलग्ग।
> ऊतरा सेनि जइतउ अबीह, सौंपरे पईठउ जाँणि सीह ॥३८१॥
> घड़हड़ै ढोल धूजई धरति, पड़ियालगि घरसइ खेड़पति।
> बीकाहर राजा ईद वगि, काफराँ सिरे खिविया खड़गि ॥३८९॥
> रड़वड़ई रूंड खाँडे विखंड, ताजियाँ तूंड पड़िया प्रचंड।
> सँ धणी भोमि वाहरू सीत, देवताँ राव पाड़इ वईत ॥३९५॥

(७) राव जैतसी रो पायड़ौ छन्द : रचयिता—अज्ञात

इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। संवत् १६७२ में लिपिबद्ध इसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप

---

1. छन्द २३४ से ३४२ :

संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर[1] में है, जिसका हवाला डा० टैसीटरी ने दिया है[2]। यह रचना बीठू सूजे की रचना से किसी प्रकार भी कम नहीं है। विषय, भाव, शब्दावली, शैली, वर्णन और उपमा आदि में सूजे की रचना से यह बहुत मिलती-जुलती कृति है। यहां तक कि, दोनों का नाम भी एक ही है। संभवतः इन दोनों काव्यों के कवि राव जैतसी के दरबारी और एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी रहे हों। मुख्य कथा-सूत्र दोनों में प्रायः समान है। असमानता कहीं कहीं कुछ वृत्तान्तों में पाई जाती है, जो स्वाभाविक ही है। प्रायः ऐसा हुआ है कि सूजे द्वारा छोड़े गए वर्णन इसके कवि ने और इसके कवि के छोड़े हुए वर्णन सूजे ने किए हैं। इस प्रकार दोनों काव्य एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों मिलकर इतिहास की ठोस सामग्री प्रस्तुत करते हैं। पाघड़ी, गाहा, दोहा और कवित्त (छप्पय) सब मिलाकर ४८५ छन्दों में यह समाप्त हुआ है। दोनों काव्यों में समानता इतनी अधिक है कि असमानता अपवाद कही जा सकती है। इतना होने पर भी दोनों सर्वथा स्वतंत्र रचनाएं हैं।

विस्तार में यह काव्य सूजे के काव्य की अपेक्षा अधिक बड़ा है। सूजे के काव्य का प्रारंभ राव चूंडा से होता है जबकि इसका प्रारंभ राव चूंडा के दादा सलखा से। इस प्रकार, सल्खा, वीरम, और गोगा के वर्णन इसमें अतिरिक्त हैं। जोइयों के साथ गोगे के युद्ध और निधन का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

> घजवट्ट प्रघट्टां घुघइं धार, आवर्त्त मत्त ऊडिउं अंगार।
> जोयां कंमद्ध भारत जेम, ऊकलि उकलि आराण ऐम ॥४९॥
> अंत मृत गोगादे अव्वसांणि,रिमि जिको जुअर कर कह्याउं राणि।
> संग्रामि निहट्टा फउज सज्जि, कलिप थोमरइ तइं बोल कज्जि ॥५१॥

इनके अलावा कुछ और छोटी-छोटी भिन्नताएं भी हैं। इसमें बाबर की मृत्यु का स्पष्ट उल्लेख है—

> क्षिति लेउ वसी किउं नवइ खंड, दरबारि पृथी प्रति दियइ डंड।
> पति बाबर धर पुरसांण पंथ, सुरतांण मरण आपडिउं संथ ॥२६३॥
> वड्डरिप्प मीर बाबर विपत्ति, तप्पियउ साहि कुवरउ तपत्ति।
> आंह चढ़इ सेन मेलइ उकंद, राउठउडां नामण थियउ रंद ॥२६४॥

इसी प्रकार राव जैतसी के घुडसवारों की संख्या १००० बताई है जो अनुमानित संख्या प्रतीत होती है—

> गहमत्ति जइति मिलिउ गढ़(+सु), गजदल संग्राहि कीया गजूस।
> राय गुरु तणइं राउ तस रोस, पंचसइ हूण दलि जिरह पोस ॥४३७॥

युद्ध की रात्रि का दिन इसके कवि ने रविवार बताया है—

> पिढु रविवासरि किसन पक्खि, निर्यतिथि चउथि निर्मंथि।
> कलहण दल चढ़िया कड़े, वेवइं रिणवट बंधि ॥४५५॥

---

1. प्रति नं० १०० :
2. Descriptive Catalogue, Sec II, Pt. I, Page 7–8.

इसमें राव बीका तथा राव लूणकरण का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से दिया है। जैतसी का वर्णन छन्द २२४ से इस तरह प्रारंभ होता है—

मारग गज दल मंडिहइं, महि ओपम मति मोट।
नरवइ जइत निमंपीया, कुंजर धज छत्र कोट ॥२२४॥
निमपीया जइत राजा नरेस,दल महगल चंचल प्रास देस।
ऊग्रहइ अरथ नाणां अपार, भूचइ अपूट नवनिधि भंडार ॥२२५॥

इन सब विभिन्नताओं को लक्ष्य करते हुए, डा. टैसीटरी ठीक ही लिखते हैं—This and other minor discrepancies show that though composed on the same lines, the two poems are no slavish imitations of one another, on the contrary, it is certain that they were written quite independently[1]. इस काव्य का रचनाकाल भी संवत् १५९१ और १५९८ के बीच किसी समय होना चाहिये। कामरा की बीकानेर की ओर जाती हुई सेना तथा राव जैतसी के साथ युद्ध के कुछ वर्णन देखिए—

सेना वर्णन—

गडडंत मत्त महूपइं गयंघ, चडिउं गगत्ति वइरक्क चिध।
प्राजलइं लाप दीवइ प्रघट्ट, थिउ तेणि जोति हालंति थट्ट ॥३०३॥
मेइणि पुडि महा कमंधु मनु, सामइ म जा मेल्हइ किसनु।
ऊपडी घडा काली अमृत, रवि रूप कि कंठलि मेघरित्त ॥३०४॥

युद्ध वर्णन—

लयथट्ट हिलिउ मइवट्ट खीण, फडहडइं तुरंगम लंपि फीण।
पुरसांण थेड संग्राम थंति, पड्लइ जाणि अंबरि वहंति ॥४३९॥
झबकुंत कुंत किरणाल झाल, तिसि जाण नवइ नाघत्र माल।
रुणझुणइ जिरह घरकर रवद्, असवाइ अलंगे आमरद् ॥४४०॥
राइंकां वहतां भ्रिवइं रेण, कसमसइं कंघ कूरम्म श्रेण।
हइमरां पाइ वाजइ हमंस, धडकइ फणिंद माती धमंस ॥४४४॥
जइतसी रांमायण वडउ जीतु, दोमज्जि भंजि कमरउ दईतु।
किरि जांण निहत्तउ कान्हि कंस, वद्धियउ भनु राठउड वंस ॥४८१॥

कवि ने अन्तिम छन्द में सम्पूर्ण कथा-सार इस प्रकार दिया है—

पडियउं मीर सढीर दूठ कंठीर महाबलि
पाफर ऊमरपांन कोडि आवटिया कंदलि
श्रोलाहइं केकांण वढिइं हूवां विहडफ्फड
चडिउं रूंड सम धंड विजड धारां धडवेहड
भारत्थ जिसउ जीतउ भिडवि विढिउं धार छलि वकुंडइ
भंजियउ जइति सुरितांण मिडि घडिउ रणंगणि धप्पडइ ॥४८५॥

१. छन्द राउ जइतसी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ : Introduction, Page XI.

(८) जैतसी रासो : रचयिता-अज्ञात

इसकी अठारहवीं शताब्दी की लिखित दो हस्तलिखित प्रतियों का परिचय श्री अगरच नाहटा ने दिया था[१]। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने उनके आधार पर इसका संपाद किया है[२]। यह दोहा, मोतीदाम तथा कवित्त (छप्पय) सब मिलाकर ९७ छन्दों की रचन है। इसका मुख्य विषय राव जैतसी के हाथों कामरां की पराजय का वर्णन है। सेना औ युद्ध वर्णन ही प्रमुख हैं। कर्ता का नाम अज्ञात है। राव जैतसी पर लिखे गए दो काव्यों क वर्णन पीछे कर आए हैं। 'प्रस्तुत काव्य की भाषा-शैली तथा वर्णन शैली इन रचनाओं दे बहुत मिलती-जुलती है। रचना घटना की समसामयिक जान पड़ती है'[३]। इस प्रकार रा जैतसी से संबंधित ये तीनों रचनाएं एक ही समय की हैं। सेना का अत्यन्त सजीव और युद्ध क फड़कता हुआ वीररस पूर्ण वर्णन इस काव्य की विशेषता है। कवि ने इसमें जैतसी के वीरों की सख्या तीन हजार बताई है। उल्लिखित तीनों रचनाएं निर्भ्रान्त रूप से इतिहास के एक तथ्य की पुष्टि करती है कि जैतसी ने कामरां पर विजय प्राप्त की थी। रचना के कुछ उदाहरण देखिए—

घर दिल्ली मारु धरा बंधि आसन्न विआप।
नर भीखा मानै नहीं खरा विहूंकै साप॥

हुवंतै वेगि हुवौ हलकार, वधै धर बाहर जूह विडार।
धसम्मसि घूहड़ घूणि धराळ, कमध्वज कोपि भयंकर काळ॥
भ्रकुट्टिहि भाव जिसौ निळ मल्ल, चरच्च्यौ जाणि रगत्तहि चल्ल।
तणौ रवि बारह आव्यो तास, वदन्नहि कोधौ तेज विकास॥
तुरंगा सारम वाज्यौ त्राड़, झरै झर झंग पड़ै गुड़ि झाड़।
वहै निळ वेग उपाड़ी वग्ग, खड़ल्लड़ जोड़ खड़क्के खग्ग॥
कड़क्कै कंध कहक्कह काळ, रुळै पळ सोण मचै रिणताळ।
विडै वपु ऊडै खंड विहंड, भमै भड़ भोम पड़ै भू झंड॥

(९) रावल माला रो गुण : बारहट आसा रो कहियो

बारहट आसा :

इनका जन्म संवत् १५६३ के लगभग हुआ था[१]। इनके पिता का नाम गोधा था जो जोधपुर राज्य के भाद्रेस गांव के निवासी थे। सुप्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास इनके भतीजे थे। ये राव मालदेव के कृपापात्र थे और उनकी रूठी राणी भटियाणी उमादे को मनाकर जैसलमेर से लिवा लाने का काम इन्हें ही सौंपा गया था। जब राणी जोधपुर के पास कोसाना गांव में पहुंची,

१. राजस्थानी, भाग ३, अंक १, जनवरी, १९३९ :
२. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक २, मार्च, १९४९ में प्रकाशित :
३. वही; पृ० ७० :
१. हरिरस : (सं० बार्हस्पत्य),–'महात्मा ईसरदास का जन्म काल-निर्णय' शीर्षक के अंतर्गत :

तब उसने राव मालदेव के व्यवहार के विषय में इनसे पूछा, जिस पर इन्होंने निम्नलिखित दोहा कहा—

माण रखें तो पीव तज, पीव रखें तज माण।
दो दो गयंद न बंध ही हेकै खंभू ठाण॥

इसका भावार्थ समझकर राणी वापिस जैसलमेर को रवाना हो गई। रेउजी ने लिखा है कि राणी को लिवा लाने के लिए बारहट ईसरदास भेजे गए थे[1], पर यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। संवत् १५९८ में राव मालदेव ने बीकानेर पर चढ़ाई की थी, संभवतः उस समय युद्धों में ये भी सेना के साथ थे। पश्चात् ये जैसलमेर गए और वहां से चलकर कोटड़ा के बाघा के पास रहने लगे। कहते हैं, जैसलमेर के रावल ने भारमली नामक दासी को, जो बाघा के पास रहती थी, अपने यहां लौटा लाने के लिए इनको भेजा था। किन्तु, ये बाघा कोटड़ा और भारमली की सेवा और प्रेम से बहुत ही प्रसन्न हुए और वहीं रम गए। बाघा के प्रति इनका प्रेम दिन पर दिन अत्यन्त प्रगाढ़ होता गया। उसकी मृत्यु पर इन्होंने करुण रस से ओतप्रोत, बहुत ही मार्मिक दोहे कहे, जो आज भी आंखें गीली कर देते हैं। अपने शेष जीवन में क्षण भर भी ये बाघा को भूले नहीं। राणा उदयसिंह के पास भी कुछ दिनों तक इनका रहना प्रसिद्ध है[2]। इनकी मृत्यु संवत् १६६० के लगभग हुई थी। ये अपने समय के बड़े प्रौढ़ विद्वान और वीर, करुण तथा शान्त रसों के निष्णात कवि थे। फुटकर गीत आदि के अतिरिक्त इनके बनाए निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं[3]—

१. लक्षमणायण
२. गोगाजी री पेड़ी
३. गुण निरंजन प्राण
४. उमादे भटियाणी रा कवित्त
५. बाघजी रा दूहा। खोज में इनकी दो और रचनाओं का पता चला है—
६. राउ चन्द्रसेण रा रूपक[4], तथा
७. रावल माला सलखावत रौ गुण[5]।

इनमें प्रथम दो का तो कुछ पता नहीं चलता। 'गुण निरंजन प्राण' के विषय में 'पौराणिक और धार्मिक' साहित्य के अन्तर्गत लिखा गया है। नं० ४, ५ तथा ६ फुटकर रचनाएं हैं जिनकी चर्चा मुक्तक रचनाओं के प्रसंग में की गई है। अंतिम रचना 'रावल माला सलखावत रौ गुण' की हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में है[6], जिसके आधार पर प्रस्तुत पंक्तियां लिखी जा रही हैं।

---

१. मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १२०, फुटनोट :
२. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी,—
(हस्त० प्रति—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :
३. वही; तथा डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य :
४. प्रति नं० C. 37. 35, Descriptive Catalogue of Raj. Mss., ए० सो०, कलकत्ता :
५. Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. I, Pt. I, प्रति नं० 18(2), Page 63 :
६. प्रति नं० C. 96. 89, Descriptive Catalogue of Raj. Mss , Part I.

यह ८७ छन्दों का काव्य है जो महेवा के स्वामी रावल मल्लीनाथजी के जीवन पर आधारित है।

मल्लीनाथजी राव सलखा के पुत्र थे, और अपने पिता की मृत्यु के बाद महेवा में अपने चाचा कान्हड़दे के पास जाकर रहने लगे। कान्हड़दे ने इनकी कार्य-कुशलता देख, राज्य का सारा प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया। इन्होंने महेवा पर अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश और मुसलमानों की सहायता प्राप्त करने का यत्न करने लगे। इसी बीच कान्हड़दे का स्वर्गवास हो गया और उनके छोटे भाई त्रिभुवनसी गद्दी पर बैठे। मल्लीनाथजी मुसलमानों की सहायता से महेवा पर चढ़ आए। युद्ध में त्रिभुवनसी घायल हुए और कुछ दिनों बाद चल बसे। कहते हैं, मल्लीनाथजी ने उन पर जहर का प्रयोग करवा दिया था। अब, ये महेवा के स्वामी बन गए और मंडोर, सिंध, मेवाड़, और आबू के बीच मुसलमानों को तंग करना आरम्भ किया। उन्होंने इन पर चढ़ाई की जिसमें ये विजयी हुए। इसपर मालवे के सूबेदार ने इन पर चढ़ाई की किन्तु उसे भी मुंहकी खानी पड़ी। इन्होंने अपने छोटे भाइयों, जैतमाल को सिवाना, वीरम जी को खेड़ और सोभितजी को ओसियां जागीर में दीं, और वीरम के पुत्र चूंडा की मंडोर लेने में मदद की। इनके बड़े लड़के रावल जगमाल थे जो गुजरात के शासक की लड़की गींदोली को यहां से ले आए थे। 'वीरमायण' में इस घटना का वर्णन आया है। मल्लीनाथजी का स्वर्गवास संवत् १४५६ में हुआ था। ये मारवाड़ में एक सिद्ध पुरुष माने जाते हैं। इनका मंदिर लूणी नदी के तट पर बसे तलवाड़ा गांव में है, जहां हर चैत्र मास में मेला लगता है। मारवाड़ के इतिहास-ग्रन्थों के अलावा, नैणसी ने इनके विषय में विस्तार से लिखा है[1]।

इस काव्य में इन्हीं रावल मल्लीनाथजी के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का वीर-रसपूर्ण वर्णन किया गया है। रचना के उदाहरण यों है—

> सलखां बोहो थेथ छछोहो, लोहां मुहे हालीया लोहो।
> खलहल रुधिर वहंतो खाला, धड़ नाचीया मुहे धाराला ॥७९॥
>
> मेघड़ो भारथ उथल मांडे, थांडे अंहंड बोडा थांडे।
> छांट पछाड़ नांपीया छांणी, पींजरीयो लूणी रो पांणी ॥८०॥
>
> सरस महेवो वहंतां सारां, पड़योड़ां रा नाचे धारां।
> आदि महेवो तपीयो आरण, आवत बोडां जाय अकारण ॥८१॥
>
> लोहां ले आडा लडपडीया, धूला आंणे होसं पडीया।
> घोडां धड़ घाते थक बांहो, सिर धड़ कांय भांज सगलांही ॥८२॥

(१०) सांदू माला :

(१) झूलणा महाराज रायसिंघजी रा
(२) झूलणा दीवांण श्री प्रतापसिंघजी रा
(३) झूलणा अकबर पातसाहजी रा।

---

१. ख्यात, भाग २, पृ० ६८–७६ :

सांदू माला बीकानेर के छठे शासक राजा रायसिंहजी के समकालीन थे। इनका विशेष सम्बन्ध रायसिंहजी से रहा प्रतीत होता है[1]। दयालदास की ख्यात से पता चलता है कि दो बार रायसिंहजी ने इन्हें पुरस्कृत किया था। पहली बार, जब रायसिंहजी जोधपुर के शासक नियुक्त हुए —'गांव ऐक गदोरी नागौर रो माले सांदू नू दीनौ...' और दूसरी बार जब वे जैसलमेर विवाह के लिए गए ...'हाथी ऐक माले सांदू नूं"। ओझाजी के अनुसार, संवत् १६२९ में गुजरात विजय के समय अकबर ने जोधपुर रायसिंह को दे दिया[2] और दयालदास के अनुसार, संवत् १६४९ में रायसिंहजी जैसलमेर विवाह के लिए पधारे थे[3]। इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है कि दीर्घकाल तक कवि का सम्बन्ध रायसिंहजी से बना रहा। कवि के रचना काल की ऊपरी सीमा संवत् १६६५–७० के लगभग मानी जा सकती है, क्योंकि अपने एक गीत और एक कवित्त (छप्पय) में[4] इन्होंने बादशाह जहांगीर की प्रशंसा की है। गीत की प्रथम पंक्तियां यों हैं—

॥ पातसाह जहांगीर रौ रूपक ॥
सूरिज चे सपुत्र होवत तो सरियौ
रहत तेज न पड़त रयणि।
असपति सहस किरणि ले उगौ
तौ अकबर चे आपमणि ॥

उपर्युक्त तीनों ही रचनाएं झूलणा छन्द में हैं, जिनमें कवि अपने समय के तीन ऐतिहासिक महापुरुषों, अकबर, प्रताप और रायसिंह के पराक्रमों के वर्णन करता है। ये रचनाएं घटनाओं की सम-सामयिक जान पड़ती हैं। इनमें वर्णित घटनाओं का समय संवत् १६२७ से १६३३ के आसपास है। अतः यही समय इनकी रचना का होना चाहिए।

अकबर की एक के बाद एक विजय यात्रा और उसमें लोहे की अलंघ्य दीवार बन जाने वाले राणा प्रताप एवं हल्दीघाटी के युद्ध-वर्णन कवि की राष्ट्रीय भावना के अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कवि की श्रद्धा और सहानुभूति हिन्दुस्थान के गौरव प्रताप की ओर दिखाई पड़ती है। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि के ६० के लगभग फुटकर गीत और कवित्त (छप्पय) और मिलते हैं[5]। सम्भवतः इससे ज्यादा और भी मिलें। भाषा ओजगुण-सम्पन्न तथा सहज प्रवाहमयी है। इन सबकी हस्तलिखित प्रतियां एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में हैं।

(१) झूलणा महाराज रायसियजी रा[6]

यह लगभग ३०० पंक्तियों का काव्य है, जिसमें मुख्यतया राजा रायसिंहजी के विभिन्न

---

१. ख्यात, भाग २, पृ० ११८; १२५ :
२. बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० १५७–१६१ :
३. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १२३ :
४. प्रति नं० C. 16. 15, Descriptive Catalogue, ए० सो०, कलकत्ता :
५. प्रति नं० C. 16.15, तथा C. 57. 53; —वही :
६. प्रति नं० C. 35. 33; —वही :

पराक्रमों के वर्णन हैं । कवि, सर्वप्रथम, रायसिंहजी के पूर्वजों—राव बीका से लेकर राव कल्याणमल—के पराक्रमों का संक्षिप्त वर्णन करके रायसिंहजी का वर्णन प्रारम्भ करता है। रायसिंहजी के उत्पन्न होते ही जंगल में मंगल हो गया—

जंगळ मंगळ ऊपना आणंद कलियांणो
रायांसिंघ ग्रसिंघवर घर सपुत्र सुहांणो
तूं कँवरां गुर धजा कर सिर हिंदुसयांणों
तो सूं अंनवड़ रायसिंघ कुण ऊपीतांणों ।

रायसिंहजी के पराक्रमों से सम्बन्धित दो प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कवि ने किया है—एक उनकी उलक और तोगा पर चढ़ाई और विजय तथा दूसरी गुजरात-विजय । तोगमखां नागौर का शासक था[1] । ओझाजी के अनुसार, 'संवत् १६२७ में अक्बर के नागौर आने पर कल्याणमल अपने पुत्र रायसिंह के साथ उससे मिला । कुंवर रायसिंह अक्बर के साथ रहा । संवत् १६३० में कल्याणमल का देहान्त हुआ'[2] । दयालदास की ख्यात से पता लगता है कि नागौर विजय के पश्चात् ही रायसिंहजी ने अकबर के गुजरात आक्रमण में उसकी सहायता की थी[3] । यह आक्रमण संवत् १६३० में हुआ था[4] । इस प्रकार अनुमान है कि संवत् १६२७ से १६३० के बीच किसी समय उन्होंने नागौर पर चढ़ाई की थी । इसकी पुष्टि एक अन्य प्रकार से भी होती है । काव्य में यह वर्णित है कि यह पराक्रम रायसिंहजी ने अपने पिता की जीवितावस्था में दिखाया था—

बाप बयठं आप चित थिन सुरत संभाला
तें छळ भळीया एकलें दह घाट उजाळा ।

जैसा कि ऊपर लिखा है इनके पिता राव कल्याणमल की मृत्यु संवत् १६३० में हुई थी ।
इस युद्ध का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

गिर अंबर गंजित थया धर वागी रोड़ां
धैर क चंचल धज धमळ ऊडी रज ओडां
गज गाज्यंद औधूल्हे पोहा रव घोड़ां
नासां फड़हड़ हंमरां धड़ छड़ हर पोड़ां ।

युद्ध में तोगा को तो उन्होंने मार डाला और उलक को लूणी नदी का पानी पिलाया—

एकण डाळे पाव दे धूण सह डाला
तैं मारे तोगें जिसा दळ सोझे वाळा
कीया किलंबायण सरस रांमायण काळा
तै पाणा ऊजेडीग विहदेस विचाळा ।

× ×

१. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ९५–९६ :
२. बीकानेर राज्य का इतिहास :
३. ख्यात, भाग २, पृ० १०१–१०२ :
४. ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास :

सतर मार विधूस कर चढ़ पमंग चलाया
उलके तके पुरासांण पाथरा पुळाया
नक पामोरे चकधर पू देष पसाया
दळ उलके हलकारीया वरहास बघाया
लोकोमंड वितंड कर पहुंड पडाया
असी बूमां हकीया ले लूंणी पाया।

इसी समय अकबर ने विद्रोहियों को दबाने के लिए गुजरात पर चढ़ाई कर दी—

दिन सातमें क आठमें वर कूच पयांणां
अकबर झड़पे लसकरां पड़पं केकांणां
जांण क बाबर आवीया सिर सांगा रांणा
साबुमती ढोया विमांण ले नीर निवांणां।

रायसिंहजी अकबर की सहायता के लिए पहुंचे। इधर उलक भी युद्ध में रायसिंहजी के सम्मुख आ गया और हुसेनशाह युद्ध में था ही। दोनों ओर के दलों में घमासान युद्ध होने लगा, मानों दूसरा महाभारत प्रारम्भ हो गया हो—

दूजौई भारथ मंडीयौ गुजरात कटके
नाद नफेरी गहगहे त्रंबाल त्रहके
अणीयां ऊभां ऊरे ।।१३।। उलके
असफर पाफर अपत उर मुष प्रायक चके
आसां मीर बहादरां ले घड़िया घके
पंठा रीठ मिश्रीठ अंग पल कंध कड़के
जिम भेंसासुर भंजीया सिर धरण लटके
बुहुं भुज भारथ झेलीया दळ आगळ जिके।

शत्रु सेना का संहार कर रायसिंहजी विजयी हुए और उनकी कीर्ति-पताका फहराने लगी। अकबर ने बुलाकर उनका बहुत अधिक सम्मान किया—

संमहर जीता रायसिंघ जस घज फरके
असपत पार चढ़ावीया मार फौजां हके।
× ×
तूं अरदळ क्तार दियण तैं दू तरवारे
तैं दाणव दळ झोल तैं असमांन अधारे
तैं बाथर हुर स्यांम ध्रम सहुका संवारे
करिसें ओप कलो यातां जमवारे।

(२) झूलणा दीवांण श्री प्रतापसिंघजी रा[१]:

यह भी लगभग ३०० पंक्तियों का काव्य है, जिसके प्रारम्भ में एक गाहा, अन्त में एक

१ प्रति नं० C. 32. 31;—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता : यहां इसी के आधार पर लिखा गया है। इस संबंध में सोसाइटी की प्रति नं. C. 56. 52 भी देखिए :

कवित (छप्पय) और बाकी सब झूलणा छन्द हैं। इसका प्रधान विषय इतिहास-प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। अन्य काव्यों की भांति कवि ने अपने चरित्र-नायक प्रताप के पूर्वजों का उल्लेख पहले किया है जो बाप्पा रावल से इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

बापें रावल एकलींग की पूज बयांणां
गंगा नीर पपालीया सू लंबां पांणां
कुसंम मदार कलार के सिर मुगट धरांणां
तव सुरोयंद प्रसंन थीय मोटां वीवांणां।

प्रायः प्रताप के पूर्वजों का वर्णन क्रमवार नहीं मिलता। राणा खेतल, मोकल, कूंभा, रायमल आदि के अत्यन्त संक्षिप्त ब्योरों के बाद, कवि हिन्दुओं के सिरमौर राणा सांगा का वर्णन करता है। राणा सांगा ने बाबर का प्रबल प्रतिरोध किया, किन्तु होनी कुछ और ही थी। मनुष्य कुछ सोचता है और जगन्नियंता कुछ और ही विधान रचता है—

हींदू मोडणं हींदवां तोडण तुरकांणां
गूजर वें सिर गोरीयां दे पसर पयांणा
चीतोड़ां बाबर बिनें मेंदान मंडांणां
लांबी बांह गुसांईयां कुण तास समांणां
अवरी चिंते आदमी हर अवर करांणां
धूंम विछूटा तेण दिन लष बंदीयांणां।

सांगा के बाद रत्नसिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह का संक्षिप्त वर्णन है। फिर प्रताप का जन्म हुआ, मानों रात्रि को नष्ट कर सूर्य की किरणें प्रकट हो गई हों—

जेम तिलो जिम पीलीया पूंबालम घांणी
नर जाया परतापसो चुणवा धत्रवांणी
सूरज किरण प्रगटीया किर रैंण विहांणी
अनरांणे भेली कीयी पातल विलसांणी।

राणा उदय के समय में ही, मेवाड़ लेने के प्रयत्न अकबर ने प्रारम्भ कर दिये थे और उसी समय से प्रताप ने भी मुगल-सेना का सामना करना प्रारम्भ कर दिया था। सिर पर पगड़ी और मुख पर मूंछ रखने वाले वे ही हुए—

दळ सुरतांणां सांफळे तूं वेढ विचारे
ले दूभर सिर मंडोपा सोलावर सारें
मेंवासो परतापसी ल्हसकर तो लारें
तुम तणे सिर पाघड़ी मुष मूंछ सुहारें।

अकबर ने चित्तौड़ का किला जीत लिया, जिसकी रक्षा करने में राठौड़ वीर जयमल और वीरवर पत्ता काम आए। उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। वे मेवाड़ पर आई विपत्ति से पूर्णतया परिचित थे। उन्होंने युद्ध के लिए कमर कस ली। आखिर वह दिन आ ही गया। हल्दीघाटी के मैदान में, सावन की काली घटाओं के समान मुगल-वाहिनी आकर जुट गई। रणभेरी बज उठी—

हळदीघाटी ऊपरं दळ बाजत्र वाई
सूंडाहळ डंडाहळां दमांम घुराई
सांमा राण दिवारीया नीसांण प्रघाई
वोय दल वेठाळं हुवा सोजंता घाई
गजघटा सांवण घटा दांमण दरसाई
काळी मेवट कूंजरां ऊपड़ी अछाई
रांण वयर अस पयरं हंजंफ हलाई
घामंड डक संग्राहीया हक नारद वाई ।

राणा की सहायतार्थ राजपूतों के छत्तीसों वंश आए और दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध हुआ।
रुधिर की धारा बह निकली, मानों रंगारे की हाट में रंग का मटका फूट पड़ा हो :

जोगण खफर मंडीया पळ रत अघाई
नाळां गोळा पूरीया की सोर सत्राई
सोर पलीता गड़ड़ीया हयनाळ हवाई
धर पड़सादे परवतां किर गेंण गजाई।
सिर चढ़ीतो सीसौदीयो सोहीयो सेलारां
आलूसै अंत्रावळी वणीयौ तिण वारां
रिड रगत्र सगत्र पत्र भरीया कर भारां
पाळ ज वहैं हिंगळ का पडनाळ पयारां
लट छूटा तुटा कमळ घट फूटा धारां
जांण क मट उपटीया विच हट रंगारां।

युद्ध में राजपूतों ने अद्वितीय पराक्रम का परिचय दिया और मुगल सेना पीछे हट गई। अंतिम छप्पय में कवि प्रताप को सम्बोधित कर, उनके पराक्रमों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार देता है :

तूं उतर भड़ घड़ किवाड़ आडो पुरसांणां
सुरतांणां केवांण मुंह तैं मळीया मांणां
असपत घड़ा थंभणीर सिर परणी परबंधह
चकतां तणा चढ़ावीया सोह केवा कमंधह
सुरतांण रांण चकताहरं पुरसांणी फौजां पिसी
मूंछ मैं हाथ मंडावीयाह वे पाव मंडाड़ प्रतापसी।

(३) झूलणा अकबर पातसाहजी रा[1] :

यह अपेक्षाकृत बहुत छोटी—सब मिलाकर १०८ पंक्तियों की रचना है। इसका मुख्य विषय अकबर की गुजरात पर चढ़ाई और विजय है। अन्य रचनाओं की तरह इसमें भी

१. प्रति नं० C. 68, 54; Des. Cata. of Raj. Mss., ए० सो०, कलकत्ता :

कवि ने अकबर के पूर्वजों—बाबर और हुमायूं के प्रसंग से काव्यारंभ किया है। पश्चात् अकबर के जन्म का वर्णन है—

सेर हमाउ जनमिया घर बाबर हूंवे
अकबर गाजी ऊपना धिन वपत विलंवे
जेण करामत आठ सिध नव निध दियंवे
दस चुगपाल डरपिया पयाल फूलंदे।

गुजरात पर अकबर ने चढ़ाई की। युद्ध-स्थल का दृश्य देखिए—

साम्हृ भुजाडंड हींडती वड़ सार्गा डाली
सेल छरां कर झालीयां छड़ झड़ झड़ काली
सिर्स भार झलारीया छुड़ी नकसाली
झलहलता पांणी अणी नकसाली नाली।

अन्त में गुजरात विजय कर लिया गया।

(११) बीठू मेहा :

(१) पाबूजी रा छन्द :

इसकी हस्तलिखित प्रति का विवरण डा० टैसीटोरी ने दिया है[1], जो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में सुरक्षित है[2]। इसमें इसके रचनाकाल या लिपिकाल का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रति में उपर्युक्त रचना से पहले पहले किसी अज्ञात कवि का 'जैतसी रो पाघड़ी छन्द' लिखा हुआ है, जिसकी प्रशस्ति इस प्रकार है : ....'संवत् १६७२ वर्षे...शाके १५...माह मासे शुक्ल पक्षे। द्वितीया तिथौ गुरुवासरे...'। ये दोनों रचनाएं एक हाथ की लिखी हुई हैं। 'पाबूजी रा छन्द' इस तिथि के बाद ही लिपिबद्ध किया गया है। इससे संवत् १६७२ से पहले इसकी प्रसिद्धि का अनुमान किया जा सकता है। अतः कवि बीठू मेहा का रचना-समय आलोच्य काल में ही किसी समय होने की सम्भावना है। इसकी पुष्टि एक और बात से भी होती है। बीठू मेहा के, कूंपा मेहराजोत पर लिखे हुए फुटकर दोहे[3] और गीत[4] मिलते हैं। कूंपा मेहराजोत जोधपुर के राव मालदेव की ओर से, शेरशाह के विरुद्ध लड़कर काम आया था[5]। यह घटना संवत् १६०० की है[6]। इस दृष्टि से इनका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। अपना उल्लेख कवि ने उपर्युक्त रचना के अन्त में इस प्रकार किया है—

---

१. Descriptive Catalogue, Sec. II. Pt. I, Page 8–9.
२. प्रति नं० 100, Catalogue of the Rajasthani Mss.
३., ४. क्रमशः प्रति नं० ९६ तथा ९१, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
५. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ७५ :
६. रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १२८–१३१ :

कमधज्ज वंस धाधल्ल सुअ
सुथिर नाम संसार तूअ
प्रणमंति मेह पाबू प्रसिध
पुरपातमंत प्रमाण जय ।

कवि के विषय में इससे अधिक और पता नहीं चलता ।

यह ४६ पद्यों की रचना है, जिसमें ३ गाहा, ४२ त्रोटक और १ कलस छन्द हैं ।

इसमें गायों को छुड़ाने के लिए पाबूजी का खीची जींदराव के साथ युद्ध और उनके वीरगति प्राप्त करने का वर्णन है । नैणसी ने पाबूजी के विषय में विस्तार से लिखा है[1] ।

पाबूजी मारवाड़ के राव आसथानजी के दूसरे पुत्र धांधलजी के बेटे थे । इन्होंने देवल चारणी से घोड़ी की कालमी नामक बछेरी मांगी । उसने काम पड़ने पर सहायता का वचन लेकर बछेरी इनको दे दी । उस बछेरी को खीची जींदराव भी पहले मांग चुका था, पर चारणी ने उसे दी नहीं । इस पर जींदराव मन ही मन पाबूजी से कुढ़ गया । इसके बाद जब पाबूजी ऊमरकोट के सोढ़ों के यहां विवाह करने गए, तो जीदराव ने अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिए देवल की गाएं छीन लीं । यह देख देवल पाबूजी के पास सहायतार्थ पहुंची । उस समय वे मंडप में फेरे ले रहे थे, किन्तु अपने दिए हुए वचन का पालन करने के लिए, वे तुरन्त विवाह के बीच उठकर चल दिए । खीचियों से भीषण युद्ध हुआ, जिसमें ये और इनके बड़े भाई बूड़ा दोनों वीरगति को प्राप्त हुए । इसका बदला बूड़ा के पुत्र झरड़ा ने, जो इस घटना के समय मातृगर्भ में था, बड़े होने पर जींदराव को मार कर लिया । ख्यातों में इस घटना का समय संवत् १३२३ दिया है[2] । गौ और शरणागत-रक्षा तथा प्रतिज्ञा-पालन के कारण पाबूजी को मारवाड़ में पूजा होती है और इन्हें सिद्ध पुरुष माना जाता है । इनके पुजारी प्रायः अछूत जाति के हुआ करते हैं । पांच सिद्ध पुरुषों में ये भी एक हैं । गोगाजी चौहान को पाबूजी के बड़े भाई बूड़ा की बेटी ब्याही गई थी । गोगाजी भी एक सिद्ध पुरुष माने गए हैं । पाबूजी की वीरता के गीत राजस्थान में, 'पाबूजी रा परवाड़ा' नाम से प्रसिद्ध हैं और ये जगह-जगह गाए जाते हैं । इनकी संख्या ५२ बताई जाती है । पाबूजी के विषय में अनेक गीत भी प्रचलित हैं[3] ।

उपर्युक्त रचना पाबूजी के पराक्रम और उनके वीरगति प्राप्त करने की घटनाओं से संबंधित है । इसकी भाषा में जो ओज और प्रवाह है, वह डिंगल की किसी भी श्रेष्ठ रचना से

---

१. नैणसी की ख्यात, भाग २, पृ० १६७–१८१ :
२. रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४५ :
३. ऐसे दो गीतों के एक एक दोहले देखिए—
(क) नेह निज रोअरी बात चित ना धरी, प्रेम गवरी तणो नाँहि पायो ।
राजकँवरी जिका चढ़ी चँवरी रही, आप भँवरी तणी पीठ आयो ॥
(ख) हुवे मंगळ धवळ दमंगळ वीर हक, रंग तूठो कमध जंग रुठो ।
सपण बूठो कुसुम वोह जिण मोड़ सिर, विखम उण मोड सिर लोह बूठो ॥
(सूर्यकरण पारीक : 'राजस्थानी वार्ता,'—'टिप्पणियाँ' से) :

तुलनीय हो सकता है । द्वित्व-वर्णों का प्रयोग भी बराबर मिलता है । रचना के कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं—

हुई हीस हुलावहु कम्म हुअं । भयभंग भया जुधपत्ति भुअं ।
पंथ पूरि कटक्क हुवे प्रघलं । जोंदराऊ कि जांमलि हेमजलं ।।१२।।

कमयज्ज वदन्नि ऊजोति करा । किरि सूरिज नीसरिउ सिहरा ।
असि धांधल एम अरि वड्डीए । धोंचोर्या दलि आपड़ी ऊपडिए ।।२६।।

झावक्क झरक्क झटक्क झरइं । फारक्क फरक्क निरक्क फिरइ ।
कसणक्क घडक्क तडक्कि कडइं । पडिवत्पि लडक्कि धडक्कि पडइ ।।३५।।

त्रिजड़ा हय राडि धड़ा त्रिजडं । विढि धेनु समप्पिय प्राण विढं ।
धांविउं तिणि नायउ चांद चढ़े । लोहामृत पाईक स्वग्गि लहे ।।४३।।

(२) गोगाजी रा रसावला :

इसके रचयिता भी मेहा हैं । सम्भवतः 'पाबूजी रा छन्द' के रचयिता और ये अभिन्न हैं । यह रसावला, गाहा और कवित्त—१७ छन्दों की फुटकर रचना है । इसकी प्रतिलिपि श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है, जो अठारहवीं शताब्दी की किसी हस्तलिखित प्रति से उतारी गई बताई जाती है ।

कहा जा चुका है कि पाबूजी राठौड़ गोगाजी चौहान के काकिया श्वसुर थे । इन्होंने गायों की रक्षार्थ आत्मत्याग किया था । समस्त राजस्थान और उसके बाहर भी, सांपों के सिद्ध देवता के रूप में गोगाजी की पूजा होती है । इनके विषय में, भिन्न-भिन्न कथाएं प्रचलित हैं । ये हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में पूजे जाते हैं । श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी[1], डा० सत्यकेतु विद्यालंकार[2], इबोट्सन[3], आर० वी० रसेल[4], कविराजा सूर्यमल मिश्रण[5] प्रभृति विद्वानों ने अपने अपने ढंग से गोगाजी के विषय में लिखा है । इनके विषय में राजस्थान में प्रचलित कथा कुछ इस प्रकार है—

ये ददेरा के राव थे। इनके पिता का नाम सूरजपाल था । इनकी माता का नाम बाछलदे और मौसी का आछलदे था । आछलदे के दो बेटे थे, सुर्जन और अर्जुन । किसी जमीन-जायदाद-सम्बन्धी बात को लेकर इन दोनो भाइयों का गोगाजी से विरोध हो गया । इस पर अपनी सहायता के लिए सुर्जन और अर्जुन दिल्ली गए और वहा से बादशाही फौज को गोगाजी पर चढा लाए । फौज ने गाए घेर ली, जिनको छुड़ाने के लिए गोगाजी ने युद्ध किया । इसमें सुर्जन-अर्जुन दोनो मारे गए और गोगाजी भी घायल हुए, किन्तु गाएं छुड़वा ली गईं ।

१. Gurjar Problems, भारतीय विद्या, जनवरी, १९४६ :
२. अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास, छठा परिशिष्ट, (प्रथम संस्करण, १९३८) :
३. L. Ibbotson : Punjab Castes.
४. R.V. Russel : Tribes & Castes of the Central Provinces.
५. वंशभास्कर, तृतीय राशि, मयूख ३२–३५ :

इसके बाद ये मेड़ो चले आए, और वहीं इनका देहावसान हुआ। इनके जीवन के सम्बन्ध में श्री झाबरमल शर्मा ने विस्तार से विचार किया है[1]।

इस 'रसावला' में गोगाजी का युद्ध, उनकी वीरता और महिमा का बखान किया गया है। उदाहरण देखिए—

> धंस चहुवांण व्योमि विचित्रं। वेध बेधना आदि विचित्रं।
> वहंण गोग वछ हरण विचित्रं। विम्मल दल सम्मिलं विचित्रं॥
> गया नृप तरिण थकी पूर आहूतो पलचर
> सेन गोग सुरिजस त्रिबहों आवतू असंख नर
> सरगि रांण संपति सतीय मेणल्लं सहित सय
> वसुह जस्स विसतरं कीध सत कम्म तणी कथ
> जिण लीयौ नांम दिनि जोवजै डंक विछारां न दुखै।
> अंपं मेह कवि सुरिजनां गोग गोग आखौ मुखै॥१७॥

एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में कवि की दो और रचनाएं मिलती हैं—(१) करनीजी रा छन्द[2] तथा (२) गोगाजी रा छन्द[3]। प्रथम में करणीजी की स्तुति है और दूसरी रचना में गोगाजी के वीरतापूर्वक लड़ते हुए युद्ध में काम आने का सुन्दर वर्णन मिलता है। करणीजी के विषय में पहले लिखा ही जा चुका है।

प्रबंध काव्यों के अन्तर्गत जिन रचनाओं का परिचय दिया गया है, उनमें कुछ रचनाओं के, इस शीर्षक के अन्तर्गत विवेचनीय होने अथवा न होने के विषय में मतभेद हो सकता है; किन्तु यहा मोटे तौर पर, अध्ययन,की सुविधानुसार ही वर्गीकरण किया गया है। इसी कारण इस शीर्षक के अन्तर्गत कुछ मुक्तक रचनाओं का परिचय भी दे दिया गया है। मुख्य ध्येय किसी कवि-विशेष की सम्पूर्ण प्रतिनिधि रचनाओं का एक साथ ही परिचय दे देने का रहा है। यही बात पौराणिक-धार्मिक रचनाओं के लिए भी लागू है।

प्रबन्ध काव्यों का प्रसंग समाप्त करने के पूर्व एक और रचना के विषय में स्पष्टीकरण की आवश्यकता प्रतीत होती है। श्री उदयसिंह भटनागर ने, 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग ३', में माणिक्य ग्रन्थ भण्डार, भींडर, की एक हस्तलिखित प्रति, 'महाराज रतनसिंहजी री वचनिका' (रतन रासो)–पिडियो जगो रचित' का विवरण दिया है। इसका रचनाकाल 'संवत् १५१५ वैशाख विद ९'[4] बताते हुए, वे लिखते कि, 'इसमें राणा रतनसिंह का वीरतापूर्वक युद्ध में काम आना और पद्मिनी का अन्य स्त्रियों के साथ सती होने का वर्णन गद्य तथा पद्य दोनों में है। यह वीररस का सुन्दर काव्य है'[5]। किन्तु यह कथन निराधार है। यह रचना डा० टेसीटरी द्वारा सम्पादित 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ

१. शोध-पत्रिका, भाग १, अंक ३, सितम्बर, १९४७ :
२. ह० प्रति नं० P. 30F/136.
३. ह० प्रति नं. P. 39H/136.
४. पृ० १०४ :
५. वही : पृ० १०६ :

जी री महेसदासोत री, सिढ़िया जगा री कही' से भिन्न नहीं है। दोनों के आदि और अन्त के भागों को मिलाने से यह स्पष्ट है। इसी प्रकार इस रचना का समय भी संवत् १७१५ है जिस कारण यह हमारे आलोच्यकाल के अन्तर्गत नहीं आती है।

अध्याय ५

चारण साहित्य : ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

सिढायच चौभुजा :

इनका एक गीत राठौड़ राव रणमल पर मिला है जिसमें उनकी मृत्यु का वर्णन किया गया है। रणमल को राणा कुम्भा ने सोते हुए रात्रि में मरवा दिया था। यह घटना संवत् १४९५ की है। इस दृष्टिकोण से कवि का रचनाकाल संवत् १५०० के आसपास माना जा सकता है। गीत के दो दोहले नीचे दिये जाते हैं—

चूकि हुवंतै के चीतारई, याहं केवि वहंतैं वाडि।
पवडियं रिणमल जिम प्रतिमाली, कदि हेकही न सकिया काढि।
ए अधियात सलयहर उपम, अगै न कीघी सुरि असुरि।
करि पवडियै कटारी काढी, अंणी सु काढियौ त्रिसुण उरि[1]।

बारहट चौहथ :

ये बीकानेर राज्य की स्थापना करने वाले राव बीकाजी के समकालीन थे। बीकाजी की मृत्यु संवत् १५६१ में हुई थी। राव बीकाजी की विजय की प्रशंसा में इनका एक गीत मिलता है, जिसका सम्पादन डा० टैसीटरी ने किया है[2]। नीचे, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति[3] से उसका प्रथम पद दिया जाता है—

बीकौ थापांणि जेण चडरायां, मोटा गढ रायै मंडलि।
आपर्णे गोकल तंणू उबारियं, कान्ह प्रवाडौ किसौ कलि।

खिड़ियो चानण :

ये राव रणमल और राव बीकाजी के समकालीन थे। नैणसी की ख्यात[4] से रणमल के

---

१. ह० प्रति नं० ९९ से,—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. JASB (NS), Vol. XIII, Nov., 1917, Page 234.
३. प्रति नं० ९९ :
४. ख्यात, भाग १, पृ० २४—२५ :

समकालीन होने और दयालदास की ख्यात[1] से बीकाजी के समकालीन होने का पता चलता है। बीकाजी से इन्होंने लाख पसाव पाया था।

बीकाजी ने अपने भाई वरसिंह को, जो अजमेर में बन्दी हो गया था, वहां से छुड़ाया था। एक गीत में, कवि ने बीकाजी की इस चढ़ाई का सुन्दर वर्णन किया है, जिसके दो दोहले देखिए—

> सामेलो सघण सिहरनर साहण, सावण सद्दवर चाढ सभीत ।
> आरंभ कर अजमेर आवियौ, वळ-वावळ सद्द विक्रमादीत ।
> मांडू कँमळरो मेछायण, देखे विखमा कमंघ दळ ।
> बीको हुवं तो छोडो वरसंघ, हुवं मेह तो खडौ हळ[2] ।

हरिसूर :

इनकी कविताएं देखने से, ये राव जोधा और उनके पुत्र बीदा के समकालीन प्रतीत होते है। राव रणमल, जोधा, जोधा के पुत्र बीदा और पड़िहार राजसी पर बनाए इनके चार गीतों का प्रकाशन हुआ है[3]। संवत् १५३२ के आसपास बीदा को छापर-द्रोणपुर की जागीर मिलने का अनुमान होता है[4]। और जोधा की मृत्यु संवत् १५४५ में हुई थी[5]। यही इनके रचना-काल की आखिरी सीमा मानी जा सकती है। बीदा जोधावत के गीत से दो दोहले नीचे दिए जाते हैं—

> सरवर नदि सघण कोडि बहु करिसण, मांडे माप अधिक मंडळ ।
> धीर किसूं जोवं सजं वसुधा, जळिहर लेखो तणो जळ ।
> पालर अणभ्रोठिया प्रियो पुडि, प्रियमी अणभ्रोठिया पुण ।
> बीजे वीरम जगि दातारां, घण दानेसर विरिद घण ।

डा० टैसीटरी ने रोहड़ियो ठाकुरसी को इस गीत का रचयिता बताया है[6], जो ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि जिस प्रति में यह गीत दिया है, उसमें ठीक इस गीत की समाप्ति पर लिखा है—

'विजयउ जु हुं बीदाजीरो गीत ही हरिसूर रो छै.. अर ठाकरसी रो सांभळियौ हूतौ'[7]

इससे स्पष्ट है कि इसके रचयिता हरिसूर ही हैं। 'राजस्थानी वीर गीत' में भी इसके रचयिता का नाम हरिसूर ही बताया गया है।

---

१. ख्यात, भाग २, पृ० २६ :
२. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० २२-२३ :
३. राजस्थानी वीर गीत, भाग १; गीत नं. १४, १९, २४ तथा १४१ :
४. (क) आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० १११;
   (ख) नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १९६ :
५. ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, छठा अध्याय :
६. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 45.
७. ह० प्रति नं० ९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

बीठू सूरा :

लगभग इसी समय बीठू सूरा ने भी बीदा जोधावत पर गीत लिखा[1], जिसका प्रथम दोहला यह है—

> वादर तउ विभव पयंपं बीदो, वड दातारां हुवो वड ।
> कविता साच दियालं कीरति, साच जु वं दाखे सुहड़[2] ।

लालजी महड़ू :

ये बीकानेर के राव लूणकरणजी के समकालीन और उनके कृपापात्र थे । एक बार लालजी जैसलमेर के रावल के पास कुछ मांगने के इरादे से गए । रावल इनके सामने सदा राठौड़ों की मजाक उड़ाया करता था । एक दिन रावलजी से ये बोले कि चारणों के सामने राठौड़ों की हंसी उड़ाना ठीक नहीं है, राठौड़ बहुत बुरे हैं । इस पर रावल ने कहा कि हमारी जितनी धरती पर राठौड़ घोड़ा फेर देंगे, उतनी धरती में ब्राह्मणों को दान में दे दूंगा । लालजी के मन में यह बात चुभ गई । वे वहा से सीधे बीकानेर आए और राव लूणकरणजी से सब बातें उन्होंने कही । फलस्वरूप रावजी अपनी सेना के साथ जैसलमेर पर जा धमके । युद्ध में जैसलमेर का रावल पकड़ लिया गया । तब लालजी ने बन्दी रावल के पास जाकर निम्नलिखित कवित्त सुनाया—

> गुंजारव गंमरां घुवं हव सांभल ढोलां
> जादम सूं कर जंघ फवं थिर भारी बोलां
> राजोवाई राव आय नेड़ो ऊतरियो
> करां झाल केवाण थोंद वांकम बळ भरियो
> खुर रवद खंग खेहा रमण घड़सीसर घोड़ां घणा
> घर देह परी नवगढ धिणी वांवळियाली बांभणा ।

यह सुनकर रावलजी बहुत ही लज्जित हुए । कवि ने रावलजी की कही हुई पिछली बातों को ध्यान में रखकर पुनः एक गीत कहा, जिसके प्रथम दो दोहले ये हैं—

> राठौड़ां वाद न कीजं रावळ, देखो कासूं आयो दाय ।
> सांगं भला पाविया साकुर, जोपहरं जैसाणं जाय ।
> देव कुवचणो भेद दाखियो, झूठो कियो क्वी सूं झोड़ ।
> महड़ू तणे वचन रं मायं, रातं गढ़ आयो राठौड़[3] ।

दयालदास की ख्यात के अनुसार, यह घटना जैसलमेर के रावल देवीदास के साथ हुई थी; परन्तु ओझाजी इस घटना को उसके पुत्र रावल जैतसी के साथ घटित हुई मानते हैं[4] । श्री जगदीशसिंह गहलोत का भी यही मत है कि, 'रावल जैतसी के समय में ही बीकानेर की राठौड़ी सेना

---

१. Tessitori : Descriptive Catalogue, See. II, Pt. I, Page 45.
२. ह० प्रति नं० ९९ से,—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
३. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ३१–३४ :
४. बीकानेर राज्य का इतिहास :

जैसलमेर पर चढ़ आई थी"। यही मत ठीक प्रतीत होता है। राव लूणकरणजी का समय संवत् १५६१ से १५८३ तक[1] है और रावल जैतसी का संवत् १५५२ से १५८५ तक[2]। इस कारण सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध कवि का समय माना जा सकता है।

गोरा :

(१) राव लूणकरण रा कवित्त
(२) राव जैतसी रा कवित्त :

ये राव जैतसी के समकालीन थे और संभवतः चारण थे।

(१) राव लूणकरण रा कवित्त में बीकानेर के राव लूणकरण के युद्ध और उनकी मृत्यु का ओजपूर्ण वर्णन है। यह युद्ध संवत् १५८३ में, ढोसी गांव में, नारनौल के समीप, मुसलमानों के साथ हुआ था[3]। इसमें कुल तीन कवित्त (छप्पय) हैं। डा० टेसीटरी ने इनके रचयिता को अज्ञात बताया है[5], किन्तु सभी कवित्तों में 'भणि गोरा' की छाप है जिससे कवि का गोरा नाम स्पष्ट है। उदाहरण इस प्रकार है—

> जाइ सकइ सोई जाहु रहइ सोइ मेरा साथी
> जव लगु घट मंहि सासु वेउं ता लगइ न हाथी
> रांवणि लंका दीय रांम जोगाईं सिर सेती
> इहो धर्म पत्रीयंह अवर तउ बंणज न पेती
> धर धारा-तीरथ अंग थों, भणि गोरा जगि जसु लीयौ
> लूणक्रंनि राइ विकम तणंइ, महि मंडलि साकउ कीयौ।

(२) राव जैतसी रा कवित्त में जैतसी की काभरा पर विजय का वर्णन है। यह युद्ध संवत् १५९१ में हुआ था। इसमें भी तीन कवित्त हैं। एक कवित्त देखिए—

> अहि मिसि फनु फुंकरइ पवन मिसि सत्रु संघारइ
> सिंह जेम उदव्वै हाकि हनुमत जिम मारइ
> बयरी सउं बल ग्रहइ महवि गढ़ कोट उपाडइ
> जे अन्याव अंगवै तिनिहि सपते ग्रहि ताडइ
> कमज राइ लूंणकंग्रत न महि मंडलि जसु संभल्यौ
> जयतसी राव गोरउ भणइ मुगल तणउं दल निद्दल्यौ[6]।

---

१. राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६६८ :
२. ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास :
३. (१)
४. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ३४-३६ :
५. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 43.
६. दोनों कवित्तों के उदाहरण ह० प्र० नं० ९९, (अ० सं० ला०, बीकानेर), से दिए ग

रामा सांदू : वेलि राणा उदेसिंघ रो[१]

मेवाड़ के राणा उदयसिंह की प्रशंसा में १५ वेलिया छन्दों में रामा सांदू ने इसकी रचना की है। यह राणा के जीवन-काल में रची गई प्रतीत होती है। नैणसी की ख्यात से पता चलता है कि कवि राणा उदयसिंह के समकालीन थे[२]। एक छन्द इस प्रकार है—

आसा रें नरां अंतरा अंतर, कमल हेत कयावर करगि।
सुपह विमेक अहीं सांगावत, जांणे कुण एयड़ा जगि[३] ॥१४॥

बारहट अपो भांणेस : वेलि रा देईदास जैतावत री[४]

यह २३ वेलिया छन्दों में लिखी गई है।

देईदास (देवीदास) राठौड़ वीर जैता के पुत्र थे। संवत् १६०८ के लगभग जोधपुर के राव मालदेव की ओर से इनके भाई पिरथीराज ने सेना लेकर मेड़ते पर आक्रमण किया किन्तु युद्ध में वह मारा गया। इस पर देवीदास अपने राजपूतों को लेकर मेड़ते पर रवाना हुआ। उसके साथ मालदेव ने अपने पुत्र चन्द्रसेन को भी सेना सहित भेजा। मेड़ता के राठौड़ जयमल मुकाबला करने को तैयार हुए। इसी समय राणा उदयसिंह विवाह करने के लिए बीकानेर जा रहे थे और उनका मुकाम मेड़ते में हुआ। उन्होंने जैमल को समझा-बुझा कर अपने साथ ले लिया और बदनोर का जिला जागीर में दिया। मेड़ते पर राव मालदेव का अधिकार हो गया। संवत् १६१६ में देवीदास ने बिहारी पठानों से जालौर ले लिया और जैमलजी को भी बदनोर से निकाल दिया। वे अकबर के पास गए और शरफुद्दीन के नेतृत्व में शाही सेना मेड़ते पर चढ़ा लाए। वहां देवीदास जैतावत ने मोर्चा लिया और विकट युद्ध करके अपने प्राण दिए[५]।

इस वेलि में कवि 'बारहट अपो भांणेस' ने इसी घटना को लेकर देवीदास की कीर्ति-गाथा गाई है। रचना घटना की सम-सामयिक जान पड़ती है, अतः संवत् १६२० के आस-पास इसका रचनाकाल माना जा सकता है। इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, में है[६], जिससे निम्नलिखित उदाहरण दिया जाता है—

मिलि जैमलि रांण कल्यांण मेडतै, घणूं ज वेहता विरद घण।
मल छाडीयौ तुहारै बोलै, त्रिहूं ठाकुरे जैत तण ॥११॥
मांडाया जु तैं पृथीमल मागिण, वसुधा ताइ साचा वायांण।
माल कलोधर हीयौ मेडतै, तै मालदे तणा मेल्हांण ॥१२॥

१. Tessitori : *Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 6.*
२. ख्यात, भाग १, पृ० १११ :
३. प्रति नं० १३६ से,—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
४. Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 6-7.
५. आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० १३६–१४० :
६. प्रति नं० १३६ :

उदयागिर पर्वं अंतर कुल आंणे, महि वांमण विण कमण मिणे ।
कमघ प्रवाडा गांन करे कुण, गयण तणा कुण नषित गिणे ॥२३॥

रायसिहजी री वेलि : रचयिता–अज्ञात

इसका ब्यौरा डा० टैसीटरी ने दिया है[1]। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में मिलती है[2]। यह किसी अज्ञात कवि का ४३ वेलिया छन्द में लिखित काव्य है। इसमें बीकानेर के राजा रायसिहजी की गुजरात विजय, उनके जैसलमेर विवाह आदि की घटनाएं वर्णित है, किन्तु प्रमुख घटना अकबर के साथ उनके मनमुटाव हो जाने की है।

बात इस प्रकार है[3] कि अकबर का श्वसुर नसीरखां एक बार भटनेर आया और वहां एक वनिए की लड़की से उसने बेअदबी की। इस पर रायसिहजी ने बाघौड़ तेजे को उसके पास इसकी सीख देने के लिए भेजा। तेजे ने नसीरखा और उसके आदमियों की मरम्मत की और रायसिह जी के कहने पर वह कसूर चला गया। पीछे, रायसिहजी ने नसीरखां की खातिरदारी की, किन्तु उसका गुस्सा उतरा नहीं। जब अकबर को यह बात मालूम हुई तो उसने तेजे को रायसिंहजी से मांगा लेकिन इन्होंने इन्कार कर दिया और वे बीकानेर जाकर बैठ गए। पश्चात्, इनका अकबर से मेल-मिलाप भी हो गया। ओझाजी के अनसार, यह घटना संवत् १६५० और १६५३ के बीच किसी समय घटी थी[4]। उक्त रचना घटना की सम-सामयिक जान पड़ती है, अतः संवत् १६५० के आस-पास इसका रचनाकाल माना जा सकता है। उदाहरण इस प्रकार है—

भिडि लसकरी करी भेजो, तेजो न दयां कहें तिसींग ।
किलिमां राइ रूठां हठ कीयो, सूंडांवलि भरीयो रायसींग ॥२४॥
रापणहार विसंधर राघो, रायसिंघ तणी रजरेष ।
अवरां तणो घीजोयो अकबर, आर भार कोढे जडमेष ॥३७॥
एकण दसी भोम यें अंमर, सोह दुवार रहीयो सनढ ।
गंगा वरगा जीवे गढ़पती, गंगा वरगा जीयो गढ ॥४२॥

रतनसी री वेलि : रचयिता–अज्ञात

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, के गुटका नं० ९८ में यह रचना दी गई है। इस गुटके में बहुत से गीत तथा कई अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं भी हैं, किन्तु पत्र भीग जाने के कारण लिपि अस्पष्ट हो गई है और अक्षर सुवाच्य नहीं हैं। इसकी अधिकांश रचनाएं संवत् १६७१ तक लिपिबद्ध हो चुकी थी। उक्त रचना तो संवत् १६७१ तक अवश्य लिपिबद्ध हो चुकी थी,

---

१. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 59.
२. प्रति नं० १२०(द), तथा १२६(क) :
३. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १२९ :
४. बीकानेर राज्य का इतिहास :

क्योंकि इसके पश्चात् उसी हस्तलिपि में 'राव जैतसी रो पायड़ी छन्द' लिखा गया है जिसके अन्त में लिपि-काल यों दिया है—

'संवत् १६७१ वर्षे आसोज मासे शुक्ल पक्षे अष्टम्यां तिथौ शनिवासरे'।

यह रचना पूरी नहीं पढ़ी जा सकती। रचयिता का नाम अज्ञात है। ७० वेलिया छन्दों में इसकी रचना हुई है। एक और गुटके में लिखित[1], 'राठौड़ रतनसी खींवावत री वेलि' नाम से इसका हवाला डा० टैसीटरी ने दिया है[2], जिसमें उन्होंने ६६ छन्द बताए हैं। खेद है, कि इसको देखने का सौभाग्य मुझे नहीं मिल सका। यह जैतारण के ऊदावत राठौड़ रतनसी खींवावत के सम्मान-स्वरूप रची गई है। डा० टैसीटरी के अनुसार, The poem comemorates Ratan Si's courage in facing an Imperial force which had been despatched against him, and the glorious death he met in the battle. Throughout the poem the author has developed the simile of the hero who like a bridegroom goes to spouse the enemy army, a simile common in bardic poetry[3].

भाषा और वर्णन-शैली दोनों की दृष्टि से यह बहुत ही प्रौढ़ रचना प्रतीत होती है। युद्ध का वर्णन तो अत्यन्त सजीव बन पड़ा है। शब्दों की ध्वन्यात्मकता भी उल्लेखनीय है। शब्दों से, युद्ध करते हुए रतनसी की त्वरा का चलता-फिरता दृश्य सम्मुख उपस्थित हो जाता है। उदाहरण देखिए—

> पुड़ गयणाग प्रोघ पंघा रव, गोम गहइ गजघाट गुडइ।
> पीडर घड रतनउ परीणीजइ, जांगी नेऊर साद जुडइ ॥४१॥
> कावील कोट तणी वेग कामिण, घाए घूमंती घार घिरइ।
> फरि फरि अफरि रतनसो फीरतइ, फोज आपूठइ फेर फिरइ ॥४२॥
> फेरि आफरि फेरतइ फरि फरि, चौद रतनसी बांधवड।
> पग घुणी फुर लीघइ फुरली, घेर मली सुरतांण घड़ ॥४३॥
> लोह वीमोह रतनसी लाडइ, यत्र मारग पल जंग यरइ।
> कावल फेरे घड़ा कावली, हठमलि परणी सूर हरइ ॥४४॥
> त्रूटइ हार अयार तुरंगम, प्रहस नीपाहन अनग पडी।
> कमघज रतनासु दीघ कांमणि, चत्र रं चावर पलंग चडी ॥४९॥
> बोलइ अबल सबल दल भूयबल, जीय जीय प्रीय मुप वांणि जुवांणि।
> रंग रिणसेज रतनसो रमतइ, साघ घटा मनीयउ सुरतांणि[4] ॥५०॥

---

१. प्रति नं० ९२, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 70.
३. वही :
४. हस्त० प्रति नं० ९८ से,—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

बारहट आसा :

इनके विषय में, पहले लिखा जा चुका है। नीचे इनकी फुटकर रचनाओं का परिचय दिया जाता है—

(१) राउ चंद्रसेण रा रूपक :

इसकी हस्तलिखित प्रति, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में सुरक्षित है[१]। इसमें जोधपुर के राव चन्द्रसेन (जब वे कँवर थे) के गुणों का विविध छन्दों में वर्णन किया गया है। इस बात का उल्लेख प्रति के प्रारम्भ में ही है—'राउ चंद्रसेण रा रूपक कंवर थकं नु आसे बरटरा कहा'। किन्तु इसका महत्व एक और कारण से भी है। इसको एक छोटा-मोटा छन्द-कोष कहा जा सकता है क्योंकि इसमें विभिन्न छन्दों के नाम और उनके उदाहरण एक ही साथ दिए गए हैं। अन्य रीति-ग्रन्थों और इसमें यह अन्तर है कि इसमें छन्दों के लक्षण नहीं बताकर, उदाहरणस्वरूप वे छन्द ही रख दिए हैं। कवि ने इसमें २६ छन्दों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है और इतने ही छन्दों में यह रचना पूर्ण होती है। वे २६ छन्द निम्नलिखित हैं—

(१) गाहा	(२) तोटक	(३) पाघड़ी	(४) नाराच
(५) त्रिभंगी	(५) वैताल	(७) झंपिताली	(८) सारसी
(९) फंमकी	(१०) भुजंगी	(११) समयालोकण	(१२) मोतीदाम
(१३) तंगवि	(१३) लीलावती	(१५) पणविरेडकी	(१६) बिदुमाला
(१७) दुपया	(१८) रंगीक प्रमाण	(१९) रोमकंद	(२०) अरधनाराच
(२१) चामरस	(२२) हणुफाल	(२३) पोमावती	(२४) दंढीयल प्रकासी

(२५) विदोमली (या तविदोमिलाकी), और (२६) हाकुटी (अथवा हाटकी)।

इन छन्दों का साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

छंद अरध नाराचं :

> काली गाह कंमिणी कंमा। संमसर थिहु थपाणं। कंवर चंद्रसेण राज्यंद।
> राज्यंद रूर रयणो, वायंणोयं वचिवणो। चडंति चीत चंदयं। नराज अर्ध छंदयं ॥२०॥

हणुफाल कहि छंदं :

> गाहा लछि हसतंगी बाला। विधि विधि करी थयांणं। वंसि विमुधि भार उघोर।
> उंघोर घोर अपार। भुजि साथ तेरह भार। भणि चंद्रसेण भुआल।
> हणमंत वंनर फाल ॥२२॥

पोमावती छंदं :

> रिधि गाह थंप गु रूपक। नर संमपण नवनिधी। वापाहरं कुअर गुन संनि।
> वरनवि वाघा हरो करे अपपाण जी। भंनरे मोटि म ओत मोज महिराणजी।
> वड हय वड्डे तणा यावण सो विद जी। छत्रपति चंद्रसेन पोमावती छंद जी ॥२३॥

---

१. द्र० प्रति नं० C. 37. 35., Descriptive C[illegible]

श्री मोनदान वारहट भी ऐसा ही मानते हैं[1]। वे इस सम्बन्ध में एक और दोहे का भी हवाला देते हैं—

> सर मुंथ सर ससी बीज भृगु, श्रावण सित पखवार।–१५१५
> समय प्रात सुरा घरे, ईसर भो अवतार ॥

इसके अनुसार, संवत् १५१५ की श्रावण सुदी २, शुक्रवार को प्रातःकाल उनका जन्म हुआ। इसी प्रकार कवि की मृत्यु की सूचना देनेवाला दोहा भी उन्होंने दिया है—

> संवत् सोल बावीस बुध, सुदि नौमी मधुमास ।
> ईसाणंद कवि उद्धरे, विश्व करो विश्वास ॥

इसके अनुसार, मृत्यु संवत् १६२२, चैत सुदी ९, बुधवार को हुई। 'श्री यदुवंशप्रकाश अने जामनगरनो इतिहास' में कवि मावदानजी भीमजी भाई रतनुं भी यही मानते हैं[2]।

(२) दूसरे मत के *अनुसार, इनका जन्म संवत् १५९५, चैत सुदी ९ को हुआ और मृत्यु लगभग* संवत् १६७५ में। ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य कवि के जन्म सम्बन्धी दोहे को इस प्रकार बताते हैं—

> पनरासो पिच्याणवे, जनम्या ईसरदास ।
> चारण वरन चकार में, उण दिन हुयो उजास ॥

उनकी जन्म-पत्री तथा अन्य ऐतिहासिक आधार इसी बात की पुष्टि करते हैं[3]। उनके काल *निर्णय-सम्बन्धी यही मत सर्वमान्य और उचित है*[4]।

इनके पिता का नाम सूजाजी व माता का अमरबाई था। डिंगल के प्रौढ़ भक्त कवि आशानन्द इनके चाचा और काव्य-गुरु थे। चौदहवें साल में, इनका विवाह देवलबाई के साथ कर *दिया गया, परन्तु संवत् १६१६–१७ में पत्नी का देहान्त हो गया। लगभग इसी समय इन्होंने* अपने चाचा आशानन्दजी के साथ द्वारका-यात्रा की। मार्ग में जामनगर के रावल जाम ने इनका अच्छा सत्कार किया। द्वारका से लौटते वक्त रावल ने ईसरदासजी को जामनगर में *ही अपने पास रख लिया।* इनको करोड़ पसाव और कुछ गांव दिए और यहीं इनका दूसरा विवाह भी उन्होंने कराया। उनके दरबार में संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान पीताम्बर भट्ट, राज पण्डित थे। इनसे ईसरदासजी ने, संवत् १६१७ में, विधिपूर्वक भागवत का अध्ययन किया तथा अन्य शास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त किया। 'हरिरस' में, अपने गुरु पीताम्बर भट्ट को, इन्होंने श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है—

> लागूं हूं पहली लुळै, पीताम्बर गुर पाय ।
> भेद महारस भागवत, प्रामूं जास पसाय ॥

---

१. 'श्री हरिरस', प्रथमावृत्ति, संवत् १९९४, (ग्राम नगरी) :
२. पहली आवृत्ति, सवत् १९९१ :
३. 'हरिरस', (राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता) :
४. (क) प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, साहित्य संस्थान, उदयपुर, (सं० २०१३);
   (ख) डा० मोतीलाल मेनारिया : हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, भूमिका :

लगभग चालीस साल जामनगर रहने के बाद, ये पुनः अपने जन्मस्थान भाद्रेस चले आए और गुड़ा के पास लूणी नदी के किनारे एक कुटिया में रहने लगे। यहीं संवत् १६७५ के आसपास इनका देहान्त हुआ। इनके चमत्कारों के सम्बन्ध में अनेक कथाएं प्रचलित हैं।

रावल जाम के अतिरिक्त, इनका सम्बन्ध सरवहिया वीजा दूदावत, जाड़ेचा जसा हरधमलौत, झाला रायसिंह मानसिंघौत आदि से भी रहा प्रतीत होता है। इसका पता इनके विभिन्न बिखरे हुए ऐतिहासिक गीतों[1] आदि से चलता है। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ बताए जाते हैं[2]—

(१) हरिरस (२) छोटा हरिरस (३) बाललीला (४) गुण भागवत हंस
(५) गरुड़ पुराण (६) गुण आगम (७) निन्दा-स्तुति (८) देवियाण
(९) गुण वैराट (१०) सभापर्व (११) हालाँ झालाँ रा कुंडळिया
(१२) रास कैलास और (१३) दाणलीला।

कुछ और रचनाओं का भी पता चलता है, यथा—गुण छभाप्रव[3], क्रस्नध्यान[4] तथा रासलीला[5]। प्रतीत होता है 'गुण छभाप्रव' और सभापर्व' एक ही रचना है। इसी प्रकार 'रासलीला' संभवतः 'रास कैलास' से अभिन्न होगी। 'छोटा हरिरस' जैसा कि नाम से विदित होता है, स्वतंत्र ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता प्रत्युत 'हरिरस' का ही संक्षिप्त संकलन-ग्रन्थ होना चाहिए। सात पदों वाले एक छोटे हरिरस का प्रकाशन भी हो चुका है[6]। इनके अतिरिक्त दो प्रकार की फुटकर रचनाएं और मिलती हैं। पहले प्रकार में कवि के विभिन्न ऐतिहासिक गीत और दूसरे में भक्ति संबंधी फुटकर पद और गीत आदि सम्मिलित हैं। इनमें 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' और ऐतिहासिक तथा फुटकर रचनाओं को छोड़कर, शेष सभी रचनाएं एक प्रकार से स्तोत्र काव्य हैं।

हालाँ झालाँ रा कुंडळिया :

यह ५० कुंडलियों का एक संकलन ग्रन्थ है, जिसका सम्पादन डा० मोतीलाल मेनारिया ने किया है। यह रचना हलवद नरेश, झाला रायसिंह और ध्रोल राज्य के ठाकुर हाला जसाजी के बीच हुए युद्ध की स्मृति-स्वरूप रची गई है। रायसिंहजी जसाजी के भानजे थे। डा० मेनारिया ने इस विषय में प्रचलित एक कहानी का उल्लेख किया है। एक बार रायसिंहजी जसाजी से मिलने ध्रोल आए। दोनों चौपड़ खेल रहे थे कि इतने में नगाड़े की आवाज सुनाई दी। जसाजी ने क्रोध से कहा कि ऐसा कौन जोरावर है, जो मेरे गाव की सीमा में नगाड़ा बजा रहा है? जब पता लगा कि नगाड़ा, दिल्ली के किसी मठाधीश 'मकनभारती' की

---

१. (क) 'ऐतिहासिक डिंगल गीत', (हस्तप्रति—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता);
(ख) 'राजस्थानी वीर गीत', भाग १, (सादूल ओरियन्टल सिरीज, बीकानेर) :
२ (क) झवेरचन्द मेघाणी चारणो अने चारणी साहित्य, पृ० १८५, (संवत् १९९९);
(ख) डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५५–१५६ ·
३. गुटका नं० २०, (सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :
४. 'राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य संग्रह', जिल्द ५, (ह. प्र.,—सू. जा. पु, कलकत्ता) :
५. (३) :
६. 'श्री हरिरस' नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत; (प्रकाशक—मांनदान बारठ, ग्राम मगरी,सं. १९९४) :

हिंगलाज यात्रा को जाती हुई जमात का बज रहा है, तब बोले—'कोई हर्ज नहीं, बजने दो'। यह सुनकर रायसिंहजी बोले कि गांव के रास्ते में नगाड़ों का बजना तो बिल्कुल स्वाभाविक ही है। यह तो खैर, जमात का नगाड़ा है, यदि किसी राजा का होता, तो आप क्या कर लेते? जसाजी ने तुरन्त उत्तर दिया कि ऐसी हालत में मैं उनको तोड़कर फिकवा देता। यह बात रायसिंहजी को भी चुभ गई। बोले—ठीक है, यहां मेरा नगाड़ा बजेगा और वे उठकर हलवद चले आये। कुछ समय पश्चात्, रायसिंहजी ने दलबल सहित ध्रोल में जाकर नगाड़ा बजाया। रायसिंहजी को जसाजी ने समझाया, पर सब व्यर्थ। अन्त में जसाजी को रणभूमि में उतरना पड़ा। घोर युद्ध में, जसाजी काम आए और रायसिंहजी भी घायल हुए। युद्धारम्भ से पहले रायसिंहजी और जसाजी दोनों ने कवि ईसरदास से युद्ध का आंखों देखा वर्णन करने की प्रार्थना की थी, जिसके फलस्वरूप इस काव्य का प्रणयन हुआ। यह लड़ाई संवत १६२० में हुई थी। इतिहास से इस लड़ाई का तो समर्थन होता है, किन्तु उसके कारणों के सम्बन्ध में मतभेद है।

यह वीररस की फड़कती हुई रचना है और राजस्थानी भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में इसका स्थान है। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि बहुत से छन्दों के पहले दो चरणों में कोई सिद्धांत-वाक्य कहकर बाद के चरणों में, दृष्टान्तरूप में, उसे युद्ध में लड़ने वाले वीरों पर घटा कर दिखाया है। कुछ ऐसे वाक्य नीचे दिए जाते हैं—

(१) एको लाखां आंगमे सीह कहीजे सोय।
सूरां जेयो रोड़िये कळहळ तेयो होय ॥ (८)

(२) सादूळो आपा समो वियो न कोय गिणंत।
हाक बिडाणी किम सहे, घण गाजियै मरंत ॥ (९)

(३) सीहणि हेको सीह जणि छापरि मंडै आळि।
दूध विटाळण कापुरस बोहळा जणै सियाळि ॥ (१०)

(४) केहरि केस भमंग-मणि सरणाई सुहडांह।
सती पयोहर क्रपण धन पड़सी हाथ मुवांह ॥ (१२)

(५) सींगाळी अवखल्लणी जिण कुळ हेक न थाय।
जास पुराणी वाड़ जिम जिण जिण भत्यं पाय ॥ (३२)

(६) केहरि छोटो बहुत गुण मोडै गयंदां माण।
लोहड़ बड़ाई की करै नरां नखत्त परमाण ॥ (३४)

(७) हिरणां लांबो सींगड़ो भाजण तणो सभाव।
सूरां छोटो दांतळो दै घण घट्टां घाव ॥ (४०)

(८) मरदां मरणो हक्क है ऊबरसी गल्लांह।
सापुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लांह ॥ (५०)

भाषा मुहावरेदार, सुगठित और व्यर्थ की तोड़-मरोड़ से रहित है। मौलिक भावों के सामंजस्य और विषयानुकूल शब्द चयन के कारण यह रचना अनूठी बन गई है। भावों की मौलिकता और शब्दावली की ध्वन्यात्मकता, इसकी अपनी विशेषता है। डा० मेनारिया ने

ठीक ही कहा है कि, 'रचना का एक एक पद्य एक एक फोटोग्राफ है, जो वर्ण्य विषय को साकार रूप में हमारी आंखों के सामने ला खड़ा करता है'[1]।

उपर्युक्त बातों के उदाहरण स्वरूप दो छन्द देखे जा सकते हैं।

रायसिंहजी जसाजी से लड़ने के लिये जा रहे हैं। जसाजी की राणी मना कर रही है, किंतु रायसिंह आगे बढ़ते ही जा रहे हैं। छन्द पढ़ने से प्रतीत होता है मानों यह पूरा दृश्य हमारे सामने है—

धीरा धीरा ठाकुरां गुम्मर कियां म जाह
महुंगा देसी झूंपड़ा जै घर होसी नाह
नाह महुंगा दियण झूंपड़ा ग्रिभे नर
जावसी कड़तळां केमि जरसी जहर
इक हय नीखसी हाथ जसराज रा
ठिवंतां पाव धीरा दीयो ठाकुरां ॥(३)

इसी प्रकार, निम्नलिखित छन्द में भी पूरा और बोलता हुआ सा चित्र सामने आता है। रायसिंहजी की सेना प्रोल में आ गई है। योद्धाओं की हुंकारें उठ रही हैं और सिंधु राग गाया जाने लगा है, किंतु जसाजी निश्चिन्त सो रहे हैं। उनकी राणी इस पर उन्हें जगा रही है—

ऊठि अचूंका बोलणा नारि पयंपे नाह
घोड़ां पाखर धमधमी सींधू राग हुवाह
हुवौ अति सींधवौ राग वागी हकां
थाट आया पिसण थाट लागे थकां
अलाड़ां जोति खग अरि घड़ा खोलणा
ऊठि हर धवळ सुत अचूंका बोलणा ॥(४)

'हालां झालां रा कुंडळिया' के अतिरिक्त कवि के बहुत से फुटकर गीत आदि मिलते हैं। जाम रावळ को संबोधित कर कहा हुआ इनका श्रावण मास से प्रारम्भ होनेवाला एक बारहमासा मिलता है[2]। एक एक छन्द में, एक एक महीने का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है, जिससे कवि की सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण की शक्ति का पता चलता है। सावन तथा भादो का वर्णन देखिए—

(१) संमिलै बारह मेघ सामणि अंब धारा ऊछळै
बाबीह बाबुर मोर बोलै खाळ चहुं दिसि खळहळै
झड़ मचे सिहरे बीज चमकै दळै अनळ फरहरं
राजिंद पातां जाम रावळ सामि तिण रुति संभरं ॥
(२) भादवं नीर निवाण भरियं गिर पहाड़ पखाळियं
मिलि छपन कोड़ी मेघमाळा नदी पूर हिमाळियं

१. हालां झालां रा कुंडळिया, भूमिका, पृ० १९ :
२. राजस्थानी वीर गीत; गीत नं० ४८ :

घेघूंवि लूंवां सामळी धड़ वंठळी जळहर करं
राजिद पातां जाम रावळ, सामि तिण रत संभरं ॥

रंगरेलो वीठू :

ये जैसलमेर के रावल हरराज और बीकानेर के राजा रायसिंह के समकालीन थे। इनके जीवन से संबंधित बातों का विशेष पता नहीं चलता। कहा जाता है कि इनका जन्म मारवाड़ राज्य के सांगड़ गांव में हुआ था, जो उस समय जैसलमेर राज्य में था। बचपन में, ये कच्छ-भुज चले गए और वहीं अध्ययन किया। पश्चात् ये जैसलमेर रहने लगे। बहुधा ये घूम घूमकर नगरों एवं देशों का वर्णन अपनी कविता में किया करते थे। चारणों में ये सबसे बड़े व्यंगकार हुए हैं। दूसरे व्यंगकार हैं, बारहट ऐंजन, जो आलोच्य काल के पश्चात् हुए हैं। एक बार इन्होंने जैसलमेर का वर्णन किया, जिसको दूषित समझ कर इनको कैद कर लिया गया[1]। जब बीकानेर के राजा रायसिंह, रावल हरराज की बेटी से विवाह करने जैसलमेर गए, तो वे इनको छुड़ाकर अपने साथ लेते आए। उन्होंने इनको लाख पसाव भी दिया था[2]। राजा रायसिंह की प्रशंसा में इनके कुछ गीत मिलते हैं। निम्न दोहले से प्रारंभ होने वाला सुप्रसिद्ध गीत इन्हीं का है—

पाताळ तळै बलि रहण न पाऊं, रिध मांडे स्रग करण रहै।
मो म्रित लोक रायसिंघ भारं, कठै रहूं हरि दलिद्र कहै।

डा० टैसीटरी[3] की भांति श्री नरोत्तमदास स्वामी[4] ने भी इसके रचयिता का कोई नाम नहीं दिया है, किन्तु सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता, में सुरक्षित 'ऐतिहासिक डिंगल गीत संग्रह'[5] (हस्तलिखित प्रति) में इस गीत के रचयिता ये ही बताये गए हैं। इनकी फुटकर रचनाएँ मिलती हैं, जो प्रायः समी व्यंग से परिपूर्ण एवं चुभती हुई हैं। इनके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'रंगरेले बित रेलियो माड़धरा रे मांहि'

इनकी रचना के कुछ उदाहरण देखिए[6]—

जैसलमेर चरित्र से—

घोड़ा होय जु काठरा, पिंड कीजै पाषांण।
लोह तणां लूंगड़ा, जोइजै जैसांण ॥
राती रिड़ चोहर मध्यम रूंख, भमे दुगपाळ मरंतां भूख।
हुंचरा तालर आवे हेर, मैं दीठा जादव जयसलमेर ॥

१. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी', ह० प्र०—सू० जा० पु०, कलकत्ता :
२. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १३८ :
३. JASB (NS), Vol. XIII, 1917, Page 248-249.
४. गीत मंजरी; गीत नं० १९, पृ० ४० :
५. जिल्द १ तथा २ (हस्त० प्रतियां) :
६. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी',—सू० जा० पु०, कलकत्ता :

टीकायत राणी गहा ढोळ, हेकलि लावत नीर हिलोळ ।
मुल्लक मझार न बोले मोर, जरकूवा सेहां गोहां जोर ॥

जैसलमेर राजकवि वर्णन—

डबूरो धोरठ ढोली लांग, टहक्के दोना खोड़ो टांग ।
गल्पोड़ी जाजम मांह बेगार, जुड़े जहां रावल रो दरबार ॥

किसान वर्णन : कडांडे गेडिय आडे कंध, बेल्लढां जोतर रास न बंध ।

पणिहारी वर्णन : पह्रमण पांणी जावत प्रात, एलंत्ती आवत आधी रात ।
बिलकवा टाबर जोवे बाट, धिनो घर घाट धिनो घर घाट ॥

गोढवाड़ वर्णन : तर लम्बा अम्बा गहर, नदियां जळ अप्रमाण ।
कोइल दिये टहूकड़ा, आयो घर गोढांण ॥

मेवाड़ के संबंध में : अइयों असतरियांह, मतहींणी मेवाड़ री ।
कंपी ओसरियांह, निकमां मांणस नीपजै ॥

दूदा आसिया :

ये सिरोही राज्य के वड़दड़े गांव के निवासी थे और राव सुरताण के कृपापात्र थे । अकबर की आज्ञानुसार बीकानेर के राजा रायसिहजी ने सिरोही के राव सुरताण पर चढ़ाई की । युद्ध में राव सुरताण बन्दी बना लिए गए । उस समय दूदा आसिया रायसिहजी के पास पहुंचे और उनकी प्रशंसा की । फलस्वरूप राव सुरताण छोड़ दिए गए[1] । इसकी पुष्टि दयालदास की ख्यात से भी होती है[2] । ओझाजी के अनुसार, 'संवत् १६३३ में सिरोही के राव सुरताण देवड़ा के विद्रोही होने पर रायसिंह को भेजा गया और मेल-मिलाप हो गया। सुरताण अकबर के पास भी चला गया । पर बिना अकबर की आज्ञा लिए सुरताण अपने देश आ गया, जिससे बादशाह ने रायसिंह आदि को उस पर भेजा । सुरताण दबा दिया गया[3]' । इससे संवत् १६३३ के आसपास, कवि की प्रसिद्धि का पता चलता है । इनकी बनाई हुई बहुत सी फुटकर रचनाएं मिलती हैं। इनमें राठौड़ वीर कल्ला पर कही गई कुंडलियां बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनकी संख्या १७ है। कल्ला सिवाणे के रायमल के पुत्र थे । दो कुंडलियां देखिए[4]—

पाय रळे अंत्रावळी, गळ झूले वरमाळ
कलियांण सोभे कमळ, रहराळीयो बबाळ
रहर बंबालियां रांण मुख रातड़े
यहंडियो धज वडे बढण कज बड़े बड़े
हव्वे नीसांण त्रबांसार त्रहाली
गळे वरमाळ पाय रळे अंत्रावळी ॥

---

१. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी', ह०प्र०,—सू०जा० पु०, कलकत्ता :
२. भाग २, पृ० १०७-१०८ :
३. बीकानेर राज्य का इतिहास :
४. (१) :

सोहां बड़ी आलड़ी, पर मारथो न लाय।
भोजी डांग न अपिड़े, भागो लार न जाय;
जाय किम भगल्लां लार जोधपुरो
लागरण मीयजे मांमियां ततखरो
वरत बीसी दिए वाखुवे वालड़ी
असतियां कले मारण तणो आलड़ी॥

इन्हीं कल्ला रायमलोत पर राठौड़ पृथ्वीराज का कहा हुआ गीत भी मिलता है[1]।

बारहट शंकर :

इनकी 'दातार सूर रो संवाद' रचना प्रसिद्ध है[2]। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, में इस रचना की कई हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। इनमें एक प्रति में पद्य-संख्या २५[3] और दूसरी में २३[4] दी गई है। पाठभेद भी सबमें पाया जाता है।

ये बीकानेर के राजा रायसिंहजी के समकालीन थे। रायसिंहजी का इनको सवा करोड़ का दान देना सर्वप्रसिद्ध ही है। ये मारवाड़ राज्य के लाभोड़ा गांव के रहनेवाले थे। राणा प्रताप के मंत्री भामाशाह द्वारा दिये गये एक भोज में भी ये सम्मिलित हुए थे, जिसके विषय में इनका निम्नलिखित दोहा प्रचलित है—

भोमे जग जीमाड़ियो, नेवतरिया नव खंड।
सिर तपिया ससक सम, काजलियो ब्रह्मंड॥

संवत् १६४३ में जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के समय में जब आउए में चारणों ने धरना दिया, तब उसमें ये भी थे किन्तु किसी कारणवश उस धरने को छोड़कर चले गए। कहा जाता है, इसी कारण इनकी पत्नी पद्मा, जो सांदू माला की बहन थी, इनको छोड़कर, राजा रायसिंह के छोटे भाई अमरसिंह को अपना धर्म भाई बनाकर उसी के महल में रहने लग गई थी। शंकर का बीकानेर के राजा सूरसिंहजी के राज्यकाल में विद्यमान रहना पाया जाता है। अपने एक गीत में इन्होंने सूरसिंहजी की मान्धाता के साथ तुलना करते हुए, उनके न्याय-प्रिय शासन की प्रशंसा की है, जिसके दो दोहले ये हैं—

अजा सिंघ चालै बिन्है घाट हुइ एकठा, एक छति देवगति हाथ आणी।
मारके सार के पाणिग्रह मेदनी, मानधाता पछै सूर माणी।
चमर माथै ढुळै पलं सेवग चलण, पाट ऊधोर पख बिन्है पूरो।
सोहियो भलो रायसिंघ रो सिंघलो, साजि मेवास ऐवास सूरो[6]॥

---

१. मरु-भारती, वर्ष ३, अंक ३, अक्टूबर १९५५,—'वीरगाथाएँ' :
२. Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 14.
३. प्रति नं० ७९ :
४. प्रति नं० १२६ :
५. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १२६-१२७ :
६. गीत मंजरी; पृ० ४८, (सादूल ओरियंटल सिरीज, बीकानेर) :

सूरसिंहजी का राज्य-काल संवत् १६७० से १६८८ तक माना जाता है।

उपर्युक्त रचना में, जैसा कि नाम से प्रकट होता है, दाता पुरुष और शूर पुरुष के संवाद हैं, जिसमें प्रत्येक एक दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करता है। अन्त में निर्णय कराने के लिये दोनों ही राजा रायसिहजी के पास जाते हैं। वे बड़ी सुन्दर युक्ति देकर दाता को श्रेष्ठ बताते हैं। उदाहरण देखिए—

दाता :

बलि आगे त्रयभवण राम हरि हथ पसारै
करन इंद्र आपीयौ कविच तन हूत उतारै
जीव्यौ दिन दिन विहर पुत्र दे विप्र छुडायौ
तुज क पुत्र सींचाण गयौ सिव सरणै आयौ
प्रहस मा ऊठि इल ऊपरै, सुर नर अहि मो उन्वरै।
दातार गरव्वे बोलीयौ कवण मूंझ सर भर करै?

सूर :

लंका रांवण रामचंद घट मास घटाए
पंडव पांचे कुरजनां काढि वनवास भमाए
काल जनम आगलै विध हरि विवह पयांणा
जरातेन ससिपाल सूर तहा जोति समांणा
जालंधर जौलो त्रै भवण, गयौ सायर सरणै हरी
दातार, सूर इम उन्वरै, मो सो किसी बराबरी!

दोनों रायसिंहजी के पास गए और उन्होंने उचित न्याय किया—

दाता सूरो वहसनि, बिन्हे बराबर होइ।
रायसिंघ बिहु मां बडौ, राजि सराहौ सोइ॥
तन वातूसल पल संभल, शिव कमल हंस हूर।
एतां दीन्हा बाहिरौ, मोव न पामै सूर॥
जल थल महीयल पसु पंषी, सूर घणांही होइ।
विण दाता मांनव बाहिरौ, सुण्यौ न दिठौ कोइ॥
रायसिंघ राजा तिलक, कीयौ न्याउ विचार।
ईंमां बिहूं दुंहु जोवतां दाता बडो संतार[1]॥

रतनू देवराज :

ये राजा रायसिंहजी के समकालीन थे। रायसिंहजी द्वारा इनको दो बार हाथी प्रदान किए जाने के उल्लेख मिलते हैं[2]। एक गीत का एक दोहला नीचे दिया जाता है। गीत में राजा रायसिंहजी द्वारा उदयसिंह को अकबर से जोधपुर का राज्य दिलाए जाने का वर्णन है।

---

१. प्रति नं० ७९ से—अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर:
२. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १०५ तथा १२४:

अई भाग रासा नपत तप ईसतां, थळू धन्नवत अचळ बोल कीधौ।
दुरंग जोधाण असपत कनां दरातां, दाग अदल तणं सीस दीधौ।

सिढायच गैपो :

ये सिरोही के राव सुरताण के समकालीन और उनके कृपापात्र थे। दयालदास की ख्यात में, प्रसंगवश, इनके विषय में बड़ी रोचक कहानी दी गई है। उसके अनुसार, ये सबको 'तू' (तूं) कहकर बोलते थे, इसी कारण इनका नाम 'गैपो तुकारो' पड़ा। एक बार सिरोही के राव सुरताण जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी से विवाह करने जैसलमेर गए। उसी लग्न और दिवस पर बीकानेर के राजा रायसिंहजी भी रावल की दूसरी बेटी गंगाजी से विवाह करने गए। गैपे की 'तुंकारा' देकर बोलने की आदत के कारण राव सुरताण इन्हें अपने साथ नहीं ले गए। परन्तु ये पीछे से जैसलमेर जा पहुंचे और रायसिंहजी के विषय में इन्होंने निम्नलिखित दोहे कहे—

जळ ऊंडा थळ धूपळा, पातां मंगल पेस।
बलिहारी उण देसरी, रायसिंघ नरेस॥
ना जीहा पै बोमुहा, नृसंघ सीर जे नय।
केता कव-जन खंस गया, अरि केता भारथ॥

यह सुनकर रायसिंहजी ने एक हाथी इन्हें प्रदान किया। तब इन्होंने राव सुरताण को सुनाते हुए रायसिंहजी को संबोधित कर तुकारे सहित निम्नलिखित कवित्त पढ़ा—

तूं न तांन सारखौ जिकौ खर मारे खावै
तूं न तांन सारखौ तिकौ आहूत अघावै
तूं न तांन सारखौ जिकौ जळ डहले पीवै
तूं न तांन सारखौ सुणे पत हर नह जीवै
बल करै भार धड़ मंगलां जळ पीवै महाराण हूं।
पंहळाद चाड पथर विहर तिकौ सिंघ रायसिंघ तूं॥

कवि का आशय राव सुरताण को यह बतलाने का था कि वह न केवल उसको (राव सुरताण को) अपितु राजा रायसिंह को भी तुंकारा देकर बोलता है। और यही हुआ, राव सुरताण समझ गए तथा रात्रि में उन्होंने कवि से मेल-मिलाप किया।

राजा रायसिंहजी के दान की प्रशंसा करने वाले एक गीत का एक दोहला देखिये—

किसै राण रावळ किसै राव राजा कियौ, आज पंहली इसौ प्रबल आचार।
सोस कलियाण सुत बांधतां सेहरौ, बांधिया गयंद पातां तणै बार॥

दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १२१
वही; पृ० १२३-१२८ :
वही; पृ० १२५ :

बारहट लक्खा :

ये अकबर के समकालीन थे। इनका जन्म मारवाड़ राज्य के साकड़े परगने के नानणपाई गांव में अनुमानतः संवत् १६२० में हुआ था। कहा जाता है कि अकबर ने इनको मथुरा के पास अन्तर्वेद का परगना दिया था और एक हवेली मथुरा में दी थी। चारणों में लक्खाजी का बहुत मान था। तत्कालीन कवि दुरसा आढ़ा के एक सोरठे से, जो दुरसाजी के प्रसंग में आगे उद्धृत किया गया है, भी इस बात का पता लगता है। 'अकबर की तवारीख में लक्खा का नाम कहीं नहीं आता है। गांव टहले के बारहटों के पास, जो लक्खाजी की औलाद हैं, कई परवाने हैं, जिन्हें देखने से पाया जाता है कि लक्खा अकबर बादशाह से लेकर जहांगीर के समय तक विद्यमान थे। लक्खाजी के नाम का एक पट्टा संवत् १६५८ का और दूसरा संवत् १६७२ का है'[1]। गुलेरीजी ने चारणों और भाटों के एक झगड़े संबंधी लक्खाजी का एक परवाना छपवाया है, जिस पर माघ शुक्ल ५ संवत् १६४२ की मिती है[2]। बीकानेर के राजा रायसिंहजी द्वारा इनको एक करोड़ पसाव और दो बार हाथी[3] दिए जाने के उल्लेख मिलते हैं। इन्होंने राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' पर एक टीका लिखी थी जिसके आधार पर संवत् १६७८ में सारंग ने संस्कृत टीका लिखी[4]। उनकी यह टीका अब उपलब्ध नहीं होती। इनका रचा एक ग्रन्थ पाबूरासा भी बताया जाता है। इनका देहान्त संवत् १७०६-०७ के लगभग हुआ[5]। इनके अलावा इन्होंने फुटकर गीत आदि भी अवश्य ही बनाए होंगे।

बल्ला आसिया :

ये जोधपुर के खाटावास गांव के रहने वाले थे और राजा रायसिंहजी के समकालीन थे। बचपन में ही ये पितृ-विहीन हो गए और किसी नाथपंथी जोगी ने इनको पढ़ाया लिखाया। इस विषय के दो दोहे देखिए—

> थिर जस रया थंबाळियें, खावी नित दिन खीर।
> आसल वळे ऊपरे, प्रसन्न हुवा जद पीर॥
> जमीं सूं जड़ियाँह, खेजड़ियां रहसी खड़ी।
> हदवा हाथड़ियाँह, मुदरा ले महाराज रो॥

राजा रायसिंहजी के विषय में कहे गए इनके एक गीत का पहला दोहला यह है—

> पूरां सादूलां गोपालां, लूणकरण सरीषा लंकाळां
> चंद तणो बांधे रण चालों, राव रहियो भेलो रावताळां[6]॥

---

१. ना० प्र० पत्रिका (न० सं०), भाग १, संवत् १९७७ :
२. वही :
३. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ११८, १०५, १२४ :
४. श्री नरोत्तमदास स्वामी संपादित–क्रिसन रुकमणी री वेलि, प्रस्तावना, पृ० ७८ :
५. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी', (ह०प्र०—मू० आ०पु०, कलकत्ता) :
६. वही :

इनके बनाए फुटकर गीत मिलते हैं[1]।

अल्लूजी कविया :

इनके जीवन के विषय में कुछ विशेष पता नहीं चलता। ये जोधपुर के राव मालदेव के समकालीन थे। डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार, इनका आविर्भाव काल संवत् १६२० के लगभग है।[2] इनकी कविता सरल, भक्तिपूर्ण एवं ज्ञान-वर्द्धक है। इनके बनाए फुटकर कवित्तों की बड़ी प्रसिद्धि है। सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता, की हस्तलिखित प्रतियों के एक गुटके में[3] कुछ खुले पत्रों पर, इस कवि के संबंध में अव्यवस्थित रूप से लिखी गई टिप्पणियां मिलती हैं, जो राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी के अन्वेषकों द्वारा लिखी गई थी। किंतु इनमें इनके जीवन संबंधी कुछ चमत्कारिक घटनाओं का ही वर्णन किया गया है, उनसे कोई ठोस ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं होती। इनसे एक कवित्त नीचे दिया जाता है—

घहै नदी जळ विमळ सठं मळ विरळ उपट्टै
तिमर घोर अंधार सठं रवि किरन प्रगट्टै
राव कहीजै रंक, रंक सिर छत्र धरीजै
अलू तास विश्वास, आस कीजै गुमरीजै
पय लहै अंध पंगो चलण मूंगो सिद्धां पत्र तापाई।
तो कार रहा न हुवै किसन नारायण पंक मन पाई॥

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की एक हस्तलिखित प्रति में[4], अल्लूजी के चार कवित्त मिलते हैं जिनमें जोधपुर के राव मालदेव की विभिन्न विजयों के वर्णन हैं। उदाहरण स्वरूप एक कवित्त देखिए—

भगौ तोय वाराह रहगो लीयो तोय दणीयर
सांपणीयो तोह तोह जैम मथीयो तीय सायर
लंण हुंतै बीकम घणै बीटीयो बीकोदर
यौधौ तीय हणवंत लीयो दरसांण तीय सांकर
मालदेव राव मांडोवरो घणै मुगा कटके घणो।
मापलीराव पाडोसीयां बह चौतो तोय बीहंमणो॥

---

१. (क) 'ऐतिहासिक डिंगल गीत', जिल्द २, (हस्तप्रति—सू० जा० पु०, कलकत्ता);
(ख) नैणसी की ख्यात, भाग १, पृ० १५१ :
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६० :
३. गुटका नं. २५ :
४. प्रति नं० ३६ :

अध्याय ६

(क) राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवि

बारूजी सौदा :

बारहट बारूजी सौदा प्रथम राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्त और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में चित्तौड़ से विदेशी सत्ता को मिटाकर, सीसोदिया हम्मीर ने महाराणा की उपाधि धारण की। उन्होंने संवत् १३८३ में चित्तौड़ पर अधिकार किया था। पश्चात् उन्होंने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुगलक की सेना को हराया और अनेक राजाओं को अधीन करके मेवाड़ की उन्नति की। महाराणा कुम्भा के कीर्ति-स्तम्भ की प्रशस्ति में हम्मीर को 'विषम घाटी पंचानन' लिखा है, जिसका अर्थ विकट आक्रमणों में सिंह के समान है। हम्मीर का स्वर्गवास संवत् १४२१ में हुआ माना जाता है[१]। उनकी विजय में चारणी-शक्ति प्रेरणा-स्रोत रही थी। तत्कालीन[२] कवि बारूजी सौदा का इन्हीं महाराणा हम्मीर की यशोविजय में कहा हुआ एक गीत मिलता है, जिसके दो दोहले नीचे दिये जाते हैं[३]–

ऐळा चीतौड़ सहं धर आसी, हूं थारा दोयियां हरूं।
जणणी इसो कहूं नह जायो, कहवं देवी धीज करूं।
आलम कलम नवं खंड एळा, कंल पुराटो मोंढ किसो।
देवी कहै सुण्यो नह दूजो, अवर ठिकाणं भूप इसो।

नैणसी की ख्यात[४] के अनुसार, 'एक बार चित्तौड़ का सौदा बारहट बारू बूंदी गया था, तब लालसिंह (हाड़ा जिसकी कन्या राणा खेतसी को ब्याही थी) ने बात कहते हुए दीवाण (राणा) के लिए अपशब्द कहे, जिससे बारू पेट में कटार मारकर मर गया। कोई कहते हैं कि कमल पूजा की (मस्तक काटा)'। राणा खेतसी का समय संवत् १४२१ से १४३९ तक है[५] और इसी के बीच किसी समय कवि की मृत्यु हुई होगी।

चमणाजी बारहट :

ये राणा सांगा के समकालीन थे। पानीपत के प्रथम युद्ध में घायल हो जाने के पश्चात् राणा सांगा को ओज-भरा गीत सुनाकर, उन्हें पुन: तलवार उठाने के लिए इन्होंने प्रेरित किया[६]। राष्ट्रीय भावोत्कर्ष की दृष्टि से यह गीत अप्रतिम है। कवि ने कहा कि सौ बार

---

१. गहलोत: राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २०२–२०३ :
२. शोध-पत्रिका, भाग ३, अंक २, पौष, २००८, 'राजस्थानी साहित्य-भारत की आवाज' :
३. महाराणायशप्रकाश, पृ० २० :
४. भाग १, पृ० २२ :
५. गहलोत : राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०३ :
६. महाराणायशप्रकाश, पृ० ७० :

जरासंध से विमुख होकर श्री कृष्ण भागे थे, किन्तु अन्त में उस असुर का वध उन्होंने किया। अर्जुन एक बार हस्तिनापुर में द्रौपदी का दुख देखकर हटा था किन्तु फिर उसने दुर्योधन के साथ कैसा किया? रावण सीता को हर ले गया था, किन्तु राम ने कैसा किया? हे राणा सांगा! आप एक बार हारने पर खेद करते हैं! पूरा गीत नीचे दिया जाता है—

सतवार जरासंध आगळ श्री रंग, विमहा टीकम दीध वग।
मेळि घात मारे मधुसूदन, असुर घात नांचे अळग ॥१॥
पारथ हेकरसां हथणापुर, हटियो त्रिया पडंतां हाथ।
देख जका दुरजोधण कीधी, पछै तका कीधी कांइ पाथ ॥२॥
इकरां रामतणी तिय रावण, मंद हरेगो दह कमळ।
टीकम सोहि ज पथर तारिया, जगनायक ऊपरा जळ ॥३॥
एक राड़ भवमांह अवत्थी, ओरस आणे केम उर।
मालतणा केवा कज मांगा, सांगा तू साले असुर ॥४॥

हरीदास केसरिया :

ये भी राणा सांगा के समकालीन कवि थे जिन्होंने अपने गीतों में राणा की वीरता एवं दानशीलता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है[1]।

गोरधनजी बोगसा :

ये राणा प्रताप के समकालीन थे। एक गीत में इन्होंने हल्दीघाटी के युद्ध तथा राणा प्रताप के शौर्य और पराक्रम का सजीव अंकन किया है। गीत के प्रथम और अन्तिम, दो दोहले नीचे दिए जाते हैं—

गयंद मानरै मुहर ऊभो हुतो दुरदगत, सिलहपोसां तणां जूथ साथै।
तद वही रूक अणचूक पातल तणी, मुगल वहलोलखां तणै माथै॥
वीर अवसाण केवाण उजवक वहे, राण हथवाह दुय राह रटियो।
कट झळम सीस बगतर बरंग अंग कटे, कटे पाखर सुरंग तुरंग कटियो[2]॥

सूरायच टापरिया :

ये भी राणा प्रताप के समकालीन थे। अपने फुटकर दोहों में इन्होंने राणा की शूर-वीरता तथा उनके साहस और पराक्रम का वर्णन किया है। कुछ दोहे देखिए—

चेळा वंस छतीस, गुर घर गहलोतां तणों।
राजा राणा रीस, कहतां मत कोई करो॥
धंपो चीतोड़ाह, पोरस तणों प्रतापसी।
सोरभ अकबर साह, अळियळ आभड़ियो नहीं॥

१. महाराणायशप्रकाश में इनके गीत देखिए :
२. वही; पृ० ८२–८३ :

सांग ज सोबरणांह, तं बाहो परतापसी ।
जो बादण करणांह, परें प्रगट्टी कुंजरां ॥
रोहे पातल राण, जां तसलीम न आदरे ।
हींदू मुस्सलमाण, एक नहीं तां दोय है ॥
चोकी चीतोड़ाह, पातल पड़वेसां तणी ।
रहचेबा राणाह, आयो पण आयो नहीं[1] ॥

राठौड़ पृथ्वीराज :

इनके विषय में विस्तार से अन्यत्र लिखा गया है । राणा प्रताप के विषय में कहे गए इनके प्रकीर्णक दोहों और विविध गीतों से इनकी राष्ट्रीय भावना का पता चलता है । इसके अतिरिक्त कई ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं पर भी इनकी फुटकर रचनाएं मिलती हैं । वीर के अतिरिक्त करुण और शान्त रसों की भी सुन्दर कविता इन्होंने की है । उदाहरण देखिए—

घर बांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणां नरिंदां घेरियो, रहै गिरंदां राण ॥
माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणे सांप ॥
पातल पाघ प्रमाण, सांची सांगाहर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी ॥
बाहो राण प्रतापसी, बगतर में बरछीह ।
जाणक झींगर जाळ में, मुंह काढ्यो मच्छीह ॥
पातल घड़ पतसाह री, एम विधूंसी आण ।
जाण चढ़ी कर बंदरां, पोथी बेद पुराण ॥

× ×

नर तेथ निमाणा निलजी नारी, अकबर गाहक बट अबट ।
चौहटे तिण जायर चीतोड़ो, बेचे किम रजपूत बट ।

× ×

ऊंगा दन समै करै अपाड़ा, चोरंग भुवन हसत अणचूक ।
रोदां तणा रगत सूं राणा, रंगियो रहै तुहाळो हक[2] ।

दुरसा आढा :

राजस्थानी साहित्य में दुरसाजी का स्थान चोटी के कवियों में है । श्री शंकरदान जेठी-भाई देथा के अनुसार, इनका जन्म संवत् १५९५ में गांव जेतारण में और स्वर्गवास संवत् १७०८ में हुआ । इनके पिता का नाम मेहाजी था जो मारवाड़ के सांचोर परगने के गांव आढा के

---

१. महाराणायशप्रकाश, पृ० १२१–१२३ :
२. वही; पृ० ९१–९६ :

थे[1]। डा० मोतीलाल मेनारिया ने इनका जन्म संवत् १५९२ में और स्वर्गवास संवत् १७१२ में होना लिखा है[2], जिमको श्री अगरचन्द नाहटा ने विचारणीय बताया है[3]। देथा का मत अधिक संगत प्रतीत होता है। एक और प्रकार से भी इनके जीवन काल पर विचार किया जा सकता है। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि जोधपुर पर अधिकार के समय बीकानेर के राजा रायसिहजी ने अन्य चारणों के साथ इनको भी चार गाव, एक करोड़ पसाव और एक हाथी प्रदान किए थे[4]। ओझाजी के अनुसार, 'संवत् १६२९ में गुजरात विजय के समय अकबर ने जोधपुर रायसिंह को दे दिया[5]। इस समय इनकी अवस्था ३४ साल की ठहरती है, जो प्रसिद्धि को देखते हुए ठीक ही प्रतीत होती है। इसी प्रकार मृत्यु के विषय में भी अनुमान लगाया जा सकता है। एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, की हस्तलिखित प्रतियों में इनकी एक रचना नागौर के राव अमरसिंह गजसिंघोत पर मिली है[6]। यह ६४ (झूलणा) छन्दों में लिखी गई कविता है। इसमें, शाहजहां के दरबार आगरा में, सलावतखां आदि को मारने और अमरसिंह के वीरतापूर्वक काम आने का सजीव चित्रण किया गया है। आसोपाजी के अनुसार यह घटना संवत् १७०१ की श्रावण सुदी २ को हुई थी[7]। अतः इसके बाद ही किसी समय इन झूलणों की रचना हुई होगी। और कवि का देहान्त भी इसके पश्चात् ही किसी समय हुआ होगा।

इनके विषय में, कई प्रकार की बातें प्रचलित हैं। एक के अनुसार, जेतारण गांव के किसी जैन जती ने इनको पढ़ाया लिखाया और संवत् १६१५–१६ के लगभग अजमेर में बैरमखां से किसी प्रकार ये मिले। बैरमखां ने इनको अकबर से मिलाया। मिलने के समय अकबर की प्रशंसा में इन्होंने चार पदों का एक गीत कहा, जिसका प्रथम दोहला यह है—

बाणावलि लखण के तूं अरजण बाणावलि, सरदस रोलण कंस संहार।
सार्सो भाज हमाउ समोभ्रम, अकबर साह कवण अवतार।

अकबर ने इनको एक करोड़ पसाव दिया। पश्चात् ये जोधपुर के महाराज चन्द्रसेन और उनके पुत्र रायसिंह के पास रहने लगे। सवत् १६४० में राणा उदयसिंह के पुत्र जगमाल को आधी सिरोही दिलाने के लिए शाही सेना को राव सुरताण पर भेजा गया, जिसमें रायसिंह के साथ ये भी थे। शाही सेना की हार हुई और ये भी घायल हुए। उस समय राव सुरताण ने इनको अपने पास रख लिया। तबसे मृत्यु-पर्यन्त राव सुरताण से इनका अच्छा सम्बन्ध बना रहा।

दूसरी कथा के अनुसार, जोधपुर के चारण कवि बारहट लक्खाजी ने इनको बादशाह अकबर से मिलाया था। लक्खाजी की प्रशंसा में कहा गया इनका यह दोहा प्रचलित है—

---

१. सुकाव्य सजीवनी, प्रथम भाग :
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७८–१८५ :
३. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३–४, जुलाई, १९५३ :
४. ख्यात, भाग २, पृ० ११८ :
५. बीकानेर राज्य का इतिहास :
६. प्रति नं० 448. B. IV/II. I, (–हस्तलिखित सूची) :
७. मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० १७३ :

दिली दरगह अम्भ तरू, ऊंचो फलटू अपार।
चारण रक्खो चारणां, डालि नमावण हार॥

यह भी कहा जाता है कि जब राणा प्रताप की मृत्यु की खबर शाही दरबार में पहुंची तो ये भी वहीं थे। प्रताप के निधन पर बादशाह की आंखें भर आईं और वह नीची निगाह करके पृथ्वी की ओर देखने लगा। उस समय इन्होंने निम्नलिखित कवित्त कहा—

अस लेगो अण दाग, पाघ लेगो अणनामी
गो आड़ा गवड़ाय, जिको बहतो धुर वामी
नवरोजे नहँ गयो, न गो आतसां नवल्ली
न गो झरोखां हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली
गहलोत रांण जीतो गयो दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी॥

इस पर नाराज होने की बजाय बादशाह ने खुश होकर इनको इनाम दिया।

एक और कथा के अनुसार, बाल्यावस्था में बगड़ी गांव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका पालन-पोषण किया और बड़े होने पर अपने यहां प्रधान सलाहकार नियुक्त कर लिया। जब अकबर अहमदाबाद जा रहा था, तो सोजत उसके ठहरने का विश्राम-स्थल था। वहां से लेकर गूंदोज के डेरे तक उसके राह-प्रबन्ध का भार बगड़ी के ठाकुर पर था, जिसने दुरसाजी को इसके लिए नियुक्त किया। इनके प्रबन्ध-चातुर्य से बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और इनाम तथा प्रशंसा का प्रमाण-पत्र दिया। तबसे धीरे-धीरे इनका शाही-दरबार में प्रवेश हुआ।

इन सब बातों से एक मुख्य सारांश यह निकलता है कि दुरसाजी का अकबर से बहुत अच्छा सम्बन्ध था और शाही दरबार में उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। कविराजा श्यामलदास[1], भूरसिंह शेखावत[2], डा० उदयनारायण तिवारी[3], झवेरचन्द मेघाणी[4], शंकरदान जेठीभाई देथा[5], डा० कन्हैयालाल सहल[6], तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[7] आदि इसका समर्थन करते हैं। अन्यत्र भी इसका समर्थन मिलता है[8]। डा० मोतीलाल मेनारिया के दो मत हैं। उपर्युक्त मत के समर्थन में, वे लिखते हैं—'धीरे-धीरे इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया और अकबर जैसे प्रतापी सम्राट का इन पर हाथ देखकर दूसरे राजा महाराजा भी इनका बहुत आदर सत्कार

---

१. वीर विनोद :
२. महाराणायशप्रकाश, पृ० ९८, फुटनोट :
३. वीर काव्य, पृ० ७४ :
४. चारणो अने चारणी साहित्य, पृ० १६ :
५. सुकाव्य संजीवनी, प्रथम भाग :
६. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद, (प्रथम शतक) :
७. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ३३-३४ :
८. (क) साहित्य-सन्देश, मार्च, १९५५, में श्री रामपाल बजाज का लेख, तथा
(ख) 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी', (ह०प्र०—सू०जा०पु०,कल०):

करने लगे।...स्वस्थ हो जाने पर दुरसाजी राव सुरताण के पास सिरोही में अधिक दिनों तक न रहे, वहां से बादशाह की सेवा में वापिस दिल्ली चले गये"[1]। दूसरी ओर उनका कहना है—'सारांश यह कि दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाख पसाव क्रोड पसाव आदि मिलने की जो बातें कही जाती हैं, उनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है'[1]।

अकबर की प्रशंसा में कवि का एक गीत ही मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः प्रारम्भ में कवि ने अकबर की कृपा प्राप्त करने के लिए उसको कहा हो। किन्तु बाद में तो निश्चय ही वे इस चेष्टा से उपराम हो गए। यही नहीं, राणा प्रताप के गुणगान में अकबर के प्रति उनका आक्रोश सुस्पष्ट हो उठा है। अकबर के लिए प्रयुक्त, अघ अवतार, कुटिल अनीत, हियाफूट, अकबरियो, लालची, अधम आदि शब्दों से यह बात सिद्ध है जो निम्नलिखित दोहों में देखे जा सकते हैं—

(१) गढ ऊंचो गिरनार, नीचो आबूही नहीं।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥२॥
(२) अकबर कुटिल अनीत, और बिटळ सिर आदरै।
रघुकुळ उत्तम रीत, पाळै राण प्रतापसी ॥१२॥
(३) अकबर कूट अजाण, हिया फूट छोड़ै न हठ।
पगां न लागण पाण, पणधर राण प्रतापसी ॥१८॥
(४) गोहिल कुळधन गाढ, लेवण अकबर लालची।
कोडी दे नँह काढ, पणधर राण प्रतापसी ॥३७॥
(५) अकबरियो हत आस, अंब धास आंधे अधम।
नांवे हिये निसास, पास न राण प्रतापसी[2] ॥७१॥ (विरद छिहत्तरी):

इस सम्बन्ध में डा० मेनारिया का उक्त दूसरा मत ही ठीक प्रतीत होता है। कहते हैं, दुरसाजी के दो स्त्रियां थीं, जिनसे चार पुत्र हुए। जीवन के अन्तिम दिनों में ये अपने छोटे पुत्र किसनाजी के साथ पांचेटिया ग्राम में रहा करते थे। ये बीकानेर के राजा रायसिंह, सिरोही के राव सुरताण, जोधपुर के राव चन्द्रसेन और मेवाड़ के राणा प्रताप ऐसे वीरों के समकालीन थे। इनको अपने जीवन काल में बहुत धन और सम्मान मिला था। इनकी एक पीतल की मूर्ति भी मिली है[4] जिससे इनकी महान् ख्याति का पता चलता है।

मुगलों के विरुद्ध हथियार उठानेवाले नर पुंगवों की प्रशस्तियों में ही कवि का मन अधिक रमा है। 'दुरसाजी हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक थे।

१. डिंगल में वीररस, पृ० ४९, (२००८):
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १८४, (२००८):
३. महाराणायशप्रकाश, से:
४. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३–४, जुलाई, १९५३:
इसको प्रकाश में लाने का श्रेय श्री अगरचन्दजी नाहटा को है।

अपनी कविता में उन्होंने तत्कालीन हिन्दू-समाज की विपन्नावस्था और अकबर की कूटनीति का बड़ा ही सजीव, वीर-दर्पपूर्ण और चुभता हुआ वर्णन किया है"[1]। यही कारण है कि इन्होंने राणा प्रताप, राव चन्द्रसेन तथा राव सुरताण आदि के देश-प्रेम का भाव विभोर होकर यशोगान किया है। यही नहीं, इन वीरों की सहायता करने वाले तथा मुगल सेना के विरुद्ध जूझनेवाले अनेक अन्य वीर पुरुषों की कीर्ति-गाथा भी कवि ने अपने विभिन्न दोहों, गीतों आदि में सुरक्षित रखी है। इस सम्बन्ध में एक और बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है। राजा रायसिंहजी से इन्होंने एक करोड़ आदि का दान पाया था। उनके दान का उल्लेख कवि ने स्वयं अपने एक गीत में किया है—

कोडि गज भोज दे चालीयो कलावत,
लाख उपरि कमण वाग लेसी।
अम्हां मोतादि लख मोल कुण आपसी,
दान कुण रीझ सो लाख देसी[2]।

इतना होने पर भी रायसिंहजी का वर्णन या तो कवि ने उनकी दानशीलता को लेकर किया है अथवा मुगल सेना के वीर सेनापति के रूप में, हिन्दुत्व के रक्षक रूप में नहीं। यह एक ऐसी बात है जिससे कवि की आन्तरिक राष्ट्रीय भावना का कुछ पता चलता है।

इनके अतिरिक्त समस्त हिन्दुस्थान की राजनैतिक एकता की ध्वनि भी इनकी कविता में मुखरित हुई है। दिन-पर-दिन फैलते हुए मुगल साम्राज्य के बीच हिन्दू-जाति की विपन्नावस्था कवि से छिपी नहीं है। ऐसे समय में यदि कोई भी इसके विरुद्ध शस्त्र उठाता है, तो कवि का मन-मयूर नाच उठता है। उनकी विभिन्न फुटकर रचनाओं से उनकी राष्ट्रीय भावना स्पष्ट है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

(१) राउल रांण राउ इन राजा, अकबरि नरि विनिड़िया अनेक।
वुजड़ो धरो अभिनिमा वुवा, हींदू कारि तुहालौ हेक।
(—गीत सुरतांण जंमलौत रो से) :

(२) होवुआंण आज पंडित हुऔ वोदग व्रांन विरांमीयौ।
प्रागवड़ आज पड़ियौ प्रथी राउ सोढ विसरांमीयौ।
(—राउ श्री सुरतांण रा कवित्त से) :

(३) अकज सकज ओलपण पात्र कुपात्र परिघण
हींदु ध्रम राहावण कवी मन वात परीछण
गज घटा आगमण तुरी गज दांति चखावण
देअण अप भरी थप कोत दहु दसी चलावण

१. डिंगल में वीररस, पृ० ५१ :
२. ह० प्रति नं० C. 23. 22, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता :

सुरतांण रा कोमलि भाली अली धण देसा लपां धरे।
अरबद पहाड़ि अरबद पह रो कारां पळि अवतरे॥

(—राउ श्री सुरतांण रा कवित्त से):

(४) मो उभै मेवाड़ वीर कहै कुण वीड़वै।
आडो हु आडेवळं कोटे हुद ज किमाड॥
सुपढियो सैदांह, विढण विच्यारे वीर गुर।
मलीया खेतां मुगलां कढिया कछवाहांह[1]॥

(—दोहा सोलंकी वीरमदेजी रा से):

(५) धर कारण मुवो धढ़ि धारें, हे धाटां संमुहे हिचि।
खगि तोरण बाधौ सीसोदै, ब्रहम विसन माहेस विच।

(—फुटकर गीत से):

(६) अनि कुण मात गात ईयंतां, जोवइ घात न काइ जुई।
होंदवा छत्र वात सोह हुई, हुवा पात्र मुध जात हुई।
डरिय वोध वळिद वीडरियं, सुधरम पांगुरियो सुतणि।
भवु समरियो श्रीया घर भरियो, रांणो संभरियो रसणि[2]।

(—फुटकर गीत से):—

(७) सांगो धरम सहाय, बाबर सूं भिड़ियो बिहस।
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी॥१५॥

अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हींदू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी॥२५॥

जग जाडा जूझार, अकबर पग चांपै अधिप।
गो रावण गुंजार, पिड में राण प्रतापसी॥२६॥

थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी॥३१॥

बडी बिपत सह बीर, बडी कीत खाटी बसू।
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी[3]॥६१॥

(—विरुद छिहत्तरी से):

इसी प्रकार अपने एक गीत में इन्होंने जोधपुर के राव चन्द्रसेन और मेवाड़ के राणा प्रताप दोनों की एक साथ कीर्ति गाई है—

१. ये सभी उदाहरण प्रति नं० C. 23. 22, (ए० सो०, कलकत्ता) से दिए गए हैं।
२. ये सभी उदाहरण प्रति नं० C. 15. 14, (ए० सो०, कलकत्ता) से दिए गए हैं।
३. महाराणायशप्रकाश:

अणदगिया तुरी उजळा असिमंर, चाकर हुवंण न डिगिया चीत।
सारा हीदुकार तणै सिरि, पातल नै चन्द्रसेन प्रवीत।
पवंग अदग सज सापड़िया लग, परहंड तणी न लागी षेह।
रांण उदैसीघ तणौ अरेहण, राऊ मालदे तणौ अणरेह[1]। (गीत नं० १७)

कवि ने बहुत लम्बी उम्र पाई थी; अतः अनुमान किया जा सकता है कि इन्होंने प्रचुर परिमाण में लिखा होगा। अभी तक इनकी विरुद-छिहत्तरी की ही अधिक चर्चा हुई है, किन्तु खोज करने पर इनकी कुछ बड़ी रचनाओं का और पता चलता है। ये सभी फुटकर रचनाएँ हैं। कवि की कुछ अपेक्षाकृत बड़ी रचनाओं के नाम ये हैं—

(१) बिरुद छिहत्तरी[2]
(२) किरतार बावनी[3]
(३) राउ श्री सुरतांण रा कवित्त[4] (११ कवित्त)
(४) दूहा सोळंकी वीरमदेजी रा[5] (६० दोहे)
(५) झूलणा रावत मेघारा[6] (१७ छन्द)
(६) गीत राजि श्री रोहितासजी रौ[7] (१० गीत, १ कवित्त और २ दोहे)
(७) झूलणा राव श्री अमरसिंघजी गजसिंघोत रा[8] (६४ छन्द)
(८) श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत[9] (इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है)।

इनके अतिरिक्त, इनकी अनेक फुटकर रचनाएं विविध छन्दों और गीतों के रूप में विभिन्न हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालयों में मिलती हैं। एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की हस्तलिखित प्रतियों में ६० के लगभग गीत मिलते हैं। यहां की एक प्रति में नवाब मोहवत-खान की मृत्यु पर कहे गए ८ दोहे भी मिलते हैं[10]। नैणसी तथा दयालदास की ख्यातों में भी गीत आदि मिलते हैं। कुछ गीतों का प्रकाशन भी हुआ है[11]।

---

१. ह० प्रति नं० C. 15. 14 से,—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता :
२. महाराणायशप्रकाश में प्रकाशित, तथा (क) बख्शी जागीरसिंघजी बछराज, जोधपुर, और (ख) श्री प्रताप सभा, उदयपुर, द्वारा इसी नाम (बिरुद छिहत्तरी) से प्रकाशित। —इनमें कुछ पाठ भेद पाए जाते हैं।
३. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, खण्ड २, पृ० २१६१ :
४. प्रति नं० C 23. 22, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता.
५. वही :
६. वही :
७. प्रति नं० P. 30 d (136),—वही :
८. प्रति नं० 448. B IV/II. I,—वही :
९. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १८५–१८६ :
१०. प्रति नं० C. 23. 22 :
११. (क) गीत मंजरी, (सादूल ओरियन्टल सिरीज, बीकानेर); तथा (ख) राजस्थानी वीर गीत भाग १, (—वही) में :

कहा जाता है कि राठौड़ पृथ्वीराज की वेलि की प्रामाणिकता का प्रश्न उठा, तो ये भी चार सम्मतिदाताओं में एक थे। इनकी सम्मति पृथ्वीराज के पक्ष में नहीं थी[1]। किन्तु इनका एक गीत, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति में मिला है[2], जिसमें इन्होंने 'वेलि' की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उसे पांचवां वेद और उन्नीसवां पुराण बताया है। गीत का प्रथम दोहला यह है—

> रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेल तास कुण करै वखांण।
> पांचमो वेद भाखीयो पीथळ, पुणीयो उगणीसमो पुराण।

कवि की यह उक्ति 'वेलि' सम्बन्धी उनकी विपरीत सम्मति के विरोध में है। सम्भव है कि बाद में इन्होंने अपना मत बदल दिया हो।

इस सम्बन्ध में यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि दुरसाजी ऐसे समर्थ कवि का स्वतन्त्र अध्ययन होना अत्यावश्यक है।

सांदू माला :

इनके विषय में पहले लिखा जा चुका है। एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की हस्तलिखित प्रतियों में[3] विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों पर लिखे गए इनके ६० के लगभग गीत और मिलते हैं। अन्यत्र भी अधिक गीत मिलने की सम्भावना हो सकती है। महाराणा अमरसिंह प्रतापसिंघोत पर कहे गए एक गीत के दो दोहले देखिए—

> तां हिंदवाण ताम हिंदू भ्रम, तां हिंदूंही हिंदूंवह दीस।
> जां जग जेठ जोध जोगणपुर, सीसौदियो न नामैं सीस।
> भिड़ परवत ठेलियां न भाजै, जावो सिर फोड़े जवन।
> ऊतर डिगै न डिगै अमरसी, मेर ऊपलो मखत मन[4]।

राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवियों के इस स्वर को ठीक से समझने के लिए यहां यह कह रखना जरूरी है कि 'मुगल निरंकुशता वास्तव में राष्ट्रीय न थी।....भारत के मुगल सम्राट फारसी संस्कृति के प्रतीक हो गए, वे नौरोज परम्परागत धूमधाम से मनाते थे। उन्होंने कला में फारसी प्रविधियों को प्रोत्साहन दिया[5]। अकबर ने, जो मुगल-शासकों में सबसे अधिक भारतीय था, फारसी को राजभाषा के रूप में आसीन किया। यह घटना अर्थगर्भित है कि उसने पानीपत की विजय के बाद हेमू के कटे शीश को काबुल में प्रदर्शन के लिए भिजवाया था।

---

१. 'वेलि', (हिन्दुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ४८ :
२. प्रति नं० १३६ :
३. प्रति नं० C. 57. 53 तथा C. 16. 16 :
४. राजस्थानी वीर गीत; गीत नं० ८१ :
५. के. एम. पन्निकर : Geographical Factors in Indian History—
श्री रामगोपालसिंह नरूला द्वारा 'हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास' में उद्धृत, पृ० ९३, फुटनोट :

पश्चिमी यूरोप के राज्यों की तरह, मुगल राज्य एक राष्ट्रीय राज्य न था[१]। इन कवियों ने इस बात को ठीक से समझा था। इस निरंकुशता के विरुद्ध, उन्होंने जो भी आवाज उठाई, वह वाणी का गौरव है। यदि विशाल दृष्टि से देखा जाए, तो हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक आधारशिला के रूप में, इन कवियों का स्थान है।

(ख) स्त्री कवि

झीमा (झीमी) चारणी :

उमादे को सम्बोधित कर कहे हुए इनके फुटकर दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। उमादे, अचलदास खीची की सात पत्नियों में एक थी[२]। दोहों से पता चलता है कि वह सांखली थी। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रतियों में[३], 'अचलदास खीची री वात' में, अचलदास की दो राणियों, उमादे और राणावत लालां या लीलादेवी, के नाम आए हैं। लीलादेवी महाराणा मोकल की बेटी थी। अचलदास की मृत्यु पर, सब राणियों ने जौहर किया था। यह घटना संवत् १४९० की है, जिसकी चर्चा 'अचलदास खीची री वचनिका' के प्रसंग में कर आए हैं। इस दृष्टिकोण से विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में झीमा ने काव्य रचना की होगी। अन्यत्र झीमा का समय पन्द्रहवीं शताब्दी से १५६० के लगभग अनुमान किया गया है[४]। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की एक हस्तलिखित प्रति[५] में, 'झीमी चारणी' की रचना 'भ्रासड़ी' का पता चलता है, किन्तु उसे देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हो सका। कहा जाता है कि अचलदास का लीलादेवी पर अधिक प्रेम था। एकबार जब वे उमादे के महल में आए तो झीमा ने उनके सम्मुख, उमादे को लक्ष्य कर कुछ दोहे कहे, जिनमें से कुछ ये हैं[६]—

> धिन उमादे सांखली तैं पिय लियो मुलाय।
> सात बरसरो बांछड़चो तो किम रैन बिहाय॥
> पगे बजाऊँ घूंघरू, हाथ बजाऊँ तूंब।
> उमा अचल मुलावियो, ज्यूं सावन की लूंब॥
> अचल एराकया न चढ़े रोढ़ा रो असवार।
> लाला लाल मेवाड़ियां उमा तीज बल भार॥

---

१. नरूला : हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ९३ :
२. राजस्थान-भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६,—श्री जुगलसिंह खीची का लेख :
३. प्रति नं० २१०(६९), तथा १४५(ख) आदि।
४. डा० सावित्री सिन्हा : मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० २८–३१ :
५. प्रति नं० २८ :
६. (४)—से :

किरती माथे ढल गई, हिरणी लूबां खाय।
हार सटे पिय आणियों, हँसे न सामो थाय[1]॥

पदमा सांदू :

इनके विषय में कुछ बारहट शंकर के प्रसंग में लिखा जा चुका है। इनका जन्म संवत् १६२५-३० के लगभग होना कहा जाता है। इनके पिता का नाम ऊदा सांदू था। अपने बड़े भाई सांदू माला से इन्होंने शिक्षा पाई थी[2]। इनका विवाह बारहट शंकर से हुआ था। मिश्रबन्धुओं ने सांदू माला को इनका पिता बताया है[3], जो ठीक नहीं है।

संवत् १६५४ में बादशाह अकबर ने अमरसिंह को पकड़ने के लिये अरबखां के नेतृत्व में फौज भेजी। अमरसिंह को अफीम की लत थी। उसके सो जाने पर जगाने का साहस कोई नहीं करता था। इस पर पदमा ने एक गीत द्वारा उसे जगाकर युद्ध के लिये बढ़ावा दिया। पूरा गीत दयालदास की ख्यात[4] में है जिसके प्रथम दो दोहले देखिए—

सहर लूटतो सदा तूं देस करतो सरद, कहर नर पड़ी थारी कमाई।
उजागर झाल खग जैतहर आभरण, अमर अकबर तणी फौज आई।
बीकहर सीहधर मार करतो वसू, अभंग अरवन्द तो सीस आया।
लाग गयणाग भुजलोल खग लंकाळा जाग हो जाग कलियाण जाया।

इस संबंध में एक आश्चर्यजनक बात यह है कि यह गीत कुछ पाठ-भेद के साथ, सादू माला-कृत लिखा मिलता है[5]। किन्तु दयालदास की ख्यात से स्पष्ट है कि यह पदमा का ही कहा हुआ है।

पदमा के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह अमरसिंह के काम आने पर, उसकी अन्य राणियों के साथ सती हो गई थी। पर यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। दयालदास की ख्यात में लिखा है-'अठ अमरसिंघजी रै लारै राणी सती हुई। बाकी री मांणस वा पदमा तथा साथ बीकानेर आया'[6]। यही नहीं, अमरसिंह की मृत्यु पर कहे गए, उसके निम्नलिखित दो दोहे भी ख्यातकार ने दिए हैं—

आरब मार्‌यौ अमरसी, वड हथ्थे वरियाम।
हठ कर खेडै हारणो, कमधज आयौ काम॥
कमर कटै उडकै कमंध, भमर हुएलो भार।
आरब हन होदै अमर, समर बजाई सार॥

---

१. कुछ पाठान्तर के साथ यह दोहा, नैणसी की ख्यात, भाग २, (पृ० २३६) में जाड़ेचा फूल धवलोत के पुत्र लाखा का कहा हुआ बताया गया है। दोहा यों है—
किरती माथै ढल गई, हिरणी गई उलत्थ।
सुवै निचीती गोरड़ी, उर माथै दे हत्थ॥
२. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी,–(ह० प्र०–सू० जा० पु०, कल०):
३. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३६०, (द्वितीय संस्करण) :
४. ख्यात, भाग २, पृ० १३१-१३२ :
५. प्रति न० C. 16. 16, गीत न० ३, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता :
६. ख्यात, भाग २, पृ० १३३ :

इससे पता चलता है कि वह सती नहीं हुई थी।

चम्पादे :

यह जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी और राठौड़ पृथ्वीराज की पत्नी थी। चांपादे बहुत अच्छी कवि थी। उसके और पृथ्वीराज के काव्य विनोद की कई आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं[1]। कहा जाता है कि एक बार पृथ्वीराज को दर्पण में अपने सिर पर, एक सफेद बाल नजर आया, जिसे उन्होंने उखाड़ कर फेंक दिया। उनकी इस चेष्टा पर, पीछे खड़ी चांपादे को हंसी आ गई जिसे दर्पण में पृथ्वीराज ने देख लिया। इस पर उन्होंने निम्नलिखित दोहा कहा—

पीयळ धोळा आविया बहुली लागी खोड़।
कामण मत्त गयंद ज्यूं ऊभी मुक्ख मरोड़॥

अपने पति की ग्लानि को मिटाने के लिये चांपादे ने तत्काल ही कुछ दोहे कहे, जिनमें से एक यह है—

हळ तो धूना धोरियां पंथज गघ्घां पाव।
नरां तुरां अर बनफलां पक्कां पक्कां साव[2]॥

इनके कहे हुए फुटकर दोहे बताए जाते हैं।

(ग) कुछ अन्य फुटकर कवि

उल्लिखित कवियों के अतिरिक्त बहुत से और भी ऐसे है जिनकी फुटकर रचनाएँ गीतों, दोहों और कवित्तों आदि के रूप में यत्र-तत्र मिलती हैं। ऐसे कुछ कवियों मे निम्नलिखित के नाम उल्लेखनीय हैं[3]—

पीठवा मीसण :

ये महाराणा कुंभा के समकालीन थे। कुंभा का शासनकाल संवत् १४९० से १५२५ तक है और लगभग यही समय इनका भी होना चाहिए। सिवियांणे के जैतमाल सलखावत की प्रशंसा में कहा हुआ इनका एक गीत बहुत प्रसिद्ध है।

अखा बारहट :

इनके पिता का नाम भाना था, जो जोधपुर के राव मालदेव के कृपापात्र थे। पांच साल की आयु में ही अखा के माता पिता का देहान्त हो गया। कहा जाता है, तब मालदेव की राणी झाली स्वरूपदे ने इन्हें पाला पोसा। मालदेव के पुत्र उदयसिंह इनके हमजोली थे और ये प्रायः उन्ही के साथ रहा करते थे। कारणवश, उदयसिंहजी ने चारणों के गांव छीन लिए थे। इसके प्रतिवाद स्वरूप संवत् १६४३ में आउए ठिकाने में चारणों ने धरना दिया। इन्हीं धरने वालों से सुलह का मार्ग निकालने के लिये, उदयसिंह ने अखा को भेजा। अखाजी सुलह कराने की बजाय स्वयं धरने में शामिल हो गए। इस पर उदयसिंह ने इनको

---

१. श्री नरोत्तमदास स्वामी संपादित-'वेलि', प्रस्तावना, पृ० २४ :
२. डा. मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीररस, पृ० ३७ :
३. देखें 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी'–(ह०प्र०–सू०जा०पु०, कल०):

कहलवाया कि इससे अच्छा तो कटार पर बैठकर मर जाना था। इन्होंने ऐसा ही किया। कटार पर बैठकर प्राण त्याग दिए।

लूणकरण मेहडू :

ये गुजरात के मोरवी ग्राम के रहनेवाले थे और झाला राजपूतों के कृपापात्र थे। मोरवी गांव इनको झालाओं से मिला था। ये महाराणा मोकल के समकालीन बताए जाते हैं। मोकल का समय संवत् १४७८ से १४९० है। इस हिसाब से ये पन्द्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों के कवि ठहरते हैं।

भीमा आसिया :

ये मारवाड़ के पंचभदरा परगने के भांडियावास गांव के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम वैरीसाल था। ये महाराणा उदयसिंह के समकालीन थे और एक समय दुरसा आढा के भी समकालीन रहे थे। एक बार इन्होंने एक भोज दिया जिसमें दुरसा आढा भी अपने पुत्र किसना आढा के साथ गए थे। भीमा की प्रशंसा सुन किसना ने कुछ आक्षेप किया, जिस पर दुरसाजी ने निम्नलिखित दोहा, भीमा की प्रशंसा में कहा—

> किसना संसारो कहे वूठा मेहां वत्थ।
> भीमा ने कहतां भलो भोंनें वरजे मत्त॥

चूंडोजी दधवाड़िया :

ये सुप्रसिद्ध भक्त कवि माधौदास के पिता थे और मेड़ते के राव वीरमदेव के कृपापात्र थे। इनके बनाए दो ग्रन्थों–(१) रामलीला और (२) चाणक्य वेल की सूचना मिलती है, किन्तु ये उपलब्ध नहीं होते। ये भक्त और अच्छे कवि थे।

कुछ अन्य नाम इस प्रकार हैं[1]—

सांवळ (१५६०), सादूळ (१६००), देवौ (१६३२), हरनाथ (१६६०), हरपाल (१६६०), नरूजी (१६६०), किशनदास (१६६०), डूंगरसिंह (१६६२), नेतौ (१६६२), हरसौ (१६६५) आदि आदि।

कुछ राजवंशीय पुरुषों के भी फुटकर गीत, दोहे, कवित्त आदि कहे बताए जाते हैं। ऐसों में निम्नलिखित के नाम प्रसिद्ध हैं[2]—

महाराणा कुंभा (संवत् १४९०–१५२५)
महाराणा उदयसिंह (१५९४–१६२८)
महाराणा प्रतापसिंह (१६२८–१६५३)
महाराणा अमरसिंह (१६५३–१६७३)
महाराजा रायसिंह (बीकानेर) (१६२८–१६६८)
महाराजा मानसिंह (आंबेर) (१६५६–१६७१)

---

१. डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ०१९१-१९२ :
२. वही :

अध्याय ७

पौराणिक और धार्मिक रचनाएँ

(प्रबन्ध और मुक्तक)

ऐतिहासिक रचनाओं के अतिरिक्त, पौराणिक और धार्मिक विषयों को लेकर प्रचुर साहित्य की सृष्टि की गई। राम और कृष्ण की पौराणिक कथाओं को आधार मानकर तो काव्य-रचना बहुत हुई ही, वेदान्त और नाथ पंथ से संबंधित तथा प्रभावित कविताएँ भी लिखी गईं। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राजस्थानी कवियों ने कृष्ण-चरित से संबंधित, कृष्ण और रुक्मिणी के प्रसंग को लेकर तो मनोहर काव्यों की सृष्टि की, किंतु राधा और कृष्ण अथवा कृष्ण के बृजविहारी चरित को उन्होंने प्रायः छूआ भी नहीं और वह यदि छूआ भी गया, तो केवल प्रचलित शैली के निर्वाह मात्र के लिए। विशेषतया आलोच्यकाल में तो राधाकृष्ण अथवा गोपीकृष्ण को लेकर कोई विशेष रचना नहीं लिखी गई प्रतीत होती है। जहां तक मीराँबाई का प्रश्न है, उसके विषय में अन्यत्र लिखा गया है। आलोच्यकाल से पूर्व दो महत्त्वपूर्ण रचनाओं का पता चलता है—(१) **'हरिचंद पुराण'** और (२) **'सप्तसती रा छन्द'**।

(१) हरिचन्द पुराण :

इसके रचयिता जांखो मणिहार थे, जिन्होंने संवत १४५३ में बोलचाल की राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में इस ग्रन्थ की रचना की। बीसलदेव रास के पश्चात् बोलचाल की भाषा में लिखा गया, यह दूसरा प्राचीन जैनेतर ग्रन्थ है। 'चउपही', 'वस्तु', 'अठताली' आदि छन्दों में लगभग ६०० श्लोक परिमाण में रचित, इसमें सुप्रसिद्ध महाराजा हरिश्चन्द्र की कथा का वर्णन किया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में सुरक्षित है और श्री अगरचन्दजी नाहटा ने इसका विवरण भी दिया है[१]। रचना के उदाहरण-स्वरूप दो छन्द देखिए—

> आज पराछित म्हारो गयो, स्वांमी हाथ मंरण मोहि भयो।
> फिरि परदखिणां दीधी जाय, सरण गोसाईं तुह्मारा पाय।
> चलंण लागि सिर नांयो नारि, हाहाकार भयो संसारि।
> निहसि खड्ग घाव जड करइ, सुर संकर भुज थंभी धरइ।

(२) दूसरी कृति **सीधर या श्रीधर कृत सप्तसती रा छन्द** है, जो १२१ छन्दों की रचना है। यह वीररसात्मक रचना है जिसमें देवी की स्तुति और उनके द्वारा महिषासुर, मधुकैटभ आदि दैत्यों के मारे जाने और विश्व में शांति स्थापित किए जाने का बहुत ही रसपूर्ण और हृदयग्राही वर्णन किया गया है। संवत् १६६७ में लिखित, संस्कृत आर्याओं के साथ इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में है[२]। इसकी भाषा, शैली और वर्णन-प्रवाह देखने से

---

१. शोध-पत्रिका, मार्च, १९५८ :
२. प्रति नं० २८०/१२ :

अनुमान होता है कि इसका कवि और रणमल्ल छन्द का कवि श्रीधर संभवतः एक ही व्यक्ति था। डा० मं० र० मजमुदार के विवेचन से भी ऐसा ही प्रतीत होता है[1]। रणमल्ल छन्द का रचनाकाल संवत् १४५५ के आसपास माना गया है[2]। इस प्रकार कवि का रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। रचना का नमूना इस प्रकार है—

चूरंति चारणि कलह कारणि दैत्य दह दिसि दोडयं।
रणि रुंड रोलवि ढींच ढोलवि रय महारय मोडयं।
तत्तार तारे सेन सारे रुधिर रवि तलि रोलयं।
मुष महिष मंजणि भार भंजणि कोध हाल कलोलयं।

आलोच्य काल से पूर्व की होने से इनका विशेष परिचय यहां नहीं दिया गया है। अब आलोच्यकाल के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं के विषय में लिखा जाता है।

पृथ्वीराज राठौड़ :

इनसे हिन्दी संसार परिचित है। ये बीकानेर के राव कल्याणमल के बेटे और राजा रायसिंह के छोटे भाई थे। डा० सत्यप्रसाद अग्रवाल ने इनको महाराजा जयसिंह का छोटा भाई और कल्याणसिंह का पुत्र बताया है[3], जो ठीक नहीं है।

इनका जन्म संवत् १६०६ और स्वर्गवास संवत् १६५७ में हुआ। कहा जाता है कि इनके तीन विवाह हुए थे—प्रथम महाराणा उदयसिंह की पुत्री से, दूसरा जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी लालादे से और तीसरा लालादे की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहन चांपादे से। चांपादे स्वयं भी अच्छी कवियित्री थी।

राजस्थानी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में इनका स्थान है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये उच्चकोटि के कवि, उच्चकोटि के भक्त और उच्चकोटि के वीर थे। अपने जीवनकाल में ही, ये कवि और भक्त, दोनों रूपों में प्रसिद्ध प्राप्त कर चुके थे। इनका साहित्यिक ज्ञान बड़ा गंभीर और सर्वांगीण था। डिंगल, ब्रज और संस्कृत, तीनों भाषाओं के ये प्रौढ़ विद्वान् थे। साहित्य के अतिरिक्त ज्योतिष, संगीत, दर्शन, छन्द आदि शास्त्रों में भी इनकी अच्छी गति थी। नाभाजी ने भक्तमाल में इनके विषय में निम्नलिखित छप्पय लिखा है—

सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुण नवरस
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरिजस
परि दुख विदुष सश्लाघ्य वचन रसना जु उचारै
अर्थ विचित्रन मोल सबै सागर उद्धारै
रुकमणी लता बरणन अनुप बागीश वदन कल्याणसुव।
नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव॥

---

१. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० १०८–११०:
२. के० ह० ध्रुव : प्राचीन गुर्जर काव्य :
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४१, (सं० २००७):

अनेक चमत्कारिक घटनाएं भी इनके जीवन के साथ जुड़ गई हैं। इनकी वेलि को आढा दुरसा ने पांचवां वेद और उन्नीसवां पुराण बताया है। कर्नल टाड और डा० टैसीटरी जैसे विद्वानों ने जी खोलकर इनकी प्रशंसा की है। कर्नल टाड के शब्दों में,–Prithi Raj was one of the most gallant chieftains of the age and like the Troubadour princes of the West, could grace a cause with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword; nay in an assembly of the bards of Rajasthan the plan of merit was unanimously awarded to the Rathore cavalier[१].

ये बड़े निर्भीक, स्पष्टवक्ता और स्वतंत्रता के पुजारी थे। पराधीन राष्ट्र की दयनीय स्थिति से वे अनभिज्ञ नहीं थे। स्वतंत्रता के लिये मर मिटनेवाले वीरों के प्रति उनकी असीम श्रद्धा थी। दुरसा आढा और पृथ्वीराज राठौड़ तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि कवि थे। राणा प्रताप के यशोगान की पृष्ठभूमि में अकबर के लिए उनके 'अकबरियाह', 'तुरकड़ा', 'ठग' आदि शब्दों के प्रयोग, विदेशी साम्राज्य के प्रति उनकी मनोभावना स्पष्ट करते हैं—

(१) अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी॥

(२) जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार।
है राख्यो खत्री ध्रम राणे, सारा ले बरतो संसार[२]॥

डा० टैसीटरी के अनुसार,–He was an admirer of courage and unbending dignity and a sworn enemy of degradation and cringing servility. With the same freeness with which he would compose a song in praise of an act of gallantry or of determination performed by a friend or by a foe, he would condemn in verses his own brother, the Raja of Bikaner, or even the all powerful Akbar for any act of weekness or of injustice committed by them[३].

अभी हाल ही में, डूंगर कालेज, बीकानेर के स्व० प्रोफेसर चन्द्रदेवजी शर्मा तथा श्री मुकनसिंह बीदावत, ने एक तत्त्वान्वेषी नाम से स्थानीय साप्ताहिक पत्र 'सेनानी' में[४], 'क्या डिंगल-कवि पृथ्वीराज अकबर के दरबारी थे' ? शीर्षक लेख में कवि पृथ्वीराज के जीवन सम्बन्धी कई अद्यावधि पुष्ट मान्यताओं को चुनौती दी है। उनकी धारणा है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबारी कवि नहीं थे और न ही राणा प्रताप को उन्होंने कोई पत्र लिखा।

विद्वान् लेखकों ने, अपने मत की पुष्टि के लिये तत्कालीन इतिहास और उक्त तथ्य से सबं-

---

१. Annals of Mewar.
२. महाराणायशप्रकाश से :
३. डा०टैसीटरी संपादित 'वेलि',–Introduction, page III.
४. ४ जनवरी, १९५८ के अंक में :

धित प्रायः सभी सामग्री का काफी गहराई से आलोड़न किया प्रतीत होता है[1]। उनकी इस मान्यता के खण्डन करने की चेष्टा यद्यपि श्री अगरचन्दजी नाहटा ने की है, तथापि उनके तर्क विशेष सन्तोषजनक एवं पुष्ट नहीं हैं[2]। इसमें सन्देह नहीं कि प्रो० शर्माजी और बांदावतजी के तर्कों में बल है और वे गम्भीर ऐतिहासिक अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं। इतिहास के विद्वानों को इस ओर प्रेरित होना चाहिए।

अकबर के दरबार में होने या न होने से पृथ्वीराज के काव्य-सौष्ठव में कोई अन्तर नहीं आता। चाहे वे अकबर के दरबारी रहे हों या न हों, उसके कृपापात्र तो अवश्य थे। जनश्रुति भी इसी ओर है। नैणसी की ख्यात में अकबर द्वारा उनको गागरोणगढ़ दिए जाने का उल्लेख मिलता है[3]। जहां तक राणा प्रताप और पृथ्वीराज के बीच हुए पत्र-व्यवहार की ऐतिहासिकता का प्रश्न है, उसकी सचाई में संदेह की काफी गुंजाइश है। उल्लिखित इतिहासकारों के अतिरिक्त, ओझाजी ने भी इस बात को सिद्ध किया है कि महाराणा प्रताप के पास पहाड़ों में धन की कोई कमी नहीं थी। नाहटाजी ने टाड के कथन और दुरसा आढ़ा के दोहों का प्रमाण देकर प्रताप की आर्थिक विपन्नता का जो हवाला दिया है, वह शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों के आगे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। ओझाजी के अनुसार, 'महाराणा प्रताप अपनी सेना के साथ निडर होकर पहाड़ों में रहता था। यदि महाराणा प्रताप के परिवार को भी भोजन मिलने में इतने कष्ट होते, तो उसकी संपूर्ण सेना तथा उसके परिवार को तो कई दिन लगातार भूखों रहना पड़ता होगा। फिर उसकी सेना लड़ती कैसे? इसलिये कर्नल टाड द्वारा वर्णित महाराणा प्रताप की आपत्तियों में कोई ऐतिहासिक सत्यता नहीं है। ...फिर यदि कर्नल टाड के कथन में कुछ

---

१. वे लिखते हैं—"दलपत-विलास, वीर विनोद, बांकीदास की ऐतिहासिक बातें, नाभादास का भक्तमाल, राघोदास का भक्तमाल, २५२ वैष्णवों की वार्त्ता, अकबरनामा, मुंतखाब-उत-तवारीख, तबकाते अकबरी, आसिदबेग का वृतान्त, भारत के प्राचीन राजवंश, डा. रघुवीरसिंह कृत, 'पूर्व आधुनिक राजस्थान', बीकानेर की ख्यात मुंशी सोहनलाल प्रणीत, टाड राजस्थान प्रभृति किसी भी पुस्तक में बीकानेर के पृथ्वीराज कल्याणमलोत के लिए अकबर का दरबारी होना नहीं लिखा है तथा न अकबर के नवरत्नों की कोई सूची ही दी है। जहां पृथ्वीराज कल्याणमलोत अकबर का दरबारी ही नहीं था, वहां पृथ्वीराज बीकानेरी से राणा प्रताप को कोई पत्र लिखवाना कैसे सम्भव हो सकता है? यही नहीं, तत्कालीन मुसलमान इतिहासकार, कविराजा श्यामलदास, मुंहणोत नैणसी, कविराज बाकीदास, बीकानेर के ख्यातकार प्रभृति किसी भी इतिहासकार ने कहीं पर भी यह नहीं लिखा है कि राणा प्रताप के कोई पुत्री भी थी। डा० एस० आर० शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महाराणा प्रताप' के पृ० ११०-१११ में स्पष्ट रूप से इस 'मन गढ़न्त' बात को अस्वीकृत किया है। डिंगल के महान् विद्वान् स्व० डा० एल० पी० टेसिटोरी ने भी कवि पृथ्वीराज के इस पत्र को महत्ता नहीं दी है। डा० गोपीनाथ शर्मा एम० ए०, पी० एच० डी० ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक 'मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स' में इसकी संभावना तक को भी अस्वीकृत किया है। ....तत्कालीन मुसलमान इतिहासकार भी राणा प्रताप के बल वैभव के सम्मुख नत मस्तक थे"।

२. 'सेनानी' (साप्ताहिक, बीकानेर), २७ जनवरी, १९५८; तथा ८ फरवरी, १९५८ के अंकों में प्रकाशित, "हां! कवि पृथ्वीराज अकबर-दरबार में थे" शीर्षक लेख।

३. ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १८८:

भी सचाई होती तो तात्कालिक लेखक अबुल फजल, जो राजपूतों की दुर्दशा को बहुत बढ़ाकर लिखने में सिद्धहस्त है, इसका विस्तृत वर्णन अवश्य करता। परन्तु उसने 'अकबरनामा' में आपत्ति-ग्रस्त महाराणा के अधीनता स्वीकार करने के लिये अकबर को पत्र लिखने का उल्लेख तक नहीं किया"[1]। राणा प्रताप और पृथ्वीराज के अतिरिक्त राणा अमरसिंह और रहीम खानखाना के बीच हुए पत्र-व्यवहार का प्रवाद भी प्रचलित है[2]।

पृथ्वीराज की निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

(१) **वेलि किसन रुकमणी री**
(२) **ठाकुरजी रा दूहा**
(३) **गंगाजी रा दूहा**
(४) **फुटकर दोहे और गीत आदि :**

इनके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने इनके एक ग्रन्थ 'प्रेमदीपिका' का उल्लेख किया है, जो ब्रजभाषा की रचना है[3]। इसी प्रकार डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'श्यामलता' का[4], किंतु इसका कोई विशेष परिचय उन्होंने नहीं दिया है। दोनों रचनाएँ ही सन्देहास्पद हैं, क्योंकि न तो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में, (जहां पृथ्वीराज की सभी रचनाएँ उपलब्ध हैं), ये पाई जाती हैं, और न ही डा० टैसीटरी, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, तथा डा० मोतीलाल मेनारिया प्रभृति राजस्थानी के विद्वानों ने इनका उल्लेख किया है। हां, ब्रजभाषा में लिखित कवि के फुटकर दोहे अवश्य मिलते हैं।

वेलि किसन रुकमणी री :

यह ३०४ छन्दों की कृति है, जिससे साहित्य-संसार भली-भांति परिचित है। विद्वानों ने

---

१. ओझा निबन्ध संग्रह, तृतीय और चतुर्थ भाग, पृ० ५४, (प्रथम संस्करण, १९५४) :

२. कहते है जब संवत्* १६७० में मुगल सेना ने मांडलगढ़ व उदयपुर पहुंचकर पहाड़ी इलाकों को लूटना और गावों को जलाना शुरू किया और वह चावंड तक पहुच गई तो अमर छप्पन के पहाड़ों में चले गए। अपनी निराशजनक स्थिति का सन्देश उन्होंने अपने मित्र रहीम खानखाना को इस प्रकार लिख भेजा—

हाडा कूरम राठवड़, गोखां जोख करंत।
कहज्यो खानाखान नें, वनचर हुवा फिरंत॥
तँवरां सूँ दिल्ली गई, राठोड़ा कनवज्ज।
अमर पयँपै खान नें, सो दिन दीसै अज्ज॥

(—राजस्थान रा दूहा, पृ० ७८; संपा० —श्री नरोत्तमदास स्वामी) :

इस पर खानखाना ने लिखा—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण॥

(—डा० कन्हैयालाल सहल : राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद) :

* गहलोत : राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४६ :

३. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग :

४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि : पृ० ४२, (संवत् २००७) :

इसे डिंगल की सर्वश्रेष्ठ रचना बताया है। अपने रचनाकाल के कुछ समय पश्चात् ही, इसने पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली थी, जो आज पर्यन्त बढ़ती ही गई है। पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुरसा आढा ने, इसे पांचवां वेद और उन्नीसवां पुराण कहा है; नाभाजी ने 'रुकमनी-लता-वरणन अनुप' कहकर भक्तकवि की प्रशंसा की है और एक अज्ञात राजस्थानी कवि ने एक रूपक में 'अमृत वेलि' कहकर निम्नलिखित छन्द में इसका महत्व इस प्रकार आँका है—

वेद बीज जळ विमळ सकति जिण रोपी सदर
पत्र दोहा गुण पुहप वास लोभी लखमीवर
पसरी दीप प्रदीप अधिक गहरी आडम्बर
जिकें शुद्ध मन जपै लेउ फल पामें अम्मर
विस्तार कीय जुग जुग विमळ धन्य कृष्ण कहणार धन ।
अमृत वेलि पीथळ अचल, तैं रोपी कल्याण तन ॥

इनके अतिरिक्त वेलि की स्पर्धा में सांया झूला रचित 'रुकमणी हरण' तथा जैन कवि कुशललाभ रचित, 'ढोला-मारूरी चौपई' के अकबरी प्रवादों का जुड़ जाना भी वेलि की लोक-प्रसिद्धि का पुष्ट प्रमाण है[1]। मुन्शी देवीप्रसाद के अनुसार, कुछ ईर्ष्यालु लोगों को इससे डाह भी हुई[2], 'लेकिन उनकी यह सारी डाह वेलि के काव्य सौष्ठव से टकराकर चूर चूर हो गई'[3]। जगह-जगह वेलि की हस्तलिखित प्रतियों का पाया जाना और उस पर अनेक टीकाओं का लिखा जाना भी[4]

---

१. कहा जाता है कि एक बार 'वेलि' की प्रामाणिकता का प्रश्न उठा। सन्देह हुआ कि वास्तव में 'वेलि' पृथ्वीराज की ही रचना है अथवा नहीं। इस बात के निर्णय के लिये तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियों को चुना गया। उनके नाम हैं—दुरसा आढा, सांदू माला, केसौदास गाडण और माधौदास दधवाड़िया। इनमें प्रथम दो व्यक्तियों की राय पृथ्वीराज के विपक्ष में और अन्तिम दो की पक्ष में थी। इस पर पृथ्वीराज ने प्रथम दो के विषय में एक दोहा और गाडण तथा दधवाड़िया की प्रशंसा में एक एक दोहा कहा।

२. राज रसनामृत :

३. डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७२ :

४ : (१) ढूढाड़ी टीका : यह पूर्वी राजस्थानी बोली में है। लिपिकाल संवत् १६७३।
(२) लाखा चारण कृत टीका : यह उपलब्ध नहीं होती, पर सं० १६७८ में इसके आधार पर सारंग ने संस्कृत टीका लिखी थी।
(३) सुबोधमंजरी टीका : वाचक सारंग ने सं० १६७८ में इसे संस्कृत में लिखा।
(४) वनमालीवल्ली-बालावबोध—संवत् १६८६ में जयकीर्ति कृत।
(५) नारायणवल्ली-बालावबोध—संवत् १६९६ में उपाध्याय कुशलधीर कृत।
(६) संस्कृत भाष्य : सं० १७०३ में खरतरगच्छीय श्रीसार कृत।
(७) शिवनिधान कृत टब्बा : लगभग सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित।
(८) दानचंद्र कृत टब्बा : अनुमानतः सं० १७२७ में।
(९) लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध : सत्रहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में।
(१०) मारवाड़ी या पश्चिमी राजस्थानी में सं० १६७६ में लिखित टीका।
(११) एक अन्य टीका जिसकी प्रति तीर्थरत्न मुनि ने संवत् सोलह सौ और कुछ में लिखी
(१२) ब्रजभाषा में पद्यानुवाद : गोपाल लाहोरी कृत।
(उपर्युक्त सूची श्री नरोत्तमदास स्वामी संपादित –'वेलि' से ली गई है)।

इसकी सर्वव्यापक प्रसिद्धि का परिचायक है। यहां तक कि संस्कृत में भी एक टीका लिखी गई। टीकाकारों में बहुत से जैन विद्वान् रहे। वर्तमान समय में भी डा० टैसीटरी के अतिरिक्त विभिन्न विद्वानों ने इसके संस्करण प्रकाशित करवाए हैं[1]।

वेलि का मूल कथानक भागवत से लिया गया है। कवि का कथन है—

> वल्ली तसु बीज भागवत वायो, महि थाणो प्रियुदास मुख।
> मूळ ताल जड़ अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढ़ि छांह सुख।
> पत्र अक्खर दळ द्वाळा जस परिमळ, नवरस तन्तु विधि अहो निसि।
> मधुकर रसिक सु भगति मंजरी, मुगति फूल फळ भुगति मिसि[2]।

किन्तु मूल कथा-सूत्र के अलावा बाकी निर्माण, ढलाव और बनाव-शृंगार कवि का अपना है। वेलि और भागवत की कथा में श्री नरोत्तमदास स्वामी ने २५ अन्तर बताए हैं[3]। ये अन्तर मुख्य कथानक को लेकर हैं। वेलि एक शृंगाररस प्रधान वर्णनात्मक कलाकृति है। कवि ने स्वयं इसकी सूचना दी है। मंगलाचरण के बाद नायिका रुक्मिणी का वर्णन पहले किया है, जो शृंगाररस के ग्रन्थ रचयिताओं की मान्य पद्धति रही है—

> सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा, सुकवि अनेक ते एक सन्थ।
> श्री वरणण पहिलो कीजै तिणि, गूंथियै जेणि सिंगार ग्रन्थ[4]।

दूसरा स्थान वीररस का है, जिसके साथ बीभत्स भी आया है। कर्नल टाड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोड़ों का बल बतलाया है[5]। कवि की अन्य कविताओं के अतिरिक्त, उपर्युक्त कथन की सार्थकता के प्रमाण-स्वरूप वेलि के ११३ से १३७ छन्द देखे जा सकते हैं। प्रसंगवश, रौद्र, भयानक, अद्भुत, करुण, वात्सल्य और शांत रसों की झांकियां भी देखने को मिलती हैं।

कवि ने शृंगाररस के रमणीय प्रसंगों का अत्यन्त रस ले के सूक्ष्म वर्णन किया है। शृंगार-रस-वर्णन का कोई भी उचित अवसर उसने हाथ से नहीं जाने दिया है। इस विषय में उसने अनेक भावोत्तेजक शृंगारिक प्रसंगों की उद्भावनाएं की हैं और विविध प्रकार से उन्हें उद्दीप्त किया है। पर विशेषता यह है कि शृंगाररस-वर्णन सर्वत्र एक सात्विक आभा की झिलमिल झांकी से ओतप्रोत है; शिष्टता की सीमा का उल्लंघन उसमें कहीं नहीं है।

१: (१) सर्वश्री रामसिंह और पारीक: हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद,
(२) श्री नरोत्तमदास स्वामी: श्रीराम मेहरा एन्ड कं०, आगरा,
(३) डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित: विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर,
(४) श्री कृष्णशंकर शुक्ल: साहित्य निकेतन, कानपुर,
(५) श्री ईच्छाराम देसाई (गुजराती) आदि।

२. छन्द संख्या-२९१, २९२:

३. स्वसंपादित—'वेलि', प्रस्तावना, पृ० ४१-४४:

४. छन्द ८:

५. Annals of Mewar, Chapter XI.

वेलि में वर्णन प्रधान है और कथा गौण। इसमें प्रधान वर्णन निम्नलिखित हैं—

१. रुक्मिणी की बाल्यावस्था, वयसंधि, और उसका यौवनागम, २. शिशुपाल की बारात और कुन्दनपुर की सजावट, ३. रुक्मिणी का पत्र और श्री कृष्ण का कुन्दनपुर आना, ४. देवी पूजा के अवसर पर रुक्मिणी का शृंगार, ५. कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण और युद्ध, ६. कृष्ण रुक्मिणी-विवाह और उनका मिलन, ७. प्रभात, ८. षट्ऋतु, ९. प्रद्युम्न, अनिरुद्ध की उत्पत्ति एवं उनके तथा रुक्मिणी और उसकी सखियों के विभिन्न नाम, १०. वेलि-माहात्म्य और कवि की आत्मश्लाघा।

वेलि की कथा को मोटे रूप से पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में बांटा जा सकता है। पूर्वार्द्ध में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कथा का विविध प्रसंगों सहित वर्णन है। इसमें प्रारंभ से लेकर कृष्ण रुक्मिणी के विवाहोपरान्त मिलन और प्रभात-वर्णन, छन्द संख्या १८६ तक का भाग सम्मिलित है। उत्तरार्द्ध में षट्ऋतु वर्णन आदि हैं जो मुख्य कथानक से सीधे संबंधित नहीं हैं। इस भाग में षट्ऋतु वर्णन के पश्चात् शृंगाररस शनैः शनैः लौकिक धरातल छोड़ता चलता है और अन्त में भक्ति में पर्यवसित हो जाता है। कवि की आत्मश्लाघा मानो इस दिव्य प्रेम और भक्ति की घोषणा है। कलाकृति को देखते हुए कवि की आत्मश्लाघा को डा० टैसीटरी ने भी स्वाभाविक ही बताया है।

षट्ऋतु वर्णन में वेलि का वसन्त वर्णन सर्वश्रेष्ठ है। प्रकृति वर्णन में नवीनता कवि की अपनी चीज है। प्रकृति-निरीक्षण की मौलिकता और उसके आसपास के वातावरण का सांगोपांग चित्रण तथा उसमें उपयुक्त शब्दावली के प्रयोग के कारण, वर्ण्य-विषय सजीव और साकार हो उठा है। डा० टैसीटरी के शब्दों में,—It is like succession of magic-lantern pictures on a wall-each stanza is a quadretto in itself worked to perfection *with that elegance in which Indian poets of the seasons succeed* so well[1].

भावानुकूल नाद सौन्दर्य युक्त शब्द-चयन और प्रसंगानुकूल भाषा के लोच ने वेलि की रमणीयता में चार चाद लगा दिए हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छन्द देखे जा सकते हैं—

> कळकळिया कुन्त किरण कळि ऊकळि, वरजित विसिख विवरजित वाउ।
> धड़ि धड़ि धबकि धार धारू जळ, सिहरि सिहरि समखे सिळाउ।(१९१)
> काळो करि कांठळि ऊजळ कोरण, धारे श्रावण धरहरिया।
> गळि चालिया दिसो दिसि जळग्रभ, थंभि न विरहिण नयण थिया।(१९५)
> वरसतं दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया, सघण गाजियौ गुहिर सदि।
> जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ, जळ वाळा न समाइ जळदि।(१९६)

कलापक्ष और भावपक्ष के सामंजस्य, ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग, भाषा के लालित्य एवं सहज प्रवाह, रसानुकूल भावोत्तेजन के यथावसर प्रकटीकरण और इन सबके उचित सम्मिलन के

---

१. स्वसंपादित—'वेलि', Introduction, Page XI.

कारण वेलि एक अत्यन्त प्रौढ़ कलाकृति हो गई है । मूल कथा और काव्य-वैभव को देखते हुए प्रतीत होता है कि कवि का उद्देश्य एक सुन्दर कलाकृति का निर्माण करना है, कथा कहना नहीं । इस विषय में डा० टैसीटरी ठीक ही लिखते हैं,—*The Veli...is one of the most* fulgent gems in the rich mine of the Rajasthani literature..is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity, in which like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form[1]... The great merit of the poem is in the combination of a delightful genuineness and naturalness of expression with the most rigorous elaborateness of style[2].

जहां तक अलंकारों का प्रश्न है, वेलि में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग हुआ है और वे स्वाभाविक रूप से आए हैं, श्रमसाध्य नहीं हैं । वेलि में चालीस से ऊपर अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं[3] और वैण-सगाई का पालन सर्वत्र किया गया है । उपमा की पूर्णता कवि की द्रष्टव्य विशेषता है । 'वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है, यथा—

संग सखी सीळ कुळ वेस समाणी, पेखि कळी पदिमणी परि ।
राजति राजकुँअरि राय अंगण, उडियण वीरज अम्बहरि ।
रामा अवतार नाम ताइ रुखमणी, मान सरोवर मेरुगिरि ।
बाळकति-किरि हंस चौ वाळक, कनक वेलि बिहुँ पान किरि ।

....पाश्चात्य कवि होमर इस प्रकार की उपमाओं के लिए बहुत प्रसिद्ध है । यही विशेषता पृथ्वीराज को भी अन्यान्य डिंगल कवियों से बहुत ऊपर उठा देती है'[4] ।

वेलि के नामकरण का 'वेलियो' गीत से कोई सम्बन्ध नहीं है । कृष्ण और रुक्मिणी के हृदयों में प्रेम-वेलि के अंकुर और प्रसार-रूप इस काव्य का निर्माण हुआ है । 'वेलि' राजस्थानी साहित्य का एक काव्य-रूप है, जिसमें चरित अथवा वर्णन प्रधान होता है। जिस तरह, 'मंगल' 'हरण' 'वल्लरी' 'लता' अथवा 'यती' प्रत्यय वाले काव्यों की परम्परा रही है, उसी प्रकार 'वेलि' काव्यों की भी। सन्देश-रासक के 'रासक' छन्द को भांति यह एक अद्भुत संयोग है कि इस 'वेलि' में चारण साहित्य के 'छोटा साणोर' गीत के एक भेद 'वेलियो' के आधार पर बने छन्दों का प्रयोग हुआ है । इस छन्द को 'वेलिया' कहे जाने का कारण यह है कि वह 'वेलिया' गीत के आधार पर बना माना गया है। जैन कवियों ने अन्य छन्दों में 'वेलि' नामधारी ग्रन्थों की रचनाएँ की ही हैं।

---

१. स्वसंपादित –'वेलि' Introduction Page I
२. वही; Page XII.
३. श्री नरोत्तमदास स्वामी सम्पादित –'वेलि', प्रस्तावना, पृ० ६५ :
४. डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६६–१६७ ।

कवि पृथ्वीराज कई शास्त्रों के विद्वान् थे। निम्नलिखित छन्द में, उन्होंने 'वेलि' का अर्थ भली-भांति हृदयंगम करने के लिए बहुत शास्त्रों के ज्ञान की आवश्यकता बताई है—

> ज्योतिषी वैद पौराणिक जोगी, संगीती तारकिक सही।
> चारण भाट सुकवि भाखा चित्र, करि एकठा सो अरथ कहि।(२९१)

इसके अतिरिक्त, कवि की बहुज्ञता का पता वेलि में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों से भी लगता है। इनसे कवि के ज्योतिष और शकुन[1], वैद्यक[2], संगीत-नृत्य और नाटय-शास्त्र[3], योग-शास्त्र[4], कोष[5], भाषा[6], कृषि[7], सामाजिक रीतियां[8], आभूषण[9], पशु-पक्षियों के स्वभाव एवं व्यापार[10] आदि आदि के ज्ञान का पता चलता है। कवि के गहरे संगीत-ज्ञान का पता, वेलि के अतिरिक्त, एक अन्य सवैये में भी लगता है—

> घुघुकट घुघुकट घुघुकट घुघुकट घुघुकट घुघुकट
> *गरे जाल झांझि परसन कत्त तत्त त त त त त थैया थामक थैया*
> घुंघर कि घूंटिक घुगरू कि धुटुंक घुघुरुक करु पुनि वैन बजैया
> सकल प्राण प्रथीराज सुकवि कहि बजत मृदंग ध्वननि नचति कन्हैया।

उपर्युक्त छन्द में कवि ने ताल-वाद्यों के विविध बोलों के अनुसार ही शब्द योजना प्रस्तुत की है। 'भरत नाटय-शास्त्र' में इसका विधान दिया गया है[11]।

वेलि के पांच-छै छन्दों[12] के आधार पर शास्त्रीय दृष्टि से विद्वानों ने, उसमें रस विरोध पाया है[13] और अन्यत्र जोरदार शब्दों में इसका खण्डन भी हुआ है[14], किन्तु केवल ५–६ दोहलों के आधार पर रस-विरोध की कल्पना करके काव्य को दोषपूर्ण कहना विशेष संगत नहीं है[15]।

वेलि आलोच्य काल की अन्तिम प्रौढ़तम रचना है। इसमें राजस्थानी साहित्य की तीन प्रमुख धाराएँ (लौकिक प्रेम-काव्य, वीर काव्य और भक्ति काव्य) समाहित हो गई हैं।

---

१. छन्द : ७०, ९३, ९६, १९३, २८६ :
२. छन्द : २८४, २८५ :
३. छन्द : २४६–२४८ :
४. छन्द : १५, १८०, १८४, २०८ :
५. छन्द : २७०–२७५ :
६. छन्द : २९७ :
७. छन्द : १२३–१२८ :
८. छन्द : १४०, १४२, १५३–१५८; २२९–२३८; २१४, २२७ :
९. छन्द : ८१–९१ :
१०. छन्द : १९३, १९४, २०९, २१०, २२६ :
११. डा० सत्यप्रसाद अग्रवाल : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४५, (सं० २००७) :
१२. छन्द : १२०–१२५ तथा १२८ :
१३. 'वेलि'–(हिन्दुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ७६–८७ :
१४. श्री नरोत्तमदास स्वामी सम्पादित–'वेलि', प्रस्तावना, पृ० ५३–५७ :
१५. डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित सम्पादित –'वेलि', भूमिका, पृ० ८७ :

अकेली 'वेलि' में इन तीनों धाराओं की पूर्व-परम्परा के दर्शन किए जा सकते हैं। यदि अलौकिक घटनाओं को छोड़ दिया जाए, तो काव्य का पूर्वार्द्ध और षट्ऋतु वर्णन शुद्ध प्रेम काव्य है, जो सन्देश-रासक और 'ढोला-मारू' की परम्परा में बैठता है। समूचे काव्य को देखने से, इसे प्रेम-काव्य कहना ही उचित जंचता है। अन्य वीर काव्यों की तरह, इसमें वीररस का स्वतन्त्र वर्णन नहीं पाया जाता; प्रत्युत शृंगार की पूर्णता और पुष्टि के लिए, उसका उपयोग हुआ है। काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रेम-प्रवृत्तियों का भक्ति में पर्यवसान करके, कवि ने भक्ति-परम्परा का निर्वाह किया है। इस प्रकार वेलि के सम्यक् अध्ययन से, राजस्थानी साहित्य की, इससे पूर्व-प्रचलित और प्रवहमान, प्रमुख काव्य-धाराओं का पता चलता है।

वेलि के रचनाकाल के प्रश्न को लेकर विद्वानों में मत-भेद है। एक मत के अनुसार, इसकी रचना संवत् १६३७ में हुई और दूसरे के अनुसार, संवत् १६४४ में। पहले मत के मानने वाले विद्वान् वेलि में आए हुए निम्नलिखित दोहले के आधार पर अपनी बात कहते हैं—

वरसि अचळ गुण अंग ससी संवति, तवियो जस करि श्री भरतार।
करि श्रवणे दिन रात कंठ करि, पामै स्त्री फळ भगति अपार।(३०५)

डा० टॅसीटरी[1], सूर्यकरण पारीक[2], मं० र० मजमुदार[3], रामकुमार वर्मा[4], नरोत्तमदास स्वामी[5], कृष्णशंकर शुक्ल[6], प्रभृति विद्वान् पहले मत के पोषक और समर्थक है। गुजराती विद्वान्[7], मोहनलाल दलीचन्द देसाई 'अचल' का अर्थ आठ करके रचनाकाल संवत् १६३८ मानते हैं। दूसरा मत डा० मोतीलाल मेनारिया का है, जिन्होंने उदयपुर के सरस्वती भण्डार की तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर, इसका रचनाकाल संवत् १६४४ माना है। इनमें एक प्रति संवत् १७०१ की, दूसरी १७२८ की, और तीसरी १७९५ की लिखी हुई है। नीचे क्रमशः तीनों प्रतियों के संवत्-सूचक पदों का हवाला दिया जाता है—

(१) सोलह सै संवत चमाळे वरसे, सोम तीज वैसाख सुदि
(२) सोलह सै संवत् चमाळे वरवे, सोम तीज वैसाख समंधि
(३) सोलै सै संवत् चौमाळीसै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि

इनके आधार पर मेनारियाजी का अनुमान है कि संवत् १६३७ वेलि के प्रारम्भ करने का समय है। समाप्तिकाल संवत् १६४४ ही है[8]। इस मत का समर्थन डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने भी किया है[9] और यही अधिक सगत प्रतीत होता है।

---

१. 'वेलि'—(एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता) : Introduction Page IX.
२. 'वेलि'—(हिन्दुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ९७, ९९.
३. गुजराती साहित्यना स्वरूपो, पृ० ३७५ :
४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ११२, (प्रथम संस्करण) :
५. स्वसम्पादित—'वेलि'; प्रस्तावना, पृ० ७६–७८.
६. स्वसम्पादित—'वेलि'; भूमिका :
७ जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २१३४ :
८. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६३–१६५ :
९ स्वसम्पादित—'वेलि'; भूमिका, पृ० ५१ :

पृथ्वीराज रचित 'वेलि' तथा सांखला करमसी रुणेचा रचित 'क्रिसनजी री वेलि' :

अब एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात वेलि के प्रेरणा-स्रोत उसकी प्राचीनता और मौलिकता के विषय में कहनी है। श्री नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार, 'डिंगल में लिखित वेलियों में सबसे प्राचीन पृथ्वीराज की क्रिसन रुकमणी री वेलि है'[1]। किन्तु इस कथन से सहमत होना कठिन है। जैन वेलियों के अतिरिक्त, इससे प्राचीन दो चारण-वेलियां भी मिलती हैं। मांडू रामा रचित *'वेलि राणा उदैसिंघ री'* के विषय में पहले लिखा जा चुका है। इसकी रचना अनुमानतः संवत् १६२८ तक तो अवश्य हो जानी चाहिए, क्योंकि राणा उदयसिंह की मृत्यु इसी संवत् में हुई थी। कवि उनका समकालीन था और उनके जीवन काल में ही उसने अपनी वेलि लिखी प्रतीत होती है। दूसरी है सांखला करमसी रुणेचा रचित 'क्रिसनजी री वेलि'। इसके विषय में कई कारणों से विस्तार से लिखना आवश्यक जान पड़ता है। प्रशस्ति के आधार पर इसकी *हस्तलिखित प्रति का परिचय देते हुए, डा० टैसीटरी लिखते हैं*—
The copy was made by Savala Dasa himself in the year Samvat 1634, Vaisakh Sudi 3 at Busi in the Camp of Maharai Rai Singha[2].
सांवलदास, राव बीकाजी के भाई बीदा के पौत्र सांगा के बेटे थे। ओझाजी के अनुसार, सांगाजी को राव जैतसी ने द्रोणपुर पर चढ़ाई करके वहां बैठाया था[3]। करमसी रुणेचा की *'वेलि' की उपर्युक्त प्रति संवत् १६३४ के बैसाख सुदी ३ की लिपिबद्ध अनूप* संस्कृत लाइब्रेरी में है, (ह० प्रति नं० ९९) जिसके आदि और अन्त के दो पृष्ठों के चित्र यहां दिए जा रहे हैं। पृथ्वीराज की 'वेलि' का रचनाकाल संवत् १६४४ है और यदि यह काल संवत् १६३७ या १६३८ भी मान लिया जाए, तब भी करमसी की 'वेलि' पृथ्वीराज की 'वेलि' से प्राचीन ठहरती है, क्योंकि संवत् १६३४ में तो वह लिपिबद्ध ही हो चुकी थी और उसका रचनाकाल तो निश्चित रूप से इसके पूर्व ही रहा होगा—अनुमानतः संवत् १६०० के आसपास। हो सकता है, इससे भी पूर्व रहा हो। यह २२ छन्दों की छोटी सी रचना है जिसमें रुक्मिणी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

पर जो इससे महत्त्वपूर्ण बात है वह यह है कि करमसी की 'वेलि' का राठौड़ पृथ्वीराज ने अनुकरण किया है—उन्होंने सीधी प्रेरणा यहीं से पाई है। अपनी 'वेलि' को लिखते समय, पृथ्वीराज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में, यह वेलि अवश्य रही है। इसके कारण हैं। राजा रायसिंहजी की उपस्थिति और उनके शासनकाल में लिखी जाने के कारण यह साहित्यिक पृथ्वीराज के लिए अवश्य ही सुलभ थी। फिर, संवत् १६३४ के बैसाख सुदी ३ को तो यह लिपिबद्ध ही हो चुकी थी, रचनाकाल की तो बात ही और है। इसके पश्चात् ही पृथ्वीराज ने अपनी वेलि को प्रारंभ किया होगा। *अब यदि पृथ्वीराज की वेलि का समाप्तिकाल संवत् १६४४ माना जाय*, तो सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रहती कि उनके सामने करमसी की यह 'वेलि' अवश्य ही थी। यदि समाप्तिकाल संवत् १६३७–३८ ही मानें, तब भी उपर्युक्त धारणा की ही पुष्टि होती है।

---

१. स्वसम्पादित–'वेलि'; प्रस्तावना, पृ० २३ :
२. Descriptive Catalogue. Sec. II, Pt. I, Page 45.
३. बीकानेर राज्य का इतिहास :

दोनों वेलियों के उद्देश्य-साम्य, छन्द-साम्य, भाव-साम्य और शब्द-साम्य के आधार पर उपर्युक्त बात को जोर देकर दोहराना आवश्यक है। करमसी की वेलि में रुक्मिणी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। स्पष्ट ही रचना शृंगारिक है। इधर पृथ्वीराज की वेलि भी मूलतः शृंगारिक ग्रन्थ है, कवि का ऐसा ही कथन है। उद्देश्य के इस साम्य के कारण अनुमान किया जा सकता है कि करमसी की वेलि, पृथ्वीराज के लिए प्रेरणा-स्रोत रही है। दोनों का छन्द-विधान भी एक ही है। भाषा की चुस्ती और सफाई भी दोनों में एक सी ही है। डा० मेनारिया ने लिखा है कि 'पृथ्वीराज की वेलि का कोई शब्द बेमौके नहीं है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम, भावोपयुक्त एवं उपादेय है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है—कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का इसमें विलक्षण समन्वय हुआ है'[1]। ठीक यही बात करमसी की वेलि के विषय में भी कही जा सकती है। पृथ्वीराज ने तो अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण करमसी के कई भावों को अपनी उपमाओं से सजाकर व्यक्त किया है। दोनों के छन्दों में शब्द-साम्य भी पाया जाता है। यही नहीं, करमसी की वेलि का एक छन्द तो पृथ्वीराज ने ज्यों का त्यों उठा लिया है। वह छन्द यह है—

करमसी की 'वेलि'	पृथ्वीराज की 'वेलि' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी)
रूप लखण गुण तणा रुषमंणी कहिवा सांमरथीक कुण जांणिया जिसा तिसा मइं जंपिया गोइंद राणीं तंणा गुण ॥(२२)	रूप लखण गुण तणा रुखमिणी कहिवा सामरथीक कुण जाइ जाणिया जिसा मैं जम्पिया गोविंद राणी तणा गुण ॥(३०४)

उक्त कथन का कुछ स्पष्टीकरण और करमसी की काव्य प्रतिभा का अनुमान दोनों के कुछ छन्दों के मिलान से होता है। ऐसे कुछ छन्द नीचे दिए जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दोनों के छन्दों में सर्वत्र सब प्रकार का साम्य खोजा ही जाए।

१ पाइतल रत कोमल श्रोणि सपूरित कोकनद विपरीह करि दरपण तल नप पाइ अति वीपई पंकति अथवा कंवल परि ॥(२)	ऊपरि पद पलव पुनर्भव ओपति त्रिमळ कमळ दळ ऊपरि नीर तेज कि रतन तार कि तारा हरिहंस सावक ससिहर हीर ॥(२७) होड छण्डि चरणे लागा हंस मोती लगि पाणही मिसि ।(१००)
२ नूपुरि झंकारो पाइ निरितो किरि वाजित्र कंद्रप्प नरेस सुर्तेणि तरुणि संचरं सहीसउं पुरि मर थे किरि करं प्रवेस ॥(३)	चरणे चामीकर तणा चंदाणणि सज नूपुर घूघरा सजि पीळा भमर किया पहराइत कमळ तणा मकरन्द कजि ॥(९७)

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६६–६७ :

करमसी की 'वेलि'	पृथ्वीराज की 'वेलि' (हि० ए०)
३ परि नवल तास श्री पोंडी पुणियं ताइ गुरु सोसि सु भान तलि किरि जगनाथ सरिस जुधकरिवा विरही संजोई गदावलि ॥(४) जंघस्थल युगल अनोपम जुवती जोगम किरि जालंधरी परस तास रुति राय ऊपजं भाव जोनि छह रुति नरो ॥(५) कठिन नितंब निरोमं कामणि किरि कुंभस्थल गईंद कहि ईये भवि ईस अनंग ऊजांणों गिरि विनि रहियो जांणि गहि ॥(६)	नितम्बणी जंघ सु करभ निरूपम रम्भ सम्भ विपरीत रूप जुअळि नाळि तसु गरभ जेहवो वयणं वाखाणं विदुस ॥(२६) कामिणि कुच कठिन कपोळ करी किरि वेस नवी विधि वाणि वखाणि अति स्यामता विराजति ऊपरि जोवण दाण दिखाळिया जाणि ॥(२४)
४ नाभ मंडल तस नारि अनोपित रूव कूव रति कूंभ रिसि रोमावली लेज सिहण दुनि दंमणां मन माली सींचिवा मिसि ॥(७) कर ग्रहि लंक मांण तस कांमणि कारंणि किणि कहि पीण करि पांचे नितंब पयोहर पांवं उभं नृपां विचि नियळ अरि ॥(८)	घर घर शृंग सघर सुपीन पयोघर घणों खीण कटि अति सुघट पदमणि नाभि प्रियाग तणी परि त्रिवळि त्रिवेणी स्रोणि तट ॥(२५) इभ कुंभ वन्धारी कुच सु कञ्चुकी कवच सम्भु काम क कळह मनु हरि आगमि मंडे मंडप वन्धण वीप को वारगह ॥(९०) पेखे किरि जागिया पयोहर सञ्झा वन्दण रिखेसर ॥(१६)
५ काया नस कूंकम लोल कंमकंमं परिमल पद्मणि पुष्प परि ॥(९)	कमनीय करे कूं कूं घो निज करि कलंक घूम काढे वे काट ॥(८७)
६ अनोपम बांह जुगल तस अबला पुणि मृणाल ठि परोह परि अंगद अउव स सोभा ओपइं कंकण चूडि सु कनंक करि ॥(१०) कर युगल सुकोमल सूंदरिसोभित असि रिप फली कि अंगुली नय सिप जाणि गवरिज्या निसचं किरि हार पूंजण पहो कली ॥(११)	वाजूबंध वन्धे गोर बाहु बिहुं स्याम पाट सोहन्त सिरो मणिमें हींडि हींडलें मणिघर किरि साखा धी खंड की ॥(९२) गजरा नवग्रही ओविया ओपे वळं वळं विधि विधि वळित हसत नखित्र वेधियो हिमकरि अरध कमळ अलि आवरित ॥(९३) हरि गुण भणि ऊपनी जिका हर हर तिणि वन्दे गवरि हर ॥(२९)

करमसी की 'वेलि'	पृथ्वीराज की 'वेलि' (हिं० ए०)
७ सेंमवजा च सम ग्रीवा तास	हरिणाखी कंठ अंतरिख हूंती
श्री रेह रिनि त्र्येह गाँव रिधि	बिम्ब रूप प्रगटी बहिरि
ओपइ मुगत हार रूलत उरि	कळ मोतियाँ सुसरि हरि कीरति
निवसंतो मुखो अमी निधि ॥(१२)	कंठसरि सरसती किरि ॥(९१)
८ अधर अति अरुण कि वीद्रम ओपित	दधि वीणि लियौ जाइ वणतौ दीठौ
पाक बिंब ओपमा परि	सालियात गुणमं ससत
उचरंति सदा प्रीअ प्री अँणंचरि	नासा अग्रि मुताहळ निहसति
सुललित कोकिल ज्यों सुसरि ॥(१३)	भजति कि सुक मुक भागवत ॥(९८)
हीर दसण ओपमां रयँण हरि	मकरन्द तँबोल कोकनद मुख मझि
कारंणि अति निधि जतँन करि	दन्त किञ्जळक द्युति दीपन्ति
त्रिदस असुर मथि वाम विसंकित	करि इक बीड़ो वळे वाम करि
घण मुख मांझलि आंणी परि ॥(१४)	कीर सु तसु जाति क्रीडन्ति ॥(९९)
नाइस भँणि कुसँम दीप भँणि नाइस	दल फूलि विमळ वन नयण कमळ दळ
कीर वचँन नासिका कयँ	कोकिल कण्ठ सुहाइ सर
भौंहारे भँवर कि भूलि बईठा	पांपणि पंख सँवारि नवी परि
मुख वारिज सँवेधि मई ॥(१६)	भ्रूंहरि भ्रमिया भ्रमर ॥(२०)
९ चंचल अति चपल किसन घण काजळ	अणियाळा नयण बाण अणियाळा
रातो मल ऊजळ रयण ।	सजि कुण्डळ खुरसाण सिरि
....	वळे धाढ दे सिळी सिळी वरि
नारि अँनोपँम तस नयण ॥(१७)	काजळ जळ वाळियौ किरि ॥(८६)
१० सीस तरुणि श्री फल सारिषउ	कवरी किरि गुंथित कुसुम करम्बित
भाल मुगत सिंदूर भरि	जमुण फेण पावन्न जग
नयत्र माल सोहंति कि निसि भरि	उतमंग किरि अम्बर आधौ अधि
चँदण तिलिक कि चंद परि ॥(१९)	मांग समारि कुंआर मग ॥(८५)
११ रतँन जडित रापडी सरोपित	कुमकमं मँजण करि धौत वसत धरि
वेणि स्लंति सरल वल वेय	चिहुरे जळ लागो चुवण
अति मृग व्यापित अँमृत अहारँ	छीणे जाणि छछोहा छूटा
मिणिघर किरि लागी मँ केम ॥(२०)	गुण मोती मसतूल गुण ॥(८१)
	हंसा गति तणी आतुर च्या हरि सूं
	पधाऊआ जहीं बहे
१२ लावन गुन पूरित संहँ ललमी	सूंघावास अनं नेउर सव
राजहंस जिम चली कुंवारि ॥(२१)	क्रमि आगं आगमन बहे ॥(१६६)

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज ने करमसी की 'वेलि' का अनुकरण किया है और उसके एक छन्द को ले लेने का मोह भी वे संवरण नहीं कर सके हैं, तथापि उन्होंने प्रत्येक भाव को अपनी प्रतिभा का बाना पहनाकर सज्जित करने का सफल प्रयत्न किया है। ऊपर के छन्दों मे यह बात स्पष्ट है।

खेद है कि करमसी की 'वेलि' के कुल २२ छन्द ही उपलब्ध हैं। प्रतीत होता है कि जैसे सम्पूर्ण रचना का यह अन्तिमांश है। करमसी की, इसके अतिरिक्त और रचनाएँ भी नहीं मिलतीं। किन्तु इन २२ छन्दों से ही, उसकी विलक्षण प्रतिभा और गहरी साहित्यिक पैठ का पता चलता है। रुक्मिणी-हरण की कथा को लेकर शृंगार-काव्य लिखने वाले राजस्थानी कवियों में, सर्वप्रथम मौलिकता का सेहरा, करमसी के सिर पर बंधना चाहिए, पृथ्वीराज के नहीं। पृथ्वीराज को श्रेय इस बात का है कि उन्होंने इस परम्परा को प्रौढ़ता की चरम सीमा तक पहुंचा दिया। 'वेलि' के विद्वानों को यह तथ्य स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

प्रसंगवश, इस सम्बन्ध में कतिपय हिन्दी के विद्वानों की धारणाओं का भी उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। करमसी की 'वेलि' के सम्बन्ध में डा० सावित्री सिन्हा ने अत्यन्त भ्रामक मत दिया है। अपनी थीसिस में वे लिखती हैं—

"राव योधा की सार वाली रानी—'कृष्णजी री वेलि' के नाम से डिंगल काव्य में अनेक रचनाएँ की गई। इसी नाम की एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री टैसीटरी ने इस रानी को माना है.. जिसकी प्रथम पंक्ति है ...'अनोपम रूप सिंगार अनोपम भूपण अंग"..[1] प्रतीत होता है न तो लेखिका ने यह हस्तलिखित प्रति ही देखी है और न ही ठीक से टैसीटरी के कथन को। "किसनजी री वेलि सांखुला करमसी रूणेचा री कही" नाम से ही प्रतीत होता है कि सांखला करमसी इसके रचयिता थे और यही डा० टैसीटरी ने लिखा है। श्री नरोत्तमदास स्वामी भी यही मानते हैं[2]। इसकी प्रथम पक्ति का उद्धरण देकर डा० टैसीटरी लिखते हैं—In the index of the contents of the gotako (P. 279b) however, the work is attributed to the Sakhali rani of Ravo Jodho (the mother of ravo Viko ?)[3] स्पष्ट ही यहा गुटके की सूची का उल्लेख है। फिर, लेखिका का दिया हुआ प्रथम पंक्ति का उद्धरण भी ठीक नहीं है। वह इस प्रकार होना चाहिए—

'अंनोपम रूप सिगार अंनोपम अबल अंनोपम लयण अंगि'।

कुछ इसी प्रकार की बातें पृथ्वीराज और उनकी वेलि के विषय में भी कही गई हैं। मिश्रबन्धुओं ने पृथ्वीराज की गिनती साधारण कोटि के कवियों में की है[4], किन्तु उनके कथन का अब कोई विशेष मूल्य नहीं है। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं, 'इसी समय तुलसी-

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० ३५ : (प्रथम संस्करण, १९५३ ई०) :
२. स्वसम्पादित-'वेलि'; प्रस्तावना, पृ० २३ :
३. Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 45.
४. मिश्रबन्धु-विनोद :

दास लोकशिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाला राम का आदर्श रूप जनता के सामने रख रहे थे। पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने में तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निर्वेद-पूर्ण आदर्श रखने में वे असमर्थ रहे। उनकी वीरता और रसिकता उन्हें माला लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकी"[1]। यह कथन केवल उनकी 'वेलि' को ही ध्यान में रखकर कहा गया प्रतीत होता है जो कुछ अंशों तक ही ठीक है। पृथ्वीराज के समस्त काव्य को देखने पर, उन्हें श्रृंगारिक मादकता का कवि कहना भ्रामक ही है। वेलि के उत्तरार्द्धके अतिरिक्त, उनके भक्तिपूर्ण और शान्त-रसात्मक फुटकर दोहों और गीतों से, उनके भक्त होने पूरा प्रमाण मिलता है। नाभाजी ने विविध विध गाथो हरिजस कहकर, उनके भक्त रूप की प्रशंसा की है। इसी प्रकार डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित लिखते हैं[2],–'तुलसीदास ने पार्वती-मंगल तथा जानकीमंगल, दो दो मंगल काव्यों की रचना की है।....सम्भवतः पृथ्वीराज को तुलसी के इन्हीं मंगलों से अपनी रचना की प्रेरणा मिली होगी। स्वतन्त्र विचारक होने के कारण ही उन्होंने रुक्मिणी-मंगल लिखने की चेष्टा की,क्योंकि उनसे पूर्व लिखे गए मंगल एकदम उच्च-कोटि की रचना नहीं थे'। लेखक की दोनों बातें ही भ्रमपूर्ण है। तुलसी के 'मंगलों' से प्रेरणा मिलना एकदम निराधार है। इसी प्रकार यह कहना कि उनसे पूर्व लिखे गए 'मंगल' उच्चकोटि की रचना नहीं थे, ठीक नहीं है। करमसी की 'वेलि' (जो एक प्रकार का मंगल काव्य ही है) की चर्चा ऊपर हो ही चुकी है।

मुक्तक रचनाएँ :

कवि की मुक्तक रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) ठाकुरजी रा दूहा :

ये दो प्रकार के हैं—राम से सम्बन्धित और कृष्ण से सम्बन्धित। रामवाले दोहों के अन्त में दसरथ राव उत और कृष्ण वाले दोहों के अन्त में वसदेव राव उत आता है। ये विनय-प्रधान, स्तुतिपरक और शान्तरसात्मक रचनाएँ हैं। उदाहरण देखिए—

(क) रिण कीधा श्री रंग, करि वांको खग झाळ करि।
प्रजले प्रसण पतंग, दीपक दसरथदेवउत ॥
राम ज रोलवीया, रूठे दल रांवंण तंणा।
सरगे सांभळिया, देवे दसरथदेवउत ॥
जुगपति रांवण जेह, हतीयो कर सीता हरण।
तेडा पडीया तेह, दाता दसरथदेवउत[3] ॥

(ख) सगलां थयो संतोष, तो आयां नंद आंगणे।
घर घर मंगल घोष, व्रिज में वसदेरावउत ॥

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १११, (प्रथम संस्करण) :

२. स्वसम्पादित–'वेलि'; भूमिका; पृ० ४९–५० :

३. ह० प्रति नं० २४०।२ ; –अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

मनू दे फण फण पाग, थेइ थेइ तनु करता थया।
नवायौ तैं नाग, विहबल वसदेरावउत॥
सिर तुळछी गळ मूत, तोरों जंम राजा तंणो।
देख टळीया दूत, यानीत वसदेरावउत[1]॥

(२) गंगाजी रा दूहा :

इन सबमें गंगा-माहात्म्य वर्णित है। ये तीन प्रकार के हैं—

(क) भागीरथी के :

नित नित नवा नवाह, मंजण करिठा मांनंवाह।
भव टाळीयो भवांह, भव कीजइ भागीरथी॥
करि करि घरि घरि कांम, धारइ तट थाका थया।
वड नदि दे विसरांम, भ्रंमीया वह भागीरथी[2]॥

(ख) जाह्नवी के :

ताहरउ उदभुत् ताप, माता संसारइ मयें।
पाणी मुंहंडइ पाप, जालइ तउ जाहंनवी॥
तइ धेयगां तणांह, फूटि बीज काटे कीया।
आतम आपाणांह, जल जेहा जाहंनवी[3]॥

(ग) मंदाकिनी के :

पुळियइ मग पुळिया, दरस हुवा अदरस हुवा।
जळ पइठा जळिया, मंदाकम मंदाकिनी[4]॥

(३) अन्य फुटकर दोहे और गीत :

ये विविध विषयों, विशेषकर भक्ति, नीति, स्तुति और वैराग्य आदि पर लिखे गए हैं—

(क) दोहे :

मइ हरि तजि गुण मांनंवा, जोड़े कया जतंन।
जांणि चितभ्रमि वंधीया, गलिया दहां रतंन॥
प्राणी अनकारा पुहवि, गोविन्द छंडि न गंठि।
तूंबी तजि साइर तरिसि, काकर बंधे कंठि[5]॥

---

१. ह० प्रति नं० २४०।२ ; —अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. ह० प्रति नं० ६१ ; —वही :
३. वही :
४. श्री नरोत्तमदास स्वामी सम्पादित–'वेलि'; —प्रस्तावना, पृ० २९ :
५. ह० प्रति नं० ६१; अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

(ख) गीत :

हरि जेम हलाड़ो जिम हालीजै, कांय धणियां सूं जोर कृपाल ।
मौळी दिवो दिवो छत्र माथै, देवो सो लेऊं स दयाल ।
रीस करो भावै रळियावत, गज भावै खर चाढ़ गुलाम ।
माहरै सदा ताहरो माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम ।
मूझ उमेद बड़ी महमैहण, सिन्धुर पाथै केम सरै ।
चीतारो खर सीस चित्र दै, किसूं पूतळियां पाण करै ।
तू स्वामी पृथुराज ताहरो, बलि बीजां को करै विलाग ।
रूड़ो जिको प्रताप रावळो, भूंडो जिको हमीणो भाग[1] ॥

माधोदास दधवाड़िया :

ये चूंडाजी दधवाड़िया के पुत्र थे[2] । इनका जन्म मेड़ता परगने के बलूदा गांव में संवत् १६१०–१६१५ के आसपास हुआ था । इन्होंने विद्योपार्जन अपने पिता से ही किया । ये राठौड़ पृथ्वीराज और गाडण केसौदास के समकालीन थे । कहा जाता है कि पृथ्वीराज की 'वेलि' पर सम्मति देनेवाले चार चारणों में, ये भी एक थे । इनकी सम्मति पृथ्वीराज के अनुकूल थी, जिस पर पृथ्वीराज ने इनकी प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा कहा—

चूंडै चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास ।
चारण जीवौ चार जुग, मरो न माधोदास ॥

इससे 'वेलि' के समाप्तिकाल तक इनकी सर्वप्रसिद्धि का पता चलता है । इनका रचनाकाल आलोच्यकाल के अन्तिम वर्षों के आसपास माना जा सकता है । कहा जाता है कि ये जोधपुर के महाराज सूरसिंहजी के आश्रित थे । सूरसिंहजी का शासनकाल संवत् १६५२ से १६७६ तक है[3] । इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एक बार मुसलमान इनकी गायों को घेरे लिए जाते थे, तो ये अपने लड़के के साथ उनका मुकाबला करने गए, जिसमें ये बहादुरी से लड़ते हुए काम आए । यह घटना संवत् १६९० के आसपास हुई बताते हैं । मिश्रबन्धुओं ने इनका कविताकाल संवत् १६६४ माना है[4] । नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में संवत् १६७५ के लगभग इनका वर्तमान रहना बताया है[5] । अभी तक विद्वानों ने इनके बनाए दो ग्रन्थों का पता दिया है—(१) रामरासौ और (२) भाषा दसमस्कंध । इनमें 'भाषा दसमस्कन्ध' का पता नहीं चलता । खोज में इनकी एक और रचना 'गजमोख' या 'गुण गजमोख' का पता लगा है । रामरासौ और गजमोख से पता लगता है कि

---

१. 'वेलि' –(हिन्दुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ४४ :
२. देसाई ने इनको चारण सुखदेव का पुत्र बताया है।
—जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २१४८ :
३. रेउ : मारवाड़ का इतिहास :
४. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३७६ :
५. खोज रिपोर्ट, १९४४ से १९४६, संख्या २८८ :

माधौदास, उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ, परम भक्त भी थे। यही नहीं, रामरासौ से उनके उद्भट विद्वान् होने का भी पता चलता है।

रामरासौ[1] :

रामरासौ का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[2], मिश्रबन्धुओं के विनोद[3], देसाई के जैन गुर्जर कविओ[4], राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज[5] आदि में मिलता है। इनके अलावा, इसकी हस्तलिखित प्रतियां एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता[6], सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता[7], अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर[8], मोतीचन्दजी खजान्ची संग्रह[9], बीकानेर, उदयपुर के राजकीय भण्डार[10] आदि में मिलती हैं। यह लगभग पौने ग्यारह सौ छन्दों का ग्रन्थ है। इसमें ३१ गाहा, ३४२ दोहे, ८९ पाधड़ी, ६१ कवित्त, ७ रसावला, १३ चौपाई, ४५ झूलणा, ७२ मोतीदाम, १ गीत, २ वंशावलियां, १ श्लोक तथा ४१२ वेअखरी छन्द हैं। अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में छन्द सख्या लगभग इतनी ही मिलती है। डा०मोतीलाल मेनारिया ने इसको सोलह सौ से अधिक छन्दों का ग्रन्थ बताया है[11] जो विचारणीय है।

इसमें साहित्यिक और बोलचाल की राजस्थानी का अद्भुत मिश्रण है। वैणसगाई का पालन यथासम्भव किया गया है। इसमें राम-जन्म से लेकर, रावण की मृत्यु के उपरान्त अयोध्या में राम के राज्याभिषेक होने तक, सम्पूर्ण राम-कथा का वर्णन है। कवि का उद्देश्य सीधे-सादे ढंग से राम की—केवल राम की—कथा कहना है। अत: किसी प्रकार के अनावश्यक या इतर विस्तार में न जाकर मूल कथा-सूत्र पर ही अपना ध्यान रखा है। प्रसंगवश, कुछ मोटी-मोटी अन्य घटनाओं का भी उल्लेख हुआ है, जो रामचरित के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। यह वीररस का, उत्कृष्ट कोटि का वर्णन प्रधान महाकाव्य है। विविध घटनाओं और वर्णनों के संयोग से कथा बड़े वेग से गन्तव्य स्थान तक चलती है। प्रारम्भ से लेकर राम के समुद्र पार उतरने तक के विविध वीररस के प्रसंगों के अतिरिक्त, अंगद के रावण की सभा से लौट आने के प्रसंग से लेकर रावण की मृत्यु तक, लगभग ३३० छन्दों में

१. अनूप सं० ला०, बीकानेर की प्रति नं० ९४ के आधार पर प्रस्तुत पंक्तियां लिखी जा रही हैं। पाठ-निर्धारण में कहीं-कहीं यहां की प्रति नं० ९३ और ९५ से भी सहायता ली गई है।
२. सन् १९४४ से १९४६, संख्या २८८ :
३. भाग १, पृ० ३७६ :
४. भाग ३, पृ० २१४८–४९ :
५. भाग ३, पृ० १०३ :
६. प्रति नं० 164–R. 26(a) :
७. गुटका नं० २० :
८. प्रति नं० ९३, ९४ तथा ९५ :
९. गुटका–(१)–क(५)(२); (२)–घ(७)(१); तथा (३)–घ(४६)(१) :
१०. A Catalogue of Mss. in the library of H. H. the Maharana of Udaipur : प्रति नं० ५६९, ५७७ तथा ६७७ : —मेनारिया :
११. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १९०।

वीररस से परिपूर्ण युद्ध का ही वर्णन हुआ है। यह अत्यन्त सजीव बन पड़ा है। अन्य रसों की भी, प्रसंगवश, यत्र तत्र झांकियां देखने को मिलती हैं, किन्तु प्रधान रस वीर ही है। मुख्य कथा में विषयान्तर कहीं भी नहीं हुआ है और न ही इधर-उधर की घुर-प्रसंगों की कथाएं कवि ने ली हैं। विषयान्तर अथवा घुर-प्रसंगों के वर्णन उतने ही हुए हैं, जो या तो मुख्य कथा में आवश्यक हैं, अथवा उसकी गति आगे बढ़ाते हैं। वक्ता-श्रोता के जोड़े अथवा कथा के सर्गों या कांडों में विभाजन के कोई प्रसंग नहीं हैं। स्वयं कवि ही कथा कहता है। रामरासो की कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है, किन्तु इसके अतिरिक्त कथा के सूत्र आनन्द-रामायण, कृत्तिवासीय रामायण[1], अध्यात्म-रामायण, लोमशसंहिता आदि में भी खोजे जा सकते हैं। इससे कवि के विस्तृत अध्ययन और उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का पता चलता है।

निम्नलिखित प्रसंगों से कवि की उद्भावनाओं एवं विविध कथा-सूत्रों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है—

(१) संक्षिप्त मंगलाचरण और वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, जयदेव आदि को श्रद्धापूर्वक स्मरण करने के पश्चात्, अयोध्या नगर तथा दशरथ के बल-वैभव का वर्णन किया गया है। दशरथ के ७५० राणियां थीं, जिनमें कौशल्या, केकैयी और सुमित्रा तीन पटराणियां थीं।

(२) चंपापुर के राजा लोमपद दशरथ के सखा थे। वर्षा न होने से राज्य में लगातार अकाल पड़े। पंडितों ने सम्मति दी कि यदि शृंग ऋषि किसी प्रकार राज्य में आजाएं, तो वर्षा हो जाएगी। इस पर एक अत्यन्त चतुर वेश्या द्वारा ऋषि राज्य में लाए गए और जोरों की वर्षा हुई। राजा दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ में, ऋषि ने आशीर्वाद दिया तथा राजा व राणियों को यज्ञ का घी पिलाया गया। इधर रावण के अत्याचारों के कारण देवता दुखी थे। उनकी प्रार्थना पर भगवान ने दशरथ के घर अवतार लेने का वचन दिया। भगवान विष्णु को ब्रह्माजी ने अपने तथा रुद्र के द्वारा रावण को वरदान दिये जाने की कथाएं भी सुनाईं।

(३) विश्वामित्र के यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात्, राम लक्ष्मण उनके साथ जनकपुर को रवाना हुए। मार्ग में अहिल्या-उद्धार के अनन्तर, केवट के साथ गंगा पार उतारने का प्रसंग है।

(४) जनक ने ऋषि को सूचना दी कि सुर, नर, असुर, पन्नग, इन्द्र, लंकेश्वर आदि सभी थक कर चले गए, किन्तु धनुष किसी से हिला भी नहीं।

(५) राम का विवाह सीता के साथ, लक्ष्मण का माण्डवी के साथ, भरत का उर्मिला के साथ और शत्रुघ्न का सुतकृत्या के साथ हुआ।

---

१. 'We have the Bengali translation of the Ramayana by Krittivas in 1370 A.D.'—Mohanlal Vidyarthi : India's culture through the Ages, —(Second Edition, 1952, Kanpur) :

(६) विवाहोपरान्त सीख लेकर जनकपुर से जब बारात अयोध्या लौट रही थी, तब मार्ग में परशुरामजी मिले ।

(७) विवाह के ६ महीने पश्चात्, भरत को उनके ननिहाल गिरव्रज बुलाया गया और उनके नाना ने वहां का राज्य उन्हें दिया ।

(८) दशरथ ने एक दुःस्वप्न देखा और तदुपरान्त अपनी चौथी अवस्था का विचार कर राम को राजतिलक देने की सोची ।

(९) कैकेयी ने दशरथ से कहा कि यदि उसके मांगे हुए दो वचनों का पालन न किया गया, तो वह अवश्यमेव आत्महत्या कर लेगी ।

(१०) बन जाते समय कौशल्या से व्यंग करते हुए राम, अपने पिता को, उनके पति से श्रेष्ठ बताते हैं ।

(११) भरत को सेना-सहित आता देख कर, गुह तो उत्तेजित हो उठता है, किन्तु लक्ष्मण नहीं होते ।

(१२) सीता के आग्रह करने पर, मायामृग के पीछे गए राम की सहायतार्थ, जब लक्ष्मण चलने लगे, तो उन्होंने कुटिया के द्वार पर कोई 'कार' (रेखा) नहीं दी । अशोक-वाटिका में सीता स्वयं ही अपनी रक्षार्थ 'कार' देती है।

(१३) राम और सुग्रीव ने दशहरे के पश्चात् वानर-सेना को सीता की खोज के लिए भेजने का निश्चयय किया ।

(१४) लंका में जब खोज करने पर भी हनुमानजी को सीता का पता न लगा, तब उन्होंने अप-घात करने की सोची । इसी क्षण, उन्हें अशोक-वाटिका की सुधि आई ।

(१५) हनुमानजी ने सीता को मुद्रिका दी और बदले में सीता ने अपनी सैनाणी देकर उन्हें विदा किया । लंकादहन के पश्चात् वे सीधे राम के पास चले आए ।

(१६) लंकादहन से पहले ही, विभीषण की सीता को सौंप देने की सलाह पर, रावण ने उनके लात मारी और वह राम से समुद्र के उस पार जा मिला । पश्चात् समुद्र पर पुल बांधा गया । हनुमानजी विभीषण के रामादल में आने से पहले ही समुद्र पार कर सीता की खबर ले आए ।

(१७) लक्ष्मण, रावण की शक्ति लगने पर मूर्च्छित हुए । इसका पता जब राम को लगा, तो वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर तत्क्षण रावण को मारने चले, किन्तु उस दिन वह लंका में चला गया ।

(१८) हनुमानजी पलक मारते ही संजीवनी के लिये गए और द्रोणगिरी पर्वत को उखाड़ लाए। कालनेमि अथवा भरत द्वारा तीर मारे जाने के प्रसंगों का उल्लेख नहीं है ।

(१९) कुंभकर्ण ने, सीता को सौंपकर, सुलह करने की सीख रावण को दी । तब रावण ने सीता-संबंधी अपने पूर्वजन्म के दुष्कृत्य को स्पष्ट रूप से कहा और शाप बता, इसी प्रकार अपनी मृत्यु निश्चित बताई ।

(२०) मेघनाथ ने बाधारहित यज्ञ सम्पन्नार्थ, माया की सीता को मारकर कपिदल में पटका, जिससे उसका ध्यान बंट जाए ।

(२१) राम-रावण-युद्ध में, लगभग दो दर्जन बाणों के नामों का उल्लेख किया गया है।

(२२) विजयोपरान्त जब सीता रामादल में लाई गईं, तो जगत का मुख बन्द करने के लिये राम ने उनको निठुर वचन सुनाए। इस पर सीता ने स्वयं अपनी अग्नि-परीक्षा के लिये कहा।

(२३) लंका से वापिस अयोध्या जाते समय, राम ने ब्यौरेवार अपने विविध क्रीड़ा-स्थल सीता को दिखाए और तत्-संबंधी घटनाओं का सविस्तर वर्णन किया। शृंगबेर से हनुमान-जी को अपने आगमन की सूचनार्थ अयोध्या भेजा।

(२४) शुभ-मुहूर्त देखकर, रामचन्द्रजी नंदिग्राम पधारे। उनकी आज्ञा से भरत ने मुनिवेष उतार कर राजसी वस्त्र पहने।

(२५) राज्यारोहण के पश्चात् नल-नील, अंगद, सुग्रीव, हनुमानजी आदि को राम ने सीख देकर विदा किया।

इनके अतिरिक्त, मुख्य कथा से संबंधित बीच बीच के प्रसंग चिर-प्रचलित प्रसंगों जैसे ही हैं।

रचना के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित प्रसंग देखे जा सकते हैं :

विश्वामित्र राम को मागने जाते हैं। राम के प्रति दशरथ का स्नेह और मुनि का क्रोध—

पुरी मींन जल राम पद, चित कोर हित चंद।
अवलोकां जिम रंक अथ, निमष निमष रघुनंद॥
क्रोध रक्त लोचन कीया, दिढ तप मंत्र दिपाइ।
धुजी सकल वसुंधरा, रोसांणौ रिषराइ॥

विवाहोपरान्त, परशुरामजी के क्रुद्ध रूप और उनके गर्व-हीन होने का वर्णन—

उरध केस लोचन अरुण, नास प्रफुल्लित निज
उरसूं फरस उल्हावतौ, दीयौ दरसंण दिजि
वाइ डंडूल समूल वृष, उडि मंडे अंधार
धानंख नूंण फरस धर, आयै मुंषि अंगार
राम हरे दिज राम रौ, तेज धनुष संगि तांणि।
विप थयौ बल गर्व विण, हायी जिम मद हांणि॥

बन जाते समय राम का कौशल्याजी से व्यंग —

आयें कय कौशल्या एहो, कांम (+जीत री बाचा[1]) केहो।
त्रिया जित परवस पिता तव, राजा तौ कामणि जित राघव।
त्रिया जीत पंणि प्रीया तुम्हारा, मदंन जित तो पिता हमारा।
पिता सति थाचा पालीजे मात वाच कांइ मेटीजें।

---

१. प्रति नं० ९३ से; —अनूप सं० ला०, बीकानेर :

राम की सहायतार्थ जाने के लिए लक्ष्मण के प्रति सीता के वचन—

लषमण तुम्हां लार, मात भरथ री मेल्हीयो ।
भोलो अम्हां भरतार, देर्ष सोह धोलो दुगष ॥
देवर चीत में डोलि, धरण मूल राधव विघंन ।
झल मंगल तंन झूलि, थापु तो जाणे सति ॥

सूनी कुटिया देखकर राम का विलाप—

लषमंण सूंना झूपड़ा, सीता चोर पइठ ।
वर धण दोसी नाह विण, धण विण नाह म दिठ ॥
तरि तरि पेषि न कलपतरु, सर सर हंस म सोसि ।
कुसल न लषमंण जानकी, नडि नडि विहुड न पोजि ॥
भंणि-भंणि सीत सुभाम, वंन वंन विण विण विचरतां ।
ध्यायं राम विराम, जळ सोछें थळ माछ जिम ॥

हनुमानजी का लंका में सीता को खोजना—

सर सर तर तर सोझीया घर घर लंकारे
सोझे घर कुंवरां सभां पुर निकट तिमारे
मुरिज ठिमरि घरि भींत भांजि चढि चढि चौबारे
घरि घरि जोइ मंजार रोति नह सीत निहारे ।

विभीषण का रावण को समझाना—

पांणी पहिली बंधि पालि, रहें जिम पांणी रांमण
छोडि मांण ग्रहि सरंण, एम बोलीयौ वभीषण
सोवन लंक कुल पौल सुत, जासो जिम संकर जरा
कपि सीत छोडि अमंगल न करि, जो मंगल चाहे आपरा ॥

युद्ध वर्णन—

संष भेरि थाइ जंत सदा, घुसर धनष टंकार ।
छत्र उडे रामण भमणि, पड़े क बाण पुकार ॥

× ×

नील कंधि हेमरां नील हेरांपयठं
ठामि ठामि रथ नील नील दल धनष धयठं
नील मधि सारथी नील दससीस दसाणण
नील छत्र सिर धजा जोध पेषियौ जणा जण
जाल नल नीलि ष जालियौ कोप रूप हजार करि ।
रघुनाथ भींछ रथ रामणह नील ऐम होमे निडरि ॥

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम का युद्ध—

धूजो धरा सेस धड़हड़ीयौ, पड़तो संध्या लषमण पडियौ ।
वडो धांक ऐक उरि वाहे, सोहड़ि घणूं लषमण सां बाहे ।

हूं आयौ पग मांडि चोर हुव, दे विधि कर म्हारा कर दाणव।
रामण बाण राम छेदे रण, राघव बाहे छेदे रामण।

कुंभकर्ण का युद्ध—

एकां कलै नीगिलै ऐकां। एकां दलै घोंपलै अनेकां।
पायं लापां लापां पेसै। फुरलै लापां लापां फेसै।
डकरै कोडि कोडि दल डारे। मसलै कोडि कोडि पल मारै।
हिणि तालीयां गिरवरां हायां। बेह जार कपि ग्रहिया बायां॥

महोदर, त्रिसरा आदि के साथ कपियों का युद्ध—

जूटा जोध न थायं जूवा, हणूं महोदर बायां हूवा।
लड़ै पड़ै पल झड़ै लटके, धर घूजे नर वानंर धके।
हसै उसै उक्रसै निहसै कसै डसै धाई थसै विकुसै।
हीकां झीकां धाकां समहर, मारि पाड़ियो जोध महोदर॥

राम रावण युद्ध—

कजि भारथ समय कथ, चढि रथ चलाए
गंजण सुभ असुभ ग्रिध, धज बैठी धाए
करै हूक जोगणि कहक करि डक बजाए
सींघू नद रवद सद नारद नचाए
पावक झल सावक प्रबल दल पल दरसाए।
रामण त्रिभुवण रावसों चढि चौरंगि आए॥
मिले सेन सूरियां रींछ वांनर राकसां
मिले बांण गुण मूंठि मिले पंखणि ग्रिध मंसां
मिले मोद अमरां मिले निसचरां अमंगल
मिले काल दहकंध मिले साइक नभ मंडल
सथ रथ मिले देवां सुरां बीर मिले वीरां वरण
संमिले ताम त्रिहूं लोक सुध, मिले राम रामण मरण॥
बिन्हे सुर सारिष बिन्हे चौरंगि अविचल
बिन्हे जाण जुध बाहु बिन्हे वाणपति महाबल
बिन्हे पुंज-पोरिस बिन्हे ओरिस न बोलै
वेरोलै रण बाण बिन्हे धर आभ उतोलै
वैकुंठनाथ लंकेसवरा बदे विधा बाइको
सारिषा बिन्हे विधि साइके नाइक पसीया नाइको॥

× ×

बीस भुज बावरै बीस आवध थसेवै
लड़ै घड़ै लोहड़ै पड़ै उठै बल पेवै

जुड़ै पड़ै नीं जुड़ै छड़ै नह पड़ै पड़ै छंडि
पड़ै पड़ै वीसहूं डहूं गैणगि भुजा डंडि
पड़छीए छात्रि लंका घणी थणे गात्र उपयंदरं।
याधियो विढंतो माढ़तो राण मधि धंमसाणरं॥

रावण का धराशायी होना—

रोस चढै श्री राम झाड़ पड़ि झाड़ बाण झड़
पड़ै पाल (श्रो)णी पयाल पड़ै मल पीयं झड़ फड़
पटै रोलि गढ प्रोलि रोठ.पड़ि भोठ प्रलै दय
पड़ै हार पोकार भार पड़ि भार दस मुय
श्री राम प्रतंग्या तामसति वज्रि बाणि वजाड़ियो।
दस दिसी दहकंधरा पड़ियां रामण पाड़ियो॥

गजमोख :

यह नीसाणी छन्दों में लिखी हुई छोटी सी रचना है जिसकी कथा का मूलाधार भागवत है। सरोवर में पानी पीते समय गज को ग्राह ने जकड़ लिया। गज थककर हार गया। और कोई उपाय न देख कर, उसने आर्त्त हो भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने ग्राह को मार कर गज का उद्धार किया।

कथा के प्रारंभ में, कवि ने पहाड़, जंगल और सरोवर का सुन्दर चित्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों में पाठ-भेद काफी मिलते हैं। छन्द संख्या भी कहीं ८०[1] और कहीं ६८[2] पाई जाती है। सीधी-सादी, प्रवाहपूर्ण भाषा में बड़े रोचक ढंग से कवि ने गजमोख की कथा का वर्णन किया है। कुछ उदाहरण देखिए[3]—

मंडे तंडव झंड झंड गिर मोर मल्हारा
पायर भायर वंनंसपती पैहेरी चुह पारा
तेण सरवर वंनं अंतरं वसे गयंद वडाला
लोचंण चोल कपोल लोल धुंमर ढोचाला
गाज करंता राज-गत अंजल निघ आया
वारण वरंण विरोल ते जंम ग्राह जगाया
ग्राह राह च्यारे ग्रहं (प)ट हयी पाया
ऊभं डोप भवलेप कुण बलवंत वंधाया
पुत कलत परवार पंडि पग थया पराया
पुंनिम दूतीया चंद ज्युं घटीया गज राया

× ×

१. ह० प्रति नं० ६; —अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. ह० प्रति नं० ९४; —वही :
३. ह० प्रति नं० ९४ से :

ग्राह सरोवर गरजीया जल जीव आहारे
बल घटीया मेंटीया वहल थल गयंद बकारे
जीता ग्राह सुबाह् जुधा पच मेगल हारे
तब पुरब भव संभरे भगवंत विहारे
तब पुरब भव संभरे भगवंत विहारे
नील सिघर श्री जगन्नाथ जग प्राण पीयारे
उदत विसंभर विसंम ईस जस जैं जैं कारे
आप सुंड अवुडंति डुय अंगुल धारे
सोसन्हस्र चक्र छेदीया गज दल उवारे ।

कवि के फुटकर गीत भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

जसवन्त : त्रिपुर सुन्दरी री वेलि :

यह ९ दोहों और २ कुंडलियों (३० पंक्तियों) की एक छोटी सी रचना है जिसके रच-यिता कोई जसवन्त हैं। इसका पता निम्नलिखित दोहे से लगता है—

राय राणा सेवा करइ, इम भणइ जसवंत ।
मया करे मम माउली, करज्यो सुजसवंत ॥

संवत् १६४३ की पोह वदी ९ की लिखी हुई इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में है[1]। स्मरणीय है कि इस 'वेलि' का वेलियो छन्द से कोई संबंध नहीं है। इसमें सिंह-वाहिनी देवी की महिमा का वर्णन किया गया है—

हवि सील लागो छइ माता, गुण एक अरदास ।
सेवक केरी वारइ धाउनी मनि धरी उल्लास ॥
मात तणइ सुपसाउ लइ नासइ सघलां रोग ।
सिद्धि वृद्धि दायक सदा देज्यो वंछित भोग ॥
त्रिपुर पसाइ पामीइ भासइ सय रिद्धि वृद्धि भंडार ।
गज रथ घोडा सयल धन मन वंछित दातार ॥

सांयाजी झूला :

ये ईडर राज्य के लीलछा नामक गाव के रहने वाले चारण स्वामीदास के दूसरे पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम भायाजी था। इनका जन्म सवत् १६३२ में और स्वर्गवास संवत् १७०३ में हुआ। इनके गुरु कोई महन्त गोविन्ददासजी थे। ईडर के राव वीरमदेवजी और उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके छोटे भाई राव कल्याणमलजी इनके आश्रयदाता रहे थे। वीरमदेवजी ने इनको एक लाख पसाव दिया तथा कल्याणमलजी ने भी एक लाख पसाव तथा एक गाव कुवावा नामक इनको प्रदान किया था। यह इनाम उनको संवत् १६६१ में मिला, जब वे 'नाग दमण' और 'रुक्मणी हरण' नामक काव्यों की रचना कर चुके थे[2]। ये श्री कृष्ण के परम भक्त

---

१. प्रति न० २७२/४ :
२. नागदमण, पृ० २६, —सम्पादक : चारण हमीरदान, पालनपुर :

सब गाएँ इकट्ठी की गईं। श्री कृष्ण गाएँ हांक रहे हैं और प्रेम से गोपियां झरोखों से उन्हें देख रही हैं—

हरी हो हरी हो हरी धेन हांके, झरूखें चडी नंद कूंमार झांके।
अहो राणियां अव्वला झूळ आवे, मगव्वान नें धेन गोपी भळावे ॥५॥

यमुना के तट पर श्री कृष्ण और ग्वाल-बालों ने खेल रचा। बीच ही में श्री कृष्ण कालिय नाग को नाथने के लिए यमुना में कूद पड़े। यह बात सर्वत्र शीघ्र ही फैल गई और हाहाकार मच गया—

जदूनाथ काळी समी बाथ जोड़े, धणी भोम चालो चडी बात घोड़े।
उभा गाय गोवाळ झूरंत आरे, हहाकार हक्कार संसार सारे ॥१५॥

यशोदा ने यह बात सुनी तो उनका मातृ-प्रेम चीत्कार कर उठा। वे रोती दौड़ती हुई यमुना के तट पर आई, मानों रंक ने चिन्तामणि खो दी हो —

सुणे वात आघात माता सनेही, जशोदा ढळी कद्दली खंभ जेही।
सँबाहे सखी लार हाली सयाणी, रहावी विचाळे थकी नंदराणी ॥१६॥
विहू लोचने नीरधारा बहंतो, कनैयो कनैयो जशोदा कहंती।
कलिंदा तणे आइ लोटंत कांठे, गयो जाणि चिंतामणि रंक गांठे ॥१८॥

तट पर खड़े हुए ग्वाल-बाल आदि सब झूरने लगे। इधर श्री कृष्ण नाग के दरबार में जा पहुँचे।

नागणी (नागिन) उनके सुन्दर रूप को देखकर आश्चर्यचकित रह गई। उसने न कभी ऐसा रूप देखा था और न ही सुना था। यहां कवि ने नागणी के द्वारा कृष्ण का रूप वर्णन करवाया है—

सबे सुन्दरी मुंदरी देख सोही, वळे दाड़िमे दंत चौकी विमोही।
अधूरे अमृतं न जायें अघाई, सिगे कुंडळां लोल कप्पोल झांई ॥२५॥
इसे नासिका सग्ग दीपक्क एरी, कळी चंप जांणे रुळी लंप केरी।
नवे नेह दीरघ्घ पंकज्ज नेत्रे, सुभा मीन खंजन मृग्गी सवेत्रे ॥२६॥

रूप-वर्णन के पश्चात् नागणी और कृष्ण का संवाद प्रारंभ होता है। नागणी ने श्री कृष्ण से वहां आने का कारण पूछा, नाग की भयंकरता का वर्णन किया और समझाया कि 'तुम तो बिल्कुल निरस्त्र हो, युद्ध के कोई उपकरण तुम्हारे पास नहीं, हाथ में केवल मुरली है, नाग से कैसे लड़ोगे? अभी तो माता के पास खेलने कूदने और खाने पहनने के दिन हैं। क्यों आकाश को बांहों में भरने का यत्न करते हो? नाग की क्रोधाग्नि से नीले वृक्ष और बड़े-बड़े गिरिशृंग भी जलकर भस्म हो जाते हैं,—

(क) कठाहूंत आयो अठे काज केहा, यहां भूलियो बापरा साप गेहा ॥३३॥

(ख) हमारो मुर्ला जागसी नाग हेवां, न ठूली न छांडे निरदार नेवां।
महाकाल काली न को बाल मानें, पड़ी बोकड़ी आज ही बाघ पानें ॥३६॥

(ग) चालेवा करे सामुहा जुद्ध चाळा, वयेरान यारे अजां बाळ वाळा।
खिलीजे रमीजे घणूं मात खोळा, भरीजें नहीं आभ सुंवाय भोळा ॥३९॥

(घ) टंकारं न भारं अडारं न टंकी, विधाणं न याणं कवाणं न वंकी।
न फेरी न भेरी निसांणं न नद्दा, रणं सूर याजे न घोरे रवद्दा ॥४५॥

(ङ) जळे वुरुल नीला यहे विरख झाळा, वदन्ने सहस्से वपे व्योम व्याळा।
बड़ा शृंग सीतंग हेमंग वाला, जरी फूंक आगे भर टूंक फाळा ॥५३॥

कृष्णजी ने उत्तर दिया—'तुम जाओ और नाग को जगा दो। यहीं हम अखाड़ा बनाएंगे। बिना अस्त्र शस्त्र के, मैं हाथों से ही लड़ाई करुंगा। हार जीत तो भगवान के हाथों में है। मैं तो मनुष्यों, दानवों और देवों को यह खेल दिखाऊंगा ही'—

(क) जाओ नागणी नाग वेगो जगाडो, अठे मांडसां आज दोनूं अखाडो ॥३७॥

(ख) कट्टकां खगां बाहरं नाग काछे, अमां नागणो पत्तरो झूझ आछे।
बुलाडो जगाडो जुओ जुद्ध थाये, हांर्यां जीतिआं बात कर्तार हाथे ॥५१॥

(ग) पनंगा नरां दांणवां देव पासा, तुनां दाखवां आज वेगो तमासा ॥५५॥

कृष्ण का दृढ निश्चय देखकर नागणी ने कृष्ण के माता-पिता आदि के विषय में पूछा और उन्होंने तदनुसार उत्तर दिया—

कठेवास मूसाल ढोटो कणोरो, वळे ताहरो दूसरो कूण वीरो?
अमारे भग्गतां हुवे एह ओरा, मंडया आभ घेरे धरा वास मोरा ॥५८॥
मोरे नंद बाबो जसोदा सुमाई, भलो नाम छे हेक बलभद्र भाई।
मोरे कंस मामो कहे मूझ मूळे, कियो वास नेड़ो जमूना झकूळे ॥५९॥

नागणी फिर भी समझाती रही, किन्तु कृष्ण का निश्चय तो प्रतिज्ञा में बदल गया—

काळो नाग नायून जो एक मायो, जसोदा प्रसू नंद बाबो न जायो।
नहीं नागणी लाग थारो नवारे, हवे हेकणो गांठ हेर्ल हजारे ॥७८॥

अब उन्होंने ऊंचे स्वर से मुरली बजाई जिसकी तान पाताल और स्वर्ग-पर्यन्त गूंज गई। इस तान को किनारे पर खड़े ग्वालबालों ने सुना। वे हर्ष से भर गए और यशोदा को बधाई देने लगे—

विकस्से हसे वेण उंचो बजायो, सपत्ते पताले सुरग्गे सुणायो ॥९५॥
बधाई बधाई जसोदा बधाई, करे मोरली नाद ठाढो कनाई।
मये नीर तोछा तणो मच्छ माई, जसोदा किणे कान जित्यो न जाई ॥९६॥

इधर कालिय नाग भी जग गया और क्रुद्ध हो, फण उठाते हुए दरबार में आया। उसकी फूत्कार से अंगारे उठने लगे, शेषनाग का ओज घट गया और धरा धूजने लगी—

मचे मूठ मारा झरे श्रोण झारा, फणांरा घणांरा करे फूत्तकारा ॥१०३॥
उडाडे गळं फेंगळारा अंगारा, भयारा झगारा उभे कोप आरा ॥१०४॥
धुमारा धसारा सहे शाम सारा, गड़ड़दा गमारा गळो गुंठणारा।
थमे ओज धारा भलो शेष भारा, धूजंतो धरारा थरक्के थंमारा ॥१०६॥

लेकिन क्रुद्ध कालियनाग को कृष्ण ने बाहुबल से नाथ लिया और उसके फणों पर नृत्य करने लगे—

तिसी तंत ताती बजी ताल ताळी, मँडयो पाव आरंभियो वन्नमाली।
ततायं ततायं ततायं सतानं, उरं अंतयं अंजयं सुवखमानं ॥११२॥
गिड्डयो गिड्डयो गिड्डयोक गाजे, वाई वांसळी नाद बौका सुवाजे।
काळी नाचियो ऊपरे नित्त काळी, वळीरंभ नाटारंभे अंकवाळी ॥११३॥

अब तो नागणी अपनी पिछली बातों एवं भूल के लिये क्षमा मांगने लगी—

जपी नायसूं नागणी हाथ जोड़ी, थयो दोष मोटो अमांमत्त थोडी।
तुकारे रिकारे जिकोरे तमासू, आया आजसो माफ कीजो अमांसू ॥११५॥

श्री कृष्ण नाग के फणों पर सवार होकर पाताल से यमुना के ऊपर आए और सर्वत्र हर्ष छा गया। अन्त में कवि इस कृष्ण चरित के माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार करता है—

सणे पणे समवाद, नंद नंदन अहि नारो
समँद्र पार संसार होय गोपद अनुहारो
अनँत अनँत आनन्द, सबे थपु तास सुहावे
भगत मुगत भंडार रूवन मुगताज कहावे
रचियो चरित्र राधारमण दो भज कन काली दमण।
चेतवण सुणण गहरा तणा मटण काज आवा गमण ॥

(२) रुखमणी हरण :

रुखमणी हरण में, श्री कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण और दोनों के विवाह की कथा का वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय कलकत्ता में है, जिसमें ३ गाहा, १ दोहा ४३० जंफताल और १ कवित्त, सब मिलाकर ४३५ छन्द हैं। स्मरणीय है कि इसमें दो अर्द्धालियों का एक जंफताल छन्द माना गया है, चार का मानने से जफतालों की संख्या इससे आधी होगी। इस संबंध में, पृथ्वीराज की 'वेलि' को सायाजी के 'हरणिया' द्वारा परे जाने का अकबरी प्रवाद भी बहुत प्रचलित है। किंतु मूल-कथा के अतिरिक्त, नवीन-प्रसंग-उद्भावनाओं एवं काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से, दोनों में कोई समानतापरक तुलना नहीं हो सकती। इस दृष्टि से दोनों में समता की अपेक्षा विषमता ही अधिक पाई जाती है। इसका कारण है—काव्योद्देश्यों की भिन्नता। 'वेलि' में शृंगाररस प्रधान है, जिसका पर्यवसान भक्ति में होता है, जबकि 'हरण' वीररस की कृति है। तुलना की दृष्टि से, पदमतेली कृत 'हरजीरो व्यांवलो' (या रुकमणी मंगल) और 'हरण' अधिक उपयुक्त हैं, 'वेलि' और 'हरण' नहीं। 'व्यांवले' की चर्चा हो चुकी है।

रुखमणी हरण वीररस पूर्ण एक वर्णनात्मक काव्य है, जैसा कि प्रारम्भ के दोहे में कहा गया है—

हूं गायेस रुपमण हरण, मंगलच्यार मुकंद।
कुळ जादव पूरण कळा, प्रगटे परम अणंद ॥

गौण रूप से बीभत्सरस का वर्णन भी मिलता है। इसमें रसानुकूल शब्द-योजना और चित्रमय वर्णन स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। 'नागदमण' की भांति 'हरण' में भी संवाद और

विविध वर्णनों के प्रसंग प्रमुख हैं। रुक्मिणी के विवाह के विषय को लेकर, संवाद का प्रसंग राजा भीमक और रुपमी के बीच, प्रारम्भ के लगभग १०० छन्दों तक चलता है। वर्णनों में प्रधान वर्णन इन प्रसंगों के हैं—

१. शिशुपाल के कुन्दनपुर आते समय-विविध शकुनों का होना,
२. बलदेव के द्वारका से रवाना होते समय-उनकी युद्ध की तैयारी,
३. रुक्मिणी-हरण पर युद्ध तथा
४. विवाहोत्सव पर द्वारका नगरी की सजावट।

कथानक :

कथा का प्रारंभ संक्षिप्त स्तुति और काव्योद्देश्य वर्णन के पश्चात् सीधा रुक्मिणी के विवाह-प्रसंग से प्रारम्भ होता है—

भळ भळा राजहंस राजकुंवरी भली, ऐह छै रुयमणी रूप जुग ऊपळी।
मात पत पूत परवार बैठा मतौ, सोगियो वाद वीवाह कारण सुतौ।

पश्चात् काफी दूर तक पिता-पुत्र का कृष्ण की स्तुति-निंदा प्रस्तुत करता हुआ संवाद वर्णन चलता है। राजा भीमक कृष्ण को वर चुनना चाहते हैं और अपनी इस बात के पक्ष में कृष्ण द्वारा किए गए विभिन्न वीरतापूर्ण एवं अलौकिक कृत्यों का बखान करते हैं। इसके विपरीत रुपमी, कृष्ण के कुल, गोपियों के संग उनकी धृष्टता एवं चोरी आदि के उदाहरण देकर उनकी निंदा करता है और शिशुपाल को श्रेष्ठ वर बताता है। कुछ उदाहरण यों हैं—

भावियो भीम मुप जोय चवदंहै भवन, कुयर वर मूझ वर एक सूझे कसन।
रुयमियो जांण व्रत जाळणी राळियो, भला भीमक तुमे भळो वर भाळियो।
अवर अपूज था रजहंस एतळा, सील कुळ सोध भर वड पायं भळा।
घाट जमना तणे वीह चाळो घणौ, ताकतो पुगरण नेंहण हारी तणौ।
कदम डाळी चडे चीर झाटे कसन, नीरसू करगरं नार ऊभी नगन।
सूर ओ पूछ नें प्यूछ नाग सव्है, राविया पुत्र ऐही ज रो पांणी रहै।
बालपण ऊपले जेण वंधावियो, एवही सगां कद आपणे आवियो।
जेण पण मात पत रो ऐहो जंणियो, अधपती छंड अहीर घर अंणियो।
ध्यान संकर धरं कीत वहैमा करं, तात नह कीजियं नाय त्रिलोक रं।
एकणी हाय पहाड़ आधारियो, व्रज ऊगारियो केम वीसारियो।

किन्तु अन्त में रुपमी ने दमघोष के पास शिशुपाल और रुक्मिणी के विवाह का निमंत्रण भिजवाया। शिशुपाल ने प्रस्थान की तैयारी की। उसके प्रस्थान के समय तथा कुन्दनपुर में पहुंचने पर अनेक अपशकुन हुए। यहां कवि ने शकुन-शास्त्र तथा ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है—

बुध चोथो सनीसर बारमो, अरक माठो मंगल आवियो आठमो।
रुय सूके मळे वेंव बेठो रही, सीतरो डाहैणो बोलियो प्रहप्रही।

घड़ी सिसपाल जं काळ री चोघड़ी, पागड़ै पाव दैतं पड़ी पाघड़ी ।
घरहु चालिया जंन मेलै घणी, जीमणी देव नं संमही जोगणी ।
हुयो डावो हरण हेक डावो हणू, घुघुयो जीमणो कसु अचरज तणू ।

कुन्दनपुर में शिशुपाल की बारात आई देखकर रुक्मिणी निराश हो गई और उसने विष-पान की इच्छा प्रकट की। पश्चात् उसने ब्राह्मण के हाथ कृष्ण को पत्र भेजा। वह रात्रि होने पर कुन्दनपुर में सोया और सबेरे द्वारका में जगा—

मुणं उछरंग नगर कुमर पेक उणमाणी, राधियो जैहर तावीत भर रुघमणी ।
बंभ तण तीसरं ताळ बोलावियो, अंतरजामी तणं जंणियै आवियो ।
संमणी कुंदणपुर नगर सूतो जके, द्वार महाराज रं जागियो द्वारके ।

पत्र पढ़ते ही कृष्ण सारथी को लेकर ब्राह्मण के साथ कुंदनपुर को रवाना हो गए। जब बल-राम को इस बात का पता लगा तो उन्होंने भी युद्ध की तैयारी की। सेना को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया और और वे आकाशमार्ग से वेगपूर्वक चलकर कुन्दनपुर आए।

शिशुपाल के प्रस्थान के समय हुए अपशकुनों और बलराम की युद्ध-सज्जा के वर्णनों की योजना करके कवि ने आगे होनेवाली शिशुपाल की पराजय की सूचना मानों पहले ही दे दी है।

राजा भीमक ने कृष्ण और बलदेव का स्वागत किया। उनके वहां आगमन से शिशुपाल को किंचित् भय हुआ। उसने जरासंध से मंत्रणा की और युद्ध की संभावित स्थिति देख, दोनों उसके लिये कटिबद्ध हो गए। रुक्मिणी अब अंबिका पूजनार्थ मंदिर में गई। वहां उसको श्री कृष्ण ने रथ में बैठा लिया। साथ में रक्षार्थ आई सेना ने यह देखा, उसमें हलचल हुई और रणतूर्य बज उठे। दोनों पक्षों में युद्ध प्रारंभ हो गया। काव्य का सर्वोत्तम प्रसंग इस युद्ध वर्णन का है। कवि ने पहले से ही इसकी पृष्ठभूमि तैयार कर रखी है। युद्ध का बहुत ही सांगोपाग वर्णन कवि ने किया है। हुंकार और ललकार, सेना की दशा, शस्त्रास्त्र, उनके चलने की आवाज, दिवस में रात्रि का सा अंधकार, हाथियों की सूडों और सैनिकों का कट कर गिरना, तलवारों की भिड़न्त, शंख, झांझ आदि का घोष, शत्रुओं की मृत्यु आदि आदि के सजीव वर्णन नादमय शब्दों में अंकित किए गए हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित छन्द देखे जा सकते हैं—

भेटती अंबका हुयी मन भावियो, अत रथ खेड़ नं मेंहै मोहैण आवियो ।
दुलहणी जळ धंसाड़तो देखियो, ऐंवड़ो सैन पण चत्र औलख्यियो ।
छत्रपती घड बड़ा छलण नं छं तरण, हालियो जुगत सु करे रुघमण हरण ।
संघपन पूरिया संधरो नाद सुण, भयो जंकार तं थार त्रेवौ भवण ।
घर हर अंबरे राळ धाजंत्र घुरं, पंखलं हैदलं गैदलं पायरं ।
भ्रूह मूंछ भळी रोळ धाजंत्र रूड़े, घड़ै सिसपाळ चतुरंग फौजं चड़े ।
झपड़ी वागना रज्ज अंबर अड़े, कंप कोरंभ वाराह बढ कड़कड़े ।
आरपे पारपे सारपे अंबुयं, हाथियं जंण परवत पंथ हुयं ।
भंगलं चंचलं मेंण वहैता भयो, सूर सूझे न को सूर रथ स्वारथो ।
एतरे दंदभी वाजिया ऊमरं, पूरिया संषरा नाद पावो परं ।

बूबके धार जोपार धार जलं, गुडाले सापटे साय बतुसलं ।
गजमोती जुरासिंघ बाहे गदा, जंगज्यो थांमणी वीज कीर्त जुदा ।
बाजिया धार धाराथ बीराधिये, रोहिया अंग वाराह पाराधियं ।
नाद नीसांण नीसांण सेंहनाइयां, सालुळे सिंधुयो नाद से रईया ।

डीपणी, साकणी, डाकिणी, अंबिका, कालिका, भूत, वेताल, खेचर, भूचर आदि की उपस्थिति से युद्ध की भयंकरता का पता चलता है। इसी स्थल पर वीभत्स रस की झलक भी दिखाई देती है। वीररस मानों अपनी पूर्णता पर हो—

पळचरा खेचरा भूचरा पंपणी, गहक्रिया भूतड़ा प्रेतड़ा पीपणी ।
बीर वेताळ पंगाळ नं पोहणी, आविया अंहचे आप आपे अणी ।
अंबका ऊळका जाळपा जोपणी, अंबका काळका मंनका जोगणी ।
साकणी डाकणी डयणी संमळी, काळ भैरव, हणमंत नं कलगळी ।
वुहूं वळ दड़वड़ी वांकड़ी डागियं, जाजर्‌यो आणपा ताळ पुड़ जागियं ।
जंडानं मीच कर सीसा लागा ग्रहण, पत्र भर जोगणी रत्त लागी पियण ।
डाक दहूंमाक हुंकार हुंकार वण, धाये घूमं घुळे भड़ भांजण घड़ण ।

इस प्रकार युद्ध का वर्णन कवि ने खूब जमकर किया है—उसकी वृत्ति उसी में रमी है। श्री कृष्ण युद्ध में विजयी हुए और वे लोग द्वारका आए। वहां सर्वत्र हर्ष छा गया। उनके स्वागतार्थ भव्य सजावट हुई। विवाहोत्सव का बड़ा ही वैभवपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

कुसळ हर आविया साय सारे कुसळ, घमळ घर घोलिया मंगल बाजो घमळ ।
कंगरे कंगरे मूर श्री गाइया, पाट पाटंबरे हाट पेंहराइया ।
ऊजळे ऊजळे जियंती इंदणी, चोतरे चोतरे हुंस मोती चुणी ।
वेंहली वेंहली दीव सींचे दहो, मेंहली मेंहली धूपणा महमही ।
घाट जं घाट जं भेर झालर घुरै, आरती आरती बीद वेप ऊचरै ।
घूमरे घूमरे पात्र नाचे घणा, बीठले काजिये कोड वधंमणा ।

अब श्री कृष्ण के विवाह की तिथि निश्चित की गई और धूमधाम से उनका विवाह हुआ। अन्त में कवि निम्नलिखित छप्पय में एक प्रकार से समस्त कथा का सारांश देता है—

कसन परण रुयमणी मांण रुकमयिया मार्ट
जुरासिंघ सिसपाल पोहोव परहंस भर पाटे
कर उद्धार भीमक वार जादव वरणाई
देव देव वसदेव भली कहै बलभद्र भाई
आरती करै जसोदा अनत, पग मंडै पथरावियां ।
कर जोड़ बिनती करै, सायं आवे साइया ॥

इनके अतिरिक्त कवि के भक्ति संबंधी फुटकर गीत भी मिलते हैं।
एक गीत के दो दोहले देखिए—

अघ आय न मेक मयायेस अळगो. माहव हुतां मूझ मुख ।
सुख सांभरत सरागम है सुख, दुख सांभळे त दुख ॥३॥
साक पाक तो नाम संखधर, माया जाल फंटाल मंडो ।
राम मिल्यां हरि वडो राग रस, वैराग मिलै तो वैराग वडो[1] ॥४॥

बारहट आसा : गुण निरंजन प्राण[2]

इनके विषय में पहले लिखा ही जा चुका है। भक्त के रूप में कवि को प्रसिद्धि 'गुण निरंजन प्राण' नामक रचना से ही है। इसमें भगवान की महिमा, उनके निरुपाधि-निर्गुण ब्रह्म रूप तथा सांसारिक असारता आदि के सुन्दर वर्णन पाए जाते है। भाषा-ओज गुण सम्पन्न, सहज प्रवाहमयी है। कुछ उदाहरण ये हैं—

अलख निरंजण एक तुं, बीजो कपट संसार ।
के भजे के नीमजे, के रखे करतार ॥
मछां कछां मींडकां, तुझ निमो करतुति ।
पांणी हो मां पुरवै, आदि पुरिवि आहुति ॥
मनहुंता मेल्है नहो, चहुखाणा री चींत ।
जागे जीवां रो धिणो, सह कोइ सुओ निचींत ॥
हरि किमि राखै हरिणिला, सांभलि सांमि सनाय ।
उंन्हाळे आरांणमां, जळ पासे जमनाय ॥
मिरघो जंगलि मेल्हिआं, बावा नांन्हा बाळ ।
तुं सारै मोटा धिणी, राजा तुं रखपाल ॥

× ×

घड़े तु लख चोरासो घाट, वहे तुं आवण जांवण वाट ।
किता तैं काइमि कोया कांम, सलांम अलेख अलेख सलाम ॥

× ×

खण चल निहचल करै, खणह इहंचल निहचल थपै
खिण हुंतोई हिरै, खिण अंणतोई अपै
खिण बोडै विणि नीर, खिण बोडंता तारै
खिण मारै जीवता, खिण मरता उआरै
उवस वेस वसता करै खिण वसता रोता धरै ।
अलख निरंजन आसला ज्यां ज्यां भावै त्यां करै ॥

बारहट ईसरदास :

इनके विषय में पहले लिखा जा चुका है[3]। 'हालां झालां रा कुंडलिया' तथा ऐतिहासिक

1. शोध-पत्रिका, भाग २, अंक ३, चैत्र, संवत् २००८; गीत; नं० ३ :
2. गुटका नं० २० : (—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :
3. देखिए—पृ० १२५-१३० :

गीतों के अतिरिक्त इनकी प्रायः सब रचनाएँ अध्यात्मिक तत्त्वों से युक्त तथा शान्तरस से ओत-प्रोत हैं। उनमें स्वामी-सेवक भाव के, भक्त हृदय के निश्छल उद्‌गार हैं। रचनाओं से इनके उत्कृष्ट कोटि के कवि और महान् भक्त होने का पता चलता है। ये मूलतः भक्त हैं और इनकी भक्ति भागवत से अनुप्राणित है। रचनाओं में जो निर्गुण-निराकार की चर्चा है, वह वस्तुतः उनका मुख्य स्वर नहीं है। इसको तत्कालीन शैली विशेष की अभिव्यक्ति और प्रचलित परम्परा का निर्वाह मात्र समझना चाहिए। नाथ पंथ का कुछ प्रभाव भी इन पर पड़ा है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह है कि भगवान के सभी अवतार इनके लिये बराबर हैं।

भाव गाम्भीर्य, अभिव्यक्ति, विषयवस्तु, शैली और आकार प्रकार के आधार पर, 'हरिरस' और 'गुण निग्रातत:' इनके प्रतिनिधि काव्य कहे जा सकते हैं।

(१) हरिरस[१] :

भक्तों में जैसा हरिरस का प्रचार हुआ, वैसा किसी अन्य रचना का नहीं। उनके लिए यह गीता स्वरूप है। इसमें वर्णित 'हरिरस' को उज्वल-नीलमणि के 'भक्तिरस' का पर्याय कहा जा सकता है। इसके मुख्य विषय हैं—नाम महिमा, हरिरस महिमा, अवतार चरित्र, आत्म-निवेदन और स्तुति आदि। कहीं कहीं निरुपाधि निर्गुण ब्रह्मसत्ता का आभास मिलता है—

नहीं तू काळ नहीं तू कम्म, नहीं तू ध्याळ नहीं तू ब्रह्म।
नहीं तू देव नहीं तू दैत, नहीं तू भेव नहीं तू भेत। (पृ० ४५)

और कहीं सर्ववाद का—

देव किसी उपमा देऊं, तैं सिरज्या सह कोय।
तूं सारिसो तूंहि ज तूं, अवर न दूजो कोय॥ (पृ० १२)

कहीं कहीं सोपाधि ईश्वर की झांकी दिखाई देती है—

आपोपं हूंता सो तूं आप, विसंभर-भूत सरब्ब-वियाप।
सबै कुछ जागा बैठो साह, मिनखां-देवां-नागां मांह। (पृ० १०१)

यत्र-तत्र सगुण-निर्गुण-दोनों रूपों की मिली जुली झलक भी दृष्टिगोचर होती है—

निरगुण नाथ नमो जियनाथ, सबंगत देव नमो ससिमाथ।
नमो तो नमो तो लीला नाम, सोहं अवतार नमो श्रीराम।
निरंजण नाथ परम्म नुवाण, किसन्न महाघण-रूप कल्याण।
सबगुण देव अतीत संसार, विभू अति गुज्झ परम्म विचार। (पृ० २५१

तो कहीं ब्रह्म के विराट् रूप का वर्णन—

सघण नीर सीतळसु, करत विज्जण समीर-कर
उदभिज भार अढार, पुहप धर परिमळ ऊपर

१. हरिरस; (संपादक—किशोरसिंह बार्हस्पत्य): यहां उदाहरण इसी से दिए गए हैं।

बजे इन्द्र बाजंत्र, करे संकर कीरत्ती
अलख कमळ ऊपरा, अरक ससिहर आरत्ती
धुनि करे अमर मंगळ धमळ, गं तुंबुर गावंत गुण।
कर जोड़ एम ईसर कहे, कर पूजा जाणे कवण॥ (पृ० ११६)

भक्त का भगवद्-साक्षात्कार और मिलन का वर्णन उच्चकोटि के साधनात्मक रहस्यवाद का सुन्दर नमूना है—

हुवा हिव स्वामी सेवक हेक, आळवले अंतर रूप अलेख।
थयो हिव हेको जुवो किम थाय, मिळेगो नीर गंगोदक मांय। (पृ० १०५)

तथा—

तिलाँ तेल पोहप फुलेल, उज्झेलत सायर
अगनि काठ, जोवन्न घट्ट, भगवट्ट सु कायर
ईख रस्स अहिफेण, अरथ आगम-उर ठाहे
पानाँ चंग, मजीठ रंग, उछरंग बिमाहे
खग नीर, धीर अंतर खरा, मद कुंजर वपु जिम मयण।
मन बसे तेम तूं माँहरे, मो मन बसियो महमहण॥ (पृ० ११९)

हरिरस की यही भावनाएं किसी न किसी रूप में, उनके अन्य ग्रन्थों में भी मिलती हैं।

(२) गुण भागवत हंस से एक उदाहरण देखिए—

भगवंत हंस माहे ज माहि, पूजावौ आपौ आप माहि।
भगवंत भमर भर भोग रस, परि लहे पिंडि न लहे अपस[1]।

(३) गुण निंद्यातत:

यह आकार-प्रकार में हरिरस के समान ही है। इसमें भगवान के विभिन्न अवतारों (वामन, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि) की महत्ता का वर्णन किया गया है। इनमें राम और कृष्ण के वर्णन प्रमुख हैं। भगवान के गुण-वर्णन के साथ ही साथ कवि सलौने व्यंग और मधुर उलाहनों के रूप में उनकी व्याज निन्दा भी करता है। अवतारों को लेकर उसकी दृष्टि में कोई भेद-भावना नहीं है। यहां तक कि इस्लाम धर्म के पैगम्बर मुहम्मद साहब से संबंधित वर्णन भी मिलता है—

मुहंमंद रा फरजंन मारावे, अजीज किन्हीं पांणी औहडावे।
रसूल तंणी औळादि न राखी, दोणां सां कठणाई दाखी।

कृष्ण और वामन पर क्रमशः कवि के व्यंग देखिए—

रौंढ़ड़ी तणौ जाण तूं राजा, लोक तणी काइ नांही लाजा।

× ×

वेद चारि भणंतो वामण, बळ राजा नै आयो बांयण।
कूड कावडो मन मैं कूडो, लोजौ होइ खुबडो लोडी।

1. गुटका नं० २० : (—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :

(४) गरुड़ पुराण[1] :

गरुड़ पुराण में इस नाम के पुराण की महिमा, कर्मानुसार फल प्राप्ति और प्रभु के सर्व समर्थ रूप के वर्णन पाए जाते हैं—

> तुं भांजै घड़ै विधि ब्रहमंड, तोरा मंत्र फिरै नव खंड ।
> तुं धरमी हुंता पापी धरै, पापी हुंता धरमी करै ।
> तुं दुख-भंजण दीनदयाल, तुं भ्रग लंछंण लील भुयाल ।

कुछ इसी प्रकार की भावनाएं, 'गुण वैराट'[2], 'गुण आगम'[3] तथा 'गुण रासलीला'[4] में पाई जाती हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—

(५) गुण वैराट से—

> नमो वासदेव परम गुर, परम आतम परमेसर
> निरालंब निरलेप, जगत जीवन जोगेसर
> अखिल ईस अपार, अनंत ओलखि अविणासी
> थावर जंगम थूल, अनै सोखम निवासी
> वारद पाप दाळद दहण, पारस संगम लोह परि ।
> निज नाम नमो तुं नारोयंण, हंसराज सिरताज हरि ॥

(६) गुण आगम से—

> चंद कलंक झडिसै, किळंग पडिसै, दिन थोसै द्रुग ।
> धर रूप धरिसै, सुदिढि करिसै, जाणिसै सतजुग ।
> दांणव दलिसै, प्रेज पळिसै, जोपिसै, रिणि जंग ।
> रोळिसै जांबु दीप राजा, कंमळ काळ किळंक ।

(७) गुण रासलीला से—

> गऊ धन सरिसे गुवालियां, जद तुं रमियौ जेथ ।
> हुवा किसन कलि मलि हरण, तीरथ पग पग तेथ ॥

(८) गुण छमा प्रर्व[5] :

इसका आख्यान महाभारत की कथा से लिया गया है। युधिष्ठिर के यज्ञ करने से लेकर उनके जुए में हारने, सभा में द्रौपदी के वस्त्र खींचे जाने व उसकी पुकार पर भगवान श्री कृष्ण रक्षा करने की कथा वर्णित है। अन्त में कवि ने भगवान की महिमा का वर्णन किया है

द्रौपदी सभा में लाई जाती है। एक उदाहरण देखिए—

१, २, ३, ४, ५ : गुटका नं० २० : (—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :

हुयौ दुरजोधण एम हुकुम, हजूरि ज हुंता एह सहम।
वडे दुसासण वारौ वार, पंचालीय पंडव छांड़ि पियार।
सिर घट घुंघट घट सरम, हमें पट ओट त जोत महम।

(९) देवियाण[1] :

देवियाण में शक्ति रूप देवी की स्तुति है। कवि इस शक्ति की बड़े विराट् रूप में कल्पना करता है और महिमा से मंडित अखिल विश्व को देवी का स्वरूप मानता है। उदाहरण इस प्रकार है—

घम घमंत घूघरो, पाय नेउरी रणंझण
डम डमंत डाकली, ताल ताली बज्जेतण
पाय सिंह गल अडे, चक्र झलहले चउदह
मळे कोड तेतीश, उदो सुरिमंद अणंदह
अवभूत रूप शक्ती अकळ, प्रेत दूत पाळंतियं।
गह गहे वार डमरू डहक, महमाया आवंतियं॥

इनके अतिरिक्त कवि के गेय पद इधर उधर बिखरे मिलते हैं। एक पद की चार पंक्तियां देखिए[2]—

संता संत समागम कीजे, जद मारो साहब रीजे।
भव जल डुबा जीव ऊबारे, प्रेम नाव पराठीजे।
जग में संत छाय सुर वछ की, देखां दोस दटीजे।
करम भरम अघ पादप काटे, व्रती कोठार खहीजे।

लोकमानस ने 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर उनको अपनाया है। कदाचित् यह उनके लोक-प्रिय भक्तरूप की श्रेष्ठतम व्याख्या है।

केसौदास गाडण[3] :

इनके पिता सदमालजी, जोधपुर राज्य के परगने सोजत के चिड़िया नामक गांव के थे। इनका जन्म अनुमानतः संवत् १६१० और स्वर्गवास संवत् १६९७ में हुआ। विद्याध्ययन इन्होंने अपने पिता से ही किया। एक समय ये बारहट ईसरदास (समय-संवत् १५९५-१६७५) के समकालीन रहे थे। ईसरदास की प्रशंसा में इनका बनाया निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

जग प्राजळता जाण, अघ दावानल ऊपरां।
रचियौ रोहड़ राण, समँद हरीरस सूरयत॥

बदले में ईसरदास ने भी अधोलिखित दोहा बनाकर इनकी प्रशंसा की—

---

१. 'श्री देवियाण' : संपादक—शंकरदान जेठीभाई कवि, (लींबड़ी, सन् १९४८) :
२. 'राजस्थानी साहित्य के अप्रकाशित काव्य संग्रह', जिल्द ४ :
(—हस्तप्रति, सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :
३. 'राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी'; (—वही :)

नीसार्णद नीसाण, केसव परमारथ कियो ।
पोह स्वारथ परमाण, सो बीसोतर बरन सिर[1] ॥

इसी प्रकार पृथ्वीराज राठौड़ का भी इनकी प्रशंसा में बनाया हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है—

केसो गोरखनाथ कवि, चेलो कियौ चकार ।
सिध रूपी रहता सबद, गाइण गुण भंडार[2] ॥

यदि यह सत्य है तो 'वेलि' के समाप्तिकाल तक इनकी प्रसिद्धि का पता चलता है। इस दृष्टि से इनका रचनाकाल अनुमानतः संवत् १६३० के पश्चात् माना जा सकता है। कहते हैं, युवावस्था में ये एक फकीर के साथ गेरुए वस्त्र धारण करके रहते थे और इन्होंने विवाह भी उसी वेश में कराया। ये जोधपुर के महाराजा गजसिंहजी (संवत् १६५२-१६९५) के कृपा-पात्र थे। बूंदी के हाडा राव रतन से भी इनका संबंध बताया जाता है। इनके बनाए निम्नलिखित ग्रन्थ बताए जाते हैं—

१. गुण रूपक[3], २. राव अमरसिंहजी रा दूहा[4], ३. नीसाणी विवेक वार्ता,
४. गजगुण चरित्र[5], ५. फुटकर दोहे गीत आदि ।

इनके अतिरिक्त एक और रचना (६) 'छन्द श्री गोरखनाथ'[6] का पता चला है।

यहां इनकी दो रचनाएँ—'नीसाणी विवेक वार्ता' तथा 'छन्द श्री गोरखनाथ' ही उल्लेखनीय हैं। यहा यह कह रखना आवश्यक है कि इनकी प्रायः सभी ऐतिहासिक रचनाएँ आलोच्य काल के पश्चात्, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई हैं, अतः उनके विषय में प्रस्तुत अध्ययन में विचार नहीं किया गया है।

(१) नीसाणी विवेक वार्ता[7] :

यह नीसाणी छन्द में लिखा हुआ २९ छदों का ग्रन्थ है जिसमें वेदान्त का वर्णन है। भाषा में कहीं कहीं पंजाबी का पुट भी पाया जाता है। उदाहरण इस प्रकार है—

सूर विरत संसार सूं रता रहमांणा
झूठी माया कारणे, भ्रम मूढ भुलाणां
विरही कांमण कनकं, क्या लोभ भुलाणां
मुंनी गाफल होय रह्या, खुनी जुलमांणा
भाजंगा पळ एकमें काया कमठांणा
साहिब नाम संभलदां क्या लगं नांणा

---

१. 'हरिरस', (संपादक—बार्हस्पत्य), पृ० ४-५ :
२. 'वेलि', (—हिंदुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ४८ :
३. हस्तलिखित प्रतिलिपि, (—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता) :
४. ह० प्रति नं० ९६; अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
५. अप्राप्य :
६. ह० प्रति नं० १२६; अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
७. हस्तलिखित प्रति, (—श्री सूरजमिहजी टावरी (मोहता), बीकानेर, कलकत्ता) :

जे सो वरसां जीवणां, ऐक वीह पयांणा
ऐह विचारा आतमां, पर हुय थोकाणां
डोरी हुय अलेख कँ, सोई संग लुकांणां
पूरण हारा पूरवँ दिन पांणी दांणा।

(२) छन्द श्री गोरखनाथ :

इसमें कवि ने 'आदि अनादि गुर' गोरखनाथ की स्तुति और उनकी साधना का वर्णन किया है—

भिनि नव कोट कपाट नवी भति, जुगति जुगति ताला जडोयुं ।
गढ भीतरि सांमि नाम ले निर्गुण, पौलि पौलि दिढ पाकडोयुं ।
दोई लख ससि वसत शक्ति तहां दीपत, ऊर मधुरस उजवालुं ।
आरंभ अगोचर नाथ अजोनी, गोरख जँ जँ गोपालुं ।

× ×

त्रिगुण तत पचीस, भेव पचास भणिजँ
पंच व्योम त्रिण सुंनि, पंच तहां अगनि पुणिजँ
पंच मुद्रा खट कमळ, षोडस खंभ अभ्यंतरि
सपत धात अष्टांग, नाडि नव कोठा बौहतरि

साधिक असाध काया सझण, मति अगाधि पति जोगसुर ।
सिधनाथ जयो केसव सुकवि, गोरख आदि अनादि गुर ॥

गुजराती प्रभावापन्न रचनाएँ :

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त गुजराती मिश्रित राजस्थानी में लिखित कई काव्य पाए जाते हैं जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

(१) ओखाहरण (उषाहरण)[1] :

इसके रचयिता परमाणद ब्राह्मण, बड़ौदा के निवासी थे, जिन्होंने सवत् १५१२ में हरिवंश-पुराण के आधार पर इसकी रचना की। इसमें उषा और अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन है।

(२) उषाहरण[2] :

यह भी उपर्युक्त विषय से ही संबंधित है। यह विविध देशियों की चाल में रचित ३२ कड़वों की कृति है। इसकी रचना सवत् १५५४ में जनार्दन नामक किसी ब्राह्मण कवि ने की थी। उदाहरण यह है—

वनिता वचन सुणी आकुली व्याकुली अंग डलाय, मल्या मन मेलज्यो ए।
उषा लली लली पाय लागइ, मागइ वरलील विलास, मल्या मन मेलज्यो ए।
सहीलइ यारि कुमारडी सारडो नाह् करूरे, माल्या मन मेलज्यो ए।
आगइ उमयाइ परठिउ सोरठिउ कृष्ण कुमार, मल्या मन मेलज्यो ए।

१. नागरी प्र० प०, वर्ष ५६, अक १ : —बीसवीं त्रैमासिक विवरणिका, (२००४-२००६) :
२. के० ह० ध्रुव : प्राचीन गुर्जर काव्य में प्रकाशित :

उषा रे बालणहार, सार करइ सहियर, सहि ए ।
किम मलसूं रे पिरि ? दूरि सासरुं सहियर तणूं ए ।
तुस आगलि करतां गूझ, बूझतो सवि तुहनइ कह्यां ए ।
तुम्ह मेहलां सज्जन समोह, मोहि पडी महिला घणूं ए ।

(३) सीताहरण[1] :

सीताहरण के रचयिता का नाम कर्मण है। दोहा, चौपाई, छप्पय, गीत आदि कुल मिलाकर ४९५ छन्दों का यह काव्य है जिसका रचनाकाल संवत् १५२६ है। यह साधारण आख्यान और वार्ता की कोटि का काव्य है। 'काव्य की कई पंक्तियां कान्हडदे प्रबन्ध की पंक्तियों से मिलती हैं। दोनों काव्यों में कई पद प्रयोग और प्रसंग समान हैं'[2]। कथा का मुख्य प्रसंग रावण द्वारा सीता के हरण और राम की रावण पर विजय प्राप्त करने की घटनाओं से संबंधित है। राम चरित की अन्यान्य कथाओं और घटनाओं की या तो सूचना मात्र दी गई है अथवा उन्हें बिलकुल ही छोड़ दिया गया है। प्रतीत होता है कि कवि का उद्देश्य कविता के माध्यम से केवल सीताहरण की कथा कहना है। कई नवीन प्रसंगों और घटनाओं की योजनाएं मिलती हैं किन्तु इनसे न तो कथा में गति ही आती है और न ही रस की सृष्टि होती है। समस्त रचना वर्णन प्रधान है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि कर्मफल भोग की अनिवार्यता बार बार दोहराई गई है और भावी की अवश्यंभाविता पर भी बल दिया गया है। वीररस का निस्संदेह, अच्छा वर्णन हुआ है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

हरिण के पीछे गए राम की सहायतार्थ सीता के आग्रह करने पर लक्ष्मण का उत्तर—

सूर न ऊगइ, पवन न फरकइ, सायर सलिल न गाजइ। (८२)
वेद न वतंइ, ध्रूह सलकइ, गंग पूर नवि चालइ।
रामनइ कणि कुह्र को गांजइ ? लक्ष्मण ईण परि बोलइ। (८३)

वाली वध के पश्चात् वानर सेना का इकट्ठा होना तथा संग्राम की तैयारी—

सेन मेलिआं, कटक चलाव्यां, खेहइ सूर न सूझइ।
एकइ आमलइ वानर झूझधा, कहु, काज किम सीजइ ? (१८०)

इसी समय हनुमानजी का कथन—

कहित ऊडुवि नभ चडूं, कहित शशहर रवि फोडूं
कहित पइसी पायाल शेष वासिग फणि मोडूं
कहित स्वर्ग संचरवि इन्द्र इन्द्रासन टालूं
कहित कपिदल मिलवि कोडि रयणायर रोलूं
हनमन्त कहइ, श्रीराम ! सुणि, हूं वानर एतूं करूं।
ऊपाडी लंक रावण सहित दक्षिणथी उत्तरि धरूं॥ (१८२)

---

१. के० ह० ध्रुव : प्राचीन गर्जर काव्य में प्रकाशित :
२. वही; प्रस्तावना, पृ० १७ :

युद्ध स्थल का दृश्य—

मांसइ तीर, भडइ भड मोटा, भाला तणा अंगार ।
थलगइ थानर अनइ विलूटइ, ते नवि लाभइ पार ॥ (२७०)
रणमांहि राउत आयुध मेहलइ, पाखर पेट यछूटइ ।
फावइ घाउ घणा तरुआरी, मांहि कटारी फूटइ ॥ (२७१)
मेहलइ घाउ नइ तिहां फरसी चालइ चिहू पखि बाण ।
छप्पन कोडि रणि वाजित्र वाजइ कायर पडइ पराण ॥ (२७२)

(४) हरि लीला सोलह कला[1]—

दोहों चौपाइयों और पदों में इसकी रचना किसी भीम नामक कवि ने संवत् १५४१ में की थी। संवत् १७२९ में लिपिबद्ध, इसकी हस्तलिखित प्रति, हिंदी साहित्य-सम्मेलन, संग्रहालय, प्रयाग में है। इसमें भागवत का विषय—विशेषकर श्री कृष्ण चरित का संक्षेप में वर्णन किया गया है। एक पद इस प्रकार है—

अनंद एक अभीनवोरि वृंदावन मो शाव्य ।
वंश वजावे वीठलोरि तेणि छंद नाचे नाव्य ॥ (३५)
वृंदावन गोपी नाचेरि तेणि रंगे राचे राम ।
राग मधूर स्वर आलवे री गाए हरी वीलास ।
सूंदरी श्रव नवयोवनारि रंग भव्य वेले रास ॥ (३६)
पायल्य वृंद वीनती तणूंरि माहे सांमल वन ।
"भीम" भणे अंतर ले लागोरि धन्य धन्य ते गोपीजन ॥ (३७)

पौराणिक और धार्मिक रचनाओं के प्रसग को समाप्त करने से पूर्व विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की एक अत्यन्त प्रौढ रचना 'महादेव पार्वती री वेलि' का किंचित वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है।

इसकी एकमात्र प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में है[2]। इसे 'हर पार्वती री वेलि' भी कहते हैं। ३८१ छन्दों में रचित यह बहुत उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इसमें भगवान् शंकर के दो विवाहों के अत्यन्त रमणीय, सजीव और रसपूर्ण वर्णन किए गए हैं। शंकर का पहला विवाह सती के साथ और दूसरा पार्वती के साथ हुआ था। काव्य की मुख्य कथा-वस्तु इन्हीं विवाह-वर्णनों से संबंधित है। श्रृंगार, वीर, बीभत्स, भयंकर आदि रसों का इसमें सुन्दर परिपाक हुआ है। बीच बीच में प्रसंगानुकूल प्रकृति के हृदयग्राही और चित्रमय वर्णन मिलते हैं। सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी वेलि-परम्परा की यह अंतिम प्रौढ कृति कही जा सकती है। इसका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रतीत होता है; विशेषतया इस शताब्दी के अन्तिम वर्ष। यह संवत् १७०२ के लगभग लिपिबद्ध की गई थी; अतः रचनाकाल निश्चित रूप से इससे पहले ही है। इसके अन्तिम छंद में रचयिता का नाम 'किसनउ' मिलता है—

१. ना० प्र० प०, वर्ष ५६, अंक १, (उन्नीसवीं त्रैमासिक विवरणिका–सं०२००१-२००३):
२. हस्तलिखित प्रति नं० ६८ ;

अकल सकल अवगति अपरंपर रांमेसर मोटउ राजान।
किसनउ वहइ कृपा हिव कीजइ वडदातार वपारण वांम ॥

रचयिता के विषय में इससे अधिक और कुछ पता नहीं चलता। श्री नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार, 'आढा किसना ने हर पार्वती री वेलि की रचना कर पृथ्वीराज की किसन रुकमणी री वेलि की सफल स्पर्धा की'[1]। यहां विद्वान् लेखक ने किसनउ और आढा किसना को एक ही व्यक्ति मान लिया है, जो विचारणीय है। आढा किसना सुप्रसिद्ध कवि दुरसाजी के सबसे छोटे पुत्र थे। दुरसाजी की 'वृद्धावस्था में अपने सबसे बड़े पुत्र भारमलजी के साथ कुछ खटपट हो गई थी,....इसलिये ये अपने सबसे छोटे पुत्र किसनाजी के साथ पाँचेटिया (मारवाड़) में रहते थे'[2]। पाँचेटिया डिंगल के प्रसिद्ध कवि दुरसा आढा के वंशजों का गांव है[3]। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति[4] के एक पन्ने में किसना आढा की मृत्यु का उल्लेख इस प्रकार है—

'इणे सांवत्ते काल कीयो.....सां० १७०४ रा मागसर वदी १४ आढ़ं कीसनं पचेटीअं'।

यह प्रति संवत् १७१३ के आस पास लिखी गई थी, अतः उपर्युक्त सूचना में सन्देह का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। दुरसाजी का संवत् १७०१ तक वर्तमान रहना पहले सिद्ध कर आए हैं। दुरसाजी ने जब अपनी समस्त संपत्ति पुत्रों में बांट दी, तो उसके बाद पाँचेटिया ग्राम इनको राणा प्रताप से मिला था[5]। यदि यह सत्य है, तो यह गाव संवत् १६४३ और संवत् १६५३ के बीच किसी समय मिला होगा, क्योंकि राणा ने संवत् १६४३ में चित्तौड़-गढ व माडलगढ को छोड़कर अपना सारा प्रदेश अधिकार में कर लिया था[6]। संवत् १६५३ में राणा की मृत्यु हुई। इन सब बातों पर विचार करने से यह अनुमान किया जा सकता है कि यदि आढा किसना और किसनउ एक ही व्यक्ति हों, तो इस वेलि की रचना निश्चय ही सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई थी। किंतु दोनों व्यक्तियों को एक मान लिए जाने में सन्देह है। यह वेलि शुरू से अन्त तक जैन-शैली से प्रभावित है, और यह असंभव है कि चारण-शैली के सुप्रसिद्ध कवि आढा दुरसा के पुत्र, जो प्रायः जीवन भर अपने पिता के पास रहे, विरासत में मिली प्रचलित चारण-शैली को छोड़कर एकबारगी, जैन-शैली में रचना करे। अनुमान है कि कवि किनसउ जैन-शैली से प्रभावित कोई जैनेतर-चारणेतर कवि थे। इस 'वेलि' की विषय वस्तु के आधार पर कवि जैनेतर प्रतीत होते हैं, और शैली के आधार पर चारणेतर। संभवतः ये ब्राह्मण थे। चूंकि यह आलोच्यकाल के बाद की रचना है, इसलिये यहां इस पर विशेष विचार नहीं किया गया है।

---

१. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० ३० :
२. डा० मोतीलाल मेनारिया. डिंगल में वीररस, पृ० ५० :
३. 'गोरा हट जा', परिशिष्ट 'ख', पृ० १३७—'परम्परा' (जोधपुर), वर्ष १, अंक २, १९५६ :
४. प्रति नं० ९६ :
५. राजस्थानी साहित्य के अपरिचित कवियों की जीवनी, (ह०प्र०—सु०जा० पु०, कलकत्ता):
६. गहलोत : राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग :

अध्याय ८

लोक साहित्य

पूर्व-परिचय :

अपभ्रंश के अनेकशः दोहों से तत्कालीन लोक-रुचि का पता चलता है। भोज-कृत सरस्वती-कंठाभरण, मेरुतुंग के प्रबन्ध-चिंतामणि, देवसेन के सावयधम्म-दोहा, सोमप्रभ के कुमारपाल-प्रतिबोध तथा पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह और हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण में संकलित व उद्धृत दोहों से तत्कालीन लोक-जीवन की बहुमुखी झाँकियाँ प्राप्त होती हैं। अपभ्रंश के कुछ अधिक प्रसिद्ध दोहे तो राजस्थानी-रूप धारण करके आज भी जीवित हैं[१]।

शुद्ध लौकिक प्रेम-कथा के रूप में पाया जाने वाला उत्तरकालीन अपभ्रंश का सर्वप्रथम काव्य अब्दुल रहमान का सन्देश-रासक है। इसमें ऋतु-वर्णन के साथ प्रोषित-पतिका नायिका की विरह-वेदना का वर्णन किया गया है। अपभ्रंश की यह विरासत, स्थानीय विशेषताओं एवं कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित लोक-रुचि के साथ राजस्थानी लोक-साहित्य को मिली है। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी से तो विविध लोक-कथानक, भाषा-काव्यों के रूप में, जैन तथा जैनेतर कवियों के लिखे प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। कथा-सरित्सागर, विक्रम-चरित और भोज चरित, विविध लोक-कथाओं के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित[२] 'बीसलदेव रास' बहुत ही सुन्दर प्रेम-काव्य है जो बोलचाल की राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। लगभग इसी समय में साहित्यिक राजस्थानी भाषा में 'शृंगार शत' नामक शृंगारिक काव्य लिखा गया[३]। इसके प्रारम्भ में सामान्य-नायिका-वर्णन तथा बाद में षट्-ऋतु वर्णन है। भाषा, भाव, वर्णन-शैली और प्राचीन-परम्परा-संबंध के कारण, यह बहुत महत्त्वपूर्ण रचना प्रतीत होती है। एक ओर तो यह 'शतक' संस्कृत के अमरुक शतक, शृंगार शतक आदि का स्मरण दिलाता है तथा दूसरी ओर सन्देश-रासक की परम्परा का। जहां 'बीसलदेव रास' में बोलचाल की भाषा मिलती है, वहां इसमें तत्कालीन साहित्यिक भाषा।

पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रचलित लोक-कथानकों पर लिखे गए काव्यों में कुछ प्रमुख ये हैं—
(१) संवत् १४२७ में लिखित असाइत की 'हंसावली'[४] चार खण्डों में विभाजित ४४०

---

१. श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : पुरानी हिन्दी, पृ० १५–१९, (प्रथम संस्करण).
२. बीसलदेव रास, भूमिका, पृ० ५५,
(सम्पादक : डा० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचन्द नाहटा) :
३. भारतीय विद्या, तृतीय भाग, संवत् २०००-२००१, पृ० २११-२२३ में प्रकाशित :
४. (क) के० का० शास्त्री : कवि चरित, भाग १, पृ० ३;
(ख) प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, (साहित्य संस्थान, उदयपुर), पृ० १५–१६;
(ग) गुजराती साहित्यनुं रेखा दर्शन, खड पहलो, पृ० ५६–५७ तथा १६७;
(घ) जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४६ :

छन्दों का सकाव्य है। इसमें यथास्थान शृंगार, अद्भुत, हास्य व करुण रसों की अभिव्यंजना हुई है।

(२) कवि भीम-कृत सदयवत्स चरित्र[1], जिसका रचनाकाल संवत् १४६६ है, ६७२ कड़ियों में रचित शृंगार और अद्भुत-रस-प्रधान कृति है।

(३) वसन्त-विलास[2] के रचयिता जैनेतर[3] कवि गुणवन्त कहे जाते हैं। यह शृंगार-रस का काव्य है जिसमें वसन्त की मादकता एवं जीवन के उल्लास का मधुर वर्णन हुआ है। फाल्गुन मास की क्रीड़ा वर्णित होने से विद्वान् इसे एक प्रकार का फागु-काव्य ही मानते हैं[4]। इसकी रचना इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में हुई थी[5]।

(४) मयण छन्द या मदन रास ३४ पद्यों की शृंगारिक रचना है[6], जिसके रचयिता कवि मयण बम्भ बताए जाते हैं। इसकी कुछ चर्चा भी हुई है[7]। इस शताब्दी का उत्तरार्द्ध इसका रचना समय है[8]। मयण बम्भ के कवित्त अनूप संस्कृत लाइब्रेरी[9] तथा श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में सुरक्षित हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं[10]। वहीं कुछ कवित्तों का नाम 'मयण-कौतुहल' भी दिया गया है[11]। 'माधवनाल कामकन्दला-प्रबन्ध'[12] के एक दोहे में वर्णित 'मयण-पुराण' के रचयिता भी संभवतः यही कवि हैं[13]।

(५) कवि हीर भाट-कृत मान कतूहलम् या मानवती विनयवती शतक टोडा और ईडर के राजाओं से संबंधित काव्य है[14]। कवि ने जिन छन्दों द्वारा लालकुंवरि और वित्तल-

---

१. (क) मजमुदार : गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० ६५–६८;
(ख) प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, पृ० ५४–५५;
(ग) गुजराती साहित्यनु रेखा दर्शन, रेखा ३, पृ० ५६–५७;
इसकी कथा के लिए देखिए : राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक १, अप्रैल, १९५० :

२. के० ह० ध्रुव : पंदरमां शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य, में प्रकाशित :

३. वही; भूमिका, पृ० १४–१५ :

४. (क) प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, पृ० २८;
(ख) गुजराती साहित्यना स्वरूपो, पृ० २२५–२३० :

५. (क) ध्रुव : पं० श० ना प्राचीन गुर्जर काव्य, भूमिका, पृ० १४;
(ख) गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० २०२ तथा २२५ :

६. प्रति बड़ोदा प्राच्य मंदिर में प्राप्त है।

७ (क) गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, पृ० ११०-११२; (ख) शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक २-३, संवत् २०१३, नाहटा—'कवि मयण बम्भ का महत्वपूर्ण परिचय' :

८ वही :

९. प्रति नं० ३०, ३८, ६७, ७८, ८६, ९८ तथा १२६ :

१०. शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक १-२, संवत् २०१३, पृ० ५२ :

११. ह० प्रति नं० ३८ तथा ८६, (अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर) :

१२. अंग १, दोहा १५, (फुटनोट)—महोदधि मयण पुराण थी, चंच भरीनइ मति।
कवि कायस्थ कथा कहइ, नरसा सुत गणपति॥

१३. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० ११०-११२ :

१४. शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक ४, संवत् २०१४, नाहटा—'कवि हीर भाट कृत मान-कतूहलम्' :

कुंवरि नामक दो बहन राणियों और ईडर के राजा गयपाल का गृह-कलह मिटा कर मेल कराया था, वे मान कतूहल नाम से प्रसिद्ध हैं। कवि का रचनाकाल लगभग वही है जो मयण बम्म का।

(६) संवत् १४१६ में मधुसूदन व्यास-रचित विक्रम चरित्र चउपई[1] में दुख-भंजन और दान-शीलता में प्रसिद्ध राजा विक्रम का चरित वर्णित है।

(७) संवत् १४११ में रचित किसी सधारु कवि के प्रद्युम्न चरित का उल्लेख भी मिलता है[2]।

(८) इनके अतिरिक्त जनसाधारण में भड्डली ग्रंथ[3] की कहावतें विशेषतया वर्षा संबंधी कहावतें बड़ी प्रसिद्ध रही हैं। इसके अन्य नाम, 'मेघमाला ग्रन्थ', 'डंक और भड्डली ग्रन्थ' हैं, पर हिन्दी में 'घाघ और भड्डरी' नाम ही अधिक प्रचलित है। घाघ और भड्डरी की कहावतें अब तो प्रादेशिक भाषाओं के रंग में रंग कर सर्वत्र फैल गई हैं, पर मूल में ये उत्तरकालीन अपभ्रंश या अवहट्ठ की रचनाएं हैं। श्री अगरचन्दजी नाहटा के पास पाटण भंडार की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि तथा अन्य कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपियां देखने में आई थी। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल पन्द्रहवी शताब्दी के पश्चात् का किसी प्रकार नहीं हो सकता। एक उदाहरण देखा जा सकता है—

> पोस मासि विज्जुल लवइ, गज्जइ छायु अब्भु।
> ता जाणेजे भड्डली, जलहरु यद्धइ गब्भु॥
> श्रावण मास चउद्दसिहि, जेतउ पुव्वह जोगु।
> तेतउ वरिसइ अंबहरु, आसा सीसइ लोउ॥

आलोच्य काल मे पाए जाने वाले लोक साहित्य को मुख्य रूप से तीन मोटे भागों में बाट सकते हैं—(१) लोक काव्य, (२) फागु काव्य तथा (३) लोक गीत। लोक काव्य दो रूपों में उपलब्ध है—(क) प्रबन्ध और (ख) मुक्तक।

नीचे क्रमशः इनका परिचय दिया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्राप्त रचनाओ का उल्लेख भी यथास्थान किया गया है।

(क) प्रबन्ध काव्य

(१) दामो : लपनसेन पदमावती चौपई[4]

यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसे अप्राप्य बताया

---

१. गुजराती साहित्य; खंड ५ मो, पृ० ४०२, (संपा०-क० मा० मुंशी, बम्बई, १९३६).
२. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक, १-४.
३. ह० प्रति पाटण भंडार में है।
४. संवत् १६६६ में लिपिबद्ध, इसकी हस्तलिखित प्रति श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में है। प्रस्तुत विवेचन उसी के आधार पर किया गया है।

है[1], परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। इसका कुछ विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[2] और मिश्रबन्धु-विनोद[3] आदि में मिलता है।

इसकी रचना दामो नामक कवि ने संवत् १५१६, जेठ बदी नवमी, बुधवार को की—

संवत् पनरइ सोलोत्तर तर, मझारि जेठ बदी नवमी बुधवार

यह एक प्रेमकथा है जिसके रस और सारांश का परिचय कवि ने प्रथम छन्द में ही दे दिया है—

सुणउ कथा रसलोज विलास, योगी मरण राय घनवास।
पदमावती बहुत दुख सहइ, मेलउ करि करि दामउ कहई।

यह कथा लगभग ३०० दोहे-चौपाइयों में कही गई है। बीच में, कहीं-कहीं संस्कृत श्लोक और प्राकृत गाथाएं भी हैं। कथा तीन खण्डों में विभाजित है। यद्यपि कवि के कथन से चार खण्डों की सूचना मिलती है—

तीजउ खंड चढयउ परमांण, चौथउ खंड सुणउ चतुर सुजांण

तथापि दूसरे खण्ड की समाप्ति और तीसरे खण्ड के प्रारम्भ की सूचना कहीं नहीं है। इस प्रकार, दूसरे खण्ड के पश्चात् ही कवि चौथा खण्ड प्रारम्भ कर देता है, जो वस्तुतः तीसरा खण्ड ही होना चाहिए।

कथानक :

गढमामौर के राजा हंसराय की बेटी का नाम पदमावती था। सिद्धराज नामक एक योगी को पता लगा कि १०१ राजाओं को मारने वाले को वह स्वयंवर में वरण करेगी, तो उसने जंगल में एक कुएं के तल से लेकर नगर के तालाब तक एक सुरंग बनाली और अनेक राजाओं को धोखे से उस कुएं में इसी उद्देश्य से डलवा दिया। एक दिन वह लखनौती के राजा लखमसेन के पास गया और उसे एक बिजोरा दिया। राजा ने बिजोरे को चीरा पर उसमें से रत्न निकले। इस पर राजा योगी की खोज में निकला और एक जंगल में उसे पाया। राजा बहुत ही प्यासा था, उसने पीने को पहले पानी मांगा। योगी ने उसे उस कुएं पर भेजा और उसमें डलवा दिया। लखमसेन ने कुएं में पड़े हुए राजाओं को बाहर निकाला। उनसे उसको पता लगा कि योगी की इच्छा १०१ राजाओं को मार कर पदमावती के स्वयंवर में स्वयं वर चुने जाने की है—

पदमावती योगी वरइ एकोत्तरसउ मारि

जब योगी ने यह देखा तो वह बावन हाथ की एक शिला कुएं पर डाल कर चला गया। इस पर कुएं में अन्धकार हो गया और राजा लखमसेन बहुत ही व्यग्र होकर विचार करने लगा—

जीव दया नहु पाली देव, सगुर साधु नहु कीधी सेव।
रयणी भोजन अणगलीया नीर, दीयो विधाता दुख सरीर।

१. भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, 'ग्रन्थ परिचय', पृ० ३३ :
२. Annual search Report for the year 1900, (संख्या ८८) :
३. प्रथम भाग, पृ० २२५, (द्वितीय संस्करण) :

पर उसने हिम्मत नहीं हारी। कवि कहता है—

साहस सत न छोड़ीयइ, जइ बहु संकट होई।

उसने कुएं की ईंटें निकालीं, इस पर रास्ता नजर आया और वह सरोवर के तट पर पहुंच गया। यहां का दृश्य बहुत ही मनोरम था। उसने वहां सुन्दर स्त्रियां देखी—

सरस सकोमल कुच कठिण, गय गति लंक विसाल।
हंसा चंचल कनक खंभ, चढ़ी भुयंगा माल ॥

यहा से एक ब्राह्मण का वेश बना कर वह गढ़सामोर में एक ब्राह्मणी के घर पहुँचा जिसने अपना पुत्र मानकर उसे वहां के राजा से परिचित कराया। राजा ने उसे राज-पुरोहित बना दिया। राजमहल से घर आते समय उसको गवाक्ष में बैठी पदमावती ने देखा; आंखें चार हुईं और वह उस पर रीझ गई।

राजा ने अपनी बेटी पदमावती का स्वयंवर रचा। पदमावती ने वरमाला उसी के गले में डाली। एक पुरोहित को राजकुमारी वरण करे, यह सह्य हो ही कैसे सकता था! मरवाने के इरादे से उसको जंगल में एक सिंह के आगे छोड़ा गया, पर उसने सिंह को मार दिया। पश्चात् स्वयंवर में एकत्र राजाओं से उसका भयंकर युद्ध हुआ—

तुटइ कमल धड उपरि पडइ, मांहो मांहि सूर ईम भिडइ।
धड सुं धड जुडइ रिण जोर, हा! हा! सबद हुओ जग सोर।

इसमें वह विजयी हुआ और राजा के पूछने पर उसने अपना सारा रहस्य बता दिया। इस पर राजा ने हर्षित होकर दोनों का विवाह कर दिया। लखमसेन तथा पदमावती आनंद-पूर्वक वहां रहने लगे। यहां पहला खंड समाप्त होता है।

एक दिन लखमसेन ने एक स्वप्न देखा जिसमें योगी ने उससे पानी मांगा। वह जग गया और उसे ढूंढता हुआ वह उसके पास चला गया। योगी ने एक वचन पालन करने की प्रतिज्ञा करवा कर पानी पी लिया। वचन में, पदमावती के ६ महीने के गर्भ के बच्चे को योगी ने राजा से मांगा। इस पर वह बहुत दुखी हुआ। जब पदमावती को इस बात का पता लगा तो वह बोली—

पुरष पराक्रम वाचा सार, फाडि पेट मम लावउ बार।

विवश हो, लखमसेन ने बच्चे को निकाला और उसको लेकर योगी के पास गया। योगी ने बच्चे के चार खंड करने के लिए कहा, और उसने वह भी किया। बच्चे के चार खंड करने पर ये वस्तुएं निकली—(१) धनुष-बाण, (२) खड्ग, (३) धोती और (४) एक सुन्दरी। राजा को इस पर बहुत अचम्भा हुआ और उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। कर्ता की गति बड़ी विचित्र है—

सय मांण पण सुख घटिड, देखो सूर नर लोई।
दैव सहावै सउ सहै, करता करइ स होई॥

वह सर्वस्व त्याग कर कपूरधारा नगर के पास एक सागर के किनारे जा बैठा। यहा के नगर-सेठ 'हरीया' के डूबते हुए पुत्र को उसने बचाया। इस पर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ

और धूमधाम से लखमसेन को नगर में लाया गया। सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी। पराए के दुख में दुखी होकर, उनका भला करने वाले वीर पुरुष कम ही होते हैं—

> पर दुखइं ते दुखीयां, पर सुख हरष करंत।
> पर कजइ मुदा मुहड़, ते विरला नर हुंत॥
> पर दुखइं सुख उपजइ, पर सुख दुख करंत।
> पर कजइ कायर पुरस, घरि घरि वार फिरंत॥
> सीह सीचाणो सापुरिस, पडि पडि उठंति।
> गय गद्दर कुच कापुरिस, पडे न वलि उठंति॥

यहां के राजा का नाम चन्द्रसेन था। उसकी पुत्री चन्द्रावती और लखमसेन में परस्पर प्रेम हो गया। इसका पता जब चन्द्रसेन को लगा, तो वह इसको मारने पर उतारू हो गया। लखमसेन ने इस पर अपनी सारी पिछली बातें कहीं, जिनको सुनकर राजा सन्तुष्ट हो गया और धूमधाम से उसने दोनों का विवाह कर दिया। हरीया सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। यहां कवि ने तीसरे खंड के समाप्त होने की सूचना दी है पर वास्तव में दूसरा खंड ही समाप्त होता है।

इधर पदमावती लखमसेन की खोज में निकली। उसने एक पनघट पर उसको चन्द्रावती के साथ चौपड खेलते हुए देखा। लखमसेन ने तुरन्त ही पदमावती को पहचान लिया। सहसा उसे वह योगी भी दिखाई दिया। योगी को देखते ही उसकी करतूतें याद कर वह क्रुद्ध हो उठा और दोनों में भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। अन्त में योगी को लखमसेन ने मार डाला। पदमावती तथा चन्द्रावती दोनों के साथ वह चंद्रसेन के पास गया और विदा मांगी। राजा ने उनको विदा किया—

> इइ आसीस धीय हइ माई, दोई कुमरि तव देई पठाई।

यहां से वह गढ़मामौर हंसराय के पास आया। नगर में खुशियां मनाई गईं। यहां से भी उसने विदा मांगी। विदा के समय दोनों राजाओं के आंसू बहने लगे—

> दोई राजा मिलीया तिणि काल, नयणां नीर वहइं असराल।

अब लखमसेन दोनों राणियों के साथ अपनी राजधानी लखनौती में आया। उसके आगमन पर राज्य भर में हर्ष मनाया गया। राजा ने सारा हाल सुनाया—

> योगी सरिसउ मइ हूय सहाउ, धाल्यउ कूआ कष्ट भोग्ययउ।
> गढ़ सामउर रहइं इइं राय, तास धीय परणी रंग मांहि।
> पछइ कपूर धार हूं गयउ, चंद्रावती वीवाहण लीउ।

और सब प्रेमपूर्वक आनन्द से रहने लगे।

संक्षेप में यही 'चौपई' की कहानी है। कहानी में विशेष नवीनता नहीं है, तत्कालीन अन्य प्रचलित प्रेमकथाओं की तरह ही है। रचना शृंगार-रस-प्रधान है जिसमें वीर रस का भी अच्छा चित्रण मिलता है। पर घटना प्रधान होने के कारण शृंगार के संयोग अथवा वियोग किसी भी पक्ष का मार्मिक वर्णन न होकर साधारण वर्णन ही हुआ है। घात-प्रतिघात और कथानक-रूढ़ियों के सहारे, वर्णनात्मक ढंग से कथा आगे बढ़ती रहती है।

बीच-बीच में दिए गए सुभाषितों की आभा से कहानी जगमगा उठी है। यह इसकी अपनी विशेषता है। कवि जैन धर्म से प्रभावित प्रतीत होता है।

(२) कल्लोल : ढोला-मारूरा दूहा[1] :

इसके रचयिता के विषय में कुछ विशेष पता नहीं चलता। इसके संपादकों ने किसी एक व्यक्ति द्वारा रचे जाने की संभावना प्रकट करते हुए भी, वास्तव में जनता को ही इसकी निर्मात्री माना है[2]। परन्तु कुशललाभ-रचित 'ढोला-मारवणरी चौपई' के एक दोहे के अनुसार, किसी कल्लोल नामक कवि के इसके रचयिता होने की संभावना ध्वनित होती है। दोहा इस प्रकार है—

गाहा - गूढा - गीत - गुण - कउतिग - कथा - कलोल।
चतुर-तणा चित-रंजवण, कहियइ कवि कल्लोल[3] ॥

संपादकों की यह दलील कि इस रचना में लोक-गीत-परम्पराओं और लोक-वार्ताओं की विशेषताओं का पालन होने के कारण, जनता इसकी निर्मात्री है, विशेष वजनदार नहीं है। वास्तव में किसी कवि-विशेष का रचा हुआ तो यह होना ही चाहिए और संभवतः कल्लोल ही इसका रचयिता है। डा० मोतीलाल मेनारिया[4], श्री परशुराम चतुर्वेदी[5] तथा श्री गोवर्धन शर्मा[6] के विचार भी ऐसे ही हैं। अन्यत्र इसके रचयिता का नाम हरराज लिखा गया है[7] जो ठीक प्रतीत नहीं होता। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव[8] ने रचयिता को अज्ञात बताकर मध्यम-मार्ग पकड़ा है।

इसके रचना-काल के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। कुशललाभ ने इसके बिखरे हुए दोहों को कथा-सूत्र में पिरो कर 'चौपई' की रचना संवत् १६१७ में की थी। उसके अन्त में लिखा है—

दूहा घणा पुराणा अछइ, चउपई बंध कियो मईं पछइ।

इसके आधार पर संपादकों का कहना है कि इन दोहों की रचना संवत् १४५० के बाद की नहीं हो सकती[9]। पर भोलाजी का अनुमान है कि असली काव्य का समय संवत् १५००

---

१. सर्वश्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक और नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित, तथा ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित, (द्वितीय संस्करण) :
२. वही ; प्रस्तावना, पृ० २७ तथा ४३ :
३. वही ; परिशिष्ट—(२)(घ), पृ० २७७ :
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३४ :
५. हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम प्रवाह, पृ० २६, (प्रथम संस्करण, १९५२ ई०) :
६. प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, पृ० ८३-८५, (प्रथम संस्करण) :
७. (क) डा० कमल कुलश्रेष्ठ : हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२-१८, (१९५३);
   (ख) गुरुदेवप्रसाद वर्मा : हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम काव्य, पृ० ११, (१९५७) :
८. भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १६५, (प्रथम संस्करण, १९५५) :
९. ढोला-मारूरा दूहा, प्रस्तावना, पृ० ८, फुटनोट :

के लगभग होगा[1]। देसाई ने एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया है[2], जिसके ग्रन्त में निम्नलिखित दोहा है—

पनरहसं तीसे वरस, कथा कही गुण जांण।
वदि वैशाखें वार गुरु, तीज जांण शुभ वांण॥

इसके अनुसार, संवत् १५३० में, इस काव्य की रचना हुई। डा० मोतीलाल मेनारिया का भी यही निश्चित मत है[3]। डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने सन् ईस्वी १५०० से १७५० तक के प्राप्त हिन्दी-प्रेमाख्यानकों की सूची में इसका नाम गिनाया है[4]। जो हो, अनुमानतः विक्रम सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इसकी रचना हुई होगी।

कुशललाभ ने इन दोहों की संख्या लगभग ७०० बताई है। संपादित ग्रन्थ में दोहों की संख्या ६७४ है। समस्त काव्य दोहा छन्द में है। इसके कई रूपान्तर मिलते हैं और ऐतिहासिक आधार भी इसका बताया गया है।

यह सरस और शुद्ध प्रेम-कथा-काव्य है। प्रेम-काव्य में भी यह विप्रलंभ-शृंगार का काव्य अधिक है; संयोग शृंगार का वर्णन इसमें गौण ही है। यह एक जातीय काव्य है जिसमें लोक-जीवन की सीधी-सादी सहज मानवीय भावनाएं, ढोला और मारू की प्रेम-कहानी के मिस मुखरित हो उठी हैं। विरह और मिलन की नाना परिस्थितियों, मनोदशाओं और प्रेम-भावनाओं के बड़े ही हृदय-ग्राही, स्वाभाविक, वैविध्यपूर्ण और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलते हैं। इनमें स्थानीय रंगत का पुट होने से काव्य में अनूठा निखार आ गया है। इसकी प्रेमभावना, हृदय की हृदय से पुकार है—आडम्बर, परम्परा, रूढ़ि और व्यर्थ की चमक-दमक से हीन। कहने को तो ढोला नरवर का राजा है और मारवणी तथा मालवणी राजकुलीन राणियां, किन्तु उनके हृदयोद्‌गार किसी भी सामान्य नायक-नायिका के अपने हो सकते हैं और होते आए हैं। इस काव्य के सर्वप्रिय होने का यही रहस्य है। वैसे, ढोला नायक का पर्याय है ही[5]। वस्तु और भाव दोनों की दृष्टि से, इसमें सजीवता, सरलता तथा सरसता का सर्वत्र विलास है।

कथानक—

किसी समय पूगल देश में भारी अकाल पड़ा, तो वहां के राजा पिंगल सपरिवार नरवर देश में आ गए। वहां के राजा नल ने उनका यथोचित सत्कार किया। पिंगल ने अपनी पुत्री मारवणी का विवाह भी नल के पुत्र ढोला से कर दिया। उस समय मारू की अवस्था

---

१. ढोला-मारूरा दूहा, प्रवचन, पृ० ५-६ :
२. जैन गुर्जर कविम्रो, भाग ३, पृ० २११२-१३ :
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३४ :
४. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२-१८ :
५. ढोल्ला सामल्ला धण चम्पावण्णी।
नाइ सुवण्णरेह कसवट्टइ दिण्णी। हेमचन्द्र : दोधक वृत्ति से;
(श्री भगवानदास द्वारा सन् १९१६ में प्रकाशित) :

१॥ साल और ढोला की ३ साल की थी। बाद में पिंगल अपने देश लौटे और छोटी होने के कारण मारू को भी अपने साथ लेते आए।

बड़ी होने पर मारू ने स्वप्न में ढोले को देखा और उसके विरह में व्याकुल रहने लगी। उसका इस अवस्था में बादल, कुरजों और पपीहों को संबोधित कर कहा हुआ सन्देश बड़ा ही हृदयग्राही है। बादल से कहा—

बीजळियां नीळज्जियां, जळहर तूं ही लज्ज।
सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरई मधुरई गज्ज॥

कुरजों और मारवणी के बीच हुई बातचीत तो और भी मार्मिक बन पड़ी है।

पिंगल ने ढोला को बुलाने के लिए अनेक सांढियां-सवारों को भेजा, परन्तु वापिस लौटकर कोई नहीं आया। इसी बीच ढोले का दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी मालवणी से हो गया था। वह ढोला के मारवणी के साथ हुए पहले विवाह की बात जानती थी, इस कारण पूगल से आनेवाले सन्देश-वाहकों को मरवा देती थी। पर ढोला को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं था। एक दिन एक घोड़ों का सौदागर पूगल आया, जिसने ये सब समाचार राजा पिंगल को दिए। राजा ने सलाह करके ढाढियों से नरवर जाने को कहा। जब मारू ने यह सुना, तो उसने अपना सन्देश उनको दिया। यह सन्देश काफी लम्बा है, साथ ही बहुत ही मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है—

संदेसा ही लख लहइ, जउ कहि जाणइ कोइ।
ज्यूं धणि आलइ नयण भरि, त्यउं जइ आखइ सोइ॥१११॥
पंथी हाथ संदेसड़इ, धण बिलखंती देह।
पगसूं काढइ लीहटी, उर आंसुआं भरेह॥१३७॥
जइ तूं ढोला नाविय‍उ, काजळियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंतां बीज॥१५०॥
भरइ, पलट्टइ, भी भरइ, भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ संदेसड़ा, धण बिलखंती देहि॥१८२॥

सन्देश लेकर ढाढी नरवर गए और अपने को याचक बताकर शहर में आ गए। सारी रात उन्होंने ढोला के महल के नीचे करुण रस से ओत-प्रोत मारू का सन्देश गाया। सुबह होते ही ढोला ने उनसे मिल कर सारा हाल मालूम किया और उन्हें इनाम देकर विदा किया। अब ढोला पूगल जाने का विचार करने लगा और कई दिनों बाद मालवणी को यह बात उसने कह दी। मालवणी ने किसी प्रकार उसको ग्रीष्म और वर्षा भर रोक रखा। यहां ग्रीष्म और विशेषतया वर्षा के समय मरुदेश का बहुत ही यथार्थ वर्णन किया गया है, यथा—

ग्रीष्म : घळ तत्ता लू सांमुहो, दाझोला पहियाह।
म्हांकउ कहियउ जउ करउ, घरि बइठा रहियाह॥
वर्षा : पगि पगि पांणी पंथ सिर, ऊपरि अंबर छांह।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगल जांह॥

जिण दलि बहु बादळ शरद, नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण दलि साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय।।

अन्त में वह जान गई कि ढोला रुकेगा नहीं। उसकी आँखें भर आईं—

ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह।
झबझब भूंबइ पागड़इ, डबडब नयण भरेह।।
हल्लउं हल्लउं मत करउ, हियड़इ साल म देह।
जे साचेई हल्लस्यउ, सूताँ पल्लाणेह।।

एक दिन रात्रि के समय, मालवणी को सोती पाकर, वह ऊंट पर चढ़ कर चल दिया। ऊंट की बलबलाहट सुन कर वह जग गई। यहां पर उसने अपने विरह का मार्मिक वर्णन किया है। कहना न होगा कि यह मारवणी के विरह-वर्णन से भिन्न प्रकार का है—

ढोल चळाव्यउ हे सखी, झीणी ऊडइ खेह।
हियड़उ बादल छाइयउ, नयण टबूकइ मेह।।
सज्जण चल्ले गुण रहे, गुण भी चल्लणहार।
सूकण लागी बेलड़ी, गया ज सींचणहार।।

ढोले को वापिस लौटा लाने के लिए उसने अपने तोते को भेजा, पर वह नहीं आया।

आडावळा की घाटी पार करने पर ढोला को ऊमर-सूमरे का एक चारण मिला जिसने मारू को बूढ़ी बता कर उसका चित्त खिन्न कर दिया। इसी समय बीसू नामक एक चारण मिला जिसने सारा हाल बताया और मारू की सुशीलता व सुन्दरता का विशद वर्णन किया—

गति गंगा मति सरसती, सीता सील सुभाइ।
महिलां सरहर मारुई, अवर न दूजी काय।।
मारु-देस उपन्नियाँ तांह का दंत सुसेत।
कूंझ बचाँ गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत।।
देस सुहावउ जल सजळ, मीठा बोला लोइ।
मारू कांमण भुइं दखिण, जइ हरि दियइ त होइ।।

ढोला पूगल पहुंच गया और वहां सर्वत्र अपार हर्ष छा गया। वर्षों की विरहिणी मारू ढोले से मिली—

संपहुता सज्जण मिल्या, हूंता मुझ हीयाह।
आजूणई दिन ऊपरइ, धीजा वळि कीयाह।।
घमघमन्तइ घाघरइ, उलय्यउ जाँण गयंद।
मारू चाली मंदिरे, झीणे बादळ चंद।।

पन्द्रह दिन वहां रह कर, बहुत सा धन-दहेज, दास-दासी लेकर मारू के साथ ढोला विदा हुआ। एक रेतीले मैदान में उनका पड़ाव पड़ा। रात्रि के समय सोती हुई मारू को एक पीवणे सांप ने पी लिया। उसे मरी हुई देख कर ढोला भी उसके साथ जल मरने को तैयार हुआ। इतने में ही कोई जोगी और जोगिन वहां आगए। जोगिन के अनुरोध पर जोगी ने मारू को जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हो, साथियों को पीछे से आने को कह कर, मारू

के साथ ऊंट पर चढ़ कर अकेला ही नरवर को रवाना हो गया। रास्ते में ऊमर-सूमरा मिला जो छल से ढोला को मार कर मारू को अपने पास रखना चाहता था। उसने ढोला से नशेपानी की मनवार (मनुहार) की। निमंत्रण पाकर ढोला ऊंट से उतर कर उसके साथ बैठ गया। ऊमर-सूमरे के साथ मारू के पीहर की एक गायिका थी, जिसने गीत गाते-गाते मारू को यह भेद बता दिया। यहां तत्कालीन स्थिति का सुन्दर चित्र उतारा गया है—

तत तणक्कइ, पिउ पिया, करहउ ऊगाळेह।
भल वउळावो वीहड़ा, दई वळावण देह॥
घळ भम्मइ अजासड़उ, थे इण केहइ रंग।
धण लीजइ, प्री मारिजइ, छाँडि विडाँसण संग॥

यह समझकर मारू ने अपने ऊँट को छड़ी से मारा। उसको सँभालने के लिए जब ढोला आया तब मारू ने चुपके से इस छल की बात उसे कह दी। दोनों झटपट ऊँट पर सवार होकर चल दिए और दूर निकल गए। ऊमर-सूमरे ने दल-बल सहित उनका पीछा किया, पर हताश होकर उसे वापिस लौटना पड़ा। इधर ढोला और मारू सकुशल नरवर पहुँच गये। यहां अपार आनन्द छा गया।

एक रात मालवणी ने मारू के देश मारवाड़ की निन्दा की। इस पर मारू ने मालवा की निन्दा की और मारवाड़ की प्रशंसा की। ढोले ने दोनों के झगड़े को निपटाते हुए, मालवणी से कहा—

सुण सुन्दर केता कहों, मारू देस बखाण।
मारवणी मिळियाँ पछइ, जाँण्यउ जिलम प्रवांण॥

'ढोला-मारू' की कथा का यही सारांश है।

इस कथा पर संवत् १६१७ में कुशललाभ ने अपनी चौपाइयाँ रचीं, जिसका परिचय जैन साहित्य के अन्तर्गत दिया गया है।

कुशललाभ के अतिरिक्त, एक अज्ञात कवि ने संवत् १६५७ में 'ढोला मारू नी वात' नामक काव्य ४३७ दोहों में रचा, जिसकी प्रति श्री फार्बस् गुजराती सभा के संग्रह में है। उदाहरण-स्वरूप तीन दोहे देखे जा सकते हैं। मालवणी ढोला को वर्षाऋतु में जाने से रोक रही है—

नदियाँ नालां नीझरण, पाणी घड़ियाँ पूर।
करहो कादव कमकमे, पंथि पोगळ दूर॥
जण दिहे पायोस, ससनेही सुख होय।
तण दिवेरी वसहाँ, भंवर छोडे कोय?
बाँपेया पीउ पीउ करे, कोकिल सुरंगा साद।
प्रीतण बन अलगा रहि, से ना किया सवाद[१]॥

१. गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४१६–४१७, संपा० : क० मा० मुंशी, बंबई, १९२६ :

(३) गणपति : माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध[1]

इसकी रचना नरसा के पुत्र कायस्थ कवि गणपति ने संवत् १५७४ में की। ये बड़ौदा जिले के आमोद (आम्रपद) के रहनेवाले थे। महाकाव्य की शैली में लगभग २५०० दोहों (दोधक) में यह कथा कही गई है। सम्पूर्ण कथा निम्नलिखित आठ अंगों में विभाजित है–

१. काम जन्म प्रसंग
२. कामकन्दला जन्म
३. रुद्र-महादेवी प्रसंग
४. पिता मिलन प्रसंग
५. माधव कामकन्दला प्रेम प्रसंग
६. कामकन्दला विरह प्रसंग
७. माधव कामकन्दला मिलन प्रसंग तथा
८. माधव कामकन्दला विलास प्रसंग

रचना शृङ्गारिक है जिसका पता मङ्गलाचरण के प्रथम दोहे से ही लग जाता है। इसमें प्रचलित परम्परानुसार सरस्वती और गणेश की वंदना छोड़ कर कामदेव की स्तुति की गयी है—

कुंअर-कमला रति-रमण, मयण महाभड नाम।
पंकजि पूजिय पय-कमल, प्रथम जि करूँ प्रणाम॥

इसमें विप्रलंभ तथा संयोग, दोनों प्रकार के शृङ्गार का बहुत ही रसमय वर्णन किया गया है। साथ ही शीलव्रत की महिमा भी बताई गई है। इसमें विशेष ध्यान आकर्षित करनेवाले प्रसंग बारहमासा वर्णन के हैं। ऐसे तीन स्थल हैं—

१. द्वादश मास विरह-वर्णन (अंग ६ दोहे ५१८–६१४);
२. माधव विरह बारमास (अंग ७ दोहे १३७–१७२);
३. द्वादश मास भोगवर्णन (अंग ८ दोहे १६–१३६)।

ये सभी फाल्गुन मास से प्रारम्भ होते हैं। प्रथम दो में विरह के और तीसरे में मिलन और संयोग के सुखद वर्णन हैं। इनमें 'माधव विरह बारमास' तो विप्रलंभ शृङ्गार कविता का उत्तम नमूना है, जिसमें से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

फाल्गुन मास :

फरकट फोकटनु फिरइ, फागुण फूत्कार।
फूली मन्न फणगर जिसिउ, जउ जमली नहीं वार॥१३७॥
थंग वज्जावइ केतला, पीला रंग पलाश।
ओदइ ते जमली नहीं, ज्यंह म्हारो आस॥१३८॥
कामकंदला! तूं रही, हाड हियाना मांहीं।
वारापणि! वासइ रखे, होली थीकइ त्यांहीं॥१३९॥

१. गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, Vol. XCIII. १९४२, संपा०-मजमुदार :

ज्येष्ठ मास :

अंबर तापइ खिति तपइ, जलण जलइ पग-हेठि ।
सई घटमांहि घूंघट करिउ, आवत श्रेणइ जेठि ।।१४६।।
हूं सूकिउ रे लाडकी, दिहाडी दूरि पीयाण ।
माहव भमइ बुहारडा, पंजर पूठइं प्राण ।।१४७।।
अंबरि बारइ रवि तपइ, दिशा प्रति दि दाह ।
शीतल सुख संभायरयउं, अवर न श्रेकू ठाह ।।१४८।।

× ×

भाद्रपद मास :

भाद्रवडइ सरोवर भरियां, नीर निरंतर होय ।
रिदयां-भींतरि हूं रडूं, नीर निवारि न कोइ ।।१५५।।
बापीअडु 'प्रीऊ' 'प्रीऊ' करइ, कामकंदला जेम ।
तिम तिम तन माहारा तणूं, छीणुं थाइ क्षेम ।।१५६।।
भाद्रवडइ भागी मणा, उतपति अन्न-सगाल ।
कामकंदला ! तूं-पखइ, माहरइ वहइ दुकाल ।।१५७।।

पुरानी परिपाटी के अनुसार तीन स्थलों पर समस्या-मूलक पहेलियाँ दी गई हैं—
(क) अंग ५, दोहे १२८–१७२, (ख) अंग ६, दोहे ६४३–७६१, (ग) अंग ८, दोहे १४६–१८५। कथा में कुछ अछेरों (आश्चर्य तत्वों) का—जैसे कि एक शरीर का दूसरे शरीर में परिवर्तन हो जाना आदि का भी समावेश है।

यह मध्यवर्गीय जीवन की प्रेम कहानी है जिसमें आदर्श प्रेम का वर्णन किया गया है। कहानी सर्वत्र प्राञ्जल भावनाओं से ओतप्रोत है। माधव चारित्र्य-शुद्ध शृङ्गार-वीर और कामकन्दला अभिजात गणका है। कथा के बीच में औपदेशिक बातें भी कही गई हैं। इसमें समाज-शास्त्रीय अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री है। सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक विश्वासों, मनौतियों, मान्यताओं तथा पहनावों और घरेलू सामग्रियों का विशद वर्णन व राज-दरबार की सज-धज, नागरिक जीवन की विविधता तथा नगर के बाहर की लीला का सुन्दर वर्णन इसमें देखते ही बनता है। राजस्थानी और गुजराती समाज के घरों की, ऋतु-ऋतु में जो-जो सुख-सामग्रियाँ होती हैं, उनका अच्छा चित्रण किया गया है। इससे तत्कालीन लोक-रुचि का पर्याप्त परिचय मिलता है। कवि ने नायक और नायिका के पूर्व जन्म की कहानियाँ भी दी हैं। संस्कृत महाकाव्यों और प्राकृत-अपभ्रंश प्रबन्धों की परम्परा में इस रचना का अपना विशिष्ट स्थान है।

कथानक—

पाँच साल के बालक माधव को एक यक्षिणी के हाथों से पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्दचन्द्र ने छुड़ाया और उसे अपने पुरोहित के यहाँ लालन-पालन के लिए रखा। माधव ने यहाँ सब विद्याएँ सीखीं। वह राजमहल के देव-मंदिर में नित्य पूजा करने जाया करता था। राजा की बड़ी पटराणी रुद्र महादेवी उसका रूप देख कर रीझ गई और उससे प्रेम-प्रस्ताव

किया। इस बात पर माधव किसी प्रकार भी राजी नहीं हुआ। क्रुद्ध हो रानी ने उसे राज्य से बाहर निकलवा दिया।

वह घूमता हुआ रुक्मांगदपुरी के राजा रायचन्द के दरबार में आया। उसका पिता कुरंगदत्त वहाँ राजपंडित था। दोनों में प्रश्नोत्तर होने पर सब भेद खुला और बाप-बेटे मिले। अब माधव वहीं रहने लगा। उसके सौन्दर्य पर रीझ कर नगर की सब स्त्रियां उसके प्रेम में रात-दिन विह्वल रहने लगीं। उनको अपने-अपने पतियों की इच्छाओं का बिल्कुल ध्यान नहीं रहा। वे सदैव उसी का चिन्तन करतीं थीं। इस प्रकार जब समस्त पारिवारिक व्यवहार ठप्प पड़ गया, तब सब नगर-निवासियों ने एकत्र होकर राजा से त्राण के लिए निवेदन किया। राजा ने परीक्षा के लिए माधव को दरबार में बुलाया और काले तिल पथरा कर उन पर अपनी बीस राणियों को बैठाया। माधव का मुख देखते ही वे सब काम-मोहित होकर स्खलित हो गईं। राजा ने तब उसे देश-निकाला दे दिया।

वहाँ से वह कामावती-नगरी में पहुँचा, जहाँ का राजा कामसेन था। जिस समय वह द्वार पर पहुँचा, राज-सभा में नृत्य हो रहा था। उसने आते ही प्रतिहार से कहा—'सकल सभा ए मूढ़'। वह सभा में बुलाया गया। वहाँ उसकी संगीत कुशलता लख कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पास आसन देकर सम्मानित किया। सभा में कामकन्दला नृत्य कर रही थी। इसी समय एक भ्रमर उसकी कंचुकी में घुस कर काटने लगा, तिस पर भी वह बदस्तूर नाचती रही। इसका पता माधव को छोड़ कर सभा में और किसी को नहीं लगा। प्रशंसा के तौर पर माधव ने राजा का दिया हुआ बीड़ा स्वयं न खाकर कामकन्दला को दे दिया। इस पर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसे देश-निकाला दे दिया। कामकन्दला की प्रार्थना पर वह रात भर उसके यहाँ रहा और दोनों में प्रगाढ़ प्रेम हो गया। यहाँ समस्या-विनोद में पहेलियां दी गई हैं।

सवेरा होते ही माधव चल दिया और महाबन होता हुआ उज्जैन आया। इस स्थल पर कवि ने अकारादि क्रम से महावन के वृक्षों, कंदों व शाक-व्यंजनादि के विविध नाम गिनाए हैं। इनके अतिरिक्त वनस्पति के विविध गुण, वन की भयानकता, विषधर, पक्षी आदि के वर्णन भी दिये गये हैं। माधव ज्योंही कामावती से रवाना हुआ, कामकन्दला उसके विरह से अभिभूत हो गई। उसने देव, सूर्य, मन्मथ तथा माधव को अनेक उपालंभ दिए। पक्षी, चातक, मयूर, कोकिला, दीप, निद्रा, रात्रि आदि के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया तथा पवन-दूत के हाथ सन्देश भेजा। इन सब के बीच कवि शील-माहात्म्य भी वर्णन करता है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से छठा अंग सर्वोत्कृष्ट है।

उज्जैन पहुँचकर वह महाकाल के मन्दिर की भीतों पर अपनी विरह-वेदना अंकित करने लगा। परदुखभंजन राजा विक्रम ने एक भोग नामक गणिका द्वारा माधव का पता लगवाया और उससे सब बातें पूछीं। अब राजा विक्रम ने कामसेन से कामकन्दला को मांगा, पर उसने अस्वीकार कर दिया। इस पर विक्रम ने उस पर चढ़ाई कर दी। कामकन्दला के प्रेम की परीक्षा करने के लिए विक्रम वेष बदल कर उसके घर गया और उसको अपने लिए मांगा। परन्तु वह तो केवल माधव से ही प्रेम करती थी, बोली—

माहरइ माधव अंभ विण, अवर पुरुष ते बाप।

तब राजा ने कहा कि माधव तो मर गया है। यह सुनते ही वह बेहोश होकर गिरी और तत्काल ही मर गई। राजा बहुत ही दुखी हुआ। शीघ्र आकर उसने माधव को बुलाया और यह दुखद घटना सुनाई। सुनते ही उसने भी प्राणोत्सर्ग कर दिया। अब तो व्यथित हो राजा ने आत्मघात करने की ठानी। इस पर वीर वैताल ने उसको रोका और उन दोनों प्रेमियों को भी उसने जीवित किया। पश्चात् दोनों राजाओं में युद्ध हुआ, जिसमें कामसेन की हार हुई। इस प्रकार माधव और कामकन्दला का सुखद मिलन हुआ। आठवें अंग में दोनों के संयोग-सुख का वर्णन किया गया है। इसमें वर्णित द्वादश मास भोग-वर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। उदाहरण यों हैं—

फाल्गुन मास:

फागुण-केरां फणगरां, फिरि फिरि गाइ फाग।
चंग वजावइ चंग परि, आलवइ पंचम राग।।१६।।
केलि कुसुंभा-केरडां, केसर सुरन्तरु सोय।
माधव कीजइ छांटणां, अमर आश्चर्यइं जोइ।।१७।।
पीलो पीषी पाघड़ी, झूलडीमें रंग रोल।
अन्यो अन्यि छांटणां, चटकु लागु चोल।।१८।।
हरखि रमइ हुताशनी, निरखी निर्मल चंद।
साधइ सुरत-तणां सुवच, वाधइ अति आनंद।।१९।।

माधवानल कामकन्दला की कहानी विक्रमादित्य सम्बन्धी कहानियों से किसी न किसी प्रकार संबंधित है। विक्रमचरित पर अन्य बहुत सी रचनाएँ भी हुईं। नरपति नामक कवि ने संवत् १५१६ में, विक्रम कथा; राजधरदास ने संवत् १६२१ में चंद्रहास आख्यान; एक दूसरे नरपति कवि ने संवत् १६४९ में विक्रमादित्य चूपे[१] तथा लाल नामक कवि ने संवत् १६२४ में विक्रमादित्य कुमार चोपई[२] नामक काव्यों की रचनाएँ की।

ऐसे प्रेम कथा-काव्य रचयिताओं की महत्ता के सम्बन्ध में श्री मं० र० मजमुदार ठीक ही कहते हैं—

The greatness of these story tellers lies in their matchless style and wonderful power of story telling, in presenting didactic and worldly maxims in striking parallelisms; and in presenting the romantic atmosphere of early fiction, and thereby providing a valuable literature of escape from the morbid influences of their times[३].

१. गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४०२ :
२. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २१३० :
३. माधवानल कामकन्दला-प्रबन्ध, G.O.S. XCIII, Preface, Page VI.

(४) तेली पदम भगत : हरजी री व्यांवलो या (रुकमणी मंगल) :

इसमें यद्यपि कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की पौराणिक कथा ही वर्णित है तथापि गेय तथा लोकप्रिय होने के कारण इसने लोक काव्य का रूप धारण कर लिया है। रात्रि के समय गायकों द्वारा यह कथा गाई जाती है। गाने के लिए ही इसकी रचना हुई है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इसमें लगभग २३ कड़ियों की पुनरावृत्ति होती है, जो लोक-गायन-प्रणाली के अधिक उपयुक्त है। बोलचाल की सरल राजस्थानी में लगभग २७५ छन्दों में इसकी रचना हुई है। रचयिता का नाम पदमो या पदम है जो जाति के तेली थे। काव्य में इसका पता दो जगह मिलता है—

(क) ईवड़ो अंतर हरि हरि सिसिरालइ, भणइं पदमीयो तेली ॥१३॥६८

(ख) पांका पाय पलोटण हो, पदमों तेली साथि देस्यां ॥३३॥२७०

रचयिता के विषय में इससे अधिक और विशेष पता नहीं चलता।

इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति संवत् १६६६, के फागुण वदि १० की लिपिबद्ध मिलती है[1], जिसका सर्वप्रथम हवाला नागरी प्रचारिणी सभा की वार्षिक खोज-रिपोर्ट में मिलता है[2]। बाद के वर्षों में लिपिबद्ध अन्य हस्तलिखित प्रतियां[3] भी मिलती हैं, पर उनमें पर्याप्त पाठ-भेद है। प्रसिद्धि के साथ-साथ इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन भी इतना हुआ है कि अब तो प्राप्य पुस्तकों के आधार पर इसके मूल रूप का अन्दाजा लगाना भी कठिन है। प्रकाशित पुस्तक[4] और हस्तलिखित प्रतियों की तुलना से यह बात स्पष्ट होगी। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देखा जा सकता है। प्रसंग रुक्मिणी के फेरों का है—

संवत् १६६६ की प्रति का पाठ	अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रति (नं० २१) का पाठ	प्रकाशित ग्रंथ 'बड़ा रुक्मिणी मंगल' का पाठ (पृ० १२५) :
प्रथम फेरइ डाइचो	पहिलइ त फेरइ दाइजउ	पहलो फेरो लीन्हो
घइ राय अस्व अपार।	दीया त अस्व अपार।	जादू दीन्हों अस्व अपारा।
बीजलइ फेरई डाईचउ	दूसरइं त फेरइ दाइजउ	दूजो फेरो लीन्हो
देई गज रथ सिणगार।	आपीया रतन भंडार।	जादू दीन्हों कुंवर सँवारा।
त्रीजलइ फेरइ डाइचो	तीसरइ त फेरइ दाइजउ	तीजो फेरो लीन्हो
देई रतंन कोडि भंडार।	आपीया आभरण भूप।	जादू दीन्हों रथ झणकारा।
चौथलइ फेरइ डाइचो	चउथलइ फेरइं रुकमणी	चौथो फेरो लीन्हो
पल्यंग सावट सौडि।	दीसतो सघन सरूप।	जादू दीन्हां रतन अपारा।

१. श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर: प्रस्तुत पंक्तियां इसी के आधार पर लिखी जा रही हैं।
2. Annual Search Report for the year 1900, संख्या ६२ :
३. (क) वही;—संख्या २४; (ख) वही;-For the years 1929-31, संख्या २५६;
(ग) श्री अभय जैन ग्रंथालय में, अठारहवीं शताब्दी की लिपिबद्ध एक और प्रति; तथा
(घ) प्रति नं० २१, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर। यह प्रति अपूर्ण है।
४. 'बड़ा रुक्मिणी मंगल', प्रकाशक : सदाशिव रामकरण दरक:

इससे रचना की प्रसिद्धि का भी पता चलता है। अनुमानतः इसका रचनाकाल संवत् १६०० के आसपास या इससे भी पहले का होना चाहिए।

इसमें प्रधान रस शृङ्गार और वीर है। शृङ्गार में रुक्मिणी का कृष्ण के प्रति पूर्वानुराग और उसके नखशिख वर्णन बहुत ही सुन्दर और हृदयग्राही हैं। वीररस का उत्तम नमूना, सेना और युद्ध के सजीव वर्णनों में मिलता है। कहना न होगा कि कवि की भक्ति-रस-धारा तो समूची रचना में व्याप्त है, जो रिस-रिस कर आती ही रहती है। इसकी एक और प्रमुख विशेषता है संवादों की सफलता। इनमें, राजा भीमक और रुक्मैया के संवाद तो अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

कवि ने कृष्ण के लग्न-समय में ६४ वृक्षों के नाम गिनाए हैं जो पुरानी परिपाटी का पालन मात्र है। तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजों का भी इसमें अच्छा चित्रण मिलता है। कवि स्वयं कहता है कि वह केवल भक्त है, और साहित्य-शास्त्र के विषय में अनभिज्ञ है—

भरह पिंगल नो भेद न जांणुं, नवि जोयों व्याकरणां।
केवल भगति करूं करतानर, कलिमल मिथ्या हरणां ॥६॥

इसकी मूलकथा भागवत पर आधारित है[1], पर कुछ बातों में अन्तर है, जैसे—(१) शिशुपाल की बारात आ जाने पर रुक्मिणी, श्री कृष्ण के पास एक ब्राह्मण के हाथ पत्र लिख कर भेजती है; (२) उसके माता-पिता की इसमें सहमति है; (३) श्री कृष्ण पत्र पाकर कुन्दनपुर रवाना होते समय बलराम को भी तैयार होने के लिए कह देते हैं; (४) युद्धोपरांत विजयी श्री कृष्ण का विवाह रुक्मिणी के साथ कुन्दनपुर में ही होता है और (५) द्वारका से नेमिनाथ भी उनके साथ जाते हैं, आदि।

कथा रुक्मिणी के विवाह-प्रसंग को लेकर प्रारम्भ होती है। राजा भीमक और रुक्मैया, रुक्मिणी के विवाह-संबंधी मंत्रणा करने बैठे—

रूपमइयो नई राजा भीमक, मंत्र करेवा बइट्ठा।
ए कन्या नइ जे वर युगता, ते वर तम कहि दीठा ?

और राजा ने अपना मत दिया—

भीमक राय भणइ रुमईया, वर वनमाली जांणुं।
छपन कोडि जादव नो राजा, वंस विसुध बखांणुं।

पर पुत्र के मन में कुछ और ही बात थी; बोला—

सुत भणइं सुंणि राजेन्द्रजी, ए किम एवडई मांन।
गोकलि गोव चरावतो जो, किसुं सराहिश्रं कान्ह ?

× ×

राजा : चतुर्भुज नं भुज च्यार ज सोहई, गुरुडासण गोव्यंद।
इंद रूप इंद्रादिक थरप्या, दिनि दिनिकर निसि चंद।

× ×

---

१. श्रीमद्भागवत्, दशम स्कंध, अध्याय ५३–५४ :

दमयंती : पूरब देस नरेसर भणीयो, वर कीजइ सिसिपाल।
यास बुध मति एक ज भणीइं, तात म झंखो आल।

ये संवाद काफी लम्बे, बहुत रोचक और नाटकीय तत्त्वों से युक्त हैं।

कुन्दनपुर में शिशुपाल की बारात आ गई। रुक्मिणी की मां कहने लगी—
गोरख घडी दस जोईया जी, बोलइं भीमक नारि।
वरनइं देखालूं बाई! ताहरी जी, आवो नइ राजकुंमारि।

रुक्मिणी ने इस पर तत्काल उत्तर दिया, सीधा और स्पष्ट—
चवद भुंवण नउं राजीयो जी वर वरस्यूं गोपाल।
× ×
अंतर नक्षत्र सूर खरगइंवर, अंतर सीह सीयालइं।
ईवडो अंतर हरि सिसिपालइं, गुरड वांहण गोपालइं।

द्वारका से श्री कृष्ण की सेना चलने लगी, मानों पर्वत-माला चल पड़ी हो—
सोल्यरि साथ कुंजर सिणगारया, स्वेत भद्र सुंडाला।
ढाल ढलकइ नेजा फरकई, चाली परबत माला।

रुक्मिणी अम्बिका-पूजन के लिए जा रही है। उसके रूप की झांकी देखिए—
हार डोर सुघट सोहई, भरया मांग स्यंदूर।
राखड़ी रतन अनेक झलकइ, जांणि उग्या सूर।
× ×
कंचूअइ ईक कसण कसीया, अधिक प्रीति ज मंन।
अबलातिआली, अति विशाली, नाभि जंघ गंभीर।
कडि लंक चित्रा जंन जांण्यो, जंघ कूदली थंभ।
पींडी तिसु घट सुघट सोहई, जांणे कंनक महावलि श्रंग।
× ×
भंमर भोली पहिर चोली, प्रवर दक्षिण चीर।
चालतां गज हंस गयणी, बोलतीय गंभीर।

दोनों दलों में भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। कवि ने इसका सुन्दर वर्णन किया है—
घड घडण नाचई, थदन वाचई, पडइ खंडो खंड।
हरि कोप कोपुं, जइत लोपुं, रोलव्या रण रुंड।
रलतलइ रथ नई मगर कुंजर, अस्व जेहया कछ।
लडथडइ पडनइ सुहड सलकई, जांणि जल विण मछ।

(५) रतना खाती : नरसी रो माहेरो[1]

इसमें सुप्रसिद्ध भक्त और कवि नरसी मेहता की पुत्री नानीबाई के भात भरने की कथा

१. ज्ञान भंडार, बीकानेर, की सत्रहवीं शताब्दी की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसका संपादन किया है, जो अभी तक अप्रकाशित है। प्रस्तुत परिचय इसी सं० प्रति के आधार पर दिया गया है। (-श्री नाहटाजी की सूचना के अनुसार):

कही गई है। नरसी मेहता का समय संवत् १४६६–७० से १५३५ तक माना जाता है[१]। "ब्यांवले" की भांति "माहेरे" का भी राजस्थान में बहुत अधिक प्रचार रहा है। इसके रचयिता का नाम रतन साहजी या रतना खाती है[२], जिसने संवत् १६१७ में इसकी रचना की—

समत सोळ सतत्तरो साल, सांवरसा पधारघा छा नगर अंजार।
माहेरे री महमा साहजी रतन करी, लाख चौरासी सु जु दोर ल्यौ हरी।

इसकी भी कई हस्तलिखित[३] और प्रकाशित[४] प्रतियाँ मिलती हैं, किन्तु उनमें पर्याप्त पाठ-भेद है और मूलकथा में बहुत से क्षेपक भी जुड़ गए हैं।

बेटी या बहन के घर उसके लड़के या लड़की के विवाह के अवसर पर बाप या भाई पहरावनी लेकर जाते हैं, उसे माहेरा या भात भरना कहते हैं। राजस्थान की यह एक महत्त्वपूर्ण प्रथा है। इस कथा में करुण तथा हास्य दोनों रसों का मार्मिक संयोग हुआ है। इस अवसर के गीत भी करुणरस से ओत-प्रोत होते हैं।

कथानक[५] :

जूनागढ़ के परम भक्त नरसीजी की बेटी नानीबाई की ससुराल नगर अंजार में थी। नानीबाई की लड़की के विवाह के अवसर पर नरसीजी को जूनागढ़ में निमंत्रण भेजा गया, जिसे पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन घर में तो खाने को एक दाना भी नहीं, मोहरे की रस्म कैसे अदा की जाए? उनकी पत्नी ने ताना दिया—

थारें तो घर में मोडा अन री भूख
कांय सूं करोला मायेरा रो सलूक?
टाबर थारा भूखा मरै मांगै छै रोटी
गांव रै आटा सूं ब्राह्मण कर दियो खोटी।

परन्तु नरसी को अपने भगवान पर अखंड विश्वास था, बोले—

छानी रहे छिपकी रहे घर की नार
मायेरो भरैलो म्हारो सिरजणहार।

उन्होंने नगर अंजार जाने के लिए, मांग कर टूटी सी गाड़ी और मुर्दे से बैलों का इन्तजाम किसी प्रकार कर लिया। साथ में भक्त सूरदासों को भी लिया। उनकी यह गाड़ी जब चली तो लोगों ने ताने कसे और हँसी उड़ाई। उस समय की हालत और परेशानी देखने ही योग्य है—

---

१. गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन, खंड १ लो, पृ० ६७ तथा ८०, (१६५१ ई०) :
२. श्री नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० २७ :
३. प्रति नं० ५०, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
४. (क) साह शिवकरण रामरतन दरक, इन्दौर, तथा
   (ख) श्यामलाल हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, आदि के प्रकाशन :
५. विस्तृत कथा के लिए देखिए : 'राजस्थानी', (कलकत्ता) भाग ३, अंक ४, अप्रैल, १६४० : 'नरसीजी रो माहेरो',—श्री नरोत्तमदास स्वामी :

भाई बंध नरसी रा धोलं धड़ी प्रवंयो धावं।
एक नं उठावं बंल्यो दूजोड़ो पड़ जावं।
घर में नाहीं एक टको गजवी गोता खावं।
जब गाडी में प्राधी हांक, पाचरिया पड़ जावं।
पाचरिया चुग ऊंचा मेलं तूंबड़िया गुड़ जावं।
तूंबडिया री सिर में लागं, सूरदास गरळावं।

ऐसी स्थिति में भगवान ने 'किसनो खाती' के रूप में आकर गाड़ी को ठीक किया और उन्हें नगर अंजार पहुँचा दिया। इधर नानीबाई की ससुराल में जब पता लगा कि नरसी भात भरने के लिए साथ में कुछ नहीं लाए हैं, तो उनको एक टूटी-फूटी हाट में ठहराया गया। आदर-सत्कार की तो बात ही दूर थी। घर में नानीबाई को सास, नणद और देवर के हृदय-विदारक ताने सुनने पड़े। उसने नरसी के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। उसने जो बात कही, वह उस स्थिति में पड़ी हुई समस्त नारी जाति की वाणी है, निरीह बेटी की अन्तर्वेदना की पराकाष्ठा है—

जनमी जद बावलिया खुणायो हुतो थाय।
रमती तो खेलती हूं पड़ती जाय।
जनमी जद जुड़ी नहिं अमल री डळी।
कांय सूं पूरा ला म्हारं मन री रळी।
मायड़ली बिना धीवड़ली निरधार।
मायड़ली बिना हो बापजी सूनो ही संसार।
मायड़ली बिना कूण राखं धीवड़ली रो मान।
घिरत बिना हो बाप जी जिसो सूखो धान।
तूंई मर गयो हुतो म्हारी मा जीवती।
एक तो कापड़लो मनेई करती।

नरसी ने सब सुना और कहा कि मोहरे के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, उन्हें लिखवा कर भिजवा दो। ऐसा ही हुआ। विभिन्न वस्तुओं की एक लम्बी सूची नरसी के पास भेज दी गई।

नरसी ने स्नान के लिए पानी मांगा, तो उनको बहुत ही गर्म पानी दिया गया। इस पर उन्होंने ठंडा पानी मांगा, तब टका सा जवाब मिला। कहा गया—मेह बरसा कर ठंडा पानी ले लो, भगवान तो तुम्हारे वश में हैं ही! अब हाथ में ताल लेकर नरसी ने प्रभु से प्रार्थना की। घर में इतनी वर्षा हुई कि नानीबाई की नणद के दो लड़के डूब गए, पर नरसी समधी थे, उन्हें भगवान से उन लड़कों को पुनर्जीवित करने के लिए याचना करनी ही पड़ी।

ज्यों-ज्यों माहेरे भरने का समय पास आता गया, त्यों-त्यो नानीबाई की उत्कंठा बढ़ने लगी। सरल भाव से वह पूछने लगी कि आखिर सांवर शाह कब आएंगे? प्रतीक्षा की भी कोई सीमा होती है—

म्हांनै कह् दो बापजी सांची, थांरो सांवरसा कद आसी ?
आऊं कै जाऊं पाछी, मनै सासू नणद संतासी।
मनै घड़ी मूसला थासी, म्हारै मन में उणायत आसी।
थारै घर में कुबज्या दासी, थांनै लाज किसी दिय आसी ?

गरीब बाप की बेटी की ससुराल में कितनी विवशता है ! नरसी से अब रहा नहीं गया। इन्होंने आर्त हो प्रभु से पुकार की—

बड़ो भरोसो तेरो,
सांवरा बड़ो रे भरोसो तेरो !
पैलाद की परतंग्या राखी अजानेर घर तेरो।
डूबत ही ब्रजराज उबारघो नख पर गिरवर टेरो।
सगा सनमनी करत मसकरी वस लागत नहिं मेरो।
तीन कारज तें आगे सारघा अब कै कर दो निवेंरो।
नरसी मूंतो चाकर थारो जनम जनम को चेरो।

प्रभु को भी उनके लिए कुबेर-भांडार खोलना पड़ा। भगवान रुक्मिणी को साथ लेकर भात भरने चले और पहले जूनागढ़ में आए। वहां से पता पूछ, नगर अंजार चले। रथ भाग रहा था, रुक्मिणी ने कहा—रथ को जरा धीमे हांको। भगवान बोले—

होळै नहीं हांकूं ए रुकमण नार
दिन ऊग्यां जूनागढ़ आया, दिन अथम्यां अंजार।

इधर उलाहनों से बचने के लिए नानीबाई तालाब पर पानी भरने चली। मातृ-विहीन नानीबाई का हृदय उमड़ आया। सिसकते सिसकते जीवन के समस्त अभाव साकार हो उठे। युग-युग से विवश और प्रताड़ित नारी का रोम रोम रो उठा—

आज हूं तो पाणीड़ो भरण नै जासूं हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।
चीखलो भरूं कै डूब मर जाऊं हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।
आज म्हारै महीं कोई संगरो वेलो हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।
आज मनै कूण ओढायं चंगो चीरो हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।
आज मनै निरधन बावलिये दीनी हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।
चीखलो भरूं क डूब मर जाऊं हे माय, नरसी मूंतै री हूं बाळकी।

हठात् उसने पश्चिम दिशा की ओर से देखा—

झीणी झीणी ऊड़ै छे खेह, जूनागढ़ रै मारगां
रथ बैठा रिणछोड़, सूरज किरणां तपै

हृदय में उत्कंठा हुई। पूछा तो पता चला कि वे नरसी के ही सावल शाह थे—भातवी ही थे। उसके हर्ष का पारावार न रहा।

भगवान ने सर्व प्रथम उसकी ससुराल में ही अपना परिचय दिया, कहा—म्हारै नरसी रै सेठां मामलो धुंवार। पश्चात् नरसी के आगे जाकर मायरे की गांठ धरी। नरसी इतनी देर लगाने के कारण भगवान पर रुष्ट तो हुए, पर अन्त में मान गए। धूमधाम से मायरा

भरा गया। सारे नगर में घोषणा की गई, पर पड़ोसिन आनंदी की नातनी गंगीबाई, जो हाल ही में पैदा हुई थी, को कुछ नहीं मिला। यह चर्चा जब नानीबाई ने सुनी, तब वह पिता के पास कपड़ों के लिए गई। पर अब कपड़े कहां थे? आखिर नरसी की खड़तालें बेच कर कपड़े लिए गए। नरसी ने भगवान को उलाहना दिया। कहा—'माहेरा तो तुमने अपनी बेटी का भरा है, मुझे बिना खड़तालों के क्यों कर गया'?—

> माथे कूटे नरसो वजावे दोनूं हाथ।
> ताळां बायरो कर गयो द्वारका रो नाथ।
> माहेरो भरयो तो आपरी बेटी रो भरयो।
> मनै नाचड्यो ताळां बायरो करयो।

इस पर कपड़ों की वर्षा हुई और खड़तालें उनको वापिस मिलीं। जाते समय नरसी ने अपनी बेटी से कहा—

> करज्यो म्हारी नानीबाई हरे, हरे!
> म्हे जावां छां म्हारे घरे.....!

और वे चले गए। यही 'माहेरे' की कथा है—तत्कालीन सामाजिक और गृहस्थ जीवन के विविध और यथार्थ वर्णनों से ओतप्रोत।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त, प्राचीन लोककाव्यों में बगड़ावत[1], पाबूजी के पवाड़े[2], निहालदे सुल्तान के पवाड़े[3] आदि प्रसिद्ध हैं। अंतिम दोनों के पवाड़ों की संख्या ५२-५२ बताई जाती है। ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंधित होने के कारण, इनके प्राचीन होने का अनुमान तो लगाया जा सकता है, किन्तु हस्तलिखित प्रतियों के अभाव और मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण, न तो इनकी भाषा के मूल रूप का ही पता चलता है और न ही रचनाकाल का।

आलोच्य काल की अन्य लोक कथाओं में छिताई चरित्र, वल्ह कृत बिल्हण चरित चोपई[4] (रचनाकाल—संवत् १५३७), नरपति कृत नंदबत्तीसी[5] (रचनाकाल संवत् १५४५) तथा वासु कृत सगाळशा शेठ चोपई[6] (रचनाकाल संवत् १६४७ से पूर्व) के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

१. (क) मरु-भारती, वर्ष ५, अंक २, जुलाई १९५७ : नाहटाबन्धु–'बगड़ावत';
(ख) प्रति नं० २१० (७३)–'बगडावतां री वात', अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर;
(ग) हरप्रसाद शास्त्री : Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles, Page 10.

२. श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित :–(क) सोढीजी रो पवाड़ो,–राजस्थान-भारती, वर्ष ३, अंक २, जुलाई, १९५१; (ख) च्यांव रो पवाड़ो, वही; भाग ३, अंक ३-४, जुलाई, १९५३; (ग) गाथा रो पवाड़ो,-शोध-पत्रिका, भाग ४, अंक ३, चैत, सं० २०१०:

३. डा० कन्हैयालाल सहल द्वारा लिपिबद्ध; मरु-भारती, वर्ष ५, अंक २, जुलाई १९५७, पृ० २ में निर्देशित :

४. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २११३ :

५. (क) वही; पृ० २११५; (ख) गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४२४ :

६. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० २१४२; (ख) गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४२५ :

छिताई चरित्र में ढोला-समुद के राजा सुरसी तथा देवगिरि के राजा रामदेव की पुत्री छिताई की प्रेम-कथा वर्णित है। छिताई को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन के प्रयत्न कथा को आगे बढ़ाते हैं। अलाउद्दीन छिताई को प्राप्त कर भी लेता है, पर अन्त में उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। वह छिताई को सुरसी को सौंप देता है। रचना का लिपिकाल संवत् १६४७ बताया गया है। कथा का आधार भी ऐतिहासिक प्रतीत होता है[७]।

अध्याय ६

लोक साहित्य : मुक्तक काव्य

(क) लौकिक प्रेम काव्य :

मुक्तक रूप में मिलने वाले लौकिक प्रेम काव्यों में, (१) जेठवा–ऊजळी, (२) नागजी-नागमती, (३) दोणी–बीजाणंद तथा (४) बीझा-सोरठ के दोहे-सोरठे बहुत प्रचलित रहे हैं। युग-युग से लोक मानस अपनी प्रेमानुभूतियों को इनके माध्यम से प्रकट करता आया है। ऐतिहासिक तथ्य इनमें गौण ही हैं। अधिकांश में, मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण, इनके रचनाकाल का निर्णय करने में बड़ी कठिनाई है। उपर्युक्त प्रेम-कहानियों से संबंधित दोहों की रचना तो अनुमान है, आलोच्य-काल के भीतर ही हो जानी चाहिए। इसका कारण यह है कि इनसे संबंधित फुटकर बातें और इन रचनाओं के कुछ बिखरे हुए अंश, पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में यत्र-तत्र पाए जाते हैं। दृढ़ प्रमाणों के अभाव में, निश्चित रूप से इनके काल-क्रम के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। 'ढोला-मारू' की तरह, ये भी शुद्ध लौकिक प्रेम-कथाएं हैं, पर एक मुख्य अन्तर है। जहां 'ढोला-मारू' में, अन्त में प्रेमियों का सुखद मिलन है, वहां इन कहानियों में, मिलन के अभाव में हृदय-विदारक, करुण चीत्कार ही सुनाई देते हैं। इन सभी प्रेम-कथाओं में, दोनों प्रेमियों में एक की मृत्यु हो जाती है और प्रारम्भ का क्षणिक मिलन दूसरे प्रेम-पात्र को जीवन भर तड़पाता रहता है। प्रेमी-हृदय के ये विरहोद्‌गार अप्रतिम हैं, अत्यन्त मार्मिक हैं। प्रेमी-हृदय का भीषण हाहाकार कुछ शब्दों के सहारे मूर्तिमान हो उठा है।

(१) जेठवा - ऊजळी :

जेठवा एक राजकुमार था और ऊजळी एक गरीब चारण की लड़की। संयोगवश, दोनों में प्रेम हो गया, जो दिन पर दिन प्रगाढ़तर होता गया। किन्तु चारण और राजपूत का

---

७. डा० हरिकान्त मिश्र : भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० ३५ तथा २०८–२१८ :

भरा गया। सारे नगर में मोढावणी की गई, पर पड़ोसिन आनंदी की नाणदी गींगीबाई, जो हाल ही में पैदा हुई थी, को कुछ नहीं मिला। यह चर्चा जब नानीबाई ने सुनी, तब वह पिता के पास कपड़ों के लिए गई। पर अब कपड़े कहां थे? आखिर नरसी की खड़तालें बेच कर कपड़े दिए गए। नरसी ने भगवान को उलाहना दिया। कहा—'माहेरा तो तुमने अपनी बेटी का भरा है, मुझे बिना खड़तालों के क्यों कर गया'?—

नाचै कूदै नरसो बजावै दोनूं हाथ।
तालां बायरो कर गयौ द्वारका रौ नाथ।
माहेरौ भरचौ तौ आपरी बेटी रो भरचौ।
मनै नावड़म्यो तालां बायरौ करचौ।

इस पर कपड़ों की वर्षा हुई और खड़तालें उनको वापिस मिलीं। जाते समय नरसी ने अपनी बेटी से कहा—

करज्यो म्हारी नानीबाई हरे, हरे!
म्हे जावां छां म्हारे घरे.....!

और वे चले गए। यही 'माहेरे' की कथा है—तत्कालीन सामाजिक और गृहस्थ जीवन के विविध और यथार्थ वर्णनों से ओतप्रोत।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त, प्राचीन लोककाव्यों में बगड़ावत[1], पाबूजी के पवाड़े[2], निहालदे सुल्तान के पवाड़े[3] आदि प्रसिद्ध हैं। अंतिम दोनों के पवाड़ों की संख्या ५२-५२ बताई जाती है। ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंधित होने के कारण, इनके प्राचीन होने का अनुमान तो लगाया जा सकता है, किन्तु हस्तलिखित प्रतियों के अभाव और मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण, न तो इनकी भाषा के मूल रूप का ही पता चलता है और न ही रचनाकाल का।

आलोच्य काल की अन्य लोक कथाओं में छिताई चरित्र, दल्ह कृत बिल्हण चरित चोपई[4] (रचनाकाल—संवत् १५३७), नरपति कृत नंदबत्रीशी[5] (रचनाकाल संवत् १५४५) तथा वासु कृत सगाळशा शेठ चोपई[6] (रचनाकाल संवत् १६४७ से पूर्व) के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

१. (क) मरु-भारती, वर्ष ५, अंक २, जुलाई १९५७ : नाहटाबन्धु—'बगडावत';
(ख) प्रति नं० २१०(७३)—'बगडावतां री वार्त', अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर;
(ग) हरप्रसाद शास्त्री : Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles, Page 10.

२. श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित :—(क) सोढीजी रो पवाडो,—राजस्थान-भारती, वर्ष ३, अंक २, जुलाई, १९५१; (ख) ब्याव रो पवाड़ो, वही; भाग ३, अंक ३-४, जुलाई, १९५३; (ग) गाथा रो पवाडो,—शोध-पत्रिका, भाग ४, अंक ३, चैत, सं० २०१० :

३. डा० कन्हैयालाल सहल द्वारा लिपिबद्ध; मरु-भारती, वर्ष ५, अंक २, जुलाई १९५७, पृ० २ में निर्देशित :

४. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २११३ :

५. (क) वही; पृ० २११५; (ख) गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४२४ :

६. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० २१४२; (ख) गुजराती साहित्य, खंड ५ मो, पृ० ४२५ :

छिताई चरित्र में ढोला-समुद के राजा सुरसी तथा देवगिरि के राजा रामदेव की पुत्री छिताई की प्रेम-कथा वर्णित है। छिताई को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन के प्रयत्न कथा को आगे बढ़ाते हैं। अलाउद्दीन छिताई को प्राप्त कर भी लेता है, पर अन्त में उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। वह छिताई को सुरसी को सौंप देता है। रचना का लिपिकाल संवत् १६४७ बताया गया है। कथा का आधार भी ऐतिहासिक प्रतीत होता है[७]।

अध्याय ६

लोक साहित्य : मुक्तक काव्य

(क) लौकिक प्रेम काव्य :

मुक्तक रूप में मिलने वाले लौकिक प्रेम काव्यों में, (१) जेठवा–ऊजळी, (२) नागजी-नागमती, (३) सोणी–बीजाणंद तथा (४) बींझा-सोरठ के दोहे-सोरठे बहुत प्रचलित रहे हैं। युग-युग से लोक मानस अपनी प्रेमानुभूतियों को इनके माध्यम से प्रकट करता आया है। ऐतिहासिक तथ्य इनमें गौण ही हैं। अधिकांश में, मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण, इनके रचनाकाल का निर्णय करने में बड़ी कठिनाई है। उपर्युक्त प्रेम-कहानियों से संबंधित दोहों की रचना तो अनुमान है, आलोच्य-काल के भीतर ही हो जानी चाहिए। इसका कारण यह है कि इनसे संबंधित फुटकर बातें और इन रचनाओं के कुछ बिखरे हुए अंश, पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में यत्र-तत्र पाए जाते हैं। दृढ़ प्रमाणों के अभाव में, निश्चित रूप से इनके काल-क्रम के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। 'ढोला-मारू' की तरह, ये भी शुद्ध लौकिक प्रेम-कथाएं हैं, पर एक मुख्य अन्तर है। जहां 'ढोला-मारू' में, अन्त में प्रेमियों का सुखद मिलन है, वहां इन कहानियों में, मिलन के अभाव में हृदय-विदारक, करुण चीत्कार ही सुनाई देते हैं। इन सभी प्रेम-कथाओं में, दोनों प्रेमियों में एक की मृत्यु हो जाती है और प्रारम्भ का क्षणिक मिलन दूसरे प्रेम-पात्र को जीवन भर तड़पाता रहता है। प्रेमी-हृदय के ये विरहोद्गार अप्रतिम हैं, अत्यन्त मार्मिक हैं। प्रेमी-हृदय का भीषण हाहाकार कुछ शब्दों के सहारे मूर्तिमान हो उठा है।

(१) जेठवा - ऊजळी :

जेठवा एक राजकुमार था और ऊजळी एक गरीब चारण की लड़की। संयोगवश, दोनों में प्रेम हो गया, जो दिन पर दिन प्रगाढ़तर होता गया। किन्तु चारण और राजपूत का

---

७. डा० हरिकान्त मिश्र : भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० ३५ तथा २०८–२१८ :

रिश्ता भाई-भाई का है; इस कारण दोनों में विवाह-संबंध नहीं हो सका। अन्त में जेठवा की मृत्यु हो गई। जेठवा के प्रति कहे गए ऊजळी के विरहोद्‌गार 'जेठवे रा सोरठा' नाम से विख्यात है। इन सोरठों का रचनाकाल अनुमानतः संवत् १४००-१५०० माना गया है[1]। कुछ उदाहरण देखिए—

टोळी सूं टळतांह, हिरणां मन माठा हुवै।
वाल्हा बीछंतांह, जीणो किण विध जेठवा ॥ १ ॥
जग में जोड़ी दोय, सारस नैं चकवा तणी।
तीजी मिळी न कोय, जो जो हारी जेठवा ॥११॥
तो बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जायसी।
बिलखतड़ी बीहाय, जोगण करग्यो जेठवा ॥१४॥
जग दीसै जातांह, वातां ऐ रहसी भळे।
हित सेंगो हातांह, जीवण रो सुख जेठवा ॥२६॥
मन ही मन रै मांय, केवां री सुणसी कवण।
हिवडो हिल हिल जाय, जिऊं जिता दिन जेठवा ॥३०॥
वीणा जंतर तार, थैं छेड्या उण राग रा।
गुण नै रोवूं गंवार, जात न मौकूं जेठवा[2] ॥६२॥

(२) नागजी - नागमती :

एक वाटिका में झूलती हुई नागमती या सुगना को नागजी ने देखा और दोनों में प्रेम हो गया। सुगना के माता पिता ने उसका विवाह किसी और व्यक्ति से कर दिया। इस पर नागजी ने विरह-विकल हो आत्म-हत्या करली। जब सुगना ससुराल को विदा हो रही थी, तब उसने नागजी की चिता देखी। वह भी उसमें जलकर भस्म हो गई। प्राप्त दोहों में नागमती का करुण चीत्कार प्रतिध्वनित होता है। काव्य में यह कथा 'नागजी रा सोरठा' नाम से प्रसिद्ध है[3]।

नागा नागर बेल, पसरै पण फूलै नहीं।
बालपणै रो मेळ, विछड़ै पण भूलै नहीं ॥

---

१. झवेरचंद मेघाणी : सोरठी गीत कथाओ, पृ० ३१, (पहली आवृति, १९३१) :
२. 'जेठवे रा सोरठा' अंक–'परम्परा', वर्ष २, अंक ५, जनवरी-मार्च, १९५८। इस संबंध में और देखिए–(क) राजस्थान, वर्ष १, संख्या २, संवत् १९९२; बार्हस्पत्य-'डिंगल भाषा के प्राचीन एतिह्य'; (ख) हिन्दी में हस्त० लि० ग्रन्थों की खोज, १९४१-४३, ना० प्र० स०, काशी; ग्रंथ नं० ५२, सन् १९४३ ई०, (-अप्रकाशित सूची से)।
(ग) प्रति नं० ७९ तथा १२१–अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर–'जेठवा रा दूहा' आदि।
३. (क) सोरठी गीत कथाओ, पृ० १३२-१४३;
(ख) राजस्थान रा पीछोला, (प्रकाशक-क्षत्रिय युवक संघ, पिलानी);
(ग) ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट—१९४१-४३; (-अप्रकाशित सूची) :

वतळावे जद वाम, वतळायाँ बोलो नहीं।
कदयक पड़ियाँ काम, न्होरा कररमो नागजी ।।
जोड़ ज्यूं ही जोड़, विणजारे रे ब्याज ज्यूं।
तनिक जोड़ मत तोड़, नातो तांतो नागजी ।।
मूंछ फरकै पवन सूं, हँसै मतीयूं दन्त ।
सोरो सोज्या नागजी, मो सुगनां रा कन्त[1] ।।

(३) शेणी-बीजाणंद :

बीजाणंद एक गरीब चारण था, जो बीण बजाने में अत्यन्त प्रवीण था। वह प्रायः शेणी के घर के चौगान और गांव में प्रेम, विलाप और वीरत्व के गाने गाया करता था। धीरे-धीरे दोनों में प्रेम हो गया। उसको गरीब जान, दोनों के विवाह-संबंध को टालने के लिए, शेणी के पिता ने एक कठिन शर्त उसके सम्मुख रखी, जिसे वह निश्चित अवधि में पूरा न कर सका। इस पर शेणी हिमालय में गलने के लिए चली गई। पश्चात् बीजाणंद भी उसको लिवा लाने के लिए, वहां पहुंचा, किन्तु शेणी ने उसकी बीणा सुनते सुनते वहीं प्राण त्याग दिए। दोनों के संबंध में बहुत से सोरठे प्रचलित हैं। कुछ नीचे दिए जाते हैं—

कंकूवरण कळाइयाँ, चूड़ी रत्तड़ियांह ।
बीझा गळ विलमी नहीं, बाळूं बांहड़ियांह ।।
बरस बल्यां बादळ बल्यां, धरती लीलाणी।
बीजाणंद रै कारणे, शेणी सूखाणी ।।
बींझा वाड़ पळास री, खंखेरी खर जाय।
नुगणां मानव सेवियां, पत सुगणां री जाय ।।
बींझा हूं बिलखी फिरूं, बवरी दाधो बेल।
वणजारा री आग ज्यूं, गयो धकंतो मेल ।।
इण थळवट में क्यों नहीं, सिरजी बावड़ियो।
बीजो धोवत धोतियां, पग दै पावड़ियो ।।
इण थळवट में क्यों नहीं, सिरजी नींबड़ियो ।
बीजो चारत करहळा, चळती छांहड़ियो ।।
सेणी देय संदेसड़ा, हेमा जळि हूंता।
सरवरि आज्यो पावणां, बीजाणंद थळता ।।
सर भरियो पंखेरवा, भरिया नवी निवांण।
सेणी दियै संदेसड़ा, ऊभी तट महरांण[2] ।।

---

१. 'राजस्थान रा पीछोला' : और देखिए-ह० प्रति नं० १७४ (११) 'नागजी-नागमती री वात', तथा नं० १४४-'नागड़ा रा दूहा',—अ० सं० ला०, बीकानेर :
२. डा० कन्हैयालाल सहल : 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' :

बीजाणंदनी वरमाळ, बीजाने थांपुं नहि ।
चारण होय सत्य चार, बांधव कही बोलावीमें ॥
गळीयुं भ्ररधुं गात्र, भ्ररघामां भ्ररधु रीयुं ।
हुवे मसलता हाथ, बीजाणंद पाछा वळो[1] ॥

(४) बींझा-सोरठ :

बींझा और सोरठ की बात कई रूपों में प्रचलित है । गुजराती कथा "राणक-रा' खेंगार"[2] से इसका अद्भुत साम्य है । हो सकता है, कुछ रूपान्तरों को छोड़ कर दोनों का मूल उत्स एक ही हो । प्राप्त दोहों में बींझा के प्रति सोरठ के प्रगाढ़ प्रेम का पता लगता है—

बींझा थे कूड़ा हुवा, बोलण लागा कूड़ ।
हीयडा ऊपरि राखतो, कदे न कहतो ऊठि ॥१६॥
गलियारइ बीझउ मिल्यउ, तरसग लागो देह ।
भ्रवरां की पतिसाह छुं, थांकइ पग की खेह ॥२५॥
बींझा थांकइ कारणइ, तोडयउ नवसर हार ।
लोक जांणइ मोती चुणइ, निम निम करूं जुहार ॥२६॥
सजण दुरजण कइ कह्यइ, भटक न दीजइ गाळि ।
हलवइ हलवइ छोड़िजइ, जिम जळ छंडइ पाळि ॥२७॥
खंघारइ बीझउ हण्यउ, बीझइ हण्यउ खंगार ।
एक निणंद कउ भरतार, कुण दाखुं कुण छारयुं ॥३६॥
गया करावणहार, जोवण हारा जाइसी ।
खडहडीया खंघार, धणी विहूंणा धवलहर[3] ॥३७॥

(ख) फागु - काव्य :

जैन कवियो ने तो फागु काव्य रचे ही, जैनेतर कवियों ने भी रचे । फागु काव्यों की स्वरूप-चर्चा जैन-साहित्य के अन्तर्गत की गई है । पन्द्रहवीं शताब्दी में रचित फागु-काव्य 'वसन्त-विलास' का उल्लेख पहले कर भ्राए हैं । आलोच्य काल में रचित मुख्यतया तीन जैनेतर फागु काव्यों का पता चलता है । प्रसंगवश, यह लिखना आवश्यक जान पड़ता है कि ये तीनों

---

१. झवेरचन्द मेघाणी : सोरठी गीत कथाभ्रो :
इनके भ्रतिरिक्त इस कथा के लिए देखें—
(क) प्रति नं० १७४ (५), तथा २०८(४)–'सयणी चारणी री वात',
(ख) नं० २१० (५७)–'सयणी री वात';–भ्रनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर;
(ग) ना० प्र० स० की खोज-रिपोर्ट-१९४१-४३; संख्या २६६, (-भ्रप्रकाशित सूची से) ।
२. सोरठी गीत कथाभ्रो, पृ० ७५-८७ :
३. प्रति नं० ७८ से, भ्रनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर । इस संबंध में भ्रौर देखें—
(क) प्रति नं० २०५ (२),–'बींझै सोरठ री वात';
(ख) प्रति नं० १७८,–'सोरठ री वात';
(ग) प्रति नं० ८० तथा १२०,–'सोरठ रा दूहा'; –भ्र० सं० ला०, बीकानेर :

ही कृष्णचरित से संबंधित हैं। साथ ही इनमें वसन्त ऋतु के मोहक चित्र उतारे गए हैं। जैन फागुओं से इनकी यह भिन्नता उल्लेखनीय है। शैली सब की प्रायः समान है।

(१) संवत् १५२६ या १५६२[1] में कायस्थ कवि केशवदास ने 'वसंत विलास फागु' की रचना की[2]। उदाहरण इस प्रकार है—

गोलणी यौवन मदमाती, गाती गुण गोपाल।
वेणनाने श्री रंग नाचे, राचे देव दयाल।
येणि परि रस अनुभवती, युवती यादव-वीर।
अंतर्ध्यान हुआ हरजी त्यहाँ, ये परि शीत-शरीर।
भूमिई पडी तेह टलवले, वले न चेतन अंग।
कमल जिस्युं तेहनूं वयण, भ्रमण करे तिहाँ भृङ्ग।

× ×

बावन चंदन वळी केसार, सहीअर उरवर साय।
शशिहर किरण लूंणीदल, शीतल न अंग सुहाय।
असुख करे वेह परजले, वळे नही सही सान।
हाहा हूंती हींडती, जोती वह विश महान।

(२) दूसरी कृति चतुर्भुज कृत 'भ्रमर गीता फाग' अथवा 'श्री कृष्ण गोपी-विरह मेलापक भ्रमर गीता फाग' है, जिसकी रचना सवत् १५७६ में हुई। जैसा कि नाम से प्रकट होता है, इसमें श्री कृष्ण का गोकुल से मथुरा जाना, गोपियों का शोक, कंस-वध, उद्धव का गोकुल आना, कुरुक्षेत्र में कृष्ण और गोपियों का मिलन आदि आदि प्रसंगो के सुन्दर वर्णन किए गए है। भाषा में गुजराती का मिश्रण पाया जाता है। उदाहरण यह है—

मोर चंमर चरमोईना, हार परोतां कान्ह।
ते अम्हे बांधतां वहिरखि, सरखा शोभता मा'व।
ते गाइ, गोकुल, ते आहिर, तेह ज वृन्दावन यमुना नीर।
चांदणी रातिनइ कहि रे बाळी! सर्व सूनुं अेक कृष्ण टाळी[3]॥

(३) तीसरी रचना सत्रहवीं शताब्दी में रचित सोनीराम कृत 'वसंत विलास फाग' है। नायक कृष्ण वसन्त ऋतु में परदेश चले जाते है और नायिका रुक्मिणी उनके विरह में झूरती है। पश्चात् दोनों का शुभ-मिलन होता है। नायिका के विरहोद्‌गार मारवणी के सन्देश की याद दिलाते हैं। उदाहरण देखिए—

भमरला जाऊँ बलिहारडई, कंत होवई जिण देसि।
एक संदेसो रे हुं कहुं, तुं म्हारा प्रीय नई कहेसि।

---

१. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० २५३ :
२. फार्बस् गुजराती सभा द्वारा सन् १६३३ में प्रकाशित :
३. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० २४६-५२ :
और देखिए—जै० गु० क०, भाग ३, पृ० २१४८ :

दईव न सरजी रे पंखड़ी, उड़ि उड़ि मिलती रे जांहि ।
वीसरीया नवि वीसरे, जे वसीया मन मांहि।
माहायई मनोरथ पूरीया, चूरीमा विरहई विराम ।
रामा हो रंगि विलसीय, पूरव प्रीति ज सामि[1] ।

सत्रहवीं शताब्दी में लिपिबद्ध एक हस्तलिखित प्रति के पन्ने में[2] किसी 'उद्' कवि कृत ११ छंदों का एक 'बसन्त गीत' प्राप्त हुआ है, जो फागु काव्यों की शैली पर बनाया गया प्रतीत होता है। इसमें नायक-नायिका की प्रेम-भावना वर्णित है—

नाह करइ जव आलीय, टालीय लाज निटोल ।
तव जुवति वहइ नहिनहिं, रहिरहि सुणि प्रिय बोल ॥३॥
मूंकि हिवइ परसीनीय, मीनीय जोबनि सेज ।
नीठुर तोइ न छांडइ, मांडइ नव नव नेह ॥१०॥

(ग) लोकगीत :

लोकगीतों की परम्परा बहुत प्राचीन है। राजस्थान का लोक-गीत भांडार खूब भरा पूरा है। मौखिक रूप में प्रचलित रहने के कारण, प्राचीन लोक गीत कम ही मिलते हैं, पर राजस्थानी इस दिशा में सौभाग्यशालिनी है। कुछ लोकगीत तो प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में लिखे मिलते हैं और कुछ की प्राचीनता का पता जैन कवियों की रचनाओं द्वारा लगता है। बहुत से जैन कवियों ने प्रसिद्ध प्राचीन लोकगीतों की देशियों की चाल में अपनी रचनाएँ ढालबद्ध की हैं। उन्होंने बहुत से लोकगीतों की प्रथम पंक्तियों का उल्लेख किया है, जिनकी तर्जों पर उन्होंने अपने अपने रास या स्तवनों की ढालें बनाई। जैन कवियों का लोक-गीत संरक्षण का यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऐसी लगभग २५०० ढालों या देशियों की अनुक्रमणिका देसाई ने दी है[3] जिससे किसी लोकगीत की प्राचीनता और प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

लोकगीतों की प्राचीनता का पता मुख्यतया इन दो स्रोतों से ही लगता है। इस संबंध में कुछ प्राचीन लोकगीतों को प्रकाशित कर, श्री अगरचन्दजी नाहटा ने सराहनीय कार्य किया है। गोपीचन्द गीत, फत्तमल का गीत, गवालियों का स्वर्ग, रामतियाला शिष्य-प्रबन्ध, ऐसे ही गीत हैं। इनके अतिरिक्त उनके श्री अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित सत्रहवीं शताब्दी के हस्तलिखित पत्र में कुछ अन्य गीत भी मिलते हैं।

यों तो विविधता-युक्त विशाल मानव जीवन और उससे संबंधित प्रत्येक पहलू लोकगीतों का निर्माण क्षेत्र रहा है, तथापि आलोच्य काल में उपलब्ध गीतों के आधार पर, मोटे रूप से, उनका विभाजन, विषयानुसार यों किया जा सकता है—

१. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० २४७-२४६ :
२. यह श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में सुरक्षित है।
३. जैन गुर्जर कविम्रो, भाग ३, खंड २, पृ० १८३३-२१०४ :

(१) ऐतिहासिक : (गोपीचन्द[1], फतमल[2], सुपियारदे[3], तथा 'घूमर'[4] के गीत)
(२) सामाजिक-पारिवारिक : (गवाळिग्रों का स्वर्ग[5] तथा ग्राम्बो मोरियो[6] के गीत)
(३) समस्यामूलक : (रामतियाला शिष्य-प्रबन्ध[7] गीत)
(४) ऋतु-परक : (उष्ण[8] तथा शीत[9] के गीत)
(५) यौवन और प्रेम संबंधी : (भावन[10], सोम भावना[11], तथा लाल्या[12] गीत)

नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) ऐतिहासिक गीत :

(क) गोपीचन्द गीत—

यह बंगाल के सुप्रसिद्ध राजा गोपीचंद और उनकी राणियों के संवाद के रूप में है। जैन कवि समयसुन्दर ने अपने कथा-संग्रह में गोपीचन्द का आख्यान संकलित किया है, जिसमें यह गीत भी दिया हुआ है। इस प्रकार लगभग ३२५ वर्ष पहले, इसकी प्रसिद्धि तथा प्रचलन का पता चलता है और प्राचीनता की दृष्टि से तो, यह कम से कम ४०० वर्ष से पहले का ही है। उदाहरण-स्वरूप राजा के योगी हो जाने के बाद के प्रसंग को देखा जा सकता है—

राणी : बुहड़उ ने बुहड़उ गोपीचन्द राजा,
ग्रउलाहृर ग्रावउजी,
इच्छानइ भोजन मन चिंती रे राजा।

राजा : पलक निद्रा नावइ रे राणी
ग्रम्ह मति राज न भावइ जी।

× ×

राणी : कुवण तुम्हारा राजा चरण पखालिस्यइ,
कुवण करइ तत्त्व वातो जी,
कुवण तुम्हारी राजा सेज पायरिस्यइ,
कुवण पूरवस्यइ भात रे राजा।

राजा : गंगा ग्रम्हारा राणी चरण पखालिस्यइ
मनसा करइ तत वातो जी
कंथा ग्रम्हारी राणी सेज पायरिस्यइ
ग्रलख पुरवस्यइ भातो रे राणी।

---

१. ग्रजन्ता, ग्रगस्त, १९५५, नाहटा—'गोपीचंद ग्राख्यान और राजस्थानी लोकगीत' :
२. श्री मोतीचंदजी खजान्ची, (बीकानेर) के संग्रह के एक गुटके से, श्री नाहटा द्वारा मरु-भारती में प्रकाशित :
३. ८, ९, १०, ११ तथा १२-सत्रहवीं शताब्दी में लिपिबद्ध पत्र में; -श्री ग्रभय जैन ग्रं०, बीकानेर. :
४. नैणसी की ख्यात, भाग २, पृ० १५२:
५. राजस्थान-भारती, भाग २, ग्रंक २, मार्च १९४९, (-नाहटा) :
६. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ५९—६० :
७. ग्रजन्ता, वर्ष ७, ग्रंक ६, जून १९५५, (-नाहटा) :

(ख) फतमल का गीत —

संवत् १७२४ में जैन कवि मानसागर ने इसकी चाल में अपनी रचना की ढाल बनाई है[1]। अतः इस संवत् तक इसकी प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रसिद्धि में कुछ समय भी लगा होगा। इस दृष्टिकोण से यह गीत संवत् १६५० से पहले का ही होना चाहिए। यह गीत हाड़ोती के राव फतमल तथा उसकी प्रेमिका टोडा की नागर ब्राह्मणी गंगा की प्रेम-भावनाओं से सम्बन्धित है। फतमल का पता इतिहास से विशेष नहीं चलता। उदाहरण देखिए—

फतमल तूं हो है हाडोती रो राव
हूं रे टोडा री नागर बामणी ॥फ०॥
पांणीड़े गई थी रे तळाव
लसकर आयो रे हाडा राव रो ॥फ०॥

× ×

लाल चूडो पहिराय, कोई न जांणे रे गंगा घर कीयो ।फ०
मोनें छै चूडा री ख्यांत, चूडो मंगावो हस्ती दांत रो ।फ०
आगरा नो घाघरो मंगाव, सालू नें मंगावो सांगानेर रो ।फ०
रहो तो रांधूं गुलराब, चालो तो करूं रे साथे चूरमो ।फ०
रहो तो पहिरूं दखणी रो चीर, चालो तो पहरूं रे सालू सांवळो ।फ०
रहोनी आजूणी रे रात, रात रमी नें वहणे रे चालज्यो ।फ०
लाख टकां री मांहरी मूंछ, कोड़ टकां री मांहरी रातड़ी ।फ०
पहिरूं दखणी चीर, ऊपर विराजे पीली पांमडी ।फ०

(ग) सुपियारदे गीत —

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रतियों[2] में सुपियारदे की वातें मिलती हैं और नैणसी ने[3] विस्तार से इसकी कहानी दी है।

सुपियारदे रूण के स्वामी सीहड़ सांखले की पुत्री थी। उसकी सगाई तो मंडोवर के स्वामी नर्बद के साथ हुई थी, पर जब मेवाड़ के राणा मोकल ने, मंडोवर राव रणमल को दिलाकर नर्बद को अपना कृपापात्र बना लिया, तो सांखले ने उसका विवाह जैतारण के स्वामी नरसिंह सिंधल के साथ कर दिया। पश्चात् सुपियारदे की छोटी बहन से नर्बद का विवाह इस शर्त पर तय हुआ कि मंडप के तोरण पर नर्बद की आरती सुपियारदे करेगी। सुपियारदे ने आरती की, जिसके फलस्वरूप सिंधल ने उसको अनेक कष्ट देने प्रारम्भ किए। इस पर नर्बद जैतारण आया और सुपियारदे को बैलगाड़ी में बैठा कर सकुशल अपने घर ले गया।

---

१. जैन गुर्जर कविओ, खंड ३, पृ० १६६५, देसी नं० १२२२ :
२. प्रति नं० २१०(८०) तथा २१०(१०७) :
३. ख्यात, भाग २, पृ० १२२ से १२७ :

सींधलों और नर्वद के छोटे भाई आसकरण में युद्ध हुआ जिसमें आसकरण खेत रहा। प्रस्तुत गीत नर्वद और सुपियारदे के जैतारण से जाने के बाद की घटनाओं से संबंधित है।

राणा मोकल का समय संवत् १४७८ से १४९० है[१]। रणमल का मंडोवर पर अधिकार संवत् १४८५ में हुआ था[२]। इस कारण गीत का रचना काल संवत् १५०० के आसपास ही होना चाहिए। गीत की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार हैं—

॥राग धनासी॥

सुपियारदे सुंदरि आसकरण मराव्यउ हे कांइ।
सुपियारी सुंदरि थारइ रंगी रातउ हे राउ ॥आंकणी॥
छोडि पुराणउ लेइ नवउ रे करि पंभाइतउ वेस।
सुपियारी चाली सिघलह कइ, रूडउ नरवद कउ देस।
घोडइ चडउं तउं गिरि पडउ हे, ऊंटि चडी विललाउं।
वहिलि चड़उ नरवद तणी हे! जाउ ॥सुपियारी सुं०॥

× ×

कमल दला सइ लोयणे हे, फूल जिउ विहसइ हे दंत।
अण भीडी रस मेल्हिसुं हे, भीडि म मारि हे कंत ॥सुपियारी सुं०॥
गोरस पीजइ घूंटिया रे, मद पीजइ मुह मोडि।
साई वीजइ साजणा हे, कांचूकी कस तोडि ॥सु०॥
सिघल कइ घोडा घणा हे, फूंद फूंदाली हे वाग।
सुपियारदे नरवद लेई गयउ हे, सुरवर कुरल्या हे हांस ॥सु०॥

× ×

थारउ किसउ संभारिसइ हो, निगुणगारा हे नाह।
ना पहरायउ चूडिलउ हे, ना गलि घाली बांह ॥सु०॥
अरहटियउ रणझुण करइ, जिसी भमरइरी पांख।
सुपियारदे नरवद लेई गयउ हे, काजल आंजी हे आंखि ॥सु०॥

(४) घूमर —

जोधपुर के राव गांगा के साथ उनके चाचा शेखा और नागौर के शासक दौलतखां का युद्ध संवत् १५८५ में हुआ था[३]। बीकानेर के राव जैतसी ने इसमें गांगा का पक्ष लिया था। युद्ध में राव की विजय हुई और दौलतखां को मैदान छोड़कर भागना पड़ा था। नैणसी ने दौलतखां के भागने की साक्षी में 'घूमर' की कड़ियाँ दी हैं[४], जो इस प्रकार हैं—

---

१. गहलोत : राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०५–२०६ :
२. रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७३ :
३. वही; पृ० ११२–१३ :
४. ख्यात, भाग २, पृ० १५२ :

बीवी पूछे रे बोलतिया तेहायी केया किया।
रूड़ा रूड़ा रावं लिया पाडा पाछा दिया।
बीवी पूछे रे बोलतिया ते मीयां केया किया।
ऊंचे मगरे घोर खणाई सो याये वाये दिया।

अन्य गीतों में ऊमादे के गीत[1] का उल्लेख भी देसाई की अनुक्रमणिका में मिलता है और नाहटाजी के अनुसार यह ३०० वर्ष पुराना है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी रचना अकबर की मृत्यु (संवत् १६६२) के काफी बाद लगभग अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई होगी। कारण यह है कि गीत की प्रथम कड़ियों में राव मालदेव के अकबर की चाकरी में पधारने का वर्णन है, जो इतिहास-विरुद्ध है। वे कड़ियां ये हैं—

अंबरिओ नइं गाजे हो, भटियांणी राणी बरसं हो
कांइ झरमर बरसं मेह, राव मालदे पधारया हो
अकबरजी री चाकरी।

इसी प्रकार लाखा फूलांणी[2] के गीत भी काफी पुराने होने चाहिएं।

(२) सामाजिक

(क) गवाळियों का स्वर्ग—

जैन कवि मालदेव की संवत् १६१२ में रचित कल्पान्तर वाच्य ग्रन्थ के अन्त में लिखी हुई वृहद्गच्छ पट्टावली में वृद्धिवादी कथित उक्त १५ पद्यों की उपलब्धि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के एक गुटके में हुई है। इनसे सीधे-सादे ग्राम्य जीवन की सरलता, रुचि और सन्तोषी वृत्ति का पता चलता है। परिवर्तित रूप में ऐसी भावनाओं वाले गीत आज भी गाए जाते हैं—

घारी घेवर घी घण घोळि, कर कप्पूर अनइ तंबोळि।
सुसनेहो जइ घर हुइ नारी, अवर किसूं छइ सरगह बारि।
हुमा हुमा वळि हुम्म हुमा!
विनयवती अति चतुर कलत्र, घरि दोभाणा बहु घण पुत्र।
प्रभु प्रसाद करइ सुविचार, अवर किसूं छइ सरगह बारि।
हुमा हुमा वळि हुम्म हुमा!

पारिवारिक : (ख) आम्बो मोरियो—

देसाई ने "आंबो मोर्योजी आंगणे"[3], "घरि आवोजी आंबो मोहोरीयो"[4], "सहेली हो! आवो मोरियो"[5], तथा "साहली! आंबो मोरीओ, मे तो मोर्यो रे सखी"[6] आदि

१. अजन्ता, वर्ष ७, अंक २, फरवरी, १९५५;—'उमादे भटियानी का एक प्राचीन लोकगीत' :
२. मरु-भारती, वर्ष २, अंक १, जनवरी, १९५४; तथा वर्ष ३, अंक १, अप्रैल १९५५ :
३. जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खंड २, पृ० १८४६, देसी नं० १२० :
४. वही; पृ० १९८८, देसी नं० ५१८ :
५. वही; पृ० २०५०, देसी नं० २०३७ :
६. वही; पृ० २०५३, देसी नं० २०७५ :

देशियोंका उल्लेख किया है, जिनकी चालों पर क्रमशः संवत् १७०६, १७२०, १७२८ तथा १७०७ में जैन कवियों ने अपने रास या स्तवनों को ढालें बनाई हैं। इन कारणों से इसका रचनाकाल कम से कम ३७५-४०० वर्ष पहले, तो अवश्य ही होना चाहिए। प्राप्त गीत की प्रथम पंक्तियाँ यों हैं—

मधुबन रो ए श्राम्बो मोरियो,
श्रो तो पसरचो है सारी मारवाड़
सहेल्यां ए श्राम्बो मोरियो।

इसमें सद्गृहस्थ की स्त्री का अपने भरे-पूरे परिवार को समझने का स्वस्थ दृष्टिकोण है। गीत में सर्वत्र पारिवारिक सुखों का चित्रण है। बहू महल से उतरी, तो सास ने कहा कि अपने गहने पहन कर दिखाओ। इस पर वह समस्त परिवार को ही अपने विविध गहने बताती है—

सासू गहणे नें कांई पूछो, गहणो श्रो म्हारो स्रो परिवार ।।सहेल्यां।।
म्हारा सुसराजी गढां रा राजवी, सासूजी म्हारा रतन भंडार ।।स०।।
म्हारा जेठजी बाजूबंद बांकड़ा, जेठाणी म्हारी बाजूबंद री लूंब ।।स०।।
म्हारो देवर चुड़लो दांत रो, देराणी म्हारे चुड़ले री मजीठ ।।स०।।
× ×
म्हारो सायब सिर रो सेवरी, सायबाणी ए म्हेतो सेजां रा सिणगार।
म्हे तो वारची श्रो सासूजी थांरी कोख ने, थे तो जाया श्ररजण भींव ।।स०।।

(३) समस्यामूलक : रामतियाला शिष्य-प्रबन्ध —

यह गीत ३०० वर्ष से भी पूर्व का लिखित संस्कृत टीका के साथ मिलता है। इस कारण कम से कम ४५०-५०० वर्ष पुराना तो यह निश्चित रूप से है। इसमें पहेलियों और हियालियों के रूप में कुछ रहस्यमय समस्याएँ उपस्थित की गई हैं। श्राधुनिक भारतीय श्रार्य भाषाओं में यह एक श्रसाधारण प्राचीन लोकगीत है। गीत २० कड़ियों का है, जिसकी कुछ प्रारम्भिक कड़ियाँ देखिए—

बाई ए मइं कउतुग दीठ, काणो डोळो श्रांजियउ ए।
बाई ए मइं कउतुग दीठ, हाथ विछूटउ हाथिउ ए।
बाई ए मइं कउतुग दीठ, मोडइ मायइ राखड़ी।
बाई ए मइं कउतुग दीठ, त्रिसीयु पाणी नवि पीयइ।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, फलियउ श्रांबउ कापियउ ए।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, सूश्ररि हाथि मारियउ ए।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, बेटइ बाप विणासियउ ए।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, विष पीयइ हरषित हुश्रउ ए।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, विण पुरुषे रमणी रमइ।
बाई ए मइं कउतिग दीठ, एक नारी परणइ घणा ए।

(४) ऋतु परक : उष्ण गीत तथा शीत गीत :

इनमें नारी हृदय की प्रेम-भावनाओं के तलस्पर्शी वर्णन मिलते हैं। दोनों के उदाहरण देखिए—

(क) उष्ण गीत से —

ऊन्हालउ रे बहु सुख निवास, ऊन्हालउ रे आयु।
हींडोलइ चांड हींचियइ, तिम बोलइ हो कोइल नइ मोर ॥ऊ०॥
सीली वड की छांहडी, कूया कउ हो सीलउ जल होइ ॥ऊ०॥
सीला कुच नारी तणा, वलि सीतल अहर रस होइ ॥ऊ०॥
सीली साजण गोठडी, इम जाइ करि हो सखि जाणइ कोइ ॥ऊ०॥
सीली राति सुहामणी, इम जगि रमिय हो जीवन सुं सोइ ॥ऊ०॥

(ख) शीत गीत से—

सगुण सियालउ हे गोरी वहि गयउ।
परव ऊन्हालउ रे वहि गयउ। गोरी रे ऊभी आंगणइ।
सोवन कचोली गोरी मद पियइ, परवसीयाउ ठाकुर वहि गयउ।
चंद सुहारइ चांद्रिणइ, गोरी थारइ हारि।
महमद की सिरि रापडी, उरि मुगता फल हार।
मदकउ भीनउ ठाकुर देखि करि ऊभी मेल्ही नारि ॥परव०॥
पवंग तुरिय पलाणियां दीधी पर विधि राति।
ऊजल दंती मोरीडी देखि करि, होय्या तुरी माझिम राति ॥परव०॥

(५) यौवन और प्रेम संबंधी :

(क) भावन गीत, (ख) सोमभावना गीत तथा (ग) माल्या गीत :

प्रथम गीत जोधपुर की किसी रतना नामक नायिका और आसराज के प्रेम से संबंधित है।

दूसरे में किसी विरहिणी नायिका का अपने प्रेमी के प्रति विरह-निवेदन है। प्रेमी का नाम सामलिया प्रतीत होता है। उक्त दोनों ही गीतों में अन्त में, प्रेमियों का सुखद मिलन होता है।

तीसरे गीत में भी नायिका का विरह-निवेदन और अपने प्रेमी से वापिस लौट आने का आग्रह है। यह प्रेमी कोई माली है, जो किसी ठाकुर के साथ चाकरी में चला गया है। ठाकुर ऐसा कि उसके यहाँ काम तो अधिक किन्तु देने को कुछ भी नहीं।

तीनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(क) भावन गीत से—॥ राग सिंधू ॥

परवेदन को जाणइ हो, जाई नइ संदेसउ हो कहेसु।
थारो गोरडी झूरि पंजर हुई हो, हार गलाकउ हो देसु।

जीवन जिन रूपड़ा एकरसाउ आवी नइ मिलें।
सा रयणी कवि होइसी हो, रहिस्युं गलि लागी नइं वले ॥आंचली॥
रातिइं नीद न आवइ हो, दिवस निवारी हो भूख।
हीयडइ तुम्ह गुण सांभरइ, इम दिवस गमाडउ हो दूख ॥जीव०॥
ऊंची चढि ऊंचेरडी हो, जोयनयर कइ हो घाट।
रतना आंसू ढालती है, जोवइ नइ आसराज की हे वाट ॥जीव०॥
एक जीव दुइ देह छइ जो, आसराज पूरी हो आस।
मन रंगइ बेऊं मिल्या जी, अम्ह मनि परउ हो उल्हास ॥जीव०॥

(ख) सोमभावना गीत से—॥ राग धनासी ॥

एक वरिस कहि चालिउ हे रहियउ वरस वि च्यारि।
किणिरि निरासी भोलविउ रे, छोडी मनह विसारी।
म्हारउ सामलियउ रे, रहियउ विदेसिहि छाइ।
धण घरि झूरइ एकली रे, घडी समाधि न थाइ ॥आंचली॥

× ×

सूना देउल चउहटा रे, सूना घर का बार।
एक जि तुझ विणु सामलिया रे, सूनउ सहू संसार ॥म्हारउ॥
सुरंग प्रवाला होठडा रे, कमल सरीखां नेत्र।
सहजि सलूणउ पातलउ रे, वालीजइ जिम चेत्र ॥म्हारउ॥
दिवस चउमासा हुई रह्या रे, रयणी हुई छ मास।
सांस हुमासी पापिणी रे, चउणा हुया नीसास ॥म्हारउ॥
दिवस न लागइ भूखडी रे, राति नींद न लहाई।
सिउं जाणउं परदेसडइ रे, मुझ जिम ते कुमलाई ॥म्हा०॥
चउमासइं वीतइ मिलिउ रे, विहु जण पूगी आस।
मनरंगिइं मल्हडी भोगवइ रे, नितु नितु नवइ विलास॥म्हा०॥

(ग) लाल्या गीत से—॥राग धनासी॥

जइ हूं जाति पापिणी रे, जिम केकाणह घास।
विलाल्या जोवनु चालिउ जाइ।
जोवन की वाही वही रे, मालीडउ कीयउ रे मीत।
याडी सिचइ आपणी रे, करइ न म्हाकी चित ॥विलाल्या०॥
नीरवाद्धा तूं आउ घरइ रे, तूं कांइ भमइ विदेसि।
धण वहुतेरा होइगा रे, जोवनियउ किहां रे लेसि ॥वि०॥
ऊजड खेडउ वली वसइ रे, धन फीटउ वलि होइ।
गयउ जोवनुं न वाहुडइ, मूवउ न जीवइ कोइ ॥वि०॥

बहिनइ करि ते मायिमी रे, गया रे कूटाकुर साथि ।
मत पोइउ तेवा घणी रे, सदा सगामी हाथि ।

राजस्थानी लोकगीतों के समाज शास्त्रीय अध्ययन का किंचित् प्रयास तो हाल ही में किया गया है[1] परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनके संकलन और अध्ययन की ओर अभी बिल्कुल ही ध्यान नहीं गया है। प्रस्तुत प्रयास इसी दिशा की ओर एक कदम है।

अध्याय १०

जैन साहित्य

पूर्व परिचय :

वज्रसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर-बाहुबलिघोर' पुरानी राजस्थानी की प्राचीनतम रचना है[2]। यह वीर और शान्त रस का ४६ पदों का छोटा सा काव्य है।

संवत् १२४१ में शालिभद्र सूरि ने 'भरतेश्वर-बाहुबली-रास'[3] नामक खण्डकाव्य की रचना की, जिसको पुरानी राजस्थानी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है। तेरहवीं शताब्दी में लिखित अन्य रचनाओं में बुद्धि रास; जंबूस्वामी चरित[4]; स्थूलिभद्र रास[5]; रेवंतगिरि रासो[6]; आबू रास[7]; जीवदया रासु[8] तथा चंदनबाला-रास[9] आदि उल्लेखनीय हैं।

चौदहवीं शताब्दी की रचनाएं छोटी छोटी हैं, पर उनसे विभिन्न काव्य-रूपों के विकास का पता चलता है। इनमें विनयचन्द्र कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका'; अज्ञात कवि कृत 'सप्तक्षेत्रि रासु'; सोममूर्ति का 'जिनेश्वर सूरि दीक्षा-विवाह वर्णना रास'; जगडू कृत 'सम्यक्त्व माई चउपई'; अम्बदेव सूरि का 'समरारासो'; जिनपद्म सूरि कृत 'श्री स्थूलिभद्र फाग'; सोलणु कृत 'चर्चरिका' तथा पद्म रचित 'सालिभद्र कक्क' एवं 'दूहा मातृका' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं[10]।

---

१. परम्परा, (वर्ष १, अंक १, अप्रैल १९५६) का 'लोकगीत' अंक :
२. (क) श्री नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० २४;
   (ख) शोध-पत्रिका, वर्ष ३, अंक ४ :
३. ४, ५, व ६. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १-४ तथा भाग ३, पृ० ३९५-३९७ :
७. राजस्थानी, (कलकत्ता), भाग ३, अंक १, सन् १९३९, में प्रकाशित;
८. जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ३९५ :
९. राजस्थान-भारती, भाग, ३, अंक ३-४ में प्रकाशित :
१०. जै० गु० क०, भाग १, पृ० ४ से १२ तथा भाग ३, पृ० ३९९ से ४११ :

पन्द्रहवीं शताब्दी में अपेक्षाकृत अधिक रचनाएँ पाई जाती हैं। इनमें अधिकांश छोटी-छोटी और जैन-कथानकों के रूप में हैं। साथ ही कुछ बड़े रास ग्रन्थ भी रचे गए। भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव क्रमशः कम होता गया और उसमें सरलता आई। 'रास' मुख्य रूप से सुनने और पढ़ने के लिए रचे गए प्रतीत होते हैं, अभिनेय वे नहीं रह गए। रचनाओं में, प्रचलित पूर्व परम्परा के साथ कुछ नवीन विषयों तथा शैलियों का समावेश हुआ। इस शताब्दी के प्रमुख कवियों में निम्नलिखित के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं—

(१) तरुणप्रभ सूरि[१], (२) विनय प्रभ[२], (३) मेरुनन्दन[३],
(४) राजशेखर सूरि[४], (५) शालिभद्र सूरि[५], (६) जयशेखर सूरि[६],
(७) हीरानन्द सूरि[७], (८) रत्नमंडण गणि[८] तथा (९) जयसागर[९], आदि।

सोलहवी शताब्दी में गुजरात एवं राजस्थान प्रान्त की भाषाओं में कुछ भेद लक्षित होता है, पर जैन साधुओं का विहार दोनों प्रान्तों में समान रूप से रहने के कारण, उसमें अधिक अन्तर नहीं है। भाषा में दोनों प्रान्तों की स्थानीय विशेषताओं का मिश्रित प्रभाव पाया जाता है। आलोच्य काल में पाए जाने वाले विभिन्न विषयों एवं लगभग सभी काव्य-रूपों की परम्पराएं, न्यूनाधिक रूप में, पन्द्रहवीं शताब्दी की रचनाओं में उपलब्ध होती हैं। सोलहवीं शताब्दी से, कवियों एवं रचनाओं की संख्या में विस्तार आता है और सत्रहवीं शताब्दी तो इस साहित्य का परम अभ्युदय काल है।

वर्ण्य विषय एवं काव्य-रूप :

(१) चरित काव्य; कथा काव्य :

जैनागमों में चार अनुयोग बतलाए गए हैं—(१) प्रथमानुयोग, (२) करणानुयोग, (३) चरणानुयोग तथा (४) द्रव्यानुयोग। प्रथम में, धार्मिक-विधान विशेष का किस व्यक्ति ने कैसा आचरण किया, अनेक बाधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे कैसे निवाहा, उसका

---

१. (क) जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० १४७६, (ख) जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पैं० ६५६, ७६४, (ग) शोध-पत्रिका, भाग ९, अंक २, दिसम्बर, १९५७ :
२. (क) जैं०गु०क०, भाग १, पृ० १५; भाग३, पृ० ४१६; (ग) जैं०सा०नो सं०इ०, पैं० ६५७ :
३. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० १८; (ख) भाग ३, पृ० ४२०; १४७७;
(ग) जैं० सा० नो सं० इ०; पैरा ६५७ :
४. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० १३; (ख) भाग ३, पृ० ४१२;
(ग) जैं० सा० नो सं० इ० ; (घ) प्राचीन फागु संग्रह :
५. (क) जैं० गु० क०, भाग ३, पृ० ४१३; (ख) प्राचीन गुर्जर रासावली;
६. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० २४; (ख) भाग ३, पृ० ४२५, १४७८;
(ग) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ७०९, ७१२ आदि, (घ) प्राचीन फागु संग्रह :
७. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० २५; (ख) भाग ३, पृ० ४२७;
(ग) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ७०९, ९०५, टि० ३७४;
८. (क) जैं०गु०क०, भाग ३, पृ० ४३९; (ख) जैं० सा० नो सं०इ०, पैं० ५८२, ७०९, ७५२, ७५७, ७६१, ७७८; (ग) प्राचीन फागु संग्रह :
९. इनका परिचय आगे दिया गया है।

कथा फल मिला आदि-आदि विषयों को लेकर सदाचार और धर्म का आचरण करनेवाले स्त्री-पुरुषों के वर्णन रहते हैं। दूसरे अनुयोग में खगोल आदि गणित-प्रधान विषयों का समावेश रहता है। तीसरे में सदाचार के मूल नियम और उनके आचरण संबंधी क्रियाएँ पाई जाती हैं और चौथे में तत्वज्ञान की व्याख्या रहती है।

इन सब में प्रथमानुयोग—धर्मकथानुयोग—का स्थान बहुत ऊँचा है। वह जनसाधारण और अपढ़ व्यक्तियों के लिए सुगम और बोधगम्य है, जबकि अन्य तीनों अनुयोगों में कुशाग्र बुद्धि और विद्या की आवश्यकता रहती है। जैन धर्म चरितानुयोगी है और जैन साहित्य में चरितानुयोग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कारण, इस साहित्य का बहुत बड़ा भाग तीर्थंकरों, बलदेवों, वासुदेवों, मुनियों, आचार्यों, सतियों, धर्मप्राण राजाओं और श्रेष्ठियों से संबंधित चरित-काव्यों एवं कथा-काव्यों के रूप में पाया जाता है। कथा काव्यों में विविध प्रकार से वर्णित पापों के दुष्परिणाम, पुण्य के प्रसाद तथा धर्म-पालन की महत्ता जानकर, जनसाधारण सहज ही धर्मोन्मुख हो जाता है और तदनुकूल धर्म-पालन में कटिबद्ध होता है। और जैन मुनियों का उद्देश्य जनसाधारण को धर्म की ओर प्रेरित करना था ही। भाषा भी उन्होंने लोक-प्रचलित बोलचाल की ली। व्यर्थ के शब्दाडंबर और भाषा-खिलवाड़ से वे दूर ही रहे। इस साहित्य की प्रेरणा का मूल केन्द्र धर्म है और उसका मुख्य स्वर धार्मिक है। प्रायः समूचे साहित्य का भव्यभवन धार्मिक श्रद्धा और अध्यात्मिक निष्ठा की नींव पर आधारित है। कुछेक अपवादों की बात और है। रस की दृष्टि से समूचा साहित्य मुख्यतः शान्त-रस-प्रधान है।

जैन-साहित्य में, दान, शील, तप और भावना, जैन धर्म के इन चार प्रकारों के फल के दृष्टान्त रूप, मध्ययुग में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई है। साथ ही क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार त्याज्य दूषणों पर भी लिखा गया है। कहना न होगा कि आलोच्य काल में उपलब्ध, लगभग सभी चरित-काव्यों और कथा-काव्यों के मूल में धर्म के इन चार प्रकारों या त्याज्य दूषणों में कोई न कोई अवश्य वर्तमान है। कवि हेमरत्न का निम्नलिखित दोहा, इसी सामूहिक मनोवृत्ति को इंगित करता है—

> दान सील तप भावना, चार चरित्त कहेस।
> क्रोध मान माया वली, लोभादिक प्रमणेस[1] ॥

चरित-काव्य दो प्रकार के मिलते हैं—ऐतिहासिक और पौराणिक। ये विभिन्न काव्य-रूपों में लिखे गये हैं, यथा—रास, चौपाई, ढाल, पवाड़ा, संधि, चर्चरी, प्रबन्ध, चरित्र, संबंध, आख्यानक तथा कथा आदि।

(क) रास; रासो :

रास के रासक, रासो, रासौ, राइसो, राइसौ, रायसो, रायसौ, रासउ, रासु आदि विभिन्न नाम मिलते हैं। रास की व्युत्पत्ति और स्वरूप आदि को लेकर काफी चर्चा हुई है।

---

१. 'अमरकुमार चौपई' से ; हस्त० प्रति०—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :

(१) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीसलदेव रास में प्रयुक्त 'रसायण' शब्द से रासो की उत्पत्ति मानी है[1]।

(२) फ्रांसीसी विद्वान् तासी के अनुसार, इसकी उत्पत्ति राजसूय से है[2]।

(३) हिन्दी शब्द-सागर में 'रासो' शब्द की उत्पत्ति रहस्य से बताई है।

(४) 'राजयश' शब्द से भी इसकी उत्पत्ति बतलाई गई है[3]।

(५) मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार, 'रासे के मायने कथा के हैं, यह रूढ़ी शब्द है, एक वचन रासो और बहु वचन रासा'[4]।

(६) ग्रियर्सन 'राजादेश' से रायसो की उत्पत्ति मानते हैं[5]।

(७) ओझाजी के अनुसार, 'रासा' शब्द ही उपयुक्त है और इसकी उत्पत्ति संस्कृत 'रास' से है[6]।

(८) पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या के अनुसार, हिन्दी रासो शब्द संस्कृत रास अथवा रासक से है[7]।

(९) डा० दशरथ ओझा लिखते हैं कि 'रास शब्द वस्तुतः संस्कृत भाषा का नहीं है, प्रत्युत देशी भाषा का है, जो संस्कृत बन गया है'[8]।

(१०) डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार, 'चरित-काव्यों में रासो ग्रंथ मुख्य है। जिस काव्य-ग्रंथ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे 'रासो' कहते हैं'[9]।

(११) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'रासो' की उत्पत्ति के लिए 'रासक' शब्द को ग्रहण करने की सलाह दी है[10]।

(१२) श्री के० का० शास्त्री के अनुसार, रास या रासक मूलतः नृत्य के साथ गाई जाने वाली रचना-विशेष है[11]।

(१३) रासो के उद्यम या पचड़े आदि अर्थ भी किए गए हैं[12]।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२, (सं० २००३) :
२. हिन्दुई साहित्य का इतिहास :
३. भारतीय विद्या, वर्ष ३, अंक १, पृ० ९९ :
४. सरस्वती, भाग ३, पृ० ९८ :
५. वही ; पृ० ९७ :
६. सम्मेलन-पत्रिका, भाग ३३, संख्या १२, पृ० ९७ में ओझाजी का मत उद्धृत :
७. वही :
८. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० ७०, (द्वितीय संस्करण) :
९. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २४, (सन् १९५२) :
१०. सम्मेलन-पत्रिका, भाग ३३, संख्या १२, आश्विन, २००३ :
११. आपणा कविओ, भाग १, पृ० १४३–१५२ तथा ४१६–४३२ :
१२. साहित्य-सन्देश, मई, १९५१ :

(१४) अन्यत्र 'गरबो' को रास का उत्तराधिकारी माना गया है। रास बहुधा, गेय तत्त्वों से युक्त, दोहा, चौपाई आदि मात्रिक छन्दों में लिखा जाता था[१]।

(१५) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रासो और रासक को पर्याय मानते हुए, हेमचन्द्र के काव्यानुशासन के आधार पर इसे मिश्र-गेय-रूपक माना है[२]।

(१६) डा० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में, 'विविध प्रकार के रास, रासावलय, रासा और रासक छन्दों, रासक और नाट्य-रासक उपनाटकों, रासक, रास तथा रासो-नृत्यों और नृत्तों से भी रासो प्रबंध परम्परा का निकट का संबंध रहा है, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। कदाचित् नहीं रहा है'[३]।

(१७) डा० मंजुलाल र० मजमुदार के अनुसार, पहले 'रासाओ' का धर्मोपदेश मुख्य हेतु था। फिर उपदेश में कथा-तत्त्व और चरित्र-संकीर्त्तन आदि तत्त्वों का समावेश हुआ। साहित्य-स्वरूप की दृष्टि से रासक एक नृत्य-काव्य अथवा गेय-रूपक है[४]।

(१८) श्री विजयराय कल्याणराय वैद्य रास या रासो को, छन्द, राग, धार्मिक कथा आदि विविध तत्त्वों से युक्त देखते हैं[५]।

(१९) डा० दशरथ शर्मा के अनुसार, 'रास' के नृत्य अभिनय और गेय-वस्तु—इन्हीं तीनों अंगों से समय पाकर परस्पर मिलते-जुलते किन्तु साहित्य की दृष्टि से विभिन्न तीन प्रकार के रासों की उत्पत्ति हुई। कुछ नृत्य-विशेष रास कहलाए; इसी प्रकार श्रव्य रास और रासक उपरूपक बने'[६]।

(२०) डा० ओम्प्रकाश ने रासो काव्यों की तीन विशेषताएँ लक्षित की हैं—(क) शैलीगत, (ख) वस्तु-वर्णन और (ग) सक्रिय चित्र[७]।

(२१) डा० हरिवल्लभ भायाणी ने सन्देश-रासक में प्रयुक्त, 'रासा' नामक एक छन्द की चर्चा की है। अपने मत की पुष्टि में, वे विरहांक के वृत्तजाति-समुच्चय के 'रासम' और स्वयंभूछन्दस् के 'रासा' छन्दों का हवाला देते हैं[८]। इसी प्रकार डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने पृथ्वीराज रासो में पाँच स्थलों पर 'रासा' छन्द प्रयुक्त होने की

---

१. The Catalogue of the Gujarati & Rajasthani Mss. in the India Office Library, Oxford University Press, 1954 :—'The garabo is the successor of Rasa, which being a dance song (like the caccari) assumed in the course of time the character of a bardic poem. The Rasa was written in the formal matra style—duha or caupai & c often to a specific raga setting.'

२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५६, (सन् १९५२) :

३. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ४ :

४. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० ६६ तथा ७१ :

५. गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, पृ० १९–२०, (आवृति पहली) :

६. साहित्य-सन्देश, अंक १, जुलाई, १९५१ :

७. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ० १८–२० :

८. सन्देश-रासक ; Introduction.

सूचना दी है। उनके अनुसार, 'इतना तो कहा ही जा सकता है कि एक समय रासा या रासो काव्य में अनेक विशिष्ट छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था'[1]। छन्द-प्रभाकर[2] और हिन्दी छन्द-प्रकाश[3] में रासक या रास को एक छन्द-विशेष बताया है।

(२२) कई विद्वानों का यह भी मत है कि रसपूर्ण होने से यह रचना रास कहलाई। शालिभद्र सूरि कृत 'पंच पांडव चरित रासु' (संवत् १४१०) में लिखा है-'रासि रसाउलु धुणीज्जई[4]'।

(२३) श्रीमद्भागवत् में रास शब्द का प्रयोग गीत-नृत्य के लिए हुआ है[5], जिसमें ध्रुपद आदि अनेक रागों का भी प्रयोग किया जाता था[6]।

(२४) रास खेले जाते थे, इसके उल्लेख भी कई जगह मिलते हैं। बारहवीं तेरहवीं शताब्दी के जिनदत्तसूरि के उपदेश रसायन रास से लगुड-रास और ताला-रास के प्रचलन का पता चलता है। ये दो प्रकार के रास खेले जाते थे। कवि ने, दिन में पुरुषों के साथ लगुड-रास और रात्रि में ताला-रास के खेल वर्जित किए हैं[7]। इसकी पुष्टि जगडू रचित सम्यकत्वमाई[8] तथा सप्तक्षेत्री रास[9] से होती है। रेवंतगिरि रास[10] (१२८८); जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास[11] (१४१५); और कान्हडदे प्रबन्ध[12] (१५१२) से भी इस बात का पता चलता है।

(२५) शारदातनय ने भावप्रकाशन में तीन प्रकार के रासक बताए हैं[13] और उपरूपकों के अन्तर्गत 'रासक' नामक गेय-नाट्य का उल्लेख किया है[14]। हेमचन्द्र[15], वाग्भट्ट[16]

---

१. रेवातट, भूमिका, पृ० १३४–१३५ :
२. श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' कृत, पृ० ५६ :
३. श्री रघुनन्दन शास्त्री कृत, पृ० २४५ :
४. गुर्जर रासावली, G. O. S. CXVIII.
५. रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः (स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३) :
६. तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्मै मानं च बह्वदात् (१०।३३।१०) :
७. ताला रासु वि दिति न रयणिहिं, दिवसि वि लउडारसु सहुं पुरिसिहिं ।।३६।।
८. ताला रासु रयणि नहि देइ, लउडा रसु मूलह वारेइ। (-प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ८०)
९. तीछे ताला रस पडइ बहु भाट पढंता।
   अनइ लकुट रास जोईइ खेला नाचंता। (–प्रा० गु० का० सं०, पृ० ५२) :
१०. रंगिहि ए रमई जो रासु सिरि विजयसेण सूरि निम्मविऊए।
११. नाचई ए नयण विशाल, चंदवयणि मन रंग भरे।
    नवरंगि ए रासु रमंति, खेला खेलिय सुप परिवरे।।
१२. फल्या मनोरथ पूगी आस, ठामि ठामि दिवराइ रास। पृ० ५६, खंड १। २३६ :
१३. लतारासक नाम स्यात्तत्त्रेधा रासकं भवेत्
    दण्डरासकमेकन्तु तथा मण्डलरासकम् ।।
१४. काव्यं च प्रेक्षणं नाट्य रासकं रासकं तथा
    उल्लोप्यकञ्च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च ।।
१५. गेयं-डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-शिगक-भाणिका-प्रेरण-रामाक्रीड-
    हल्लीसक-रासक-गोष्ठी-श्री गदित राग काव्यादि ।। (काव्यानुशासनम्)
१६. काव्यानुशासनम्।

(द्वितीय) और कविराज विश्वनाथ[1] के भी यही मत हैं। रासक एक ऐसा कोमल और उद्धत गेय-रूपक है जिसमें अनेक नर्तकियां होती हैं, अनेक प्रकार के ताल और लय होते हैं और ६४ तक के युगल होते हैं[2]। हिन्दी में डा० श्यामसुन्दरदास[3], श्री व्रजरत्नदास[4] और श्री बालेन्दु[5] आदि ने नाटयरासक को उपरूपक के १८ भेदों में एक माना है।

(२६) हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है कि 'रासो' नाम से अभिहित कृतियाँ दो प्रकार की हैं—एक तो गीत-नृत्यपरक है और दूसरी छन्द वैविध्यपरक। गीत-नृत्यपरक-धारा पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात में विशेष रूप से समृद्ध हुई और छन्द-वैविध्यपरक-धारा पूर्वी राजस्थान तथा शेष हिन्दी प्रदेश में अधिक विकसित हुई[1]।

रास या रासो का मूल-स्वरूप भागवत के कृष्ण-रास में मिलता है, इसके मूलतत्त्व वहां पाए जाते हैं। प्रारम्भ में रास या रासो शृंगारिक गीत-नृत्य-काव्य था। पाइअलच्छीनाममाला[7] के 'रासो हल्लीसओ', देशी-नाममाला के 'हल्लीसो रासक[8]। मण्डलेन स्त्रीणां नृतम्' तथा कुद्दणो रासकः[9] और पाइअ-सद्द-महण्णवो के रास-रासग[10] शब्दों से यह बात और भी अधिक स्पष्ट होती है। रिपुदारण रास[11] से भी इसकी पुष्टि होती है। कालान्तर में इन तीन तत्त्वों से रासक-रूपकों का तथा गीत-श्रव्य-रास-काव्यों का विकास हुआ। गीत-श्रव्य-रास-काव्यों से भी गीत-तत्त्व ने कुछ भिन्न रूप धारण किया। 'फागु', 'धमाल', 'बारहमासा', आदि के रूप में, वह आज भी उपलब्ध है। इसी प्रकार काव्य-तत्त्व, स्वतंत्र चरित-काव्यों के रूप में सामने आया, जिसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जैनेतर रासो हैं। परन्तु जैन 'रास' और जैनेतर 'रासो' में प्रमुख अन्तर रहा। नाटकीय तत्त्व यद्यपि जैनरास काव्यों से तिरोहित हो गए, तथापि गीत और श्रव्य काव्य अधिकांश में वे बने रहे, जब कि जैनेतर रासो प्रायः श्रव्य काव्य रहे। आगे चलकर तो, जैन रास काव्यों से भी गीत तत्त्व क्षीण होने लगा; पर दोनों प्रकार के काव्यों में, विषयवस्तु, शैली और उद्देश्य का जो मूल अन्तर था, वह बना ही रहा। इसको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

---

१. नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाटयरासकम्
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यनि प्रेङ्खणं रासकं तथा ॥ (साहित्यदर्पण ॥ ५, परि० ६)
२. अनेक नर्तकी योज्यं चित्र ताल लयान्वितम् ।
आचतुःषष्टि युगला द्रासकं मसृणोद्धतम् ॥
३. रूपक रहस्य :
४. हिन्दी नाटय साहित्य :
५. हिन्दी काव्य शास्त्र :
६. पृष्ठ ६५६ :
७. धनपाल कृत ॥६७२॥
८. हेमचन्द्र कृत ॥ ८।६१. ॥(कलकत्ता) :
९. वही; २।३८ :
१०. पंडित हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ, (कलकत्ता संवत् १९८५) :
११. मरु-भारती, वर्ष ४, अंक २, जुलाई १९५६ : डा० दशरथ शर्मा,—रिपुदारण रास :
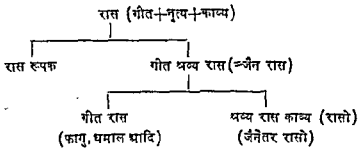
(ख) चौपाई :

रास के बाद सबसे अधिक संख्या 'चौपाई' संज्ञक काव्यों की मिलती है। मूलतः इस नाम के छन्द में लिखे जाने के कारण यह नाम पड़ा, पर पीछे रास और चौपाई एक दूसरे के पर्याय हो गए।

(ग) संधि :

अपभ्रंश महाकाव्यों के सर्ग के अर्थ में संधि शब्द का प्रयोग होता था। महाकाव्य के लक्षण बताते हुए, हेमचन्द्र ने कहा है कि संस्कृत महाकाव्य सर्गों में, प्राकृत आश्वासों में, अपभ्रंश संधियों में एवं ग्राम्य स्कन्धों में निबद्ध होता है[1]। भाषा काव्य में चौदहवीं शताब्दी से ऐसी रचनाएँ मिलने लगती हैं[2]।

(घ) चर्चरी :

उत्सव आदि में ताल व नृत्य के साथ गाई जाने वाली रचना को चर्चरी कहते हैं। जिनदत्त सूरि की जिनवल्लभ सूरि की स्तुति में चर्चरी नामक रचना अपभ्रंश काव्यत्रयी में है[3]।

---

१. पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नवृत्तसर्गाश्वास-सन्ध्यवस्कन्धकबन्धंसत्संधिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।

२. कुछ संधि काव्य निम्नलिखित हैं—
(१) आनंदसंधि,-विनयचंद, (२) कशो गोतम संधि (१४ वीं शताब्दी) ह० प्रति श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर; तथा देखिए जै० गु० क०, भाग १, ३:(३) मृगापुत्र संधि (१५५०)—कल्याणतिलक; (४) नंदन मणिहार संधि (१५८७)—चारुचन्द्र; (५) उदाह राजर्षि संधि (१५९०) तथा गजसुकुमाल संधि (१५९०)—संयममूर्ति; (६) गजसुकुमाल संधि (१५५३)—मूलप्रभ; (७) सुबाहु संधि (१६०४)—पुण्यसागर; (८) जिनपालित जिन रक्षित संधि, (१६२१)—कुशललाभ; (९) हरिकेशी संधि (१६४०)—कनकसोम; (१०) चउसरण प्रकीर्णक संधि, (१६३१)—चारित्रसिंह; (११) भावना संधि (१६४६)—जयसोम; (१२) अनाथी संधि (१६४७)—विमलविनय; (१३) कयवन्ना संधि (१६५१)—गुणविनय, आदि।

३. गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज से प्रकाशित :

प्राकृत-पैंगलम् में चर्चरी एक छन्द बताया गया है। हिन्दी में भी यह एक छन्द है[1]। चौदहवीं शताब्दी से ऐसी रचनाएँ मिलती हैं[2]।

(ङ) ढाल :

किसी काव्य के गाने की तर्ज या देशी को 'ढाल' कहते हैं। सत्रहवीं शताब्दी से जब रास, चौपाई आदि लोकगीतों की देशियों में रचे जाने लगे, तब उनको ढालबंध कहा जाने लगा। भिन्न-भिन्न ढालों में रचे जाने के कारण, काव्य की यह संज्ञा हुई। देसाई ने लगभग २५०० देशियों की सूची दी है।

(च) प्रबन्ध, चरित, संबंध, आख्यानक, कथा :

ये प्रायः एक दूसरे के पर्याय हैं। जो ग्रन्थ जिसके संबंध में लिखा गया है, उसे उसके नाम सहित उपर्युक्त संज्ञाएं दी जाती हैं।

(छ) पवाडो; पवाडा :

इसके स्वरूप और व्युत्पत्ति के विषय में भी भिन्न-भिन्न मत हैं।

(१) डा० सत्येन्द्र 'परमार' से 'पवाड़ा' की उत्पत्ति मानते हैं[3], पर उनका मत ठीक प्रतीत नहीं होता[4]।
(२) गुजराती जोडणी कोश में संस्कृत शब्द प्रवृद्ध से इसकी व्युत्पत्ति मानी है—सं० प्रवृद्ध > प्रा० प्रवड्ढ > पवाडा।
(३) नाहटाजी ने स्वर्गीय देसाई का मत उद्धृत किया है[5], जिसके अनुसार यह शब्द संस्कृत प्रवाद के निकटवर्ती है।
(४) हिन्दी शब्द-सागर में पँवाडा को संस्कृत प्रवाद से व्युत्पन्न मानते हुए, इसे लम्बी-चौड़ी कथा अथवा कल्पित आख्यान के अर्थ में प्रयुक्त बतलाया है।
(५) मराठी में वीरो के पराक्रम का वर्णन करनेवाले काव्य के अर्थ में पवाड़ा का प्रयोग होता है[6]। यह महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोक छन्द है।
(६) बंगाली में वर्णनात्मक कविता अथवा लम्बी कविता के कथात्मक भाग को पयार कहते हैं। बंगाली में यह एक छन्द भी है। प्रसिद्ध कृत्तिवासीय रामायण पयार छन्द में ही है। इसकी उत्पत्ति भी संस्कृत प्रवाद से है।

१. हिन्दी छन्द प्रकाश, पृ० १३१; तथा हिन्दी काव्य शास्त्र, पृ० २०४ :
२. जैन सत्य-प्रकाश, वर्ष १२, अंक ६, में श्री हीरालाल कापड़िया का 'चर्चरी' नामक लेख :
३. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ३४८ :
४. मरु-भारती, वर्ष १, अंक ३, सं० २०१० :
५. कल्पना; अगस्त-अक्टूबर, १९५० ई० :
६. (क) वही; वर्ष १, अंक १, १९४९, 'हिन्दी और मराठी साहित्य',—प्रभाकर माचवे;
(ख) जनवाणी, जनवरी, १९५०, 'प्राचीन मराठी साहित्य',—प्रो. महादेव सीताराम बूमरकर:

(७) डा० मंजुलाल र० मजमुदार के अनुसार 'पवाडो' वीर का प्रशस्ति काव्य है। रचना-बन्ध की दृष्टि से, विविध तत्वों के आधार पर वे आसाइत के हंसावली-प्रबन्ध, भीम के सदयवत्स वीर-प्रबन्ध तथा शालिसूरि के विराट-पर्व को पवाड़ा के अन्तर्गत मानते हैं[1]।

(८) पाइअ-सद्-महण्णवो में पवाय, पव्वाय (प्रवाद) का अर्थ जनश्रुति, परंपरा प्राप्त उपदेश अथवा मत आदि दिया है[2]।

वास्तव में पवाडा या पवाडो कीर्तिगाथा, वीरगाथा, कथा-काव्य अथवा चरित-काव्य के लिए प्रयुक्त होता है। चारण साहित्य में इसका प्रयोग बहुधा वीरकृत्यों या वीरगाथाओं के लिए हुआ है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत प्रवाद से है—

सं० प्रवाद > प्रा० पवाय, > पवाड़अ > पवाडो।

पवाडा के लिए प्रवाडों शब्द भी मिलता है[3]। संवत् १४५३ में रचित 'हरिचंद पुराण' में दो स्थलों पर 'पयडो'[4] और पन्द्रहवीं शताब्दी के 'त्रिभुवन-दीप-प्रबन्ध' में तीन स्थलों पर 'पवाडा'[5] के प्रयोग मिलते हैं। यहां इनका अर्थ बखान, विस्तार और गीत-विशेष है। संवत् १४८५ में हीरानंद सूरि-रचित 'विद्याविलास पवाडो'[6] सर्व-प्रथम रचना है, जिसमें यह शब्द चरित-काव्य, कथा-काव्य अथवा कीर्ति-गाथा के लिए प्रयोग में आया है—

> विद्या विलास नरिंद पवाडो, हइडा भितर जाणी।
> अंतराइ विण पुण्य करो तुम्हि, भाव घणेरो आणी।

यह एक वर्णनात्मक प्रेम-काव्य है।

कान्हडदे प्रबन्ध में[7] पवाड़ शब्द का प्रयोग कीर्तिगाथा अथवा कथात्मक भाग के लिए हुआ है। सांया झूले के नागदमण में भी यह शब्द मिलता है[8]। उक्त दोनों रचनाएँ जैन कवियों की नहीं हैं। जैन कवि ज्ञानचन्द्र-रचित 'वंकचूल पवाडो'[9] (१५६५) एक धार्मिक कथा-काव्य है। इसका परिचय देते हुए देसाई ने 'वंकचूलनो पवाडउ-रास', लिखा है जिससे पवाडो और रास एक दूसरे के पर्याय प्रतीत होते हैं। 'पाबूजी के पवाड़े' या 'परवाड़े' जो

---

१. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० १२३, १२५ :
२. पृ० ७०६, ७१२ :
३. (क) 'राइ लूंणकरण री कवित्त प्रवाडां री',—
Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. I, Page 40.
(ख) हुवो प्रवाडो हाय हिंदुवां, असुर सिधार हुवें आराण।
साह आलम मूकें सहिजादो, रायजादो थापलियो राण।"
नैणसी की ख्यात, भाग १ पृ० ७१ :
४. कल्पना; अगस्त-अक्टूबर, १६५०,—श्री अगरचन्द नाहटा का लेख :
५. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० १२४ :
६. 'गुर्जर रासावली' में प्रकाशित—(Oriental Institute, Baroda).
७. पृ० २६, ६७, ६१, १२१, १६४, १६७, २०६ :
८. 'पवाडो पनगांसिरे जदुपति कीनो जाय'।
९. पव्वाडउ पोडउं हरइं, करवा धि कवि संति।
वंकचूल गुण वर्णवूं, श्रवणि सुणउ एक चिति। —जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ५४३-५४४ :

मनाने से हुआ। ऋतु के अनुकूल मानव-हृदय में, अपने ढंग से माधुर्य और सरसता का स्रोत प्रवाहित करना इसकी विशेषता रही होगी।

सबसे प्राचीन फागु काव्य, 'जिनचंद सूरि फागु' (१३४१-१३७६) में इसको गेय रचना बताया है[1], पर इसके अतिरिक्त नृत्य के साथ यह खेला जाता था, इसका उल्लेख सिरि थूलि भद्द फागु (१४ वीं शताब्दी) में मिलता है[2]—

खरतर गच्छि जिण पदम सूरि किय फागु रमेवउ।
खेला नाचइं चैत्र मासि रंगिहि गावेवउ।

फागु-काव्यों की इन प्रवृत्तियों की पुष्टि, नेमिनाथ फागु[3], जम्बूस्वामी फाग[4] आदि पंद्रहवीं शताब्दी की कई रचनाओं से भी होती है। फागु-काव्यों की मूल-प्रवृत्ति तो वसंतवर्णन के निमित्त शृंगाररस की निष्पत्ति थी, किंतु जैन कवियों ने इसे साम्प्रदायिक रूप दिया[5]। इससे इनका सारा स्वरूप ही बदल गया। जैन कवियों के हाथों शृंगार केवल नारी के सौंदर्य और बनाव-पहराव तक ही सीमित रहा, यहां तक कि वसन्त-वर्णन भी आवश्यक नहीं रहा। मुख्य ध्येय रह गया—तीर्थंकरों, गणधरों आदि की वैराग्य-वृत्ति के शमन का। शृंगार के बदले काव्य का अन्त शम और शान्त रस में होने लगा। इस कारण श्री व्यास के शब्दों में, 'जैन फागु काव्य शृंगार-रहित रचनाएँ हैं'[6]। शैली की दृष्टि से इसे फागु-बंधी रचना भी कहा गया है, पर यह शैली फागु-संबंधी सभी रचनाओं में नहीं अपनाई गई।

'फागु' के वर्ण्य-विषय :

(१) जैन मुनि तो सांसारिक बन्धन तोड़ चुके हैं ; उनके लौकिक विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। फागुकाव्यों में, संयमश्री के साथ उनके विवाह, शृंगार, विरह और मिलन के वर्णन पाए जाते हैं।

(२) नेमिनाथ और स्थूलिभद्र फागुकाव्यों के प्रमुख नायक रहे हैं। नेमिनाथ राजिमती से विवाह करने को उद्यत तो हो गए थे, परन्तु पशुओं का वध आदि देखकर, उन्होंने सदा के लिए वैराग्य ले लिया, सांसारिक बन्धनों में वे पड़े ही नहीं। इसी प्रकार कोश्या वेश्या के यहां चातुर्मास्य करके भी युवा स्थूलिभद्र डिगे नहीं, उलटे वेश्या को ही जैन धर्म अंगीकृत करना पड़ा।

---

१. श्री जिनचंद सूरि फागिहिं, गायहि जे अति भावि।
ते वाउल अरु पुरसला, विलसहिं सिव सुह मावि।। (-सम्मेलन-पत्रिका में श्री नाहटा का 'राजस्थानी फागु काव्य की परंपरा और विशिष्टता' नामक निबन्ध) :
२. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह (श्री सी॰ डी॰ दलाल), पृ॰ ४१, पद २७ :
३. (क) प्राचीन फागु संग्रह, पृ॰ ५५, रचयिता - जयसिंह सूरि ;
(ख) गुर्जर रासावली, पृ॰ ७४ (G. O. S. Vol. CXVIII), रचयिता —जयशेखर सूरि :
४. प्राचीन फागु संग्रह, पृ॰ ५६, रचयिता - अज्ञात :
५. पंदरमा शतकनां चार फागु काव्यो, (श्री के॰ बी॰ व्यास), 'प्रस्तावना' :
६. वसंतविलास; . Introduction.

इन्हीं सब विषयों को लेकर पन्द्रहवी, सौलहवी और सत्रहवीं शताब्दी में अनेक फागु-काव्यों की रचनाएँ हुई[१]। आलोच्य काल के कवियों की रचनाओं से इस बात की पुष्टि होती है।

(ख) धमाल :

इनकी रचनाएँ फागु काव्यों के कुछ पश्चात हुई। पर फागु और धमाल एक प्रसंग से ही संबंधित हैं। होली के अवसर पर धमालें अब भी गाई जाती हैं। सत्रहवीं शताब्दी से, प्रतीत होता है, दोनों को एक दूसरे का पर्याय मान लिया गया। आषाढ भूति धमाल, आर्द्रकुमार धमाल (–कनकसोम); नेमिनाथ धमाल (–मालदेव) आदि प्रसिद्ध धमालें हैं।

(ग) बारहमासा :

इसमें नियामक और मुख्य-रस विप्रलंभ शृंगार होता है। साल के बारह महीनों के विशिष्ट वर्णन के साथ नायिका का विरह-वर्णन रहता है। अतः इसकी दो विशेषताएं स्पष्ट हैं—(१) प्रकृति वर्णन और (२) विप्रलंभ-शृंगार वर्णन। बारहमासा काव्य एक प्रकार से लोक-काव्य है।

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ऐसी रचनाएं मिलती हैं[२]। श्री नामवरसिंह ने बारहमासा को हिन्दी की अपनी विशेषता बतलाया है[३], जो ठीक नही है।

(घ) वेलि :

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह विवाह के अर्थ मे प्रचलित है। रचना-प्रकार की दृष्टि से 'वेलि', हिन्दी के 'लता', 'वती' आदि काव्य-रूपों की तरह है। जैन कवियों की वेलियां छोटी-छोटी और वर्णनात्मक है। ऐसी रचनाओं में संवत् १५२८ के आसपास रचित वाछा की 'चिहुंगति वेलि' सबसे प्राचीन कही जा सकती है। अन्य वेलियां भी पाई जाती हैं[४]।

---

१. रचनाओं की विस्तृत सूची के लिये देखिए—सम्मेलन-पत्रिका में श्री अगरचन्द नाहटा का 'राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता' नामक निबंध :

२. (क) नेमिनाथ बारमास चतुष्पदिका (१३५३)-विनयचन्द्र सूरि, (प्राचीन गु० का० सं०);
(ख) नेमिनाथ राजिमती बारमास,-चारित्रकलश, (गुजराती साहित्यनां स्वरूपो पृ० २७६);
(ग) नेमिनाथ चतुर्मासिकम्, - सिद्धिचंद्र गणि, - वही; पृ० २८०-८१;
(घ) नेमिनाथ बारमास वेल प्रबंध (१६५०)-गुणसौभाग्य, - वही; पृ० २८२-८३;
द्रष्टव्य : हिंदी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक ४, २०१०, 'बारहमासा की प्राचीन परंपरा',-नाहटा।

३. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग :

४. (क) जम्बूवेलि (१५३५)-सीहा; (ख, ग) गरभवेलि,–लावण्यसमय, सहजसुन्दर;
(घ) नेमि राजुल बारहमासा वेलि (१६१५), स्थूलिभद्र मोहन वेलि,–जयवंतसूरि;
(ङ) जइत पद वेलि (१६२५), - कनकसोम, आदि।
द्रष्टव्य : जैन-धर्म-प्रकाश, वर्ष ६५, अंक २,–श्री हीरालाल कापडिया का लेख।

(ट) विवाहलो, धवल, मंगल :

जिस रचना में विवाह का वर्णन हो उसे विवाहलो और इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को धवल या मंगल कहा जाता है।

विवाहलो :

चौदहवीं शताब्दी से ऐसी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। अद्यावधि प्राप्त भाषा-काव्य में सबसे प्राचीन रचनाएँ,[1] 'जिनेश्वर सूरि - संयमश्री - विवाह वर्णन रास' तथा 'जिनोदय सूरि विवाहलो' हैं। इनके पश्चात् अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं[2]।

धवल :

तेरहवीं शताब्दी में रचित 'जिनपति-सूरि-धवल-गीत' प्राप्त रचनाओं में सबसे प्राचीन है। कहीं-कहीं विवाहलो को धवल भी कहा गया है।

(३) नीति, व्यवहार, शिक्षा, ज्ञान आदि :

प्रायः प्रत्येक कवि ने इनके लिए किसी न किसी रूप में, कहीं न कहीं स्थान ढूंढ ही लिया है। इन विषयों से संबंधित स्वतंत्र रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें छीहल-बावनी[3] और डूंगर-बावनी[4] अत्यन्त महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनमें प्रवाहपूर्ण बोलचाल की भाषा में, व्यवहार और नीति विषयक बातों को बड़े ही मार्मिक ढंग से कहा है। उक्त विषयों से संबंधित अन्य रचना-प्रकारों में संवाद, कक्का—मातृका-बावनी और कुलक आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

(क) संवाद :

इनमें दोनों पक्ष एक दूसरे को हेय बताते हुए अपने पक्ष को सर्वोपरि रखते हैं। मूल भावना दोनों पक्षों के सम्यक ज्ञान कराने की रहती है। चौदहवीं शताब्दी से ऐसी रचनाओं

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह (नाहटा) में प्रकाशित :
२. (क) आर्द्रकुमार विवाहलउ (१४६३) :
   (ख) महावीर विवाहलउ (१५ वीं शताब्दी) —कीर्तिरत्न सूरि
   (ग) नेमि विवाहलउ (१५०५), —जयसागर ;
   (घ) शांति विवाहलउ (१६ वीं शताब्दी);
   (ङ) शालिभद्र विवाहलउ, (१५६८) —लक्ष्मण ;
   (च) जम्बू अंतरंग रास विवाहलो (१५७२), - सहजसुन्दर ;
   (छ) पार्श्वनाथ विवाहलु (१५८१ से पहले), —पेथो :
   (ज) शान्तिनाथ विवाहलो धवल प्रबन्ध (१५६१), —आणंदप्रमोद;
   (झ) सुपार्श्वजिन विवाहलो (१६३२), —ब्रह्म विनयदेव, आदि।
   द्रष्टव्यः(क) श्री जैन-सत्य-प्रकाश, अंक १०-११, वर्ष ११, क्रमांक १२०-१२१;
   (ख) तथा वही; अंक १, वर्ष १२, क्रमांक १२३ :
३. ह० प्रति, नं० २८३१२(अ), अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
४. ह० प्रति : श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर। इन दोनों के विषय में आगे लिखा गया है।

की प्राप्ति होती है। 'राजस्थानी'[१] में प्रकाशित, वचनिका-शैली में लिखे गए,'भाषाओं के चार प्राचीन उदाहरण' में संवाद-रूप में चार प्रान्तीय भाषाओं का अच्छा परिचय दिया गया है। आलोच्यकाल में कई संवादों की रचनाएँ हुईं[२]।

(ख) कक्का-मातृका-बावनी :

इनमें वर्णमाला के बावन अक्षर मान कर प्रत्येक वर्ग के प्रथम अक्षर से प्रारम्भ कर प्रासंगिक पद रचे जाते हैं। तीनों नाम एक दूसरे के पर्याय हैं, यद्यपि 'बावनी' नाम सोलहवीं शताब्दी से प्रयुक्त हुआ है। १३ वी १४ वीं शताब्दी की ऐसी चार रचनाएँ प्रकाशित भी हुई हैं[३]।

(ग) कुलक :

जिस रचना में किसी शास्त्रीय विषय की आवश्यक बातें संक्षेप में संकलित की गई हों या किसी व्यक्ति का संक्षिप्त परिचय दिया गया हो उसे कुलक कहते हैं[४]। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के कुछ कुलक प्राप्त हैं[५]।

(घ) हीयाली :

कूट या पहेली को हीयाली कहते हैं। हीयालियों का प्रचार सोलहवीं शताब्दी से हुआ। देपाल[६], कुशललाभ[७], और समयसुन्दर[८] के नाम इस संबंध में उल्लेखनीय हैं।

(४) स्तुतिः

स्तुति-काव्यों में तीर्थंकरों, जैन महापुरुषों, साधुओं, सतियों, तीर्थों आदि के गुणों के वर्णन रहते हैं। दुर्गुणों के त्याग और सद्गुणों के ग्रहण करने के गीत तथा अध्यात्मिक गीत आदि इसी श्रेणी में आते हैं। तीर्थों की नामावली जिसे तीर्थमाला कहते हैं इसी के अन्तर्गत है।

ये रचनाएँ बहुत छोटी-छोटी हैं और स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती, गीत, नमस्कार, आदि नामों से उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त, 'चौबीसी' संज्ञक रचनाओं में २४

---

१. भाग ३, अंक ३, जनवरी, १९४०, (कलकत्ता) :
२. (क) सहजसुन्दर : आंख-कान संवाद, यौवन-जरा संवाद ;
   (ख) लावण्यसमय : कर संवाद (१५७५), रावण-मन्दोदरी संवाद, गोरी सांवली गीत;
   (ग) हीरकलश : जीभ-दांत संवाद (१६४३), मोती-कपासिया संवाद (१६२६) ;
   (घ) जीरापल्ली पार्श्वनाथ रास, मरु-भारती, वर्ष २, अंक ३;
   (ङ) नरपति : जिह्वा-दांत संवाद, सुखड़-पंचक संवाद (१६ वीं शताब्दी);
   (च) श्रीधर : रावण-मंदोदरी संवाद (१५६५) :
३. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह में :
४. ना०प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, २०१०,'प्राचीन भाषा-काव्यों की विविध संज्ञाएं'-नाहटा:
५. पार्श्वचन्द्र सूरि : वन्दन दोष ३२ कुलक :
६. हरियाळी; -जै० गु० क०, भाग १ तथा ३ :
७. गुरु-चेला संवाद; -राजस्थान-भारती, भाग २, अंक १, १९४८ :
८. अष्ट लक्ष्मी :

तीर्थंकरों तथा 'बीसी' संज्ञक रचनाओं में २० विरहमानों के स्तवन रहते हैं। जैन साहित्य का एक बड़ा भाग स्तुति-परक है।

(५) लोक कथानक :

राजा विक्रमादित्य का चरित विभिन्न लोक-कथाओं का मुख्य आधार और प्रेरणा स्रोत रहा है। इस संबंध में दूसरा नाम राजा भोज का लिया जा सकता है।

(१) विक्रम-सम्बन्धी लोक-कथाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) विक्रम[1]-संबंधी साहित्य और

(आ) विभिन्न कथाओं का साहित्य।

दोनों प्रकार की कुछ प्रसिद्ध रचनाओं के नाम ये हैं—

(अ) विक्रम-संबंधी साहित्य :

(क) विक्रमचरित्र कुमार रास–(१४९९)—वड़तपागच्छीय साधुकीर्ति[2]

(ख) विक्रमसेन रास (चुपई)–(१५६५)—पूर्णिमागच्छीय उदयभानु[3]

(ग) विक्रम रास– (लगभग १५६५)—तपागच्छीय धर्मसिंह[4]

(घ) विक्रम रास– (१६३८)—आगमविडालंबगच्छीय मंगलमाणिक्य[5]

(आ) विभिन्न कथाओं का साहित्य :

(क) वेताल पच्चीसी— (१) सोरठगच्छीय ज्ञानचंद्र (१५६३)[6]

(२) खरतरगच्छीय हेमानंद (१६४६)[7]

(ख) पंचदंड चौपाई— (१) अज्ञात कवि कृत (१५५६)[8]

(२) वड़गच्छीय मालदेव (१६५०-लगभग)[9]

(ग) सिंहासन बत्तीसी— (१) पूर्णिमागच्छीय मलयचन्द्र (१५१९)[10]

(२) सोरठगच्छीय ज्ञानचन्द्र (१५९८)[11]

(३) उपकेशगच्छीय विनयसमुद्र (१६११)[12]

(४) विवंदणीक गच्छीय सिद्धिसूरि (१६१६)[13]

(५) खरतरगच्छीय हीरकलश (१६३६)[14]

---

१. द्रष्टव्य–विक्रम विशेषांक, (श्री जैन-सत्य-प्रकाश) तथा विक्रम स्मृति ग्रंथ, (२००१ वि०) :
२. जैन गुर्जर कविश्रो, भाग १, पृ० ३४-३५ :
३. वही ; भाग १, पृ० ११३ :
४. वही ; भाग १, पृ० १६५ :
५. वही ; भाग १, पृ० २४७ :
६. वही ; भाग ३, पृ० ५४५; (७) वही; भाग १, पृ० २८८;–हस्तलिखित प्रति–अ० सं० ला०, बीकानेर में है। (८) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ९९:
९. वही; भाग ३, पृ० ८०९: (१०) वही; भाग ३, पृ० ४७४: (११) वही; पृ० ५४६ :
१२. ह० प्र०-अ० सं० ला०, बीकानेर: (१३) जै० गु० क०, भाग १, पृ० २०५; भाग ३, पृ० ६७७:
१४. वही; भाग १; पृ० २३५, भाग ३, पृ० ७२७, १५१० :

(घ) विक्रम खापरा चोर चौपई— (१) खरतर० राजशील (१५६३)[1]

(ङ) विक्रम लीलावती चौपई— (१) कक्क सूरि शिष्य (१५६६)[2]

विक्रम-चरित के अतिरिक्त निम्नलिखित लोक-कथानकों को लेकर भी विभिन्न काव्यों का सृजन हुआ—

(२) भोज चरित—	(१) मालदेव[3]
	(२) सारंग[4]
	(३) हेमानंद[5]
(३) अंबड चरित—	(१) विनयसमुद्र
	(२) मंगलमाणिक्य
(४) सिंहलसी चरित (धनदेव चरित)	(१) मलयचन्द्र (१५१९)[6]
(५) कर्पूर मंजरी—	(१) मतिसार (१६०५)[7]
(६) ढोला-मारू—	(१) कुशललाभ (१६०७)
(७) पञ्चाख्यान—	(१) वच्छराज (१६४८)[8]
	(२) रत्नसुन्दर (१६२२)[9]
	(३) हीरकलश
(८) नंदबत्तीसी—	(१) सिंहकुल (१५६०)[10]
(९) पुरन्दरकुमार चौपाई—	(१) मालदेव
(१०). श्रीपाल चरित साहित्य—	(१) मांडण (१४९८)[11]
	(२) ज्ञानसागर (१५३१)[12]
	(३) ईश्वर सूरि (१५६४)[13]
	(४) पद्मसुन्दर (१६४२)[14]
(११) विल्हण पंचाशिका—	(१) ज्ञानाचार्य (१६२६ से पूर्व)[15]
	(२) सारंग
(१२) शशिकला—	(१) सारंग
(१३) माधवानल-कामकन्दला—	(१) कुशललाभ[16]
(१४) लीलावती—	(१) कक्क सूरि शिष्य (१५६६)[17]
	(२) कडुआ (लगभग सोलहवीं शताब्दी)[18]

१. जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ५३९ : (२) वही; पृ० ६२३ :
३. वही; भाग १, पृ० ३०५; भाग ३, पृ० ८०७ : (४) वही; भाग १, पृ० ३०३ :
५. वही ; भाग १, पृ०२८९; भाग ३, पृ० ७८० : (६) वही; भाग ३, पृ० ४७५ :
७. वही ; पृ० ६५७ : (८) वही ; पृ० ७६७ : (९) वही; पृ० ७२० :
१०. वही ; पृ० ५२९ : (११) वही; पृ० ४३३ :
१२. वही ; भाग १, पृ० ५८ : (१३) वही ; भाग ३, पृ० ५३२ :(१४) वही; पृ० ७५६ :
१५. वही; पृ० ६३६ : (१६) G. O. S. Vol. XCIII में प्रकाशित :
१७. जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ६२३ : (१८) वही ; भाग १, पृ० ११० :

(१५) विद्याविलास— (१) हीरानन्द सूरि (१४८५)[1]
(२) प्राज्ञासुन्दर (१५१६)[2]
(१६) सुदयवच्छ वीर चरित— (१) अज्ञात कवि कृत (१६५२ से पहले)[3]
(१७) चंदन राजा मलियागिरीचौपाई (१) तपा० हीरविशाल के शिष्य द्वारा १५६८ में रचित[4]
(१८) इसी प्रकार संवत् १७५० के आसपास मुनि कीर्तिसुन्दर द्वारा संग्रहीत 'वाग्विलास-लघु-कथा-संग्रह' से[5] विभिन्न प्रचलित लोक कथाओं का पता चलता है।

(६) गेय पद : (संत शैली) :

संत शैली पर गेय पदों के रूप में भी जैन कवियों की काफी रचनाएँ मिलती हैं। इनका विषय प्रायः जैन धर्म से संबंधित रहता है। ऐसे कवियों में पार्श्वचन्द्र, जयसागर, गुणविनय, समयसुन्दर आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

(७) पट्टावलियां, गुर्वावलियां, विहार-पत्र आदि :

इनमें इतिहास की काफी सामग्री उपलब्ध हो सकती है। पट्टावलियां और गुर्वावलियां-पद्य और गद्य दोनों में लिखी गई हैं।

(८) ज्योतिष[6], शकुन[7], रीतिग्रंथ[8], अनेकार्थ[9]-आदि :

इन विषयों पर भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए हैं।

(९) टीका ग्रंथ :

अधिकांश टीकाएं गद्य में ही लिखी गईं। बालवबोध और टब्बा शैली प्रसिद्ध ही है।

---

१. जै० गु० क०, भाग १, पृ० २५ ; भाग ३, पृ० ४२७ :
२. वही ; भाग १, पृ० ५१ ; भाग ३, पृ० ४७१ :
३. वही; भाग ३, पृ० ९५९ ।
४. कल्पना,'–दिसम्बर, १९५७, पृ० ८१, (–श्री नाहटाजी का लेख) :
५. 'वरदा' में श्री अगरचंदजी नाहटा का लेख–'वाग्विलास लघु कथा संग्रह' :
६. जोइसहीर (हीरकलश कृत); भास्कर, किरण २, भाग ४,
'जैन ज्योतिष व वैधक ग्रन्थ',–श्री अगरचंदजी नाहटा :
७. शकुन सौलही, (ह० प्र०,–श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर) :
८. राजस्थान-भारती, भाग १, अंक ४, जनवरी, १९४७,–
'जैन कवि कुशललाभ और उनका पिंगल शिरोमणि छंद ग्रन्थ', –श्री अगरचंदजी नाहटा :
९. भास्कर, किरण १, भाग ८, 'जैन अनेकार्थ साहित्य'; तथा समयसुन्दर आदि की रचनाएँ :

अध्याय ११

जैन साहित्य : कुछ प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ

(क) सोलहवीं शताब्दी :

(१) महोपाध्याय जयसागर वरड़ागोत्रीय[1] :

ये पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के संधि-युग के कवि हैं। ये खरतरगच्छाचार्य जिनराज सूरि के शिष्य थे। अनुमानतः इनका जन्म संवत् १४५० में हुआ। संवत् १४६० में इनको दीक्षा मिली और संवत् १४७५ में उपाध्याय पद से विभूषित हुए। स्वर्गवास संवत् १५१५ के लगभग हुआ। रचनाओं से इनके विस्तृत भ्रमण का पता चलता है। 'विज्ञप्ति-त्रिवेणी' इनकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना है और राजस्थानी भाषा में रचित 'जिनकुशल सूरि सप्ततिका' का तो (उसके कुछ छन्दों को छोड़कर) आज भी हजारों भक्तों द्वारा पाठ किया जाता है। इनकी कुछ छोटी बड़ी भाषा-रचनाओं की सूची निम्नलिखित है—

(१) चौबीस जिन स्तवन
(२) जंबू स्वामी रास (१४८६)
(३) अष्टापद तीर्थ बावनी
(४) गौतम स्वामी चतुष्पदिका
(५) चतुर्विंशती जिन स्तवन
(६) नेमिनाथ विवाहलो
(७) अजितनाथ वीनती
(८) स्तंभव पार्श्वनाथ स्तवन
(९) सत्रुंजय आदिनाथ वीनती
(१०) वीर प्रभु वीनती
(११) सीमंधर स्वामी स्तवन
(१२) अर्बुद तीर्थ विज्ञप्ति
(१३) गिरनार नेमिनाथ वीनती
(१४) नेमिनाथ भावपूजा स्तोत्र
(१५) पंचतीर्थंकर नमस्कार स्तोत्र
(१६) वीतराग स्तवन
(१७) महावीर वीनती
(१८) वीतराग वीनती
(१९) नेमीश्वर मनोरथ माला
(२०) संखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन
(२१) स्तंभव पार्श्वनाथ स्तवन
(२२) नवपल्ल पार्श्वलघु वीनती
(२३) स्तंभनक पार्श्वनाथ विज्ञप्ति
(२४) पार्श्वनाथ स्तोत्र
(२५) जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र
(२६) नेमिनाथ स्तुति
(२७) नगरकोट साहित्य परिपाटी
(२८) चैत्य परिपाटी

---

१. (क) जै० गु०क०, भाग १, पृ० २७; भाग ३, पृ० ४३०, १४७६ ;
(ख) जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पैरा—६९५, ६९६, ७०९;
(ग) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ० ४०० ;
(घ) दादा जिनकुशल सूरि, 'परिशिष्ट' ;
(ङ) विज्ञप्ति-त्रिवेणी (सं० मुनि जिनविजय), आत्मानंद सभा, भावनगर ;
(च) शोध-पत्रिका, भाग ९, अंक १, दिसम्बर, १९५७ :

(२६) शांतिनाथ वीनती (३०) गिरनार नेमिनाथ वीनती
(३१) चौबीस जिन पंचबोल स्तवन (३२) जिनकुशल सूरि सप्ततिका

'श्री जयसागर कृति संग्रह'[1] में संग्रहीत वीर प्रभु वीनती से उदाहरण देखिए —

नयण नाभि सलूणिय रूयडी, तपइ भाल प्रभाजल कूयडी।
सुघट होठ हियउं तिम मोकलउं, जिण तणउं अयवा सहुपइ भलउं ॥४॥
तिसउ कंठ तिसा कर जाणिवा, तिसिया रख तिसा नख पल्लवा।
पग तिंसाहु तिसि पुणि आंगुली, सलहियइ प्रभु बिंब किसउं वली ॥५॥
सकति एक जिणेसर ताहरी, भगति एह सुनिश्चल माहरी।
बिहुं मिलीहुउ वंछित संपदा, जिम करउं प्रभु ओलग सर्वदा ॥८॥

(२) देपाल[2] :

इनको सोलहवीं शताब्दी का आदि कवि मान सकते हैं। इनकी रचनाएँ संवत् १५०१ से १५३४ तक की मिलती हैं। ये नरसी मेहता के समकालीन थे। 'ठाकुर' संबोधन होने के कारण प्रतीत होता है, ये भोजक थे। श्री ऋषभदास के अनुसार ये प्रेमानन्द की टक्कर के कवि हैं[3]। रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) जावड भावड रास (२) रोहिणेय प्रबन्ध-रोहिणीया चोर रास
(३) चंदनबाला चरित्र चौपाई (४) श्रेणिक राजानो रास
(५) जंबूस्वामी पंच भव वर्णन चौपई (१५२२) (६) आर्द्रकुमार धवल
(७) सम्यकत्व बारव्रत कुलक चोवई (१५३४) (८) पुण्य-पाप फल (स्त्री वर्णन) चौपाई
(९) स्नात्र पूजा (१०) हरियाळी
(११) स्यूलभद्र फाग (१२) थावच्चाकुमार भास
(१३) पार्श्वनाथ जीराउला रास (१४) नवकार प्रबन्ध
(१५) मनुष्य भव लाभ, आदि।

उदाहरण : जंबूस्वामी चौपाई से[4]—

घन घन जे गुरु लहइ सुसाय,
आराधी भव टालइ व्याध।
वचन सुणी तस सेवा करइ,
भव सायर ते दुत्तर तरइ।
× ×

---

१. ह० प्र०—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, (पोथी ११, प्रति १८):
२. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ३७ ; भाग ३, पृ० ४४६, ४६६, १४८७;
(ख) जै० सा० नो स० इ०, पैरा ७६६, ८६७ :
३. जै० गु० क०, भाग १, पृ० ३७, टिप्पणी :
४. ह० प्र० नं० ३६८२, (संवत् १६३८ में लिपिबद्ध,—श्री अभय जैन, ग्रंथालय, बीकानेर) :

मरण मइगल जीव नर, जम्म कूवि निविडंति।
क्यारिक खाय भुयग मँह, अजगिरि नर गहवंति ॥

(३) ऋषिवर्द्धन सूरि[1] :

ये आंचलगच्छ-नायक जयकीर्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

(१) नल दवदंती रास, (संवत् १५१२), चित्रकोट (चित्तौड़) में रचित,

(२) जिनेन्द्रातिशय पंचाशिका, १५१२ के लगभग रचित।

स्वयंवर के लिये मण्डप में आई हुई दमयंती का रूप देखिए (—नल दवदंती रास से[2])

मणिमय कुंडल राखडी सखि माणिक मोती हार।
तिलक निगोदर खीटुली सखि कांठलु मेखला सार।
कंचण कंकण मूंद्रडी सखि चूडी चूनडी चारु।
सीयली नेत्र पटलडी सखि नेउर रणझुणकार।

परन्तु इसमें उक्त कथा के माध्यम से धर्म-माहात्म्य ही वर्णित है, जैसा कि प्रारम्भ के दोहे से पता चलता है—

सयल संघ सुहसंति कर, पमणीय संति जिणेंसु।
दान सील तप भावना, पुण्य प्रभाव भणेसु ॥

(४) मतिशेखर[3] :

ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

(१) धन्नारास (१५१४) . (२) नेमिनाथ वसंत फुलडां
(३) कुरगडु (कूरघट) महर्षि रास (१५३७) (४) मयणरेहा सती रास (१५३७)
(५) इलापुत्र चरित्र (६) नेमिगीत, आदि।

इनमें नं० १, दान पर, नं० ४ शील पर और नं० ५ भावना धर्म पर है।

धन्नारास[4] से एक उदाहरण देखिए—

दान प्रभावइ सुगतिइं जासिइ,
जीवउ दान वडउ जग जुगतइ,
कुगति निवारण हारो ॥२।२१॥
भवि या दान घना जिम दीजइ,
मुनिय जनम तणउ फल लीजइ,
कीजइ भावन पुरे ॥२।२२॥

---

१. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ४८; भाग ३, पृ० ४६७ ;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पैं० –७५०, ७६८ :

२. ह० प्र० नं० ३८०६, बंडल ८१, —श्री अ०जै० ग्रं०, बीकानेर :

३. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ४६ ; भाग ३, पृ० ४६७, ४६४ ;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पैरा ७६८ :

४. ह० प्र० नं० ३७४६, बंडल ८१, (लिपिकाल–१६३१),-श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :

इह भवि परि भवि दान प्रभावइ,
करियल राज रिद्धि सहु पावइ,
जायइ दुरिय दुह दरे ॥२।२३॥

इसी प्रकार मयणरेहा सती रास में शील धर्म का माहात्म्य वर्णित है[1]—

सीलि सयल सुख संपजइ, सीलि सुजसु जगि जोइ।
सीलि मंत्र महिमा फुरइं, सीलि सिद्धि वसि होइ ॥
× ×
जे नर सीलि सबल नवि होइ, तेहनउ नाम लियइ नवि कोइ।
इणि भवि ताडण मारण लहइं, परिभवि नरग तणा दुख सहइ।
मूरिख लुब्ध विषय सुख काजि, हुइ लंपट नवि पइसइ लाजि।
धन जोवन मन नइ गारवइ, मूंहिया मानव भव हारवइ।

(५) पद्मनाभ[2] :

ये १५ वीं १६ वी शताब्दी के प्रतिभाशाली विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। संघपति डूंगर के अनुरोध पर संवत् १५४३ में इन्होंने *'बावनी' (डूंगर-बावनी)* की रचना की, जिसके विषय-नीति, व्यावहारिकता, आत्म-दर्शन आदि हैं। भाषा का सहज प्रवाह और यत्र-तत्र लोकोक्तियों का प्रयोग, इसकी विशेषता है। एक छप्पय देखिए—

रितु वसंत उल्हसी विविह वणराय फलइ सहु
कंटक विकट कटीर पत्त पिक्खंति किंपि नहु
धाराहर वर धवल वारि वरिखंतो घोर घण
कुरलंतउ चातक्क कंठ निबुड्इ इक्क कण
जिण कालि जिसउ दीन्हउ तिसउ तिण कालि पावंति जण।
संघपत्ति राय डूंगर कहइ अलिय दोस दिज्जइ कवण ?[3]

(६) धर्मसमुद्र गणि[4] :

ये खरतरगच्छीय जिनसागर सूरि की पट्ट-परम्परा में विवेकसिंह के शिष्य थे। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) सुमित्र कुमार रास (१५६७-जालोर में) (२) कुलध्वज कुमार रास (१५८४)
(३) अवंति सुकुमाल स्वाध्याय (४) रात्रि भोजन रास (जयसेन चोपई)
(५) प्रभाकर गुणाकर चोपई (१५७३ मेवाड़ में) (६) शकुन्तला रास
(७) सुदर्शन रास[5]

---

१. ह० प्र०—श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर, (लिपिकाल—१६६१) :
२. राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग ३, (जयपुर), *'प्रस्तावना'* :
३. ह० प्र०—श्री अ० जै० ग्र०, बीकानेर :
४. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ११६; भाग ३, पृ० ५४८;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७७६, ७७६ :
५. ह० प्र० नं० ४१७६, —श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :

रात्रि भोजन रास[1] से एक उदाहरण देखिए। सेठ जसोधन के सुन्दर स्त्री और पुत्र का तथा रात्रि-भोजन संबंधी उल्लेख इस प्रकार है—

रंभा घरणि रूयडी रे, पुत्र सलूणा बेवि
× ×
एक दिवस रमतां भेटीआ रे, साधु सिरोमणि सूरि।
सूर भणइ रजनी तणउ रे, करजइ भोजन जेह।
तेहनी सुर सेवा करइ रे, मुगति नहीं संदेह।

शकुंतलारास बहुत छोटी सी रचना है[2]। शकुंतला पर सर्व-प्रथम पद-बंध रचना करने वाले यही जैन कवि हैं। कवि ने अपनी कथा को लिया तो महाभारत से है, किन्तु जैन धर्म के प्रभाववश यत्र-तत्र फेरफार किया है, जैसे—मछली के उदर से मिली मुद्रिका को इसमें सरोवर के तट पर मिली बताया है। स्पष्ट ही कवि की अहिंसा-भावना इसके मूल में है।

राजा आश्रम में हरिण पर बाण मारने को उद्यत होते है; उस समय का वर्णन देखिए—

राय अन्याय तणउ रखवाल,
पाल पृथ्वी तणउ सहू कहइ ए।
ए निरधार ऊपरि हथियार,
भार सोभा केही लहइ ए।

(७) सहजसुन्दर[3] :

ये उपकेशगच्छीय उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे। इनकी रचनाएँ कवित्वपूर्ण हैं, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं—

(१) ईलाती पुत्र सझाय (१५७०)
(२) गुण रत्नाकर छन्द (१५७२)
(३) ऋषिदत्ता रास (१५७२)
(४) रत्नसार कुमार चउपाई (१५८२)
(५) आत्मराज रास (१५८३)
(६) शुक साहेली कथा रास
(७) जंबू अंतरंग रास (१५७२)
(८) यौवन जरा संवाद
(९) परदेशी राजानो रास
(१०) तेतली मंत्री रास (१५९५)
(११) प्रसन्नचंद्र राजर्षि रास
(१२) आंख कान संवाद
(१३) गरम वेलि
(१४) आदिनाथ शत्रुंजय स्तवन,
(१५) ईरियावली रास, आदि।

इनमें 'गुण रत्नाकर छन्द' भिन्न भिन्न रागो और छन्दों में रचा गया है। कथा स्थूलिभद्र के चरित पर आधारित है। परदेसी राजा नो रास[4] से एक उदाहरण दिया जाता है—

१. ह० प्र० नं० ३६६२, बंडल ८४,—श्री अ० जैं० ग्रं०, बीकानेर :
२. जैन साहित्य-संशोधक, (अहमदाबाद) खंड ३, अंक २, में प्रकाशित :
३. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० १२०; भाग ३, पृ० ५५७, १४६२ ;
(ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ७६०, ७७४, ७७६, ७७८, ७८०, ७८३, ६०६ :
४. ह० प्र० नं० ३५५१,—श्री अ० जैं० ग्रं०, बीकानेर :

एक सबल एक नर नबल, तेतु वह विराम ।
इणि परि जोइ मूरखा, सेवउ धरम निराम ॥'
पहिलउ तोलिउ जीव तु, वलि तोलि नव जेव ।
पेखी सरखु भार मइ, श्राणु भाव सदेव ॥
श्रगनि काठ कटका करी, जोती श्रागि न दिठ ।
तुस्यं श्रति नथी तिहां, होयडइ जोइ फुकठ ॥

(८) पार्श्वचन्द्र सूरि[१] :

ये नागपुरीय तपागच्छ के साधुरत्न के शिष्य थे । अपने समय के ये बड़े ही प्रभावशाली आचार्य और विद्वान् थे । इनके नाम से 'पार्श्वचन्द्रगच्छ' आज भी प्रसिद्ध है । लोकभाषा में, गद्य और पद्य दोनों में, प्रभूत रचनाओं की सृष्टि कर, इन्होंने जैन धर्म की महान् सेवा की । इनका जन्म संवत् १५३८, दीक्षा १५४६, उपाध्याय पद १५५४, आचार्यपद १५६५, युगप्रधान १५९९ और स्वर्गवास १६१२ में माना जाता है । इनकी छोटी-बड़ी कुछ रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

(१) साधु वंदना
(२) पाक्षिक छत्रीसी
(३) अतिचार चोपइ
(४) चारित्र मनोरथ माला
(५) श्रावक मनोरथ माला
(६) वस्तुपाल तेजपाल रास
(७) आत्मशिक्षा
(८) आगम छत्रीशी
(९) उत्तराध्ययन छत्रीशी
(१०) गुरु छत्रीशी
(११) मुहपति छत्रीशी
(१२) विवेक शतक
(१३) दूहा शतक
(१४) एषणा शतक
(१५) संघरंग प्रबंध
(१६) जिन प्रतिमा स्थापना द्विपंचाशिका
(१७) अमर सत्तरी
(१८) नियतानियत प्रश्नोत्तर प्रदीपिका
(१९) ब्रह्मचर्य दश समाधि स्थान कुलक
(२०) चित्रकूट चैत्य परिपाटी स्तवन
(२१) सत्तरभेदी पूजा विधि गर्भित
(२२) बोल सझाय
(२३) काऊ सग्गना १९ दोष स०
(२४) वंदन दोष ३२ कुलक
(२५) उपदेश रहस्य गीत
(२६) २४ दंडक गर्भित पार्श्वनाथ स्तवन
(२७) आराधना मोटी (गाथा ४०६)
(२८) संधक चरित्र सझाय
(२९) आदीश्वर स्तवन विज्ञप्तिका
(३०) विधि शतक
(३१) विधि विचार
(३२) निश्चय व्यवहार स्तवन
(३३) वीतराग स्तवन ढाल
(३४) गीतार्थ पदावबोध कुलक

---

१. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० १३९; भाग ३, पृ० ५८९;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०;
(ग) श्री पार्श्वचन्द्र गच्छ टुक रूपरेखा, (—अहमदाबाद, सं० १९९७);
(घ) श्री मत्पार्श्वचन्द्र प्रकरण माळा, (भावनगर) :

(३५) प्रतिशत स्तवन
(३६) बीस विहरमान जिन स्तुति
(३७) शांति जिन स्तवन
(३८) रूपक माला
(३९) एकादश वचन द्वात्रिंशिका
(४०) शत्रुंजय स्तोत्र (४२ कड़ी)
(४१) भाषा छत्रीशी (३७ कडी)
(४२) केशी-प्रदेशी बंध
(४३) अतिशय सहित महावीर स्तवन
(४४) भावना
(४५) आराधना
(४६) आदि जिन विनती
(४७) संवेग बत्रीशी
(४८) कल्याण स्तवन
(४९) श्रावक विधि सम्यकत्व स्वाध्याय
(५०) संवर कुलक, आदि ।

'श्री केशी प्रदेशी प्रबंध[१]' से एक उदाहरण देखिए—

कहइ केसि परदेसि एह अनुमान न कीजइ ।
गुरु उपदेश विमासि शुद्ध मति हियइ धरीजइ ।
न्हाण विलेप विभूष अल्ल साटक पहिरेवी ।
धूप कडछीय गंध पुप्फ बहु हत्थि धरेवी ।
देउल मांहे पइसतां ए कोई तेडइ तुम्ह ।
संचारइ बइसउ सुउ मिलिवा आवउ अम्ह ।

'चउसरण'[२] से :

सबल सत्रुगणि त्रासविउं, सूरा सरणइ जाइ ।
भय टाली पारिइं पडइ, सहीति सुखीयउ थाइ ।।
वज्र तणइ पंजरि वसइ, तेहनइ केहीं बीह ।
इम जाणी रे जीवडा, करि सरणउ नरसीह ।।

(९) छीहल[३] :

ये १६ वी शताब्दी उत्तरार्द्ध के कवि थे, पर कहां के थे, इसका पता नहीं चलता। हिन्दी में इनके 'पंच सहेली' काव्य की ही अधिक चर्चा हुई है[४]। देसाई ने इनको जैनेतर कवि बताया है[५], पर श्री कस्तूरचंद कासलीवाल के अनुसार ये जैन कवि हैं[६]। इनकी निम्न लिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

---

१. ह० प्र०,—श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :
२. श्री मत्पार्श्वचन्द्र प्रकरण माळा, (भाग १ लो) पृ० ९ :
३. (क) राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग २ तथा भाग ३, (जयपुर);
   (ख) डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४९-१५० :
४. (क) मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० १०१ तथा २८८; (द्वितीय संस्करण) :
   (ख) ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, १९००; संख्या ९३; वही;—१९०२, संख्या ३५;
   (ग) रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १९८;
   (घ) डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलो० इ०, पृ० ७१०, (प्रथम संस्करण) :
५. जै० गु० क०, भाग ३, (जैनेतर कविओ), पृ० २१२६ :
६. राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग ३,—'प्रस्तावना' :

(१) पंच सहेली[1] (२) आत्म प्रतिबोध जयमाल[2] (३) उदर गीत
(४) पंथी गीत (५) छीहल-बावनी या बावनी[3]।

'पंच सहेली' और 'बावनी' काव्यत्व से भरपूर, बोलचाल की राजस्थानी में बहुत ही अनूठी रचनाएँ हैं। 'पंच सहेली' एक शृंगारिक रचना है। मालिन, तंबोलिन, छीपिन, कलालिन और सुनारिन इन पांच स्त्रियों को कवि ने पनघट पर इस रूप में देखा और उसका कारण पूछा—

रुखे केस न नौहीयां, मइले कपड़ तास।
बइठी श्रांमण दूमणी, लांबे लिये उसास॥
सूके अधर प्रवालीयां, अति कुमुलांणा मुख।
तउ मइ बूझी जाय कर, तुम्ह कुं केहा दुख॥

इस पर प्रत्येक ने अपनी विरह-वेदना कवि को सुनाई। कुछ दिनों बाद कवि को वे फिर मिल गईं, किन्तु इस बार वे सब प्रसन्नचित्त थीं। कारण यह था कि उनके पति परदेशों से लौट आए थे। इन्हीं सब के सरस वर्णन दोहों में किए गए हैं। विशेषता यह है कि प्रत्येक स्त्री अपने विरह-वर्णन में वे उपमाएं ही देती है जो उसके पेशे से संबंधित हैं। इससे कवि की सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है। मालिन अपने विरह का वर्णन इस प्रकार करती है—

तन तरवर फल लगीया, दुइ नारंग रस पूर।
सूकण लागी विरह झल, सींचण हारा दूर॥
होयइ अंगीठी पइसि करि, विरह लगाई अगि।
प्री पांणी विण ना बुझइ, जलइ सुलगि सुलगि॥
तन वाडी मन फूलडी, प्रिय नित लेता बास।
उहि पांनकि रयण दिन, पीडइ विरह उदास॥
कमल वदन विलखाईया, सूकी सब वनराइ।
खिण इक पिय विण दोहरा, बरस बराबर जाइ॥
चंपा केरी पंखड़ी, गूथ नवसर हार।
जउ गलि घालुं प्रीय विण, लागइ अंग अंगार॥

'बावनी' में नीति, व्यावहारिकता आदि कितने ही विषयों के तल-स्पर्शी वर्णन पाए जाते हैं। वर्णन शैली सर्वत्र कवि की अपनी है। एक छप्पय देखिए—

समय सीत वतीत, वृथा वसतर बहु पायइ
वृथा क्षुधा अतिशय, पूव्वौ पांचामृत जायइ

---

१. (क) यह भारतीय विद्या, भाग २, अंक ४, जुलाई, १६४१ में प्रकाशित भी हो चुकी है।
(ख) ह० प्र०, नं० ७८,–अ० सं० ला०, बीकानेर। यहां उदाहरण इसी से दिए गए हैं।
२. यह अपभ्रंश की रचना बताई जाती है।
३. ह० प्र० नं० २८३१२(अ),–अ० सं० ला०, बीकानेर। यहां उदाहरण इसी से दिया गया है।

वृथा सुरत संभोग, रजनी कइ अंति जु कीजइ
वृथा सलिल सीतल सुवास विणु त्रिसा जु पीजइ
चातुग कपोत जलचर मुयहि, वृथा मेघ जल बहुसयइ।
सो दान वृथा छीहल कवि, जो दिज्जइ अवसरि गयइ॥

(१०) विनयसमुद्र[1] :

ये बीकानेर के निवासी एवं उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचनाकाल अनुमानतः संवत् १५८३ से १६१४ तक है। ये अपने समय के बड़े कवियों में थे। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) विक्रम पंचदंड चोपाई
(२) आराम शोभा चोपाई (१५८३)
(३) अम्बड़ चोपाई (१५९९)
(४) मृगावती चोपाई (१६०२)
(५) चित्रसेन पद्मावती रास (१६०४)
(६) पद्म चरित्र (१६०४)
(७) शील रास (१६०४)
(८) रोहिणेय रास (१६०५)
(९) सिंहासन बत्तीसी चोपाई (१६११)
(१०) नल दमयंती रास (१६१४)
(११) संग्राम सूरि चोपाई
(१२) चंदनबाला रास
(१३) नमि राजर्षि संधि (१६३२)
(१४) साधु वंदना (१६३६)
(१५) ब्रह्मचरि
(१६) श्रीमंधर स्वामी स्तवन
(१७) शत्रुंजय गिरि मंडण श्री आदीश्वर स्तवन
(१८) स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन
(१९) पार्श्वनाथ स्तवन
(२०) इलापुत्र रास

'थंभणा पार्श्वनाथ स्तवन'[2] से उदाहरण देखिए—

ताहरइ दरसण दुरित पुलाई, नव निधि सिधि सवि मंदिर थाई; जाई रोग सवि दूरे।
समरण संकट सगला नासइ, वाघ संग पुण नावइ पासइ; आपइ आणंद पूरे।
वामेय वसुहानंद वायक, तेज तिहुयण नायको।
धरणेन्द्र सेवत चरण अनुदन, सयल वंछिय दायको।
थंभणाधीश जिणेश प्रभु तूं, पास जिणवर सामिया।
वीनती विनइ पयोघ जंपइ, सयल पूरवि कामिया।

(११) राजशील[3] :

ये खरतरगच्छीय साधुहर्ष के शिष्य थे। रचनाएँ ये हैं—
(१) विक्रम खापर चरित चोपाई (१५६३) चितौड़गढ़ में

---

[1] (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० १६८; भाग ३, पृ० ६२५;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७७६, ७७७;
(ग) राजस्थान–भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६,–नाहटा :

[2] राजस्थान–भारती, भाग ५, अंक १, से :

[3] (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ५३९;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७७७, ७७९ :

(२) अमरसेन वयरसेन चोपाई (१५९४)
(३) उत्तराध्ययन छत्रीस गीत
(४) सिंदूर प्रकरण बालावबोध (गद्य रचना)

उदाहरण : विक्रम खापर चरित चोपाई से[१]—

हुइ अचेत धरणी धर ढली, तउ विक्रम मन पूगी रली।
हाक मारि तब ऊभी करइ, खापर चरण वेगि अणुसरइ।
चंचल मन नारी को होइ, तासु चरित नवि जाणइ कोइ।
साहस असत न लाभइ पार, नारी तणा कपट अपार।
अस्त्री रूप प्रगट सापिणी, नारि कहि परतखि पापणी।
नर मारति न आणइ कांणि, होयइ अनेरउ बोलइ जाण।
स्त्री विश्वास न कीजै किमइ, एक पुरुष किम नारी रमइ ?

इस शताब्दी के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कवियों में खेमराज,[२] कल्याणतिलक,[३] धारचन्द्र,[४] नग्नसूरि,[५] संयममूर्ति[६] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(ख) सत्रहवीं शताब्दी प्रथमार्द्ध :

(१२) पुण्यसागर[७] :

ये खरतरगच्छाचार्य जिनहंस सूरि (१५५५-८२) के शिष्य थे। इस शताब्दी के प्रौढ़ विद्वानों में आप अग्रगण्य थे। संवत् १६५० में इन्होंने जैसलमेर में जिनकुशल सूरिजी की पादुकाएं प्रतिष्ठित की थी। अनुमानतः उस समय इनकी आयु ८०-९० वर्षों की होगी और इसके पश्चात् ही किसी समय इनका स्वर्गवास हुआ होगा। रचनाएँ ये हैं—

(१) सुबाहु संधि (१६०४)
(२) मुनि मालिका
(३) प्रश्नोत्तर काव्य वृत्ति (१६४०)
(४) जंबूद्वीप पन्नति वृत्ति (१६४५)
(५) नमि राजर्षि गीत
(६) पैंतीस वाणी अतिशय गर्भित स्तवन
(७) पंच कल्याण स्तु०
(८) पार्श्व जन्माभिषेक

---

१. ह० प्र०,—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :
२. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ५००;
   (ख) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ० १३४ :
३. जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ५१६ :
४. वही; पृ० ५७७, १४९५ :
५. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ९६; भाग ३, पृ० ५२४;
   (ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७७४ :
६. जै० गु० क०, भाग १, पृ० ४६२; भाग ३, पृ० ६०४ :
७. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० १८८; भाग ३, पृ० ६५३;
   (ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ८५१, ८५६, ८६२, ८७४;
   (ग) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह,—'काव्यों का ऐतिहासिक सार', पृ० ४४;
   (घ) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० १८९-१९१ :

(६) महावीर स्तवन (१०) आदिनाथ स्तवन
(११) अजित स्तवन (१२) श्री जिनचन्द्र सूरि अष्टकम्[१]

अंतिम रचना से एक उदाहरण देखिए—

नाम मंत्र जे मुख जपइए, मणु तणु सुद्धि तिसंझ ।
मन वंछित सवि तसु हुवइं, कज्जारंभ अबंझ ।।
जासु सुजसु जगि झिगमगै ए, चंदुज्जल निकलंक ।
प्रभु प्रताप गुण विप्फुरइ, हरइ डमर अरि संक ।।

(१३) कुशललाभ[२] :

ये खरतरगच्छीय वाचक अभयधर्म के शिष्य थे। इनका जन्म अनुमानतः संवत् १५८० के लगभग हुआ। इनकी समस्त रचनाएँ राजस्थानी भाषा में ही हैं और सभी प्रौढ़ कृतियां हैं, जिनसे इनके समर्थ कवि होने का पता चलता है। रचनाओं से कवि का, जैसलमेर के युवराज कुमार हररावल से अच्छा संबंध रहा प्रतीत होता है। रचनाएँ निम्नलिखित हैं—
(१) माधवानल चौपाई[३] (१६१६, जैसलमेर), (२) ढोला–मारवणरी चौपई[४]
(३) तेजसार रास (१६२४) (४) अगड़दत्त रास (१६२५) (५) पूज्यवाहण गीत[५]
(६) स्तंभना पार्श्व स्त० (७) नवकार छंद (८) भवानी छंद (९) गौड़ी पार्श्व छंद
(१०) जिनपालित जिनरक्षित संधि (११) पिंगल शिरोमणि (छन्द शास्त्र)[५]
(१२) दुर्गा सातसी[६]

इनमें 'माधवानल' और 'ढोला-मारू' लोक-कथानकों पर लिखे गए सरस काव्य हैं। 'ढोला-मारू' राजस्थानी साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इसी 'ढोला-मारू' के बिखरे हुए दोहों को एकत्र कर कवि ने अपनी ओर से उसमें चौपाइयां मिलाकर, उसे पूर्ण किया है। पर ऐसा करने में मूल-कथा और इनके चौपाई-काव्य में पर्याप्त भेद हो गया है, जो अस्वाभाविक नहीं है। आलोच्य काल में ढोला-मारू के लोक-कथानक पर लिखने वाले यही मुख्य कवि हैं। मूल 'दूहा' और 'चौपाइयों' की तुलना से इनकी एक विशिष्टता यह दृष्टिगोचर होती है कि ये आगे की कथा के संकेत-सूत्र पहले ही दे देते हैं। ये सूत्र इनकी 'चौपाइयों' में जितने उपलब्ध हैं, उतने मूल दोहों में नहीं। इससे इनकी इस रचना में पर्याप्त नाटकीय गुणों का समावेश हो गया है। नीचे दोनों कथाओं में पाए जाने वाले मुख्य मुख्य अन्तर दिए जाते हैं—

---

१. ऐ० जै० काव्य संग्रह, पृ० ५ :
२. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० २११; भाग ३, पृ० ६८२; (ख) जै० सा० नो सं० इ०;
(ग) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० १९६;
(घ) राजस्थान–भारती, भाग १, अंक ४, जनवरी, १९४७ :
३. G. O. S. Vol. XCIII, (१९४२, वड़ोदा) में प्रकाशित :
४. 'परिशिष्ट (२) (ग)'–(ढोला-मारूरा दूहा)। इसमें कुशललाभ द्वारा रची हुई चौपाइयाँ भी सम्मिलित हैं। आगे दिए हुए कथान्तर इसी रचना, और मूल 'दूहा' के आधार पर हैं।
५. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित :
६. राजस्थान–भारती, भाग १, अंक ४ :
७. ह० प्र० नं० ४१ तथा ६८, –अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

मूल कथा-'ढोला-मारूरा दूहा' (-ना० प्र० स०) :	कुशललाभ-रचित-'ढोला मारवण री चोपई' :
१. इसमें कथा का प्रारंभ सीधा होता है। राजा पिंगल के थोड़े से उल्लेख के पश्चात् कथा-सूत्र बड़ी तेजी से आगे बढ़ता है।	इसमें लम्बी प्रस्तावना के बाद, राजा पिंगल के उमादेवड़ी के साथ, घातप्रतिघात-युक्त विवाह का विस्तृत वर्णन है। यह एक स्वतंत्र कथा सी प्रतीत होती है। पश्चात् मारवणी के जन्म, ढोले के जन्म आदि के वर्णन भी काफी विस्तृत हैं।
२. राजा पिंगल अकाल पड़ने पर नरवरगढ़ आते हैं और वहीं ढोला तथा मारू का विवाह हो जाता है।	राजा पिंगल अकाल पड़ने पर पुष्कर जाते हैं। राजा नल भी मनौती के लिए तीर्थयात्रा के निमित्त वहां आते हैं। वहीं ढोला और मारू का विवाह हो जाता है।
३. पिंगल की राणी ढोला के साथ मारू के विवाह का अनुरोध राजा से करती है।	पहले पिंगल दोनों का रिश्ता तय कर लेते हैं, फिर राणी को इसकी सूचना दी जाती है।
४. विवाह-प्रस्ताव कन्या-पक्ष की ओर से है।	इसमें वर पक्ष की ओर से है।
५. ढोला और मालवणी के विवाह की चर्चा नहीं है। पूगल में सौदागर द्वारा इसका पता लगता है।	दोनों के विवाह और उत्सव का वर्णन है।
६. मारवणी का स्वप्न में ढोले से मिलन होता है और उसका विरह जागृत होता है। वह कुरजों आदि से संदेसा ले जाने की प्रार्थना करती है। बाद में सौदागर आकर ढोले और मालवणी के विवाह की खबर देता है।	सौदागर आकर पहले ढोला का समाचार देता है और मालवणी के साथ हुए विवाह की बात बताता है। तब मारवणी विरह से पीड़ित होती है और वह कुरजों से संदेसा ले जाने को कहती है।
७. इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि मालवणी पूगल के पथिकों को क्यों और किस अधिकार से मरवा देती थी।	सास मारवणी को अच्छी बहू बताती है। इस पर मालवणी के हृदय में क्रोध और ईर्ष्या उत्पन्न होती है और वह ढोले से, पूगल से आने वाले पथिकों को अपने अधिकार में रखने का वचन ले लेती है।
८. राणी पिंगल को ढाढियों को भेजने की सलाह देती है। रात को उन्हें बुलाकर मारवणी अपना सन्देसा देती है।	स्वयं मारवणी ढाढियों को भेजने की सलाह देती है और यह बात राणी द्वारा राजा को कहलाई जाती है।
९. राणी को मारवणी के विरह का पता उसकी सखियों से लगता है।	मारवणी द्वारा कुरजों और पपीहों को कहे गए संदेशों से लगता है।

मूल कथा-'ढोला-मारूरा दूहा' (-ना० प्र० स०)	कुशललाभ-रचित-'ढोला-मारवण री चौपई'
१०. ढाढी, नरवरगढ़ में ढोले के महल के नीचे ठहरते हैं और बरसाती रात में मारवणी का संदेसा जोर जोर से गाते हैं। ढोला सुनता है और सुबह होते ही उनसे सब हाल पूछता है।	ढाढी पहले भाऊ नामक एक भाट से मिलते हैं। वह मौका देख कर ढोले से उन्हें मिला देता है और इस प्रकार ढोला सारा हाल जान जाता है।
११. ढाढी इनाम लेकर चले जाते हैं, पर यह पता नहीं चलता कि ये पूगल पहुंचते है या नहीं।	ढोला ढाढियों को इनाम देकर, उनके साथ में भाऊ भाट को भी भेज देता है। ढाढी व भाऊ पूगल पहुंचते हैं। पिंगल भाऊ की आगवानी करता है।
१२. इसमें बनिये की कथा नहीं है।	इसमें एक बनिए की कथा आती है।
१३. ढोला अरावली की घाटी पार करके ऊंट को पानी पिलाता है।	पानी पिला कर फिर घाटी पार की जाती है।
१४. ढोला ऊंट को पानी पिलाकर जब चलता है, तब उसे *एक गड़रिया* मिलता है जो मारवणी को अपनी साथिन बता कर उसका मन खिन्न कर देता है। ऊंट उसे सांत्वना देता है। आगे ऊमर-सूमरे का चारण मिलता है, जो मारवणी को बूढी बता कर उसे वापिस लौटा देना चाहता है। पश्चात् बीसू नामक चारण मिलता है, जो उनके विवाह का हाल बताता है और मारवणी के रूप-गुण की प्रशंसा करके इनाम पाता है।	अरावली पार करने पर, एक चारण जो पिंगल से रूठा हुआ था, मिलता है और मारवणी को बूढी बताकर उसे वापिस भेज देना चाहता है। पश्चात् मारवणी का भेजा हुआ चारण मिलता है। वह पहले चारण को ऊमर-सूमरे का भेजा हुआ बताता है। बाद में पिंगल का बारहट मिलता है, जो मारवणी के रूप-गुण की प्रशंसा कर इनाम पाता है।
१५. ढोले के पूगल पहुंचने से पहले वाली रात को मारवणी स्वप्न में ढोले से मिलती है। इसका वर्णन वह अपनी सखियों से करती है और उसके शरीर में शुभ-शकुन उत्पन्न होने लगते हैं। बीसू, पिंगल से ढोले के आने की बात कहता है। उसकी आगवानी के लिए आदमी नहीं भेजे जाते। सत्कार के बाद ढोला और मारू का मिलन होता है।	इसमें भी मारवणी उसी रात को स्वप्न में ढोले से मिलती है, परन्तु सब हाल अपनी माता को बताती है। अगले दिन, वह सखियों के साथ, शाम को कुएं पर जाती है, तब उसके शरीर में शुभ-शकुन उत्पन्न होते हैं। *वहीं दोनों का प्रथम* साक्षात्कार होता है। मारवणी ढोले की बातों से उसको पहचान जाती है और तुरन्त ही वापिस आती है। पश्चात् ढोले की आगवानी के लिए आदमी जाते हैं।
१६. दंपति-विनोद में पहेलियां दी गई है।	इसमें पहेलियाँ नहीं है।
१७. अष्टयाम का वर्णन है।	इसमें अष्टयाम का वर्णन नहीं है
१८. ढोला पंद्रह दिन पूगल ठहरता है।	ढोला पूगल में एक महीना ठहरता है।

मूल कथा-'ढोला-मारूरा दूहा' (ना० प्र० स०):	कुशललाभ-रचित 'ढोला-मारवण री चौपई' :
१९. इसमें दहेज नहीं भेजा जाता।	ढोले के नरवर पहुँच जाने के बाद दहेज भेजा जाता है।
२०. मारू से तीन वर्ष एक बड़ी बहन का उल्लेख है, पर उसके नाम का पता नहीं चलता।	बहन का नाम चम्पावती है और दोनों में तीन वर्ष का अन्तर है। यह उल्लेख नहीं है कि कौन बड़ी है और कौन छोटी।
२१. शृंगार की समस्त सामग्री दे दी जाती है।	मारवणी को जीवित कर देने के उपलक्ष्य में ढोला, नौसर हार योगिन को इनाम में देता है।
२२. मारवणी के मरने तथा पुनः जीने और इन घटनाओं के समाचार पूगल पहुँचने का उल्लेख ही नहीं है।	मारवणी के मरने और पुनर्जीवित होने के-दोनों ही समाचार पूगल पहुँच जाते हैं और यथावसर वहां शोक और हर्ष मनाए जाते हैं।
२३. ऊमर-सूमरा द्वारा ढोला को पकड़ने के लिये उत्साहित करने का प्रसंग नहीं है।	ऊमर-सूमरा अपने साथियों को उत्साहित करता हुआ कहता है कि जो ढोला को पकड़ेगा, उसको वह आधा राज्य दे देगा।
२४. ऊमर-सूमरे को दलबल सहित अपने पीछे आता देखकर मारवणी यद्यपि शंका करती है तथापि ढोला उसका समाधान नहीं करता।	उसकी शंका का समाधान ढोला बनिए की कथा सुनाकर करता है।
२५. ऊंट के पैर का बन्धन काटकर, चारण, ऊमर-सूमरे से दूसरे दिन मिलता है।	चारण ऊमर-सूमरे से तीसरे दिन मिलता है।

दुर्गा सात्तसी[1] से उदाहरण देखिए—

पंच सहस्र प्रमाण वरसां लग कीधउ विढण।
जुध एका एका अधिक, वदइ नहीं निवाण॥
तीकम जोवउ त्याग, भड वेवे भिडीया भला।
करणीगार तारइ कह्यउ, मधुकीटकभ वर मांग॥
ब्रह्मांणी ए बात, नीमां मन मानी नहो।
दोली हुई दाणवां, मनदा फेरी मात॥
ग्रहीया नव ग्रह महा ग्रहीया, सहता नहीं रोस तियां सहिया।
पुनिग्रालग पंच नमंत पए, भय स्वर्ग पाताल भमंत भए।

---

१. ह० प्र० नं० ६८, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :

महिपासुर सीध महांतम ही, सुर सेव वयठा रोस सही।
नमता नहीं केई तिके नडया, घण दांणव वईत घाए घडया।

(१४) मालदेव[1] :

ये भटनेर (आधुनिक हनुमानगढ़) के थे और बडगच्छीय भावदेव के शिष्य थे। भावदेव को आचार्य पद संवत् १६०४ में मिला था। इनकी रचनाओं में इनका संक्षिप्त नाम 'माल' ही मिलता है। इनके 'कल्पान्तर-वाच्य-ग्रन्थ' से, इनका रचनाकाल संवत् १६१२-१६१४ के आसपास प्रतीत होता है। अन्य परवर्ती कवियों के उल्लेखों एवं इनकी रचनाओं की हस्तलिखित प्रतिलिपियों के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि सुकवि के रूप में इनकी प्रसिद्धि अपने युग से ही प्रारंभ हो गई थी।

इनकी रचनाओं के बीच-बीच बहुत से सुभाषित मिलते हैं, जो नगीने की तरह अपना आलोक अलग ही प्रकाशित करते हैं। यह कवि की अपनी विशेषता है, जो अन्यत्र प्रायः विरल है। इनके 'मन भमरा गीत' और 'महावीर पारणा' तो आज भी श्रद्धालुओं के हृदयहार बने हुए हैं। रचनाएँ निम्नलिखित हैं —

(१) पुरन्दर चौपाई (शील धर्म पर)
(२) सुर सुन्दर चौपाई (भावना पर)
(३) वीरांगद चौपई (पुण्य-माहात्म्य पर—सं० १६१२)
(४) माल शिक्षा चौपाई
(५) शील बावनी
(६) स्थूलिभद्र धमालि चौपई[2]
(७) भोज प्रबंध
(८) विक्रम चरित्र पंचदंड चौपई
(९) देवदत्त चौपई
(१०) धनदेव पदारथ चौपई (शील पर)
(११) सत्यकी चौपाई
(१२) अंजनासुंदरी चौपई
(१३) राजुल नेमिनाथ धमाल
(१४) बृहदगच्छीय गुर्वावली
(१५) महावीर पंच कल्याण स्त०
(१६) महावीर पारणा
(१७) मृगांक पद्मावती रास (दानधर्म पर)
(१८) पद्मावती पद्मश्री रास
(१९) अमरसेन वयरसेन चौपाई
(२०) फुटकर- भरतबाहुबली गीत, खंदक बाहुबली गीत, धर्म खटोला, मनभमरा गीत[3] आदि।

पुरंदर चौपाई[4] से निम्नलिखित उदाहरण देखिए —

कर चतडी करतार, जइ सिर दीजइ ताहरइ।
तउनूं जाणइ सार, मेवन विछडियां तणो॥

---

१. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ३०५; भाग ३, पृ० ८०७ ;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ८६६-६७, ६०२ ;
(ग) राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २ ;
(घ) नाहटाजी के, 'वाचक मालदेव और उनके ग्रन्थ' (शोध-पत्रिका), तथा 'पुरंदरकुमार की कथा' (मरु-भारती) नामक निबंध :
(ङ) हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ९८-१०० :
२. प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित :
३. जै० गु० क०, भाग ३, पृ० २१०२—२१०४ में प्रकाशित :
४. ह० प्र०, —श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर :

जइ भेटूं करतार, न करूं वीनती आंपणी ।
मइ हो सिरजणहार, ए दिन यूं ही जाइसी ॥
कांइ सिरज्या करतार, त्यागां भोगां बाहिरा ?
वई हमारी वार, अक्षर लिखीया ऊंधतां ॥

× ×

अति प्रीतम जउं वीछडइ, तउ ही न मरणो जाइ ।
हीयडा सांवर सींग ज्युं, दिन दिन नीठुर थाइ ॥
पांणीं तणइ वियोग, कादम ज्युं फाटइ हीयउ ।
इम जो मांणस होइ, साचउ नेह तो जाणिजइ ॥
मइ वालहां वियोग, पाणी पापिण नीसरइ ।
साचउ नेह ते जोइ, जइ लोयण लोहू वहइ ॥

× ×

तां साजण तां नेह जगि, जां आगइ नयणांह ।
भला भलेरा वीसरइ, ऊटरयया वणाह ॥

× ×

माल न गुण छानो रहइ, निदउ जउ मतिमंद ।
लइ कुंडइ करि ढाईयइ, छिप्यउ रहइ क्त चंद ॥
वस्त्र वित्त विद्या विनय, वपु सुन्दर आकार ।
माल जिहां विहां मानियइ, जइ होइ पंच वकार ॥

(१५) हीरकलश[१] :

ये खरतरगच्छीय सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान् और कवि थे। इनका जन्म १५९५, दीक्षा १६१२, और मृत्युकाल १६५७ के लगभग है। रचनाओं से प्रतीत होता है कि इनका भ्रमण अधिकतर बीकानेर और जोधपुर राज्यों में ही रहा। रचनाएँ १६१५ से १६५७ पर्यन्त की मिलती हैं, जिससे इनकी दीर्घकालीन निरन्तर साहित्य-साधना का पता चलता है। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रकाण्ड पंडित थे। इनकी रचनाओं की सूची निम्नलिखित है—

(१) मुख वस्त्र का विचार (१६१५)
(२) सामयिक बतीस दोष कुलक (१६१५)
(३) दिनमान कुलक
(४) जम्बूस्वामी चरित्र (१६१६)
(५) कुमति विध्वंसन चौपाई (१६१७)
(६) मुनिपति चौपाई (१६१८)

१. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० २३४; भाग ३, पृ० ७२५, १५१० ;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पृ०.८५१, ८६६, ९०८ ;
(ग) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० २०८-०९ ;
(घ) 'कवि हीरकलश और उनके ग्रन्थ', (नाहटा– राजस्थान-भारती) ;
(ङ) 'राजस्थानी भाषा के एक बड़े कवि हीरकलश'–
(–शोध-पत्रिका, भाग ७, अंक ४, सं० २०१३) :

(७) सर्वजिन गणधर संख्या विनती (१६१६) (८) राजसिंह रत्नावती संधि (१६१६)
(९) वृहद् गुर्वावली (१६१६) (१०) वीर परम्परा नामावली (१६२०)
(११) लघु सहस्र नाम लेखन (१६२०) (१२) जोइसहीर (१६२१)
(१३) सोलह स्वप्न सझाय (१६२२) (१४) समकित गीत (१६२२)
(१५) सप्त व्यसन गीत (१६२२) (१६) आठमद सझाय (१६२२)
(१७) खरतर आचरण गीत (१८) आराधना चौपाई (१६२३)
(१९) सम्यक्त कौमुदी चौपाई (१६२५) (२०) जिन प्रतिमाधिकार चौपाई (१६२४)
(२१) नेमिनाथ बत्तीसी हिंडोलणा (१६२५) (२२) जम्बू चौपाई (१६३२)
(२३) मोती कपासिया संवाद (१६३२) (२४) रत्नचूड चौपाई (१६३६)
(२५) पंचाख्यान चौपाई (१६३६) (२६) जीभदांत संवाद (१६४३)
(२७) हियाळी (१६४३) (२८) पंच सती द्रोपदी चौपाई (१६५६)

ये ज्योतिष के भी पंडित थे। प्राकृत भाषा में रचित 'ज्योतिषसार' तथा राजस्थानी में रचित 'जोइसहीर' इस विषय की सुन्दर रचनाएँ हैं। 'मोती कपासिया संवाद'[1] से उदाहरण देखिए —

मोती : देव पूजउ गुरु त गति जिहां, मंगल काजि विवाह।
आदर दीजइ अम्हो तणो, सवि ज करइ उछाह।
कपासिया : संभलि तवइ कपासीउ, मोती म हुय गमार।
गरव न कीजइ बापड़ा, भला भली संसार।
× ×
मोती : कहि मोती सुणि कांकडा, मइ तइ केहो साथ ?
हुं साधुं कंचण सरिस, तइ खल कूक स बाथ।
मइ सुर नरवर भेंटीया, कीधां जिहां सिंगार।
तइ भेंटीया गोधण वलइ, जिहां कीया आहार।
कपासिया : उत्तर दीयइ कपासीयउ, अम्ह आहार जोइ।
गायां गोरस नीपजइ, वलवे करसण होइ।
गोधण जवि वांटउ न हुइ, तवि चरतइ कंतार।
पान वडइ तब वेवीवइ, सोवन मोती हार।

(१६) कनकसोम[2] :

ये खरतरगच्छीय अमरमाणिक्य के शिष्य और साधुकीर्ति के गुरु भ्राता थे। रचनाएँ निम्नलिखित हैं —

---

१. ह० प्र० नं० ८२, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर :
२. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० २४५ ; भाग ३, पृ० ७४३, १५१४;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ८६६ ;
(ग) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० १६४-१६५ :

(१) जइत पद वेलि (१६२५) (२) जिनपालित जिन रक्षित रास (१६३२)
(३) आषाढ़ भूति चौपाई (संबंध) (१६३८): (४) हरिकेशी संधि (१६४०)
(५) आर्द्रकुमार चौ० (१६४४) (६) मंगलकलश रास (१६४९)
(७) जिनवल्लभ सूरि कृत पांच स्तवनों पर अवचूरि (१६१५)
(८) थावच्चा सुकोशल चरित्र (१६५५) : (९) कालिकाचार्य कथा (१६३२)
(१०) जिनचन्द्र सूरि गीत (१६२८) (११) हरिबल संधि
(१२) नेमि फाग, आदि ।

आषाढभूति चौपाई[1] से उदाहरण देखिए —

नट ए पुत्री सीखवी, ए मुनिवरनि मोहउ रे।
हाव भाव विभ्रम करी, काम दुधा घरि दोहउ रे।
भुवन सुंदर जय सुन्दरी, मनि मोहन वर नारी रे।
जन मन रंजन अवतरी, गोरी रति अनुकारी रे।

कुंच विच हार विण्यउ इस्यउ, गिरि विचि गंग प्रवाहा रे।
नाभि मंडल सागर संगरइ, जांनु कि तीरथ लाहा रे।

पहिर पटोली मलकती, कामधजा फहराणी रे।
जानु कि विजुरि चमकती, मेघ घटा उल्हराणी रे।
मुनिवर मोर उद्याहती, कहती अनुप कहाणी रे।
करइ वीनती मुसकती, आषाढभूति सुहाणी रे।

(१७) हेमरत्न सूरि[2] :

(अनुमानतः सं० १६१६-१६७३) । ये पूर्णिमागच्छ के वाचक पद्मराज के शिष्य थे। रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) महीपाल चौपाई (लगभग १६३६)–भाव पर
(२) अमरकुमार चौपाई (लगभग १६३६-३७)–दान पर,
(३) सीता चौपाई-शील पर,
(४) गोरा बादल पदमिनी चौपाई (१६४५)
(५) लीलावती (१६७३)-शील पर।

संभवतः ये रचनाएँ भी इनकी हैं—

(क) जदंवा बावनी (ख) ६ अष्टक तथा (ग) शनिश्चर छन्द आदि।

---

१. ह० प्र० –श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :
२. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० २०७; भाग ३, पृ० ६८०;
(ख) जै० सा० नो सं० इ०, पैरा ८६६-६७ :

'गोरा बादल री चौपई' :

इनके 'गोरा-बादल' काव्य के संबंध में काफी चर्चा हुई है[1]। इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में है[2], जिसके आदि और अन्त के दो पृष्ठों के चित्र यहां दिए जा रहे हैं। इसकी भाषा के संबंध में पहले लिखा जा चुका है[3]। इसमें प्रधान रस वीर है और गौण रूप से शृंगार का वर्णन हुआ है। यह रचना स्वामिधर्म की प्रशंसा में लिखी गई है, साथ ही पद्मिनी के शील की भी बड़ाई की गई है। कवि प्रारम्भ में कहता है—

वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज।
सामधरम रस सांभलउ, जिम होवइ तन तेज॥

और अन्त में इसकी पुष्टि करता है—

सील धरम सुणतां सुख होइ, सामि धरम सुणतां जस लोइ।
सीलइ मन वंछित फल लहइ, सामि धरम सां पुरिसां वहइ।

यद्यपि पद्मिनी को छुड़ाने में गोरा और बादल दोनों ने ही महान् और स्तुत्य प्रयत्न किए थे (गोरा ने तो युद्ध में प्राण ही दे दिए थे, और कवि दोनो की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है), तथापि प्रधानता बादल के चरित को ही दी गई है। निम्नलिखित पद्यांशों से यह स्पष्ट है —

(क) बादल राव तणी ए कथा, सुणतां नावइ निज घरि विथा।
(ख) वात रची ए बादल तणी, सामधरम अति सोहामणी।
वीरारस सिणगार विसेष, रसवर सरस अछइ सुविसेष।

इसकी कहानी तो लोक-प्रसिद्ध ही है, कहीं कहीं कुछ अंश कथा-संबंध के लिए कवि ने अपनी ओर से जोड़े हैं।

कथा का प्रारम्भ इस प्रकार है राजा रतनसेन को भोजन स्वादिष्ट नही लगा, तो पटराणी ने ताना दिया —

परणी जाय कोई पदमिणी, ते जिम भगति करइ तुम्ह तणी।

यह वात राजा को लग गई। वह घर से निकल पड़ा और कई कष्ट सहने के पश्चात् एक जोगी की सहायता से सिंघल में पद्मिनी को पा लेने में समर्थ हो गया। कवि कहता है —

पांन पदारथ सुघड नर, अणतोलीया विकाई।
जिम जिम पर भुइ संचरइ, मोलि मुहंगा थाइ।

---

१. (क) ना० प्र० सभा,—खोज रिपोर्ट, सन् १९४४-४६, संख्या ४९४ ;
(ख) राजस्थान में हिंदी के ह० लि० ग्रन्थों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ५८, १७८ ;
(ग) वही; —द्वितीय भाग, पृ० ८३ ;
(घ) शोध-पत्रिका, भाग ३, अंक २, २००९ ; भाग ३, अंक ४, २००९ :
(ङ) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५७ अंक १, २००९ :

२. प्रति नं० २९ :

३. देखिए—पृ० २६-२७ :

हंसा नइं सरवर घणा, कुसम केती भवरांह।
सपुरिसां नइं सज्जन घणा, दूरि विदेस गयांह ॥

विवाहोपरान्त राजा पद्मिनी सहित चित्तौड़ आ गया। एक दिन अन्तःपुरमें प्रेमालाप के समय, राघव चेतन राजा के पास चला गया, इस पर क्रुद्ध होकर, राजा ने उसे निकाल दिया। वह वहां से अलाउद्दीन के पास दिल्ली गया और उसे पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए उकसाया। सुल्तान ने राघव चेतन की राय पर सर्वप्रथम सिंघल पर चढ़ाई की, किन्तु वहां उसे बुरी तरह असफल होना पड़ा। दूसरी बार चित्तौड़ की बारी आई। अन्त में अलाउद्दीन महल में भोजन करने और भीतर से वहां के किले को देख कर ही वापिस आ जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। वह राघव चेतन के साथ महल में गया और भोजन करते समय उसने अकस्मात् झरोखे से एक झलक पद्मिनी की देखी। किले के बाहर आते समय राजा धोखे से बन्दी बना लिया गया। सुल्तानने शर्त रखी कि यदि पद्मिनी को मेरे हरम में भेज दिया जाए तो मैं राजा को छोड़ दूंगा। इधर चित्तौड़ में, पद्मिनी को सौंपकर राजा को छुड़ाने की बात ही सभासदों को पसन्द आई। पटराणी का पुत्र वीरभाण भी इस मंत्रणा में शामिल था। इस पर पद्मिनी अपनी सहायतार्थ, गोरा के पास गई और गोरा और बादल दोनों लड़ने को उद्यत हो गए। राजा को छुड़ाने की उन्होंने तरकीब सोची। पालकियों में अन्य दासियों सहित पद्मिनी के आने की बात अलाउद्दीन से कहकर, किसी प्रकार राजा को उन्होंने छुड़ा लिया। फलस्वरूप भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें गोरा खेत रहा, किंतु विजय राजपूतों की हुई। बादल किले में विजयी होकर आया। वहां उसका अपूर्व स्वागत किया गया। अलाउद्दीन अपना सा मुंह लेकर दिल्ली चला गया। इस दुस्साहस पर उसको अपनी बेगमों से ताने भी सुनने पड़े।

शृंगार का वर्णन काव्य में अधिक नहीं है। चित्तौड में, पद्मिनी के रूप का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

बादल माहि जिम बीजली, चंचल जिम चमकंति।
महीयलि मांहि तेहनउं, झलहल तन झलकंति॥

× ×

हंस गमणि हेजइ हसइ, वदन कमल विहसंति।
दंत कुली दीसइ जिसी, जाणि की हीरा हुंति॥

वीररस का बड़ा ही सजीव वर्णन मिलता है। राजा को छुड़ाने के पश्चात् सुल्तानी सेना के साथ युद्ध का वर्णन देखिए—

धड ऊपरि धड ऊससि पडइ, ग्रहि करवाळ मूंड विण भिडइ।
रण धावरि मावइ रजपूत, पाडइ पडइ किहाडइ भूत।
नवि चीतारइ घर सुख साथ, वाहइ वहकि छछोहा हाथ।
रे! रे! मुगल भांषा ढोर! इम कहि वाहइ लग अघोर।
पदमिण साटइ से करवाल, किहां दिल्ली घर धन संभालि।

विजयोपरान्त बादल घर आया। गोरा की स्त्री ने पूछा —

गोरिल श्री इम उच्चरइ, सुणि बादल सममय।
भो प्रिय रिण मांहि झूंझतां किण परि वाह्या हय?
किण परि वाह्या हय वछ दे सुहड पलाणा।
भांजू गय घड घट्ट, जाइ नेजइ ग्रस चाड्या।
सूर सुहड संहारि, जेह बहु कीधा गोरिल।
बादल कहै सुणि मात रिणही इम पडीयो गोरिल।

इतना सुनते ही उसका रोम रोम पुलकित हो उठा —

एम सुणी नइं असत्री तेह, विकसित वदन हुई ससनेह।
रोम रोम सूरिम ऊछली, मुलकी महिला बोलइ वली।

और एक वीर क्षत्राणी की तरह तत्काल ही वह राती हो गई। भावों की सरलता और भाषा के सहज प्रभाव के कारण यह रचना निस्संदेह अनूठी है। लोक-प्रचलित कथा को कवि ने अत्यन्त आत्मीयता के साथ सीधे-सादे ढंग से कहा है और यही इसकी विशेषता है। कवि के अनुसार यद्यपि यह 'लिखमी वर्णन' नामक पहला ही खंड है, तथापि कथा की दृष्टि से अपने आप में यह पूर्ण काव्य प्रतीत होता है।

(१८) उपाध्याय गुणविनय[१] :

(अनुमानतः स० १६१३-१६७६)। इनके गुरु प्रसिद्ध विद्वान् जयसोम थे। संभवतः इनका विद्याध्ययन गुरु के पास ही हुआ। सवत् १६४१ से मृत्यु पर्यन्त इन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। कवि के बड़े-बड़े काव्य, आलोच्यकाल के पश्चात् लिखे गए। ग्रन्थों से इनकी बहुमुखी प्रतिभा का पता चलता है। संस्कृत, राजस्थानी-गद्य, संग्रहात्मक, अनेकार्थ और खंडनात्मक ग्रन्थों को छोड़कर, इनकी कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं —

(१) कयवन्ना संधि (१६५४)
(२) कर्मचन्द वंशावली रास (१६५६)
(३) अंजनासुंदरी रास (१६६२)
(४) ऋषिदत्ता चौपाई (१६६३)
(५) गुणसुन्दरी चौपाई (१६६५)
(६) नल दमयंती प्रबंध (१६६५)
(७) जम्बू रास (१६७०)
(८) धन्ना शालिभद्र चौपाई
(९) अगडदत्त रास
(१०) कलावती चौपाई (१६७३)
(११) बारह व्रत रास (१६५५)
(१२) जीव स्वरूप चौपाई (१६६४)
(१३) मूलदेव चौपाई (१६७३)
(१४) दुमुह प्रत्येक बुध चौपाई
(१५) शत्रुंजय चैत्य परिपाटी (१६४४)
(१६) पार्श्वनाथ स्तवन (१६५७)
(१७) चार मंगल गीत (१६६०)
(१८) शत्रुंजय यात्रा स्त० (१६७२)
(१९) जैसलमेर पार्श्वनाथ स्त० (१६७२)
(२०) जिनराज सूरि अष्टक (१६७६), आदि

१. (क) जै० गु० क०, भाग १, पृ० ३२६ ; भाग ३, पृ० ८२८;
(ख) जै० गा० मो गं० ६०, पै० ८३६, ८४१, ८४४, ८६३, ८६६, आदि।
(ग) शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक २-३, १९५६, 'उपाध्याय गुणविनय और उनके ग्रन्थ'। इसमें प्रकाशित 'जीव प्रतिबोध गीत' से आगे उदाहरण दिया गया है।

उदाहरण : जीव प्रतिबोध गीत से—

> जीव कछु बूझयइ रे, मोह्यउ मोहइ मूढ़ !
> विषय कषाय महा अरी रे, तिनका करइ वेसास
> तिन सेती खेली रमइ रे, क्या सुख की तोही ग्रास
> तिनकउ हूं उवा मेरी हुइ रे, अइसउ करइ गुमान
> आपरस्युं रातो तिया रे, धिग धिग तेरा ज्ञान
> मृगनयनी दोले धियउ रे, सुख मानइ मन मांहि
> नरग मरया तिन पापयो रे, काठिस्यइ कुण गहि बांह। आदि।

(१६) समयसुन्दर[1] :

इनका जन्म समय अनुमानतः संवत् १६२० है (जीवनकाल–१६२०-१७०२), तथापि इनकी सभी भाषा कृतियां आलोच्य काल के पश्चात् लिखी गई हैं। कवि ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मृत्यु पर्यन्त, अर्ध शताब्दी तक निरन्तर, सभी प्रकार के विशाल साहित्य का निर्माण किया। इसीसे कहावत है —"समय सुन्दर रा गीतड़ा, कुंभै राणै रा भीतड़ा"। इससे पता लगता है कि कवि के गीतों की संख्या अपरिमेय है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समयसुन्दर अपने समय के अत्यन्त प्रख्यात कवि और प्रौढ़ विद्वान् थे।

इस शताब्दी प्रथमार्द्ध के कुछ अन्य प्रमुख कवियों में विजयदेव सूरि,[2] जयसोम,[3] नयरंग,[4] कल्याणदेव,[5] सारंग,[6] मंगलमाणिक्य,[7] साधुकीर्ति,[8] धर्मरत्न,[9] विजयशेखर,[10] चारित्रसिंह[11] आदि के नाम स्मरणीय हैं।

---

१. (क) जैं० गु० क०, भाग १; भाग ३ ; (ख) जैं० सा० नो स० इ० ;
(ग) ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह ; (घ) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि ;
(ङ) समयसुन्दर कृति-कुसुमांजलि ; (च) ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, २००६:
२. (क) जैं० गु० क०, भाग ३, पृ० ५३६; (ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैरा ७७७, ७७६;
३. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० ४६३ ; भाग ३, पृ० ६७३ ;
(ख) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० १६७ ;
४. (क) जैं० गु० क०, भाग ३, पृ० ६६८ ; (ख) जैं० सा० नो स० इ०, पैं० ८५६ ;
(ग) युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, पृ० १६२ ; (घ) ऐति० जै० का० संग्रह;
५. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० २७५; भाग ३ पृ० ७६८; (ख) जैं० सा० नो इ०, पैं० ८६६;
६. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० ३०३ ; भाग ३, पृ० ८०१;
(ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ८६६, ८६७, ६०० :
७. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० २४७; भाग ३, पृ० ७४८;
(ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ८६६-६७; ६०३ :
८. (क) जैं० गु० क०, भाग १, पृ० २१६; भाग ३, पृ० ६१६,
(ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ८५१, ८८१, ८८४, ८६६-६७;
(ग) युगप्र० श्री जि० सूरि, पृ० १६२-६३; (घ) ऐ० जैं० का० संग्रह :
९. (क) जैं० गु० क० भाग १, पृ० २६७; भाग ३, पृ० ७६५;
(ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ८६६ (ग) यु० प्र० श्री जि० सू०, पृ० १६४ ;
१०. (क) जैं० गु०, १ । पृ० २८५; भाग ३, पृ० ७७५; (ख) जैं० सा० नो सं० इ०, पैं० ८६६. :
११. (क) जैं० गु०, १ । पृ० २४२; भाग ३, पृ० ७३६, १५२४; (ख) „ „ ८५६, ८८२
(ग) यु० प्र० श्री जि० सूरि, पृ० १६७ ; (घ) ऐ० जैं० का० संग्रह :

संक्षेप में, जैन-साहित्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. एक विशिष्ट शैली सर्वत्र लक्षित होती है, जिसको जैनशैली कहा जा सकता है।
२. अधिकांश रचनाएँ शान्त-रसात्मक हैं।
३. कथा-काव्यों, चरित-काव्यों और स्तुतिपरक रचनाओं की बहुलता है।
४. मुख्य स्वर धार्मिक है, धार्मिक दृष्टिकोण प्रधान है।
५. प्रारम्भ से लेकर आलोच्यकाल तक और उसके पश्चात् भी साहित्य की धारा अविच्छिन्न रूप से मिलती है।
६. विविध काव्य रूप अपनाए गए, जिनमें कुछ प्रमुख ये हैं:—
रास; चौपाई; संधि, चर्चरी; ढाल; प्रबन्ध-चरित-संबंध–आख्यानक-कथा ; पवाडो; फागु ; धमाल; बारहमासा ; विवाहलो ; वेलि ; धवल ; गंगत ; संवाद ; कक्का-मातृका-बावनी ; कुलक; हीयाली ; स्तुति ; स्तवन ; स्तोत्र ; सज्झाय : माला ; वीनती ; वचनिका आदि आदि।
७. साहित्यके माध्यम से जैन धर्मानुसार आत्मोत्थान का सर्वत्र प्रयास है।
८. परिमाण और विविधता की दृष्टि से सम्पन्न है।
९. जैन कवियों ने राजस्थानी के अतिरिक्त संस्कृत, तथा प्राकृत-अपभ्रंश में भी रचनाएँ की।
१०. इन कवियों ने लोकगीतों और कुछ विशिष्ट प्रकार के लोक कथानकों को जीवित रखने का स्तुत्य प्रयास किया है।
११. जैन-साहित्य के अतिरिक्त विपुल जैनेतर साहित्य के संरक्षण का श्रेय जैन विद्वानों और कवियों को है।
१२. भाषा शास्त्रीय अध्ययन के लिए जैन-साहित्य में विविध प्रकार की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं, जिनसे भाषा के विकास-क्रम का वैज्ञानिक विवेचन किया जा सकता है। डा० टैसीटरी का पुरानी पश्चिमी राजस्थानी संबंधी महान् कार्य जैन रचनाओं के आधार पर ही है।

अध्याय १२

सन्त साहित्य

(क) सामान्य परिचय :

राजस्थान के लोकजीवन की अध्यात्मिक निष्ठा, धार्मिक भावना और उसके सामाजिक-नैतिक धरातल को प्रभावित और अनुप्राणित करने में सिद्ध पुरुषों, सन्तों, चारणों और जैनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। सिद्ध पुरुषों में निम्नलिखित पांचों की प्रसिद्धि बहुत है—

(१) पाबूजी राठौड़, (२) रामदेवजी तंवर, (३) हड़बूजी सांखला (४) मेहाजी मांगलिया और (५) गोगाजी चौहान। इस विषय में यह दोहा प्रचलित है —

पाबू हड़भू रामदे, मांगलिया मेहा।
पांचूं पीर पधारज्यो, गोगादे जेहा॥

इनको पीर भी कहा जाता है। यह नाम इनके लिए संभवतः मुसलमानी प्रभाव के कारण प्रचलित हो गया प्रतीत होता है। अन्यथा, ये पांचों, आर्य संस्कृति के दृढ़ अनुयायी हिन्दू वीर ही हैं, जिन्होंने प्रतिज्ञापालन, धर्म और परोपकार के निमित्त अपने प्राण विसर्जित किए थे[1]। समूचे राजस्थान और उसके बाहर भी, जनसाधारण में इनकी बहुत मान्यता है। इनके पुजारी बहुधा निम्न कही जाने वाली जातियों में से होते हैं। इसी प्रकार 'तेजा' नामक जाखड़ जाट को भी सिद्ध पुरुष माना जाता है। इनकी मान्यता इस प्रान्त के प्रायः सारे खेतिहर-समाज में है। होली के पश्चात् और खेत बीजते समय ऊंची तान से 'तेजा' गाया जाता है।

इस संबंध में, मारवाड़ के राठोड़ राव सलखाजी के पुत्र और वीरमजी के बड़े भाई रावल मल्लीनाथजी[2] और उनकी पत्नी रूपांदे[3] के नाम भी विशेष रूप से स्मरणीय हैं। कहते हैं, युवावस्था में मल्लीनाथजी उद्धत स्वभाव के थे, पर रूपांदे की प्रकृति धार्मिक थी। वे सत्संगति किया करती और रामदेवजी के 'जम्मे' में जाया करतीं थीं। इस पर रावलजी ने इनको कष्ट दिए, पर अन्त में स्वयं रावलजी को ही रूपांदे के विचारों से सहमत होना पड़ा। रूपांदे के गुरु धारू मेघवाल बताए जाते हैं, पर इनके पदों से उगमसी भाटी ही गुरु प्रतीत होते हैं। धीरे धीरे रावलजी बड़े ईश्वर भक्त हुए और उन्होंने शक्तिमत की स्थापना की। इनकी मृत्यु संवत् १४५६ में हुई। ये भी सिद्ध पुरुष माने गए हैं। मारवाड़ में इनके नाम पर मालाणी प्रदेश विख्यात है। मल्लीनाथजी और रूपांदे के विषय में रामदेवजी तंवर के

---

१. शोध-पत्रिका, भाग १, अंक ३, संवत् २००४ :
२. पृ० १०५-१०६ :
३. (क) मरु-भारती, वर्ष ५, अंक ३, सं० २०१४, -'रूपांदे का जीवन संगीत';
(ख) वही ; वर्ष २, अंक २, सन् १९५४ :

परम भक्त हूरजी भाटी द्वारा रचित 'माल री महिमा'[1] और 'रूपांदे री बेल'[2] नामक भजन प्रचलित हैं। रामदेवजी और रूपांदे के कुछ 'सबदों' का प्रकाशन हुआ है[3] तथापि उनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं कही जा सकती।

ये सभी महात्मा आलोच्यकाल से पूर्व हुए हैं। इन सभी के राजस्थान में जगह जगह पर देवरे हैं, जहां प्रतिवर्ष बड़े बड़े मेले लगते हैं। लोकगीतों में उनकी कीर्ति आज भी सुरक्षित है। जातीय कट्टरपन को दूर करने में इनकी देन महान् है।

आलोच्यकाल के सन्तों में दादू और उनके शिष्य रज्जबजी, बखनाजी, बाजिदजी तथा हरिदासजी निरंजनी और सिद्धों में जसनाथ और जाम्भोजी विवेचनीय हैं। लालदासी पंथ के प्रवर्तक, मेवा जाति के लालदासजी (जन्म अलवर राज्य के धौलीधूप गांव में, संवत् १५६७ में और मृत्यु संवत् १७०६ में) भी इसी समय में हुए, परन्तु उनकी रचनाओं की भाषा में राजस्थानी का प्राधान्य नहीं है। भाषा की यही प्रवृत्ति-दादू के अन्य शिष्यों—जगजीवनजी, जनगोपालजी, जगन्नाथदासजी, माधोदासजी, संतदासजी और प्रशिष्य भीखजनजी की रचनाओं में पाई जाती है[4]।

सन्तों की वाणियों के दो प्रमुख उद्देश्य रहे—(१) स्वानुभूति की अभिव्यक्ति और (२) आत्मज्ञान की प्रेरणा। संतों ने जो भी कुछ कहा, अपने अनुभव के आधार पर कहा; इसलिये उनके कथन में सचाई है और उसका असर अचूक है। आत्मानुभव को ठीक उसी रूप में व्यक्त कर देना सहज नहीं है, सरल नहीं है। उसके लिए रूपकों, प्रतीकों, दृष्टान्तों आदि का सहारा लेना पड़ता है और कभी कभी तो हलके संकेत मात्र ही किए जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में वाणी मौन हो जाती है। यह भार वहन करने में भाषा के पैर लड़खड़ा से जाते हैं और वह अटपटी हो जाती है।

संतों ने जीवन के गंभीर और जटिल प्रश्नों पर व्यावहारिक रूप से विचार किया है, उसमें निहित चिर-सत्य की झांकी देखी है और तद्नुकूल उन्होंने जनजीवन में आत्मज्ञान का प्रतिबोध कराया है, जागरण की भैरवी गाई है। धरती पर रह कर उन्होंने धरती से प्यार किया। आकाश का मोहक प्रांगण लुभाकर, उन्हें धरती से दूर न ले जा सका। इस कारण व्यावहारिकता का गुण उनकी वाणियों में है; उनके जीवन के कार्यकलाप भी इसी की पुष्टि करते हैं। जीवन के धूप-छांही ताने-बाने को उन्होंने भली प्रकार टटोलकर, ठोक-पीट कर परखा है। यही कारण है कि उनकी वाणियां जनजीवन में घुल मिल गई हैं। सैकड़ों तो आज कहावतों और सुभाषितों के रूप में यथावसर कही जाती हैं। न जाने कितनों ने ही उनके उपदेशों को व्यवहार में लाकर, अपना जीवन सफल बनाया है। संतों के वचनों से

१. शोध-पत्रिका, भाग २, अंक २, सं० २००६, –'मारवाड़ के महात्माओं का साहित्य':
२. राजस्थानी-साहित्य, (उदयपुर), वर्ष १, अंक४, मई, १६५४, आदर्श भक्तिनिष्ठ रानी रूपादे':
३. 'भान-पद-संग्रह', –तीसरा भाग, सं० २००७; (प्रकाशक-सेठ रामगोपाल मोहता, बीकानेर):
४. विशेष परिचय के लिये देखिए–(क) डा० मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य ;
(ख) श्री परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परंपरा :

कितनों ने जीवन में साहस और स्पंदन पाया है, कितनों को प्रेरणा मिली है—इसका लेखा-जोखा कौन दे सकता है ?

उक्त दो पहलुओं के निदर्शन में संतों को स्वतः ही एक और—सामाजिक-नैतिक पहलू पर भी विचार करना पड़ा। तात्विक दृष्टि से प्राणीमात्र एक हैं, एक नियंता की सृष्टि हैं। परमार्थ पालन में सब समान है, वहां न भेदभाव है, न विषमता। चूंकि मानव-जीवन का सामाजिक और अध्यात्मिक रूप अन्योन्याश्रित है, अतः भेद-बुद्धि निस्सार और व्यर्थ है, वह पथभ्रष्ट करनेवाली है। इस कारण संतों और सिद्धों ने भेदभाव की भर्त्सना की है, उसे घातक बताया है। उन्होंने मन की पवित्रता पर वारंवार जोर दिया है और जीव-हत्या का निषेध किया है। हिन्दू-मुसलमान, ऊंच-नीच, छोटे-बड़े आदि के भेद मनुष्य ने बनाए हैं। इनमें फंसकर वह आत्मज्ञान से च्युत हो जाता है। इसी प्रकार, आत्म-प्रदर्शन, गर्व-गुमान आदि व्यर्थ तो हैं ही, साधक को गुमराह भी करते हैं।

पर, इनकी प्राप्ति कैसे हो ? संतों ने कहा है—प्रेम से। निश्चल प्रेम के सम्बल से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में संतों का यह नुस्खा बड़ा कारगार सिद्ध हुआ। इससे सामाजिक विषमता दूर होकर, आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है। प्रेम का यह मार्ग, समान रूप से, सबके लिये संभव है, पर इसमें कुछ सावधानी और सचेष्टता की आवश्यकता है। प्रेम के पथिक होने में डरने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सन्त उस रास्ते से जा चुके हैं। कहना न होगा कि संत अपनी वाणियों में 'प्रेम-पंथ' का वर्णन करते थकते नहीं। इसलिये संतो की वाणियों में तल्लीनता और तन्मयता के गुण हैं, उनमें भाव-विभोर और मुग्ध कर देने की शक्ति है। शरीर, इन्द्रियों और मन से परे बैठा हुआ आत्मा तक इस स्नेह से सिंचित होकर रस मग्न हो जाता है। ऐसी रसावस्था में क्षुद्रता, कलुषता और वैषम्य को स्थान ही कहा रहा जाता है ? वाणी के इस विधान में, काव्य-शिल्प-तत्व और भाषा-सौकर्य के प्रश्न नहीं उठते, क्योंकि मूलतः संत तो साधक हैं, कवि नहीं।

इस संत-साधना को प्रभावित करने वाले हैं गोरखनाथ और नाथ पंथ। जिन पांच सिद्धों और रावल मल्लीनाथजी आदि की चर्चा ऊपर की गई है वे सब एक प्रकार से नाथ पंथ के अनुयायी थे।

जांभोजी तथा जसनाथ की साधना के मूल प्रेरणा-स्रोत भी गोरखनाथ और नाथपंथ ही हैं। प्रकारान्तर से इनकी 'वाणी' भी वही है जो गोरखनाथ की है। यौगिक क्रियाओं की पारिभाषिक शब्दावली और विषयवस्तु भी प्रायः वही है, पर कहने का ढंग उनका अपना है। जो कुछ भी उन्होंने कहा है, उसको अपने जीवन में उतार कर ही कहा है और गुरु तो उन्होंने गोरखनाथ को माना ही है। यही नहीं, जसनाथी और विश्नोई सम्प्रदायों में, गोरखनाथजी के सदेह प्रकट होकर, उनके प्रवर्त्तकों को ज्ञान देने और शिष्य बनाने की कथा सत्य ही मानी जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से, इसमें भले ही सचाई न हो, तथापि इससे इन दोनों सिद्धों के गोरख और नाथपंथ से सीधे प्रेरणा ग्रहण करना तो सिद्ध होता ही है। अतः जांभोजी और जसनाथ पर कबीर का प्रभाव देखना उचित प्रतीत नहीं होता। राजस्थान के लोक-जीवन और विचार-प्रवाह को गोरख और नाथपंथने बहुत दूर तक प्रभावित किया है। राजस्थानी

साहित्य की अनेक रचनाओं से इसकी पुष्टि होती है। राजस्थान पर गोरखवाणी का जादू बहुत अधिक रहा। नाथ-सम्प्रदाय के चमत्कारों ने यहाँ के अनेक सिद्ध साधकों को आकर्षित किया। यहां की जनता ने प्राय: किसी भी ऐसे सिद्ध-साधकों को स्वीकार नहीं किया जो गुरु गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में नही माने गए हों[1]। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार, गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए[2]। दादू और उनके शिष्यों-प्रशिष्यो तथा हरिदास निरंजनी को कबीर और निर्गुण सम्प्रदाय से पर्याप्त प्रेरणा मिली है। मोटे रूप से, इन सभी सन्तों की विचारधाराएं समान ही हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति, साधना और संस्कार भिन्नता के कारण है। दादू पंथ और निरंजनी सम्प्रदाय राजस्थान में बहुत प्रबल रहे हैं, हिन्दी संसार उनसे परिचित ही है।

इस संबंध में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहली यह कि ये सन्त वैष्णवी विचारधारा का परित्याग नहीं कर पाए, और यह संभव भी नहीं था।

दूसरी यह कि इनका दृष्टिकोण समन्वयमूलक था। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप, व्यावहारिक दृष्टिकोण से, जो बातें उनके अनुभव में आईं और अच्छी लगी, उन्होंने उनको मान्यता दी।

यों सबकी मूल विचार धाराएं हिन्दू-धर्म से ही संबंधित हैं। वेदान्त के निरुपण और प्रतिपादन का प्रयास भी हुआ है। साधना सबकी निर्गुण ब्रह्म की है। कहा जा सकता है कि अपनी अपनी सम्प्रदायगत विशिष्टता के अतिरिक्त, जसनाथी और बिश्नोई सम्प्रदाय के धर्म-नियमों में पर्याप्त वैष्णवी विचार धारा का प्रभाव है, जबकि दादू पंथ और निरंजनी सम्प्रदाय की दृष्टि वेदान्त चर्चा, निर्गुण ब्रह्म-स्वरूप और भेद-बुद्धि के निराकरण की ओर अधिक है।

जहां तक 'वाणियों' के समझे जाने का प्रश्न है, वे सब जगह समान रूप से बोधगम्य नही प्रतीत होतीं। पर, ऐसा केवल वहीं होता है, जहा योग-संबंधी बातों की चर्चा है। कारण स्पष्ट है। योगवाणी, योग के पारिभाषिक शब्दों और उसकी प्रणाली को समझने की अपेक्षा रखती है। फिर, साधना को जिस भाव-भूमि पर आकर वे कही जाती हैं, उसको समझने के लिए मानसिक धरातल का समुन्नत होना भी आवश्यक है। अन्यथा, संतों की करणी और कथनी में कोई अन्तर नहीं है। उनकी कथनो जनसाधारण के लिये है।

--संत लोग सत्संगी जीव थे, वे देशाटन भी करते थे। इस कारण उनकी रचनाओं में अड़ोस-पड़ोस की बोलियों और भाषाओं का प्रभाव पाया जाना स्वाभाविक ही है। वाणियां के मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण भी ऐसा हुआ है। एक बात और है। इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि उल्लिखित किसी भी सन्त की शिक्षा सुचारु रूप से हुई थी। उलटे, यही धारणा बनती है कि वे अपढ़ या बहुत ही साधारण पढ़े लिखे थे। जो कुछ भी उन्होंने प्राप्त किया, वह साधना, अनुभव और सत्संग से किया, जो कुछ भी उन्होंने कहा, वह अनुभव के आधार पर कहा।

---

१. 'सन्त-साहित्य विशेषांक', (साहित्य-सन्देश), पृ० ८६-९०, —श्री अक्षयचन्द्र शर्मा :
२. गोरखबानी, भूमिका, पृ० २०, (प्रथम संस्करण, संवत् १९९९) :

सिद्धों और संतों को समझने का प्रयास इसी रास्ते करना चाहिए।

कबीर : निर्गुण मार्गी सन्तों में कबीर प्रमुख हैं। इस धारा के प्राय: सभी परवर्ती सन्तों पर किसी न किसी रूप में उनका ऋण है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यों तो उनकी कविता की भाषा में पंजाबी, खड़ी बोली, भोजपुरी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी आदि का सम्मिश्रण है और इसी कारण इसको 'सधुक्कड़ी भाषा' नाम दिया गया है, पर यहां विचारणीय बात उनकी कविता में राजस्थानी के प्राधान्य को लेकर है। कई वर्ष पूर्व, 'ढोला-मारू रा दूहा' के संपादकों तथा स्व० सूर्यकरण पारीक, जो संपादकों में से एक थे, ने अलग से भी, इस बात की चर्चा की थी, पर अभी तक उस ओर विशेष ध्यान नहीं गया प्रतीत होता है। कबीर की साखियों और 'ढोला-मारू' का भाषा और भाव-साम्य विचारणीय है। 'ढोला-मारू' के अनेक शब्द, वाक्य, वाक्यांश और पद्य ज्यों के त्यों 'कबीर ग्रन्थावली' में मिलते हैं। 'ढोला-मारू' के संपादकों ने सप्रमाण विस्तारपूर्वक इस बात की पुष्टि की है। इनके अतिरिक्त कबीर की कविता में पाए जाने वाले अनेक राजस्थानी शब्द, मुहावरे, कारक, क्रियारूप आदि उनकी भाषा को राजस्थानी के ही निकट लाते हैं। 'ढोला-मारू' के संपादकों ने 'कबीर-ग्रन्थावली' से लगभग १८० राजस्थानी शब्दों की सूची दी है, जिससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है। उन्होंने जोर देकर कहा है कि *'कबीर की भाषा राजस्थानी है एवं कबीर को वैसा ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोला-मारू काव्य के कर्त्ता को'*[१]। प्रकारान्तर से यही बात पारीक जी ने अन्यत्र कही है[२],–*'यदि यह कहा जाय कि कबीर हिंदी का कवि उतना ही है, जितना राजस्थानी का तो अनुचित नहीं है'*। उक्त बात में सन्देह की कोई गुंजाइश प्रतीत नहीं होती। कारण जो भी रहा हो, यह निश्चित है कि कबीर की वाणियां राजस्थानी और हिन्दी दोनों की सम्मिलित थाती है। इस संबंध में 'कबीर-ग्रन्थावली'[३] की प्रामाणिकता का प्रश्न रह जाता है। इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया गया है[४], पर ऐसा करने का कोई पुष्ट कारण प्रतीत नहीं होता[५]।

इस संबंध में कबीर के भाषा-विषयक अध्ययन का नम्र निवेदन किया जाता है।

(ख) कुछ प्रमुख सन्त :

(१) जांभोजी : बिश्नोई सम्प्रदाय[६] :

ये पँवार राजपूत थे। इनका जन्म भादो वदी अष्टमी, संवत् १५०८, को नागौर परगने के पीपासर नामक गांव में हुआ। इनकी माता का नाम हांसादेवी और पिता का नाम लोहट

१. ढोला-मारुरा दूहा, पृ० १३१, (द्वि० सं०, २०११) :
२. ना० प्र० प०, (न० स०), भाग १६, संवत् १९९२ :
३. नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित; संपादक –डा० श्यामसुन्दरदास :
४. (क) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृ० १६ : तथा
   (ख) डा० रामकुमार वर्मा : सन्त कबीर, 'प्रस्तावना'।
५. डा० गोविन्द त्रिगुणायत : कबीर की विचारधारा, पृ० ५६, (प्र० सं०, २००९) :
६. देखिए–'श्री जम्भगीता,'-प्रकाशक : स्वामी भोलाराम महन्त,
   ग्राम पीपलगट्टा, हरदा, होशंगाबाद, (प्रथम बार, संवत्, १९८५) :

था। इनके अनुयायी सुरजनदास ने इनका जीवन चरित लिखा है[1]। कहते हैं ३४ साल की अवस्था तक, ये गायें चराया करते थे और इस अर्से में एक शब्द भी नहीं बोले। इनका गूंगा-पन मिटाने के लिए लोहटजी ने नागौरी देवी के पूजार्थ दीप चलाए, जिनको इन्होंने बुझा दिया और तब से उपदेश देने लग गए। यह घटना संवत् १५४२ में हुई बतायी जाती है। इसी साल इन्होंने बिश्नोई मत की स्थापना की, जिसमें बीस और नौ उन्तीस धर्म-नियमों के पालन करने का आदेश है। 'बीस' और 'नौ' से ही इनका मत 'बिश्नोई' कहलाया, 'वैष्णव' शब्द से इस नाम का कोई संबंध नहीं है, जैसा कि कहीं कहीं लिखा मिलता है। ये विशेष पढ़े लिखे नहीं थे और न ही इनके गुरू का कुछ पता चलता है। यों, सम्प्रदाय में गोरख-नाथ के गुरु होने की बात प्रचलित है। इनकी वाणियां अधिकांश में मौखिक परम्परा से प्राप्त होती हैं। संवत् १५९३ की मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी को बीकानेर के लालासर नामक गांव के जंगल में, ये ब्रह्मलीन हुए। इनके शिष्य वील्हाजी ने अपने एक छप्पय में इनके जीवन-चरित के विषय में इस प्रकार लिखा है —

वर्ष सात संसार बाल लीला निरहारी
वर्ष पांच बाईस पाल बहुता धनचारी
ग्यारह ऊपरि चालीस शब्द कथिया अविनाशी
बाल ग्वाल गुरु ज्ञान सकल पूगा सवा पचासी
पनरासै तिरानवें वदी मंगसर नौ आगले पालटियो।
रूप रहिया भ्रवह अडिग ज्योति संभारायले[2]॥

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने, 'कबीर द्वारा प्रस्तुत किए गए वातावरण में अपने मत की मूल धारणायें निश्चित करने वालों में', जांभाजी का नाम भी लिया है[3]। परन्तु यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। इस सम्प्रदाय के २९ धर्म-नियम,—आचार, विचार, व्यवहार, पवित्रता, दया, पूजा- उपासना, अहिंसा, स्वास्थ्य आदि से ही मुख्यतया संबंधित हैं, जो सदा से ही हिंदू-समाज के मान्य नियम रहे हैं। उनके लिए किसी 'वातावरण' की आवश्यकता भी नहीं थी। उदाहरणार्थ, घी से हवन करना तथा अमावस्या का व्रत रखना, सम्प्रदाय के दो धर्म-नियम हैं, परन्तु कबीर को इनसे कोई मतलब नहीं ; उनका स्वर ही दूसरा है। तत्कालीन हिन्दू-समाज में प्रचलित, व्यावहारिक रूप से जो-जो अच्छी बातें दीखीं, उनको जांभोजी ने अपने मत में सम्मिलित कर लिया। जहां तक, तत्त्व-ज्ञान, योग-साधना और प्रणाली का प्रश्न है, मूल-प्रेरणा उन्होंने नाथ-पंथ से ग्रहण की है, उनकी पारिभाषिक शब्दावली भी लगभग वैसी ही है। अतः उनकी वाणियों में योग-साधना संबंधी बातों की प्रचुरता है। इनके विषय देह भेद, योगाभ्यास, घट तत्व, कायासिद्ध आदि हैं।

---

१. 'संवत पन्द्रहसौ अठोत्तरे कृतका तथ्य प्रमाण
"भादों वदि अरु अष्टमी, चन्द्रवार पुनि जाण"—'श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र,' —सुरजनदास रचित। (—प्रकाशक : स्वामी रामदास, कोलायत, सं० २००७) :
२. स्वामी सुरजनदास रचित- 'श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र' से :
३. उत्तरी भारत की संत परंपरा :

इनका कार्यक्षेत्र अधिकतर यद्यपि राजस्थान ही रहा तथापि प्रतीत होता है कि इन्होंने बाहर भी उपदेश दिए थे। राजस्थान के अतिरिक्त, इनके अनुयायी, पंजाब और युक्त प्रान्त में भी पाए जाते हैं।

सम्प्रदाय के २६ धर्मनियम निम्नलिखित हैं—

(१) प्रातःकाल स्नान करना, (२) सदैव शील, शौच, सन्तोष आदि का पालन करना, (३) दोनों काल सन्ध्या करना, (४) सायंकाल में आरती और ईश्वर का गुणगान करना, (५) हवन करना, (६) सत्य बोलना, (७) जल व दूध को वस्त्र से छानकर पीना, (८) इन्धन छान-बीन कर लेना, (९) निन्दा, अपमान सहते हुए भी धर्म पालन करना, (१०) जीवों पर दया करनी, (११) चोरी नहीं करनी, (१२) निन्दा नहीं करनी, (१३) मिथ्या-भाषण और बिना प्रयोजन विवाद न करना, (१४) अमावस्या के दिन उपवास रखना, (१५) विष्णु की नित्य सेवा करनी, (१६) परमानन्द की प्राप्ति और अनर्थ निवारणार्थ, सुपात्र को दान देना, (१७) हरे वृक्ष को कभी नहीं काटना, (१८) काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का दमन करना (१९) असंस्कृत के हाथ से अन्न-जल आदि ग्रहण न करना, (२०) परोपकारी पशुओं की रक्षा करनी, (२१) बैल को नपुंसक न करना, (२२) अफीम न खाना, (२३) तम्बाकू न पीना (२४) भांग न पीना, (२५) मद्य-पान न करना, (२६) मांस न खाना, (२७) नीला वस्त्र न धारण करना, (२८) एक मास तक जनन-सूतक मानना, और (२९) रजस्वला होने पर पांच दिनों तक स्त्री का गृहकार्य से पृथक रहना।

पश्चात् इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में ऐक्य स्थापित करने के लिए कुछ और बातें भी अपने सम्प्रदाय में प्रचलित की[१], यथा—

(१) मरने पर शव को गाड़ना, (२) सिर मुंडाना, (३) मुंह पर दाढ़ी रखना, आदि।

रचना के उदाहरण देखिए[२]—

जुग जागो जुग जाग पिरांणी, कांय जागंता सोवो।
भल कै और बिगोवो होसी, दुसमन कांय लकोवो।
लै कूंची दरवान बुलावो, दिल ताला दिल खोवो।
जंपो रे जिण जंप्यो जंणीयर, जपसी जो जिण हारी।
लह लह दाव पड़ंता खेलो, सुर तेंतीसां सारी। (पृ० ३१६)

× ×

टूका पाया मगर मचाया, ज्यों हंडिया का कुत्ता।
जोग जुगत की सार न जाणी, मूड मुंडाया बिगूता। (पृ०४१२)

× ×

१. ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० १९-२०, फुटनोट :
२. 'श्री जम्भगीता'—से :

चन्द्र सूर दोय बल रचीलो, गंग जमन दोय रासी ।
सत संतोष दोय बीज बीजोलो, खेती खड़ी अकासी । (पृ ३६२)

× ×

सुण रे काजी सुण रे मुल्ला, सुण रे बकर कसाई ।
किण री थरपी छाली रोसो, किणरी गाडर गाई ।

× ×

धवणा धूजे पाहण पूजे, वे फरमाई खुदाई ।
गुरु चेले के पाए लागे, देखो लोग अन्याई ।। पृ० २७४)

× ×

धण तण जीम्यां को गुण नांही, मल भरया भंडारूँ ।
आगे पीछे माटी झूलें, भूला वहे ज भारूँ ।
घणां दिनांका बड़ा न कहिवा, बड़ा न लंघिया पारूँ ।
उत्तम कुली का उत्तम होयवा, कारण क्रिया सारूँ ।
गोरख दीठां सिद्ध न होयवा, पोह उतरिया पारूँ ।
कलजुग बरतै चेतो लोई, चेतो चेतण हारूँ ।। (पृ० ८३)

× ×

विष्णु विष्णु तू भण रे प्राणी, इस जीवन के हावें ।
क्षण क्षण आव घटंती जावें, मरण दिने दिन आवें ।
पालटीयो घट कांय न चेत्यो, घाती रोल भनावें ।
गुरु मुख मुरखा चढे न पोहण, मन मुख भार उठावें ।
ज्यों ज्यों लाज दुनी की लाजें, त्यूं त्यूं दाव्यो दावें ।
भलिया होसी भलि बुध आर्वं, बुरिया बुरी कमावें । (पृ० ४२२)

(२) सिद्ध जसनाथ : जसनाथी सम्प्रदाय[1] :

ये कतरियासर (बीकानेर) के हमीरजी नामक जाणी जाट और उनकी पत्नी रूपांदे के पोष्य पुत्र थे। इनका प्रादुर्भाव संवत् १५३९, कार्तिक शुक्ला एकादशी को हुआ। प्रसिद्ध है कि ये हमीरजी को एक तालाब के पास पड़े हुए मिले थे। ये आजन्म ब्रह्मचारी थे। इनको संवत् १५५१, आश्विन शुक्ला सप्तमी को ज्ञान प्राप्ति हुई बताते हैं। इनके गुरु कौन थे, इसका विशेष पता नहीं चलता, पर अपनी 'वाणी' में स्थान-स्थान पर इन्होंने गोरखनाथ को बड़ी श्रद्धा-पूर्वक गुरु-रूप में स्मरण किया है। जाम्भोजी भी संवत् १५५७ में इनसे मिले थे। २४ वर्ष की अवस्था में समाविस्थ होकर, संवत् १५६३ आश्विन शुक्ला सप्तमी को ये ब्रह्मलीन हुए। इनका मुख्य स्थान कतरियासर (बीकानेर) है, जहां प्रति वर्ष निम्नलिखित तिथियों पर बड़े बड़े मेले लगते हैं—

---

१. (क) श्री सूर्यशंकर पारीक : सिद्ध-चरित ;—सिद्ध-साहित्य-शोध-संस्थान, रतनगढ़, २०१४;
(ख) सिद्ध रामनाथ : 'यशोनाथ पुराण' :

(१) आश्विन शुक्ला सप्तमी, (२) माघ शुक्ला सप्तमी, और (३) चैत्र शुक्ला सप्तमी।

इनकी 'वाणी' के विषय, पशु-हिंसा का विरोध, जीव-ब्रह्म की एकता, संसार की नश्वरता आदि हैं। योगी तो ये जन्म से ही थे। जसनाथी सम्प्रदाय का सीधा संबंध नाथपंथ से है, लेकिन उसकी तरह इसमें विभिन्न परिपाटियों को स्वीकार नहीं किया गया, प्रत्युत योग मार्ग और वैष्णवी विचारधारा का मिला-जुला रूप ही स्वीकार किया गया है। सम्प्रदाय के ३६ धर्म-नियम हैं, जिनका पालन प्रत्येक जसनाथी के लिए आवश्यक माना गया है। इनके अनुयायियों में "जलम झूलरों," "सिद्धजी रो सिरलोको" तथा "सिभुधड़ों" का बहुत महत्व है। तीनों ही गेय-पद-समूह हैं जिनको विशिष्ट प्रकार के राग और लय से गाया जाता है। इनमें, प्रथम दो में तो, सिद्ध जसनाथ के चरित्र का वर्णन रहता है और तीसरे-'सिभुधड़ों' में भगवद्-माहात्म्य के साथ साथ ज्ञान, योग की चर्चा और गुरु गोरखनाथ के यश आदि के वर्णन रहते हैं। हवन के समय इनका पाठ करना आवश्यक है, अतः इनका दूसरा नाम "होम जाप" भी है। सम्प्रदाय में, जियोजी सोलला, लालनाथजी, चोखनाथजी और सवाईदासजी के जलमझूलरों की विशेष प्रसिद्धि है। ये सब जसनाथजी की शिष्य-परम्परा में हुए हैं। हारोजी और जियोजी तो जसनाथ जी के प्रधान शिष्यों में थे।

राजस्थान के लोक-नृत्यों में जसनाथी सम्प्रदाय का "अग्नि-नृत्य" अपना विशेष महत्त्व रखता है।

जसनाथ जी की रचना के उदाहरण देखिए[१]—

हम दरवेश निरंजन जोगी, जुग जुग रा अगवाणी।
जाँ सूं जैसा ताँ सूं तैसा, और न बोला बाणी।
फिर फिर भाव दुनी रो देखाँ, कुण बोलें के बाणी।
सरवा सरवी यूं रळ चालाँ, ज्यूं रळ चालै पाणी॥ (पृ० ६६)

जग सत रं'णा कूड न कं'णा, जोग तणी सहनाणी।
मनकर लेखण तनकर पोथी, हर गुण लिखो पिराणी।
अमी धर्व मुख इमरत बोलो, हालो गुरु फरमाणी।
गाय'र गाडर भैंस'र छाली, दुध दुध पिवो पिराणी।
सिरज्या देव अमीरा कूंपा, गळवो काट न खाणी।
जे गळ काट्याँ होत भलेरो, अपरो काट पिराणी॥ (पृ०९७-९८)

काची काया गळ-बळ जासी, कूं कूं वरणी देहा।
हाडाँ ऊपर पून डुळेली, घण हर वरसे मेहा।
माटी में माटी मिल जासी, भसम उडै हुय खेहा।
हुय भूतळा खाख उडावै, करणी रा फळ ऐहा।

---

१. सिद्ध-चरित्र, -से :

घड़ी घड़ी बाइन्दा बाजे, रच्या न रहसी छेहा ।
गावाँ गाडर सैं'रां सुभ्रर, खाड खिणं हुम रोहा ।
किये किरत नैं जोय पिराणी, दोस न दीज्यो देवा ।
करणी हीणा नित पछतावें, लाधैं न गुरू रा भेवा । (पृ० ८४-८५)

(३) दादू : दादूपंथ :

विद्वानों में दादू के जीवन संबंधी तथ्यों के विषय में मतभेद है। पं० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार, वे मोट बनानेवाली, मोची जाति में, जौनपुर में पैदा हुए थे तथा कमाल के शिष्य थे[१]। डा० ताराचन्द भी उनको कमाल का शिष्य मानते हैं[२]। आचार्य क्षितिमोहन सेन उनको जाति का मुसलमान धुनिया बताते हैं। बंगाली बाउलों के वंदना संबंधी पद, "श्री गुरु दाउद वन्दि दादु जाँर नाम" का हवाला देते हुए, उनके पूर्व नाम दाऊद होने की, वे संभावना प्रकट करते हैं[३]। डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार, वास्तव में दादूजी मुसलमान ही थे। उनका जन्मस्थान वे साभर के आसपास ही कोई गाव बताते हैं[४]। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार, इनका जन्म-स्थान अहमदाबाद और उनकी जाति धुनियाँ थी तथा वे कमाल के नहीं, तो कमाल की शिष्य परम्परा में किसी के शिष्य अवश्य थे[५]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी को यह धुनिया वाली प्रसिद्धि अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है[६]। श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी[७] और श्री परशुराम चतुर्वेदी[८] के अनुसार भी ये जाति के धुनिया थे और इनका जन्म-स्थान अहमदाबाद था। एच० एच० विल्सन[९] और तासी[१०], रामानन्द और कबीर की शिष्य-परम्परा में किसी बुड्ढन को उनका गुरु बताते हैं।

सम्प्रदाय में प्रचलित मत के अनुसार[११], दादू, साबरमती नदी में बहते हुए, अहमदाबाद के नागर ब्राह्मण लोदीराम को, जो निस्संतान थे, संवत् १६०० की फाल्गुन सुदी अष्टमी को प्राप्त हुए थे। अन्य विद्वानों के अनुसार, यह तिथि संवत् १६०१ के फाल्गुन की सुदी २ है, जो बहु-प्रचलित है। लोदीराम ने दादू का पालन-पोषण किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में खेलते समय, एक वृद्ध महात्मा ने उनको उपदेश दिया। उनके शिष्यों ने इस महात्मा को वृद्धानन्द या बुड्ढन बाबा कहा है[१२]।

---

१. दादूदयाल का सबद, भूमिका, (ना० प्र० स०, काशी, १९०७) :
२. Influence of Islam on Indian Culture, Page 185, (Allahabad, 1954) :
३. "दादू", पृ० १७, -'उपक्रमणिका', (वैशाख, १३४२, बंगाब्द) :
४. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १८३ :
५. The Nirguna School of Hindi Poetry, Page 258-259, (Indian Book shop Benaras) :
६. हिन्दी साहित्य, पृ० १४२, (१९५२) :
७. हिन्दी संत काव्य संग्रह, पृ० १३४, (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२) :
८. संत काव्य, पृ० २८२, (किताब महल, इलाहाबाद, १९५२) :
९. Religious Sects of the Hindus, Page 103 :
१०. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, (अनुवादक- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय) :
११. स्वामी मंगलदास : दादू संप्रदाय का संक्षिप्त परिचय :
१२. आचार्य क्षितिमोहन सेन : दादू, 'उपक्रमणिका', पृ० ३०-३१ :

कुछ समय पश्चात् उस आदेशानुसार अपना जीवन सफल बनाने के लिए, वे घर-बार छोड़कर चल दिए और आबू, सिरोही होते हुए कल्याणपुर (जोधपुर) आए, जहां ६ वर्ष साधना की। पश्चात् १९ वर्ष की अवस्था में सांभर आए। यहां ६ वर्ष और साधना करने के उपरांत, २५ वर्ष की अवस्था के बाद, अपने अनुभव को व्यक्त करना आरम्भ किया। यह कार्य जीवन भर चलता रहा। इस संबंध में इनके शिष्य जनगोपालजी लिखते हैं —

बारह बरस बालपन खोए, गुरु मेरे पे सनमुख होये।
सांभर आये समय तीसा, गरीबदास जिनमें बत्तीसा[1]।

इसी समय संवत् १६३१ के लगभग उन्होंने ब्रह्म-सम्प्रदाय की स्थापना की, जिसका कार्य वे मृत्यु-पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चलाते रहे। कालान्तर में उसमें उप-सम्प्रदाय भी बने। सांभर से संवत् १६३२ में वे आमेर आए और लगभग १४ साल वहां रहे। संवत् १६४२ में इन्होंने अकबर से सीकरी में भेंट की और कहा जाता है कि बादशाह के साथ लगभग ४० दिनों तक सत्संग चलता रहा। वहां से लौटने के बाद वे आमेर आए। आमेर से राजस्थान के विभिन्न स्थानों में घूम घूम कर धर्मोपदेश किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे नराणा में रहने लग गए थे और वहीं संवत् १६६० की ज्येष्ठ बदी अष्टमी को ब्रह्मलीन हुए। श्री वियोगी-हरि को सम्प्रदाय का यही मत मान्य है[2]। अन्यत्र भी इसकी पुष्टि की गई है[3]। उनके जन्म और जाति के विषय में लगभग यही मत जान ट्रेल साहब[4] और पं० चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी[5] के हैं। दादू गृहस्थ थे, इस बात पर लगभग सभी विद्वान् सहमत हैं। श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, वे अपनी गृहस्थी का पालन-पोषण अपने पैतृक व्यवसाय–धुनियागिरी करके करते थे[6]। उनके[7] गरीबदास और मिस्कीनदास– दो पुत्र थे। नानीबाई व माताबाई नामक दो पुत्रियां भी बताई जाती है। परन्तु पुत्रों के संबंध में स्वामी मंगलदास का अनुमान है कि वे दादूजी के प्रिय शिष्य या अधिक से अधिक प्रदत्त पुत्र मात्र कहे जा सकते है। यही बात पुत्रियों के संबंध में भी है[8]।

दादू के जीवन-काल (संवत् १६०१-१६६०) के संबंध में सभी विद्वान् लगभग एकमत हैं, केवल डा० रामकुमार वर्मा ने उनका जन्म संवत् १६५८ लिखा है[9] जो सभी संभावनाओं से परे है। इनकी जाति के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रतीत होता है,

---

१. *जनगोपाल : जन्म परची :*
२. संत सुधा सार, (दादू)– प्रथम संस्करण, १९५३ :
३. 'कल्याण' के (क) संत अंक, पृ० ५९२-५९३, वर्ष १२, अगस्त, १९३७ ;
(ख) भक्त चरितांक, पृ० ४४३ से, वर्ष २६, जनवरी, १९५२ :
४. Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol. 4,—Dadu :
५. श्री स्वामी दादूदयाल की वाणी, (वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९०७) :
६. संत काव्य, पृ० २८३, (१९५२) :
७. (क) श्री परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ४१६;
(ख) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १४२ :
८. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ४१७ में निर्देशित :
९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २६७-२६८, (प्रथम संस्करण, १९३८):

में नीच कहे जाने वाले कुल में उत्पन्न हुए थे[1]। ये विशेष पढ़े लिखे नहीं थे[2], पर बहुश्रुत थे[3] और अनुभव के आधार पर ही अपनी बात कहा करते थे[4]। इनके जीवन के प्रारंभिक ३० साल का इतिहास अप्राप्य सा ही है। "पंथ" का मुख्य दादू-द्वारा नराणा में है, जहां हर साल फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी से पूर्णिमा तक बड़ा भारी मेला लगता है। इसमें दूर दूर के साधु महात्मा एकत्र होते हैं।

प्रसिद्ध है कि इनके १५२ प्रधान शिष्य थे[5], जिनमें १०० तो एकान्तवास करनेवाले थे और बाकी ५२ में से अधिकांश की प्रणाली उनके बाद भी चालू रही। राघोदास ने अपनी भक्त-नामावली में इन बावन शिष्यों की सूची इस प्रकार दी है —

दादूजी के पंथ में ये बावण द्रिगसु महंत
प्रथम ग्रीव, मसकीन, बाई द्वै सुन्दरदासा
रज्जब, दयालदास, मोहन ग्वारूं प्रकासा
जगजीवन, जगनाथ, तीन गोपाल बषानूं
गरीबजन दूजन, घड़सी, जंमल द्वै जानूं
सादा, तेजानन्द पुनि प्रमानंद, बनवारि द्वै
साधू जनहरदास, द्व कपिल, चतुरभुज मार हूं
चत्रदास द्वै, चरण प्राग द्वै, चेन, प्रहलादा
बषनों, जग्गोलाल, माघू, टीला अरु चंदा
हिंगोल, गिर, हरि, स्यंघ, निरांदूण, जइसौ, संकर
झाझू, बांझू, संतदास, टीकूं, स्यामहिवर
माधव, सुदास, नागर, निजाम, जन राघो वणिकहंत
दादूजी के पंथ में ये बावन द्रिगसु महंत[6]॥

पर इनमें अधिकांश के विषय में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है। दादू पथ में आगे चल-कर, इन बावन शिष्यों की परम्परा के कीर्ति-स्वरूप स्थान-भेद और रहन-सहन के कारण बावन 'थांभे' बने। स्मरणीय है कि उनके मूल में कोई सिद्धान्तगत भेद नहीं है। नराणा में प्रधान दादू गद्दी है, जिसकी मान्यता, सब 'थांभों' के अनुयायियों में आज भी पूर्वानुसार ही बनी है। कालान्तर में सम्प्रदाय निम्नलिखित पांच शाखाओं में विभक्त हो गया[7] —
(१) खालसा, (२) नागा, (३) उत्तराढी, (४) विरक्त, और (५) खाकी।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ८५, (२००६) :
२. आचार्य क्षितिमोहन सेन : दादू, 'उपक्रमणिका', पृ० १६४ :
३. डा० मोतीलाल मेनारिया राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १८५.
४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० १४५ :
५. स्वामी मंगलदास : दादू संप्रदाय का संक्षिप्त परिचय :
६. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४२१-४२२ :
७. स्वामी मंगलदास ने प्रथम चार की ही सूची दी है, (—दादू संप्रदाय का संक्षिप्त परिचय), पर श्री परशुराम चतुर्वेदी, (उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४५८) तथा डा० राम-कुमार वर्मा (हि०सा० का आ० इ०, पृ० २७१) ने पांचवी शाखा का और उल्लेख किया है।

दादूपंथ के अनुयायियों ने सम्प्रदाय की वाणियां सुरक्षित रखने में श्लाघनीय प्रयत्न किया है।

दादू की कविता की भाषा मुख्यतः राजस्थानी (ढूंढाड़ी) है। कार्यक्षेत्र भी उनका अधिकांश में राजस्थान ही रहा और निवास तो यहां था ही। भाषा में कहीं कहीं गुजराती और पश्चिमी हिन्दी का तथा बहुत ही कम पंजाबी का मिश्रण पाया जाता है। भाषा में राजस्थानी के प्राधान्य को श्री परशुराम चतुर्वेदी[1], श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी[2], डा० ताराचन्द[3], डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल[4], डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[5] तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल[6] प्रभृति विद्वानों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है।

दादू के भाव, विचार, सिद्धान्त और अनुभव उनकी वाणियों में सुरक्षित हैं, जिनका संकलन और संग्रह उनके शिष्यों ने किया है। इन वाणियों में दादू ने आत्मानुभूति को व्यक्त किया है। वाणियां स्वतः-निसृत हैं, और स्वानुभूति से लबालब भरी हैं। तत्त्व-ज्ञान और शास्त्रीय विषयों को उन्होंने अनुभव की आंच में गलाया है और उनको व्यावहारिकता के धरातल पर परखा है। जो बातें खरी उतरी और अनुभव में आई, उनको सहज रूप से, सीधे-सादे ढंग से व्यक्त किया। जो बातें अनुभव में नहीं आईं, उनको उन्होंने मान्यता नहीं दी। यह अभिव्यक्ति हृदय पर सीधा असर करती है, क्योंकि उसमें स्वानुभूति की सत्यता है, आत्म साक्षात्कार की प्रामाणिकता है और जीवन के जटिल प्रश्नों पर समन्वयात्मक ढंग से किया गया विचार है। अतः दादू की 'वाणी' विश्व-कल्याण की मांगलिक भावनाओं से ओत-प्रोत, स्वानुभूति के आधार पर, शाश्वत सत्य और परम तत्त्व की सहज रूप से मृदुल अभिव्यक्ति है। सरलता उनकी विशेषता है। 'वाणियों' में नवनीत की सी स्निग्धता और हरे बांस की पतली छड़ी की तरह अनूठा लोच है। दादू, प्रेम से बात करते हैं, सबको अपना समझ कर। भगवदानुभूति और आत्मज्ञान कराना उनका उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति शुद्ध-प्रेम से ही सम्भव है। पर यह 'पंथ' सरल नहीं है, उसके लिए तो अपना सिर भी दे देना पड़ता है। अहं का सर्वथा त्याग और हृदय की विशालता इसकी जरूरी शर्तें हैं। संकीर्ण मनोवृत्ति, भेद-बुद्धि और कायरता को तो वहां जगह ही नहीं है। यही कारण है कि मंदिर-मस्जिद, पूजा-पद्धति, रोजा-नमाज, जाति-पांति, छापा-तिलक, वेश-भूषा आदि बाह्य आडम्बरों की उन्होंने निस्सारता प्रकट की है। प्रेम-भाव की मार्मिक व्यंजना दादू की अपनी चीज है; उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है।

दादू कबीर का स्मरण बड़े गौरव से करते हैं। जिस सत्य की अभिव्यक्ति कबीर ने की, दादू ने भी की। भाव भी प्रायः वही रहे, जो कबीर के थे, परन्तु कहने का ढंग और

१. संत काव्य, पृ० २८४, (१९५२) :
२. हिन्दी संत काव्य संग्रह, पृ० १३७, (१९५२);
३. Influence of Islam on Indian Culture, Page 182-183, (Allahabad, 1954):
४. The Nirguna School of Hindi Poetry, Page 259 :
५. हिन्दी साहित्य, पृ० १४४ :
६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८६, (२००६) :

कार्यरूप में व व्यवहार में परिणत कर दिखाने का काम उनका अपना कार्य था[1]। इनके अतिरिक्त समय, परिस्थिति, संस्कार और वातावरण के अनुसार दोनों के व्यक्तित्व में और दोनों की 'वाणी' में अन्तर रहा। कबीर की भांति दादू खंडन-मंडन, उल्टबांसियों, षटप्रदर्शन आदि की ओर अधिक नहीं झुके।

दादू की उपासना में निरंजन और निर्गुण की प्रधानता थी। उनकी बार बार प्रयुक्त साखियों—'दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवत:' तथा 'परं ब्रह्म परात्परं सो मम देव निरंजनम्' आदि से यह स्पष्ट है। अन्य निर्गुण-मार्गी संतों की भांति दादूवाणी के विषय हैं पार्थिव वस्तुओं की नश्वरता, आत्मज्ञान, भेदभाव व जाति-पांति की निस्सारता, प्रेमाभिव्यक्ति, संयम आदि आदि। दादू की वाणियों की संख्या ३००० के लगभग पाई जाती है; संभव है इससे भी अधिक हो।

यहां यह लिख देना भी आवश्यक है कि प्रकारान्तर से, मोटे रूप में, दादू के समान ही उनके शिष्यों-प्रशिष्यों ने अपनी बातें कही हैं। जो थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है, वह नगण्य है और बिल्कुल स्वाभाविक है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से, उनकी शिष्य-परम्परा एक ही श्रेणी के अन्तर्गत है।

दादू की रचना के उदाहरण देखिए[2]—

मुझ ही मैं मेरा धणी, पड़दा षोलि दिषाइ।
आतम सौं परआतमा, परगट आणि मिलाइ॥
सोने सेती बैर क्या, मारे घण के धाइ।
दादू काटि कलक सब राखै कंठि लगाइ॥
सतगुर की समझैं नहीं, अपणैं उपजै नांहि।
तौ दादू क्या कीजिये, बुरी बिधा मन मांहि॥
दादू नीका नांव है, तीनि लोक ततसार।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै बिचार॥
मेरे संसा को नहीं, जीवण मरण क राम।
सुपिनै ही जिनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम॥
ज्यों जल पैसे दूध मैं, ज्यूं पाणी में लूण।
ऐसैं आतमराम सौं, मन हठ साधै कूंण॥
दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै राम पदारथ होइ॥
सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन मांहि।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नांहि॥

---

१. स्वामी मंगलदास : दादू संप्रदाय का संक्षिप्त परिचय, 'सिद्धान्त,'- शीर्षक के अन्तर्गत
२. 'सन्तवाणी'-से; (संपादक- पं० लक्ष्मीदत्तगोपाल शास्त्री, वाचस्पति, संवत् २००६)

दादू यहु दीदार की, साँई सेती बात।
कब हरि दरसन देहुगे, यहु औसर चलि जात ॥
पाँचो इंद्री भूत हैं, मनवा षेतरपाल।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीन्यों काल ॥
दादू है को भै घणां, नाहीं कौं कुछ नाँहि।
दादू नाहीं होइ रहु, अपणे साहिब माँहि ॥
कहतां सुनतां देषतां, लेतां देतां प्राण।
दादू सो कतहूं गया, माटी धरी मसाण ॥
दादू देही पाहुणी, हंस बटाऊ माँहि।
का जाणों कब चालिसी, मोहि भरोसा नाँहि ॥

(४) बखनाजी :

ये दादूजी के शिष्य थे। किसी प्रामाणिक वृत्त के अभाव में, इनका जीवनचरित भी परम्परानुसार सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है। प्रसिद्ध है कि ये नराणा ग्राम के रहनेवाले थे। अनुमानतः इनका जन्म संवत् १६०० से १६१० के बीच किसी समय हुआ। इनकी जाति के विषय में भी भिन्न भिन्न बातें सुनने में आती हैं, जिसके लिए लखारा, कलाल, मीरासी और राजपूत आदि नाम दिए जाते हैं। जनश्रुति है कि रज्जबजी, बखनाजी, निजाम तथा वाजिंद के शिष्य मुसलमान थे। अतः इनका मुसलमान होना ही अधिक संभव प्रतीत होता है। ये गृहस्थ थे और दादूजी से इन्होंने उपदेश ग्रहण किया था। दादू के विषय में इनके बनाए हुए एक मरसिये[1] से पता चलता है कि इनकी मृत्यु दादू के बाद हुई। राघोदास की भक्त-मामावली के अनुसार[2], इनकी मृत्यु नराणा ग्राम में हुई, परन्तु कब हुई इसका कोई निश्चित पता नहीं चलता। सभवतः संवत् १६६० से १६८० के बीच किसी समय हुई होगी। इनकी 'वाणी' का प्रकाशन हो चुका है[3], जिसका रचनाकाल सवत् १६४० के पश्चात् ही रहा होगा। 'वाणी' के अतिरिक्त इनकी और किसी रचना का पता नहीं है। इसकी भाषा बोल-चाल की मारवाड़ी मिश्रित ढूंढाड़ी है। भाषा का स्वाभाविक प्रवाह दर्शनीय है।

परमात्मा को सर्वस्व-समर्पण, उसके नाम की उपासना, उसकी निरन्तर साधना, अहिंसा के साथ प्रेमभाव से सत्य को जानने की चेष्टा और एतदर्थ प्राप्त हुए अनुभव और सत्य को संसार के सम्मुख रखना इनकी 'वाणी' की विशेषताएं हैं। सर्वत्र जीवन के गंभीर प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास पाया जाता है। भाव-विभोर कर देने वाले पदों की कमी नहीं है।

---

१. बीछड्या राम सनेही रे, म्हारे मन पछतावो ये ही रे।
बिलसी सखी सहेली रे, ज्यों जल विन नागर वेलो रे।
× ×
भरि भरि प्रेम पिलावो रे, कोई दादू आणि मिलावो रे।
बखनो बहुत बिसूरे रे, दरसण के कारण झूरे रे !

२. बखनो सन्त क शब्दै सारो, नगर नरायणों माहैं द्वारो।

३. संपादक : स्वामी मंगलदास, (लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, १९३७) :

अपनी 'वाणी' के बीच-बीच में इन्होंने प्रमाणस्वरूप गुरु दादू के वचनों को भी उद्धृत किया है। राघोदास ने भक्त-नामावली में इनके विषय में लिखा है, जिससे एक पद नीचे दिया जाता है—

दादूजी के पंथ में है बखनो बनैत कवि,
अति ही चुराहो तत्तवेत्ता तुक तान को।
जाकी ब्रह्मवाणी को बखाण यणि आवत न,
भारथ में बल जैसे पारथ के बांन को।
जाके पद साखी हद बेहद प्रवेश भये,
जहां लगि आवागम, होत शशि भान को।
राघौ कहे रात दिन, रामजी रिझायो निज,
गावन न मानी हार, गन्धर्व है गान को।

इससे इनके चरित की अन्य विशेषताओं के साथ, गायन में प्रवीण होने की सूचना भी मिलती है। रज्जबजी ने इनके पदों और साखियों को अपने 'सर्वंगी' नामक ग्रन्थ में लिया है। रचना का नमूना यह है—

निकमो बैठो नांव ले नाहीं, श्रौरे घाट घड़ै घट मांही।
कुबधि कुदालो घट्हो मांहो, कूप खणे पड़बा कै तांई।

× ×

हाथी को खड़क्यो सुण्यौं, भुस्यौ सोवलो स्वान।
बखना सूरज तेज कौं, पतंग करै अभिमान ॥
सुणिजै ऊंडो गाजतो, सिखरां बीच खिवांहि।
बखना बादल विरह का, बरसि बरसि भर जांहि ॥
बखना वाणी बरसणी, बरसै गहर गंभीर।
सूकाने हरिया करै, गुर वाणी का नीर[१] ॥

(५) रज्जबजी :

ये दादूजी के शिष्यों में सिरमौर माने जाते हैं। इनका जन्म सांगानेर के एक प्रतिष्ठित पठान वंश में संवत् १६१८[२]-१६२४[३] के आसपास हुआ। १८-२० वर्ष की आयु में विवाह कराने के लिये ये आमेर जा रहे थे। उस समय दादूजी भी वहीं रहते थे। जब बारात उनके आश्रम के पास आई तब ये उनके दर्शन करने गए। इनको देखते ही, कहते हैं, दादू के मुख से निम्नलिखित दोहे निकले:—

कीया था कुछ काज को, सेवा सुमिरन साज।
दादू भूल्या बंदगी, सरया न एकौ काज ॥

१. 'बखनाजी की वाणी' से, (संपादक : स्वामी मंगलदास, जयपुर) :
२. कल्याण, —'संत अंक', पृ० ५६३ :
३. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४२२ :

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर।
आया था हरि भजन को, करै नरक को ठौर॥

इसकी पुष्टि 'रामसनेही' सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक रामचरणदासजी की वाणी[1] तथा राघोदास की भक्त-नामावली से भी होती है। इतना सुनते ही तत्काल ही विवाह का विचार छोड़कर वे उनके शिष्य बन गए। लोगों ने बहुत समझाया, पर नहीं माने। तब से ये हर समय दादूजी के साथ ही रहने लगे। अनुमानतः यह घटना संवत् १६४२ के बाद की है, क्योंकि इस साल[2] दादूजी अकबर से मिलने सीकरी गए थे और जो शिष्य उनके साथ वहां गए थे, उनकी सूची में इनका नाम नहीं है[3]।

रज्जबजी दादू के परम भक्त थे। गुरु की प्रशंसा में कही गई वाणियों से इनकी अगाध गुरु-भक्ति का परिचय मिलता है। अपने गुरुभाई बखानजी के यहां भी ये प्रायः आया-जाया करते थे। 'भक्त-नामावली' में इनके दस शिष्यों के नाम मिलते हैं। कहते हैं, दादू की मृत्यु के पश्चात् ये भी प्रायः आंखें बंद किए ही रहते थे। इनका रचनाकाल संवत् १६५० से १७४० तक समझा जा सकता है[4]। संवत् १७४६ में ये ब्रह्मलीन हुए[5]। सांगानेर में इनकी मुख्य गद्दी है। इनके शिष्यों को 'रज्जबात' अथवा 'रज्जबपंथी' कहने की प्रथा है। दादूजी के अन्य शिष्य सुन्दरदासजी भी यदा-कदा इनके पास सत्संगति के लिए आया करते थे।

साधु नारायणदासजी के अनुसार, इनकी वाणियों की संख्या दस हजार से भी ऊपर है[6]। अन्य सन्तों की भांति ये बहुश्रुत थे। इन्होंने शिक्षा पाई थी या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इनके बनाए दो ग्रंथों की बहुत प्रसिद्धि है—(१) वाणी, तथा (२) सरबंगी। 'वाणी' का प्रकाशन हो चुका है[7]। रचनाओं से इनके अगाध ज्ञान, निश्चल प्रेम, विषय-विविधता तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता चलता है। इनके दृष्टान्त देने की प्रतिभा भी विलक्षण थी। निश्चय ही, ये एक महान् आत्मा थे।

भेदभाव से रहित प्रेम, भक्ति और भावों की तन्मयता इनकी 'वाणी' की विशेषताएं हैं। दादू के मत का समर्थन तो जगह जगह मिलता ही है। इनकी भाषा में यत्र-तत्र ब्रजभाषा का प्रभाव भी पाया जाता है। जनगोपाल जी ने 'दादू जन्मलीला परची' में—

---

१. दादू जैसा गुरु मिलै, शिष रज्जब सा जाण।
एक शब्द में ऊधरया, रही न खैंचा ताण॥

२. 'मिले बियाली अकबर साहि'—जनगोपाल कृत, 'दादू जन्मलीला परची', विश्राम १६ वां :

३. चांदा टोला तीनें साथा, जगजीवन सों कही जु गाथा।
श्यामदास लाहौरी भाषे, जन जगदीस आप संगि राषे॥४३॥
संग गुनदास बड़ो रजबंसी, धरमदास सत संगति गंसी।
सात सिष्य लें स्वामी चले, जनगोपाल सीकरी मिले॥४४॥—वही; विश्राम ४ था :

४. राजस्थान (कलकत्ता), वर्ष १, संख्या ३, संवत् १९९२,—
'महात्मा रज्जबजी'—हरिनारायण पुरोहित :

५. वही; वर्ष १, संख्या २, संवत् १९९२ :

६. कल्याण,—'संत वाणी' अंक, पृ० ५९३ :

७. ज्ञान सागर प्रेस, बम्बई से।

'सिष्य एक रज्जब अधिकारी, ज्ञानी, गुनी, पूरा अधिकारी' लिखकर, संक्षेप में इनके चरित की विशेषताओं पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। कुछ इसी तरह की बातें राघौदासजी ने भी भक्त-नामावली में कही हैं—

× ×

मोड़ पौलि डारचौ, तन मन धन वारचौ,
सत सील व्रत धारचौ, मन मारचौ काम भाग्यौ है।
भक्ति भीज दीनी, गुर दादू दया कीन्हीं,
उर लाइ प्रीति लीनी, मानैं बड़ो भाग जाग्यौ है[1]।

इनकी रचना की बानगी देखिए —

हिंदू पावैगा वही, वो ही मुसलमान।
रज्जब किणका रहम का, जिस कूं दे रहमान॥
नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक॥
सरणां साईं साध की, पकड़ि लेहि रे प्राण।
तौ रज्जब लागै नहीं, जम जालिम का बाण॥
नामरदां भुगती नहीं, मरद गये करि त्याग।
रज्जब रिधि क्वांरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग॥
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
ऊन्हाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप[2]॥
गुर दादू का हाथ सिर, हिरदै त्रिभुवन नाथ।
रज्जब डरियें कौन सौं, मिलिया सांई साथ॥
सबसे दे सबसे लिया, सिप गुर कभे आय।
रज्जब महम मिलाप की, महिमा कही न जाय[3]॥

(६) बाजिदजी[4] :

इनकी भाषा में खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिश्रण भी पाया जाता है। ये जाति के पठान थे। दादू के १५२ शिष्यों में इनकी गिनती है। कहते हैं, एक हरिणी का शिकार करते समय इनके हृदय में करुणोद्रेक हुआ और सब कुछ छोड़-छाड़ कर ये दादू के शिष्य बन गए। तब से सारा जीवन साधना में ही बिताया। रचनाओं में इनके 'अरिलों' की ही प्रसिद्धि

१. राजस्थान (कलकत्ता), वर्ष १, संख्या २, संवत् १६६२, पृ० ६६ :
२. कल्याण,—'संत वाणी' अंक, पृ० २५८ :
३. राजस्थान, वर्ष १, संख्या २, सं० १६६२, पृ ७३ :
४. (क) उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४२२-४२६;
(ख) डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३८६-८७ :

है। इनकी संख्या १३५ है[1]। आज भी यथावसर, जीवन के विविध प्रसंगों पर इनके अरिल कहे जाते हैं जो हृदय पर अमिट छाप छोड़ देते हैं। भाषा में ओज और प्रवाह है। दया, उदारता, नम्रता, शरीर की नश्वरता तथा सामान्य व्यावहारिक जीवन पर इनके अरिलों की रचना हुई है। अपनी मार्मिकता के कारण ये राजस्थान के लोकजीवन में घुलमिल कर, राजस्थानी के ही अंग बन गए हैं। भक्त-नामावली में राघोदासजी ने इनको इस प्रकार स्मरण किया है—

छाँड़ि के पठान कुल राम नाम कीन्हो पाठ,
भजन प्रताप सूं बाजिद बाजी जीत्यौ है।
हिरनी हतत उर डर भयौ भयंकरि,
सील भाव उपज्यौ कुसील भाव बीत्यौ है।
तोरे हैं कमान तीर घाणक दियो सरीर,
दादूजी दयाल गुरु अन्तर उदीत्यौ है।
राघौ रति रात दिन देह दिल मालिक सूं,
खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलन की रीत्यौ है।

तीन अरिल नीचे दिए जाते हैं—

महल फवारा हौज के मोजां माणता
समरथ आप समान और नहिं जाणता
कैसा तेज प्रताप चलंता दूर में
भला भला भूपाल गया जमपूर में।

टेढी पगड़ी बांध झरोखां झांकते
ताता तुरग पिलाण चहूंटे डाकते
लारै चढ़ती फौज, नगारा बाजते
'बाजिद' वे नर गये बिलाय सिंह ज्यूं गाजते।

काल फिरत है हाल रैण दिन लोइ रे
हणै राव अरु रंक गिणै नहिं कोइ रे
यह दुनिया 'बाजिद' बाट की दूब है
पाणी पहिलै पाळ बंधे तो खूब है।

(७) हरिदासजी : निरंजनी सम्प्रदाय :

इनका जीवन-चरित भी प्रचलित परम्परा और जनश्रुति के आधार पर ही प्राप्त है सम्प्रदाय के अनुसार, इनका जन्म सांखला गोत्र के राजपूत परिवार में, डीडवाणे परगने के कापडोद गाव में हुआ। अनुमानतः ये सोलहवीं शताब्दी के अन्त तथा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुए हैं। इनका जाति का नाम हरीसिंह था। वयस्क होने पर इनका विवाह कर दिया

१. 'पञ्चामृत' में प्रकाशित, —(संपादक : स्वामी मंगलदास, जयपुर, १९४८)।

गया, पर जब परिवार के भरण-पोषण का सवाल आया, तो लूट-खसोट करने और डाके डालने लगे। इसी संबंध में दैवयोग से एक महात्मा के उपदेश से इनको प्रतिबोध हुआ और ये भगवान के नाम-चिन्तन में लग गए। इनकी साधना से डीडवाणे के आसपास के क्षेत्रों में ख्याति फैल गई। फिर तो जीवन-काल में इनके अनेक शिष्य बने। यही शिष्य-परंपरा आगे चलकर निरंजनी सम्प्रदाय कहलाई[1]। इनकी मृत्यु संवत् १७०० के फाल्गुन सुदी ६ को डीडवाने में हुई[2]। इनकी वाणी का प्रकाशन जोधपुर के साधु देवादास ने, 'श्री हरिपुरुषजी की वाणी' के नाम से संवत् १९८८ में किया था। डीडवाणे के निकट गाढ़ा नामक गांव इनका प्रमुख स्थान है जहां हर साल फाल्गुन शुक्ला १ से १२ तक मेला लगता है।

परन्तु विद्वानों में इनके विषय में बहुत मतभेद है। एक मत के अनुसार, 'हरिदास मारवाड़ के नागोर जिले का एक जाट था। एक दिन आखेट में उसने एक गर्भवती मृगी को मार दिया जिस कारण उसे बहुत पश्चाताप हुआ और वह जंगल में आराधना करने चला गया। उसने निरंजन निराकार की उपासना की और इसलिए उसके मत के अनुयायी निरंजनी कहलाये'[3]। स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा के अनुसार, 'ये हरिदासजी प्रथम प्रागदासजी के शिष्य हुए, फिर दादूजी के। फिर कबीर और गोरखपंथ में हो गए, फिर अपना निराला पंथ चलाया'[4]। दादू पंथ में तो यह बात प्रचलित है पर निरंजनी इसको नहीं मानते। इस दृष्टिकोण से इनका जीवनकाल, लगभग, सम्प्रदाय में प्रचलित मत के अनुसार ही हो जाता है। स्वामी मंगलदास[5], डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[6], डा० मोतीलाल मेनारिया[7] तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी[8] इसी मत के समर्थक हैं। फारसी पुस्तक, "दबिस्तनुल-मजाहिब" में इनका देहान्त बादशाह शाहजहां के शासनकाल में, संवत् १७०२ में होना लिखा है[9]। इनकी 'वाणी' में प्रयुक्त, 'कहां अकबर नौरोज' उक्ति से भी, इस मत की पुष्टि होती है[10]। दादूपंथी राघोदास की भक्त-नामावली से इनका कोई विशेष पता नहीं चलता।

दूसरी ओर दादू के शिष्य सुन्दरदासजी (समय—संवत् १६५३-१७४६) के कथन से[11]

---

१. (क) कल्याण,—'भक्त चरितांक,' वर्ष २६, पृ० ४४८ :
   (ख) मरु-भारती, वर्ष ४, अंक १, अप्रैल, १९५६ :
२. 'श्री हरिपुरुषजी की वाणी', के अन्तर्गत 'संक्षिप्त जीवन चरित्र' से,
   (—साधु देवादास : जोधपुर, सं० १९८८)
३. श्री बजरंगलाल लोहिया : राजस्थान की जातियाँ, पृ० ६७, (कलकत्ता, १९५४)
४. सुंदर ग्रंथावली, प्रथम खंड, जीवन-चरित्र, पृ० ९२ :
५. कल्याण-'भक्त चरितांक', वर्ष २६, पृ० ४४७-४८ :
६. हिन्दी साहित्य, पृ० १४८ :
७. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३१२-१३ :
८. संत काव्य, पृ० ३२१-२२ :
९. मरु-भारती, वर्ष ४, अंक १, अप्रैल, १९५६, 'राजस्थान की संत परंपरा'-श्री झावरमल शर्मा :
१०. श्री हरिपुरुषजी की वाणी, पृ० ३८३ :
११. सुंदर ग्रंथावली, पृ० ३८५ :

अनुमान होता है कि हरिदासजी कोई प्राचीन महत्वशाली सन्त रहे होंगे। श्री जगद्धर शर्मा के मतानुसार, इनका रचनाकाल संवत् १५७७-९७ है[1], जो सुन्दरदासजी के कथन की पुष्टि करता है। दादू महाविद्यालय, जयपुर, के कुलपति स्वामी मंगलदासजी के संत-वाणी-संग्रहालय में प्राप्त एक प्राचीन पत्र के पद्य का हवाला, श्री झावरमल शर्मा ने दिया है[2] जिसके अनुसार, इनका जन्म संवत् १५१२ में हुआ और ज्ञान की प्राप्ति संवत् १५५६ में हुई। पद्यांश इस प्रकार है—

पन्द्रह से बारह गये, हरि धार्‌यो अवतार।
ग्यान भगति वैराग्य दे, जीव किए भव पार॥
पन्द्रह से छप्पन समय, वसंत पंचमी जान।
तब हरि गोरख रूप धरि, आप दियो ब्रह्मज्ञान॥

इसी प्रकार निरंजनी सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ, "मन्त्रराज-प्रकाश" के अनुसार हरिदासजी का जन्म संवत् १४७४ और स्वर्गवास संवत् १५९५ के फाल्गुन सुदी ६ को हुआ[3]। अन्यत्र इनकी मृत्यु संवत् १६०० में भी मानी गई है[4]।

इस विषय में दो ही बातें संभव हैं:—

(१) या तो हरिदास नाम के कोई प्रसिद्ध संत निरंजनी पंथ के मूल-प्रवर्त्तक रहे होंगे और इन 'हरीसिंह' ने मूल-प्रवर्त्तक के नाम से इस सम्प्रदाय की श्री-वृद्धि की, अथवा

(२) इस सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्त्तक यही हरीसिंह थे, जिन्होंने 'हरिदास' के नाम से सम्प्रदाय चलाया।

स्वामी मंगलदास दूसरी बात के समर्थक हैं[5]। परन्तु पहली बात ही अधिक संगत प्रतीत होती है। ऊपर दिए गए मन्त्रराज-प्रकाश तथा सुन्दरदास, आदि के कथन से किन्हीं 'हरिदासजी' के संप्रदाय-प्रवर्त्तक होने की पुष्टि होती है, जो निश्चय ही इन हरिदास (हरीसिंह) से भिन्न हैं और इनसे पूर्व हुए हैं। अन्यत्र भी इसका समर्थन मिलता है[6]।

इस प्रकार, प्रतीत होता है कि ये 'हरीदास', निरंजनी सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्त्तक नहीं थे। इन्होंने तो मूल-प्रवर्त्तक के नाम से, पूर्व-परम्परा से चले आते हुए, निरंजनी संप्रदाय की श्री-वृद्धि की। इनकी प्रतिभा और मेधा ने क्षीण से निरंजनी सम्प्रदाय को एक प्रमुख सम्प्रदाय बना दिया और मूल-प्रवर्त्तक का नाम इनके नाम में मिल कर अपना अस्तित्व खो बैठा।

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संवत् १९९७, पृ० ७७ :
२. मरु-भारती, वर्ष ४, अंक १, अप्रैल, १९५६ :
३. वही;—
 (क) 'चवद शत संवत् सप्तचार, प्रगटे सुदेश मुरधर मझार'।
 (ख) 'पंद्रह सौ पचाणवें शुद्ध फागण छठ जान।
 बीसा सो वपु राख के, पहुंचे पद निर्वाण'॥ (-मंत्रराज-प्रकाश से)।
४. वही;-संवत् सोलह सैं, सई के, हरि पुरुष गये धाम हरि के।
 (—जानकीदास रचित जीवन चरित्र से)।
५. कल्याण-'भक्त चरितांक', पृ० ४४८ :
६. मरु-भारती, वर्ष ४, अंक १, अप्रैल, १९५६,—श्री झावरमल शर्मा :

कालान्तर में यही हरिदासजी सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्तक मान लिए गए। दुर्भाग्य से सम्प्रदाय के उन मूल-प्रवर्तक हरिदासजी का कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता। जहां तक इन हरिदास जी (हरीसिंह) के जीवनकाल-निर्धारण का प्रश्न है, सम्प्रदाय का मत ही ठीक प्रतीत होता है, पर सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्तक ये नहीं थे।

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने निरंजनी सम्प्रदाय को, नाथ-पंथियों और संतों के बीच की महत्त्वपूर्ण लड़ी माना है[1], किन्तु उनसे सहमत होना कठिन है। एक तो उक्त हरिदासजी के अतिरिक्त, मूल संप्रदाय-प्रवर्तक और उनकी शिष्य-परंपरा का कोई इतिहास प्राप्त नहीं है। दूसरे, इन हरिदासजी की विषय-वस्तु, शैली और साधना के आधार पर भी इनको अन्य निर्गुणमार्गी संतों और उनकी परंपरा से अलग नहीं माना जा सकता। उदाहरणों द्वारा इसकी पुष्टि की जा सकती है। श्री परशुराम चतुर्वेदी का भी ऐसा ही अनुमान है[2]।

इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनों का सम्मिश्रण है। अन्य विषय धार्मिक सहिष्णुता, सदाचार, वाह्याडंबर की निस्सारता आदि प्रायः वही हैं, जो अन्य संतों की वाणियों में पाए जाते हैं। विषय-निरूपण का ढंग सर्वत्र उनका अपना है जो अत्यन्त चित्ताकर्षक है। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक कट्टरता की इन्होंने घोर भर्त्सना की है, जैसे कि 'भरम विध्वंस के अंग' में जैन धर्म की[3]। भाषा मुहावरेदार राजस्थानी है। पदों और साखियों में टेक 'जन हरिदास' की लगती है। दादू की भांति इन्होंने भी कबीर का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया है। रचना के उदाहरण देखिए[4]—

पार पार मति गति अगम, परे न पहुंचे हाथ।
जन हरिदास सो कोण है, भरे आभ सुं बाथ ॥
मसि कागज पहुंचे नहीं, अगम ठौड है लोय।
जन हरिदास ऐसी कथा, जाणे विरला कोय ॥
(—निरंजन जोग लीला ग्रन्थ से)

गावण सूं रोवण भला, रोवण गांवण मांही।
राम वियोगी पीव के, तलफि तलफि मरि जांही ॥
(—शब्द परीक्षा योग से)

---

१. (क) The Nirguna School of Hindi Poetry—'Preface';
(ख) योग प्रवाह, पृ० ३४५, (संवत् २००३):
२. (क) 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' की भूमिका, पृ० ३२, (सं० २००७) तथा
(ख) उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४७४ :
३. जैन धरम माया सरूप, परस्यां लागे पाप।
जन हरिदास निरभै मतै, भजो निरंजन नाथ ॥
जैन धरम की वातड़ि, सांभलि मनवा वीर।
ऊजड़ि कूप ऊँजाड़ि में, जहां छाया नहिं नीर ॥
जैन धरम की वातड़ी, सुणत सुणत भया भोर।
जन हरिदास जहां का तहां, धरमं में तें चोर ॥ आदि।
४. 'श्री हरिपुरुषजी की वाणी' से :

नीचे डाल मूल भया ऊपरि, अज्या सिघ सूं जूझे।
मकड़ी कूं माखी नही छाड़ै, आंधा कूं सब सूजे॥
(—योग मूल सुख योग ग्रन्थ से) :

पद (तीताला) —

रातड़ी सवाई हो रामजी बहि गई पल पल छीजे गात।
करणां सुणि करुणामई, महलि पधारो हो नाथ॥टेर॥
सब मतिवाला हो रामजी सब अवया, नींदड़ी न आवे हो मोही।
मेरी वेदनि रामजी जांणि है, कै जिस वेदनि होई॥१॥
यो तन रामजी यूं ही जात है, हम बल कछू न बसाय।
परम सनेही रामजी तुम मिलो, हरि सकल भवन पति राय॥२॥
चरणां चोकी रामजी चित धरों, आतम सेज संवारि।
थंन सुभाना रामजी प्रीति सूं, दरसौ देव मुरारी॥३॥
जन हरिदास रामजी यूं बिनवे, मेरा नैनन खड़े हो धार।
दरस दिखावो ओ रामजी आपणां, हरि सम्रथ सिरजनहार॥४॥

———

अध्याय १२

मीराँबाई

मीराँ के जीवन, व्यक्तित्व, समय, काव्य तथा उसकी भक्ति और प्रसिद्धि को लेकर भिन्न भिन्न विद्वानों ने उसको भिन्न भिन्न उपमाओं से सुशोभित किया है। भक्तमाल के रचयिता नाभाजी के अनुसार, वह गोपिका के सदृश है[१]। डा० हरमन गोज उसकी तुलना ईसा मसीह से करते हैं[२]। अन्यत्र उसकी तुलना रामतीर्थ[३], दक्षिण की कवियित्री अंडाल[४], उत्कल के जगन्नाथदास[५], शकुन्तला[६], सूफिया साधिका रबिया और ईसाई भक्तिन टैरेसा[७], ग्रीस की कवियत्री सैफो (Sappho)[८] आदि से की गई है और उसको प्रह्लाद की पुरानी कथा को कलियुग में नया जन्म देनेवाली[९], व्रज गोपी का अवतार[१०], राधाजी का अवतार[११], कलजुग की गोपी[१२], गोपी भाव की साधिका[१३] आदि कहकर पुकारा गया है। यहां तक कि उसके व्यक्तित्व को संसार में अद्वितीय बताया गया है[१४]।

इतनी उपमाओं से अलंकृत होते हुए और राजस्थानी, हिन्दी व गुजराती साहित्य की एक उत्कृष्ट स्त्री भक्त व कवि के रूप में जानी जाती हुई भी, वह इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। उसके जन्म, स्वर्गवास, जीवन की प्रमुख घटनाएं, चरित्र, सामाजिक सम्पर्क, विचार आदि सब अभी तक विवादग्रस्त और अन्धकार से आच्छादित हैं। न उसकी रचनाओं की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित पोथी अद्यावधि उपलब्ध हुई है[१५] और न उसके परिजनों-माता-

---

१. सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलजुगहिं दिखायो।
2. Journal of the Gujarat Research Society, Bombay,—'Mirabi: A Tantative critical biography',-Vol. XVIII, No. 2, April, 1956.
३. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० २७, (बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता स० २००६):
४. डा० शशिभूषण दासगुप्त : श्री राधा का क्रमिक विकास, (१९५६):
५. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० ५६ : ६. भारतीय विदुषी, पृ० २८ :
७. साहित्य-सन्देश, दिसम्बर, १९४६, 'घायल मीरा की अन्तर्वेदना',—श्री कन्हैयालाल :
८. श्री परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ० ७४, (१९५२) :
९. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० २४२ :
१०. राग कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ३२७ :
११. जीवन साहित्य, प्र० सं०, १९२७, 'जन्माष्टमी का उत्सव', पृ० ३८,—काका कालेलकर :
१२. डा० श्रीकृष्णलाल : मीराँबाई, पृ० ७३ :
१३. श्री परशुराम चतुर्वेदी : मीराँबाई की पदावली, पृ० ३७, (छठा संस्करण, २०१२) :
१४. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० २७ :
१५. मीराँ की पदावली के संग्राहक दो विद्वानों ने हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है। प्रथम हैं श्री नरोत्तमदास स्वामी (मीरा-मंदाकिनी, प्रस्तावना, पृ० १७ तथा ३२) और दूसरे हैं, श्री ललिताप्रसाद सुकुल। स्वामीजी से पता चला है कि वह हस्तलिखित प्रति विक्रम की १९ वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुई है। सुकुलजी द्वारा संग्रहीत पदावली के विषय में अन्यत्र लिखा गया है।

पिता, दादा, गुरु, पति, सास, श्वसुर आदि का निर्विवाद सम्यक् परिचय ही प्राप्त हो सका है।

मीराँ की लोकप्रियता ने तो बाद के दिनों में उसे चमत्कारों से भरी हुई एक नारी भक्त तथा संत का रूप दे दिया है और उसके कहे जाने वाले तथाकथित अधिकांश गीत, लोकगीतों की कोटि में परिगणित करने योग्य बन चुके हैं[१]। मीराँ का जीवन अत्यधिक जनश्रुतियों से अतिरंजित होकर आज भी केवल किस्से-कहानी मात्र है[२]।

'मीराँ' नाम : उसकी व्युत्पत्ति :—समस्या मीराँबाई के इस नाम से ही शुरू होती है।

(१) सर्वप्रथम स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इसकी चर्चा उठाई थी[३]। उनके अनुसार 'मीराँ' शब्द फारसी के मीर शब्द से बना है, तथा किसी संत, विशेषकर मुसलमान संत का दिया हुआ उपनाम है। कबीर के चार दोहों[४] में आए हुए मीराँ शब्द का अर्थ परमात्मा या ईश्वर तथा बाई का अर्थ पत्नी लगाकर, मीराँबाई का अर्थ निकाला—'ईश्वर की पत्नी'। पर यह उपनाम वाली बात असंगत प्रतीत होती है। राजस्थान में 'बाई' शब्द पत्नी के लिए नहीं प्रत्युत बहन के लिए प्रयुक्त होता है। और कहीं कहीं पुत्री के अर्थ में भी[५]। इसके अतिरिक्त कबीर के दोहों में आया हुआ 'मीराँ' शब्द खुदा या परमेश्वर के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है[६]। इसी के आधार पर डा० बड़थ्वाल ने मीराँ को निराकारवाद की पोषिका सिद्ध करने की चेष्टा की है और इसका समर्थन कबीर के उक्त दोहों से कराया गया है।

(२) पं० के० का० शास्त्री मीराँ के मूल रूप 'मिहिर' की संभावना प्रकट करते हैं[७]।

(३) प्रो० नरोत्तमदास स्वामी प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण के आधार पर मीराँ का मूल रूप 'वीराँ' मानते हैं[८]। स्वामीजी की इस दलील को स्व० पुरोहित हरिनारायणजी ने बहुत लचीली कहा था[९]। अन्यत्र भी स्वामीजी की धारणा का खंडन हुआ है[१०]।

---

१. देखिए—'मीराँ-सुधा-सिन्धु' के पद तथा उन पर स्वामी आनन्दस्वरूप की टिप्पणियां :

२. (क) मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० ४४-४५,—'जनम जोगिण मीरा'-,(—शंभुप्रसाद बहुगुणा);
 (ख) 'पद्मावती' शबनम : मीराँ, एक अध्ययन, पृ० १२ (२००७):

३. सरस्वती, (प्रयाग) भाग ४०, अंक ३; तथा 'योग प्रवाह' :

४. (क) कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ।
 मीराँ मुझसौं यो कह्या, किनि फुरमाई गाइ॥
 (ख) हज काबे ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
 मीराँ मुझमें क्या खता, मुखाँ न बोलै पीर॥
 (ग) सुर नर मुनिजन, पीर, अवलिया, मीराँ पैदा कीन्हा रे।
 कोटिक भये कहाँ लूं बरनूं, सबनि पयाना दीन्हा रे॥
 (घ) कंहु कबीर न दर करे जे मीरा, राम नाम लगि उतरे तीरा।

५. श्री महावीरसिंह गहलोत : मीराँ, जीवनी और काव्य, पृ० १३ (२००२) :

६. श्री ब्रजरत्नदास : मीराँ-माधुरी, पृ० ११३ (२०१३) :

७. कवि चरित, भाग १ :

८. राजस्थानी-साहित्य (उदयपुर), वर्ष १, अंक २ :

९. श्रीमहावीरसिंह गहलोत : मीराँ, जीवनी और काव्य; पृ० १४ में निर्देशित।

१०. राजस्थानी-साहित्य, वर्ष १, अंक ३ :

(४) पुरोहित हरिनारायणजी की धारणा है कि मीरां नाम अजमेर शरीफ के सिद्ध मीराशाह की मनौती के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण दिया गया है[१]। पर इस पर भी प्रश्नवाचक चिह्न लगाया गया है[२]।

(५) श्री ललिताप्रसाद सुकुल ने मीरा की व्युत्पत्ति के लिए मेड़ता शब्द की व्याख्या की है और मीर से जलाशय का अर्थ लेते हुए, राव दूदा द्वारा अपनी पौत्री का मीरा नाम रखा जाना बताते हैं[३]। पर शुकुलजी की यह धारणा कि दूदाजी ने मेड़ता की, "स्थापना-पुनर्स्थापना नहीं" की थी, निराधार और सर्वथा अशुद्ध है। ११ वीं शताब्दी में रावल कर्ण के पुत्र राहप ने मेड़ता विजय किया था, इसका उल्लेख मिलता है[४]। संवत् १५१२ में रचित, कान्हडदे प्रबंध में भी मेड़ते का उल्लेख हुआ है[५]। इस प्रकार और भी कई उल्लेख मिलते हैं[६]। पुरोहित हरिनारायणजी वाली मान्यता को लेकर उन्होंने जो आक्षेप किया है, वह भी समीचीन नहीं जान पड़ता[७]।

(६) श्री महावीरसिंह गहलोत मीरां के सागर या महान् (श्रेष्ठ) अर्थ करते हैं और यथानाम तथागुण के अनुसार 'मीरां' की उत्पत्ति मानते हैं[८]।

(७) श्री ब्रजरत्नदास मीर या मीरा शब्द को संस्कृत का मानते हैं, और इसकी व्युत्पत्ति यों दिखाते हैं: 'मीया मि+इरा=मीरा'। अपने मत के समर्थन में उन्होंने अंग्रेजी, जर्मन, डच तथा फ्रेंच भाषाओं के Mere आदि समानतापरक शब्दों और उनके अर्थों का उल्लेख भी किया है[९]।

(८) श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार 'मीरां' शब्द का मूल रूप 'मीर' ही है[१०]।

---

१. संतवाणी पत्रिका, वर्ष १, अंक ११, पृ० २४ :
२. (क) महावीरसिंह गहलोत : मीरां, जीवनी और काव्य ;
 (ख) मीरा स्मृति ग्रन्थ, के अन्तर्गत, 'मीरा निरुक्त' में।
 (ग) मुंशी देवीप्रसाद कृत मीरांबाई का जीवन चरित्र में,(बंगीय हिन्दी परिषद्)
३. मीरा स्मृति ग्रंथ,-'मीरानिरुक्त' तथा मुंशी देवीप्रसाद कृत मीरांबाई का जीवन चरित्र।
४. (क) नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १९-२० : 'रावल कर्ण ने ... ज्येष्ठ कुंवर माहप को सेना साथ देकर मेड़ते के राणा को विजय करने के वास्ते भेजा...कुंवर तो गर्भ रिपु होने के कारण मेड़ते नहीं गया .. मेड़ते के राणा की राणा पदवी राहप को दी और उसे अपना पाटवी बनाया'।
५. कटक मेडतइ घाती गयां, नवइ लाप एक पाहुरि थयां ॥४॥६२॥ पृ० १८१ :
६. (क) श्री जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ का इतिहास, पृ० ३११ ;
 (ख) बृहत् काव्य दोहन, भाग ७, पृ० १५ (१९११ ई०) ...'मेम कहेवाय छे के प्रथम ए पुर परमार वंशीय राजा मान्धाताए स्थाप्युं हतुं। जे ऊपरथी ते "मान्धातापुर" (अपभ्रष्ट "मेडता") कहेवातु। तेने...दुदाजीए (सं० १५१८) (सं० १५४२ ?) पुन: स्थाप करयूं'।
७. श्री ब्रजरत्नदास : मीरां-माधुरी, पृ० ११८ :
८. मीरां, जीवनी और काव्य, पृ० १७ :
९. मीरां-माधुरी, पृ० ११४-११५ :
१०. मीरांबाई की पदावली, पृ० २४२-४३ :

(९) श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा की सूचना के अनुसार 'मीर' शब्द अरबी का भी है[१]।

(१०) दलाल जेठालाल चार्डीलाल के अनुसार, मीरां के जन्म के समय अलौकिक प्रकाश का बिम्ब दिखलाई पड़ा था, जिससे कुमारी का नाम मही+इरा=अर्थात मीरा रक्खा गया था[२]।

(११) सर जार्ज मैकमन ने अपनी पुस्तक The Underworld of India में मीरांबाई को वेश्या के रूप में याद किया है[३]। 'मीरां' नाम पर किए गए आक्षेप की यह चरम-सीमा है।

उक्त सभी मतों से यह प्रतीत होता है कि 'मीरां' नाम पर शंका उठाने का कारण है इस नाम का साधारणतया बहु-प्रचलित न होना। पर ऐसी बात नहीं है कि 'मीरां' नाम ही नहीं मिलता। नैणसी की ख्यात में बारठ बीठू के दोहे में मीरां शब्द आया है[४]। दादू के दोहों में भी मीरां शब्द मिलता है[५]। इसी प्रकार प्रसिद्ध चारण महात्मा ईसरदास (सं० १५९५-१६७५) के 'गुण निधातत:' नामक ग्रन्थ में यह शब्द मिलता है[६]। ओझाजी ने मीरां के समकालीन जोधपुर के राव मालदेव की एक पुत्री का भी नाम मीरांबाई बताया है[७]। नैणसी की ख्यात में कई स्थलों पर पुरुषों का नाम 'मेरा' मिलता है[८]। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की "राठोडा री वंशावली नं पीढ़ियां नें फुटकर वातां" नामक एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में 'मेरा' का उल्लेख मिलता है[९]। जब पुरुषों का नाम मेरा हो सकता है, तब यह

---

१. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० ५२-५३ : (२) मीरां-माधुरी, पृ० ११६, में निर्देशित :
३. वही; पृ० ११५ में निर्देशित :
४ खंगहें किया खड़ाक, सी लोगा सुरतांण सूं।
मीरां मीलक नूं मार, छोड्यां उतरी छाक ।। -ख्यात, भाग २, पृ० २२७ :
५. (क) दादू कारण कंत के, खरा दुखी बेहाल।
मीरा मेरा मिहर करि, दे दरसन पर हाल ।।
(ख) बंदा बरदा चेरा तेरा, हुक्मी मैं बेचारा।
मीरां मिहरबान गोसाईं, तू सिरताज हमारा ।।
(ग) मीरा मेरा मिहिर दया करि, दादू तुम ही ताईं। आदि।
६. हस्तलिखित प्रति०– सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता :
(क) मीरां मौड बंधावो माथे, हव आपाडि मेघि रिपि हाथे।
(ख) मीरां मीर मिलिकि मिलिका, तुं पांदालं मसिहा पलकां।
७. जोधपुर राज्य का इतिहास, खंड १, पृ० ३८९ :
८. ख्यात, प्रथम भाग- (क) पृ० २५– राणा मोकल मंडोर के राव चूंडा की बेटी हंसाबाई के पेट का, जिसे राणा खेता के पासवानीये खातण के पुत्र चाचा व मेरा ने मारा।
(ख) पृ० १७१,–"बावसूई के चौहान" (वंशावली)... २१ 'मेरा'।
(ग) पृ० २४७,–'ऊमरकोट के सोढों की वंशावली.. मेरा'। तथा फुटनोट के छप्पय में इस मेरा का वर्णन भी है—'महिकरण नरो रिणमल मदे, मेरो गुणसागर सुमत'।
९. ह० प्रति नं० २३३१६....."सु पेतु रो दीकरो मोकल रांणें नु चाचे मेरै चूक करि नै मार नै चीत्रोड घेरीयो माहे कुभो रोकीयो। पछै राउ रिणमल साथ करि नै भाणेज रे वेर गया। पछै आदमी १२ से उपर चढीया। चाचो मेरो नाठो। पछै राणे कुंभे नु टीको दे नै चाचे मेर रे पीसे हुया। चाचो मेरो पीई रै भाखर मारीया। ताहरा चाचे मेर रौ वेरा राउ रिणमल कुमा काढीया नु दीन्हा"।

असंभव नहीं कि लड़कियों का नाम मीरां न हो। फिर, यह आवश्यक भी नहीं कि प्रत्येक नाम का मूल रूप संस्कृत में मिले ही। मीरां नाम का अधिक प्रचलित न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु मीरा, मीरां या मीराँ नाम को लेकर वितण्डा करने से कोई लाभ दृष्टि-गोचर नहीं होता। नाम पड़ने के अनेक कारण हो सकते हैं। यों, मीरां शब्द की व्युत्पत्ति के लिए अनेक अनुमानित शब्दों का हवाला दिया जा सकता है[1]। पर, प्राचीनकाल के डित्थ्-डविथ् आदि निरर्थक यदृच्छात्मक शब्दों के प्रयोग की भांति आज भी राजस्थान के विभिन्न गांवों में ऐसे नाम मिल जाएंगे, जिन शब्दों के कोई अर्थ नहीं होते। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां नाम ही होना चाहिए, उपनाम नहीं[2]।

नाम की व्युत्पत्ति के अतिरिक्त मीरां के लिए 'मीरा' 'मीरां' अथवा 'मीराँ' लिखे जाने की किंचित् चर्चा भी हुई है। कुछ विद्वान् 'मीरा' लिखने के पक्ष में हैं[3]। स्व० डा० पीताम्बर-दत्त बड़थ्वाल के अनुसार 'मीरा' का सानुस्वार प्रयोग करना आवश्यक नहीं[4] और प्रो० नरोत्तमदास स्वामी[5], डा० सावित्री सिन्हा[6], भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'[7] आदि ने 'मीरा' शब्द ही लिखा है।

मुंशी देवीप्रसाद[8], प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव[9], हरसिद्ध भाई दिवेटिया[10], इच्छाराम सूर्यराम देसाई[11], तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी[12] आदि विद्वानों ने 'मीरां' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु श्री परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, प्रयोग-शुद्धि की दृष्टि से, 'मीरा' को

---

१. (क) 'मी' (हिंसायाम्), 'मीयते' (हिंसार्थक)-
शान्त-कुटीवैदिक ग्रंथमाला, पृ० ६६२, Vol. V, १९४५;-विश्वबन्धु शास्त्री, लाहौर :
(ख) डुमिञ् प्रक्षेपणे–सिद्धान्त कौमुदी-स्वादय:, पृ० ४०६, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९३९ :
(ग) शुसिचिमीना दीर्घश्च (मीर=समुद्र)–वही; पृ० ५३०–उणादि १९३ :
(घ) मीयते, मीनाति=मीनीते; पद्मचंद कोष, पृ० ३८८, गणेशदत्त शास्त्री, लाहौर, '२५ :
(ङ) मिनोति, मिनुते–वही; पृ० ३८७ :
(च) मील्, मीलति, अमीलीत्–वही; पृ० ३८९ :
(छ) मिरिया कुडी,-देशीनाममाला, भाग १, श्लोक १३२, पृ० १९६, (कल०, १९३१) :
(ज) 'मीर्म समकालम्' –वही; श्लोक १३३, पृ० १९६ :
२. (क) डा० श्री कृष्णलाल : मीरांबाई, पृ० ५४;
(ख) मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियां, पृ० १०९ :
३. श्री ललिताप्रसाद सुकुल, -मीरा स्मृति ग्रन्थ, पृ० ५२, तथा
'मुंशी देवीप्रसाद कृत मीराबाई का जीवन चरित्र'
४. मीरां-बाई की पदावली, पृ० २४३ में निर्देशित :
५. मीरा-मंदाकिनी :
६. मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रिया, पृ० १०५-१५८ :
७. मीरा की प्रेम साधना :
८. मीरांबाई का जीवन चरित्र :
९. मीरां दर्शन :
१०. मीरांबाईनां भजनो :
११. बृहत् काव्य दोहन, भाग ७ :
१२. वही :

'मीराँ' बनाकर ही लिखना उचित है[१]। राजस्थान में 'मीराँ' ही बोला जाता है। डा० मोतीलाल मेनारिया[२], श्री ब्रजरत्नदास[३], डा० श्रीकृष्णलाल[४], महावीरसिंह गहलोत[५], प्रभृति विद्वानों ने 'मीराँ' शब्द ही लिखा है। इसके अतिरिक्त, राजस्थानी व्याकरण के अनुसार बहुवचनान्त 'मीराँ' शब्द आदरबोधक है।

जीवन काल आदि : नाम और नाम के लिखे जाने के अतिरिक्त मीराँ के जीवनकाल और व्यक्तित्व आदि के संबंध में भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न मत दिए हैं।

उसका जन्मस्थान कहीं चोकड़ी[६], कहीं कुड़की[७] और कहीं कुड़की (चोकड़ी)[८] बतलाया गया है। कहीं उसके जीवनकाल की सीमारेखा संवत् १४६० से १५२७ तक[९], कहीं संवत् १५५५ से १६०३ तक[१०] और कहीं संवत् १६५६-६० से १६३० तक[११] निर्धारित की गई है। कहीं उसको राव दूदा की पौत्री[१२] और कहीं प्रपौत्री[१३] बताया गया है।

कहीं पर लिखा है कि मीराँ को बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी[१४] तथा वह बहुत भाषाओं की जानकार थी[१५] और कहीं इस विषय में गहरा सन्देह प्रकट किया गया है[१६]। कहीं उसका विवाह राणा कुंभा से होना बताया जाता है[१७], तो कहीं रायमल से[१८] और कहीं पर (जो

१. मीराँबाई की पदावली, पृ० २४३ :
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, तथा राजस्थान का पिंगल साहित्य :
३. मीराँ-माधुरी .
४. मीराँबाई :
५. मीराँ, जीवनी और काव्य :
६. (क) मुंशी देवीप्रसाद : महिला मृदुवाणी;
   (ख) निर्मल : स्त्री कवि कौमुदी :
   (ग) मीराँबाई की शब्दावली और जीवन चरित्र, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९१० :
   (घ) राजस्थान, वर्ष १, संख्या १, सं० १९९२ (कलकत्ता),—
   'राजस्थान की हिन्दी कवि रानियाँ'—सूर्यकरण पारीक :
७. (क) रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, (सं० १९९०, प्रयाग) :
   (ख) लाला सीताराम : Selections from Hindi Literature, Book IV, (Calcutta, 1924):
८. वृहत् काव्य दोहन, भाग ७, पृ० १८, (१९११ ई०) :
९. K. M. Jhaveri : Milestones in Gujarati Literature:
१०. ओझा, हरविलास शारदा, आदि ।
११. डा० श्रीकृष्णलाल : मीराँबाई; तथा मीराँबाई की शब्दावली, (बेलवेडियर प्रेस) :
१२. मीराँबाई का जीवन चरित्र, मुंशी देवीप्रसाद-कृत, पृ० २, फुटनोट, (बंगीय हिंदी परिषद्)
१३. वही; पृ० २ फुटनोट, कविराजा श्यामलदास का कथन ।
१४. (क) मीराँ, जीवनी और काव्य : पृ० २० (गहलोत) :
   (ख) मीराँबाई की पदावली, पृ० २२ (चतुर्वेदी) :
१५. वृहत् काव्य दोहन, मीराँबाई, पृ० ५०,—'मीराबाई बहुभाषानी ज्ञाता होवा थी' ।
१६. स्त्री कवि कौमुदी, प्रथम संस्करण, १९३१,—डा० रसाल, पृ० ७ तथा १७ :
१७. Tod—Annals & Antiquities of Rajasthan, Vol. I & II.
१८. मीरा स्मृति ग्रंथ— 'जनम जोगिण मीरा', —शंभुप्रसाद बहुगुणा :

प्रायः बहुमान्य है) राणा सांगा के पुत्र भोजराज से[१]। ये भोजराज कहीं राणा सांगा के पाटवी पुत्र[२], कहीं दूसरे पुत्र[३] और कही पुत्र बताए गए हैं[४]। किसी के अनुसार, उसका वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक बीता[५] तथा उसने अपने पति को प्रसन्न रखने की चेष्टा की[६]; और इसके विपरीत मत के अनुसार, उसे अपने विवाहित जीवन में प्रबल संघर्ष करना पड़ा[७]। इतना ही नही, कहीं तो उसे विवाह के पश्चात् भी कौमार्यावस्था बिताते हुए दिखलाया गया है[८]। कहीं वह जहर पीती है[९], कही उसका सांप से मुकाबिला[१०] है और कहीं तालाब में डूबकर आत्महत्या कर लेने की कठोर आज्ञा[११] है। कहीं हाथी को उसपर छोड़ा जाता है और कही सिंह को[१२]। उसके शीघ्र ही विधवा हो जाने के वर्णन भी मिलते हैं[१३] और दूसरी ओर दीर्घकाल तक विवाहित जीवन बिताए जाने की संभावना भी प्रकट की जाती है[१४]। किसी के मतानुसार, उस पर किए गए अत्याचार उसके देवर ने किए[१५], तो किसी के अनुसार बीजावर्गी मंत्री ने[१६]। एक स्थल पर उसके सधवापन में कष्ट दिए जाने की संभावना व्यक्त की जाती[१७] है और दूसरे स्थल पर विधवा होने के पश्चात्[१८]। उसका काल-निर्णय करने में उसको कही विद्यापति[१९] की, कहीं रैदास और तुलसी की समकालीन बताया[२०] गया है। एक स्थल पर तुलसी के पत्र द्वारा प्रेरणा पाकर उसके गृह-त्याग का वर्णन मिलता है[२१]। उसकी भक्ति-प्रणाली और

---

१. मुंशी देवीप्रसाद; ओझा; शारदा, आदि।
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य (मेनारिया), पृ० १४५; तथा वीरविनोद, पृ० ३१२:
३. मुंशी देवीप्रसाद कृत मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ० २ के फु० में ओझा का पत्र।
४. राजपूताने का इतिहास (गहलोत) पृ० ११९; तथा मीरा स्मृति ग्रंथ की भूमिका (त्रिपाठी):
५. मीरा-मंदाकिनी (स्वामी), प्रस्तावना, पृ० ६; तथा बृहत् काव्य दोहन, पृ० १६:
६. Bankey Behari—The Story of Mirabai, page 10:
७. (क) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० १०७; (ख) 'भारत निर्माता', भाग १, पृ० ६२:
८. Dr. H. Goetz: Mirabai; Her life & times: A Tantative critical biography—Journal of the Gujarat Research Society, Vol. XVIII No. 2, April, 1956.
९. मीरां दर्शन (श्रीवास्तव); तथा मीरां सुधा-सिन्धु:
१०. "सांप पिटारो राणाजी भेज्यो.." तथा मीरां सुधा-सिंधु:
११. मैकालिफ :Legends of Mirabai:
१२. स्वामी आनन्दस्वरूप. मीरां सुधा-सिंधु
१३. (क) मुंशी देवीप्रसाद कृत मीराबाई का जीवन चरित्र, पृ० १०;
    (ख) मीरा-मंदाकिनी (स्वामी), प्रस्तावना पृ० ६:
१४. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० ४५ (बहुगुणा):
१५. मीरां-माधुरी, पृ० १०५, तथा मीरा-मंदाकिनी, भूमिका, पृ० ६:
१६. मीरांबाई (डा० श्री कृष्णलाल) जीवनी खंड, पृ० ५१:
१७. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० ४५ (बहुगुणा):
१८. मीरा-मंदाकिनी, भूमिका, पृ० ६:
१९. The Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 12.
२०. Journal of the Gujarat Research Society, Vol. XVIII, No. 2, 1956—Dr. H. Goetz—Mirabai; Her life & times इत्यादि:
२१. भारत निर्माता, भाग १, मीरां, पृ० ६२:

उपासना-पद्धति पर कहीं शुद्ध वैष्णव-प्रभाव[१], कहीं शुद्ध निर्गुण प्रभाव[२], कहीं योग-निर्गुण-समन्वित वैष्णव प्रभाव[३] और कहीं दुविधा युक्त मस्तिष्क के कारण संतुलित मत देना संभव नहीं हो सका है[४]। उसके गुरु के संबंध में भी भिन्न-भिन्न कल्पनाएं हैं। एक स्थल पर उसके गुरु जीव गोस्वामी[५], दूसरे पर रूप गोस्वामी[६], तीसरे पर सनातन गोस्वामी[७], चौथे पर भक्त-माल में वर्णित बीठलदास रैदासी[८], पांचवें पर रैदास[९], छठे पर वानी के प्रभाव से कोई रैदासी संत[१०], और सातवें पर प्रत्यक्ष गुरु की भांति रैदास[११] माने गए हैं। एक मत के अनुसार, वह किसी भी संप्रदाय-विशेष के अन्तर्गत नहीं थी[१२]।

एक मत के अनुसार, वह रणछोड़जी की मूर्ति में लीन हो जाती है[१३], दूसरे के अनुसार वह द्वारका में निर्वाण प्राप्त करती है[१४], और तीसरे के अनुसार, वस्त्र बदलने के बहाने, द्वारका के रणछोड़जी के मन्दिर से, अर्द्ध-रात्रि में अदृश्य हो जाती है[१५]। कहीं मेड़ते से उसकी दो बार वृन्दावन-यात्रा की संभावना प्रकट होती है[१६], कहीं एक बार[१७] और कहीं इस यात्रा के बिलकुल ही न किए जाने की[१८]। इसके विपरीत उसकी सीधे द्वारका-यात्रा की संभावना भी व्यक्त हुई प्रतीत होती है[१९]। उसकी तीर्थ-यात्रा के कारण भी भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, पर अधिकांशतः

---

१. मीरा स्मृति ग्रंथ : श्री सुकुल तथा डा० तारकनाथ अग्रवाल के लेख।
२. वही; (-बहुगुणा).
३. मीरांबाई (डा० श्रीकृष्णलाल) – आलोचना खंड; तथा मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० ११७ :
४. तुलनीय- श्री परशुराम चतुर्वेदी के निबंध-(१) संत मत और मीरां (मीरा स्मृति ग्रंथ में); तथा (२) मीरांबाई की भक्ति का स्वरूप (मध्यकालीन प्रेम साधना में) :
५. वियोगी हरि : मीरां, सहजो और दयाबाई (पद-संग्रह) :
६. मीराबाईजीर कड़चा वा श्री रूप गोस्वामीर शिक्षा तत्त्व : मीरां-माधुरी, पृ० १०१ (टिप्पणी) में उद्धृत ; तथा मीरां, एक अध्ययन, पृ० १२७ :
७. प्रकाशचन्द्र डे : जयदेव :
८. मीरां, जीवनी और काव्य, पृ० ४८ :
९. "गुरु म्हारे रैदास सरनन चित सोई" आदि पद।
१०. मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ० ७८ (चतुर्वेदी) :
११. मीरांबाई की पदावली, पृ० ७३ (चतुर्वेदी) :
१२. डा० शशिभूषण दासगुप्त : श्री राधा का क्रमिक विकास, प्रथम संस्करण, १९५६ तथा : के० का० शास्त्री : गुजराती साहित्यनु रेखा दर्शन, खंड १ लो, पृ० ११३ :
१३. (क) *The Story of Mirabai, Page 95* (Bankey Behari).
(ख) मीरां सुधा-सिंधु ;
(ग) मीरां, जीवनी और काव्य;
(घ) भारत निर्माता, भाग १, पृ० ६२ :
१४. (क) मीरां-माधुरी ; (ख) बृहत् काव्य दोहन :
१५. Journal of the Gujarat Research Society, Vol. Vol. XVIII, No. 2.
१६. मुंशी देवीप्रसाद कृत मीरांबाई का जीवन चरित्र :
१७. मीरांबाई की पदावली, पृ० २१ (चतुर्वेदी) :
१८. मीरां : एक अध्ययन (शबनम), पृ० ७५ :
१९. वही; तथा उदयपुर राज्य का इतिहास (ओझा); वीरविनोद।

वह सताई जाने से विवश, और बेसहारा होकर गृहत्याग करती है। हाल ही में डा० एच० गोज ने मीरां के समाज सुधारक और राजनैतिक पहलुओं पर बल देते हुए संभावना प्रकट की है कि अकबर का विवाह भारमली (भारमती) के साथ कराने में मीरां का विशेष हाथ था[१]।

इन भिन्न-भिन्न मतों को देखते हुए किसी एक मत पर पहुँचना कठिन प्रतीत होता है, तथापि बहिर्साक्ष्य और अन्तःसाक्ष्य के आधार पर विचार करने से उसके काव्य और व्यक्तित्व संबंधी कुछ जानकारी अवश्य हाथ लगती है।

बहिर्साक्ष्य :

बहिर्साक्ष्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) मीरां के संबंध में मिलनेवाले विभिन्न प्रसंग,

(ख) आधुनिक इतिहास लेखक :

(क) मीरां के संबंध में मिलने वाले विभिन्न प्रसंग :

१. हरीराम व्यास (संवत् १५६७-१६३५)
२. नाभादास (रचनाकाल-१६४२-१६५१)
३. प्रियादास (भक्तमाल के टीकाकार - १६७६)—
४. तुकाराम (१६६५-६७)
५. ध्रुवदास (१६८०-१७००)
६. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (१६६७)[२]
७. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (१७५२ लगभग)[३]
८. दादूपंथी राघोदास (संवत् १६५३-१७४६)
९. नरसी मेहता (१४७०-१५३६)
१०. नागरीदास (१७५६-१८२३)
११. चरणदास (१७६०-१८३८)
१२. दयाबाई (१८१०)
१३. नंदराम
१४. प्राणधन
१५. बख्तावर
१६. जन सद्मन
(१३–१६) अज्ञात
१७. सुन्दरदास कायस्थ. (वि० उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में)
१८. महीपति
१९. महाकवि देव (सं० १७३०-१८२४, २५)[४]
२०. रामदान लालस

१. Journal of the Gujarat Research Society, Vol. XVIII, No. 2.
२. श्री प्रभुदयाल मीतल : अष्टछाप परिचय, पृ० ६१ :
३. वही; पृ० ६२ :
४. डा० नगेन्द्र : देव और उनकी कविता, पृ० १५ तथा ३० :

२१ अंतराम
२२ गोसाई चरित
२३. फुटकर पद :

(क) राजस्थानी, (कलकत्ता), भाग ३, अंक १ में मीरां संबंधी एक पद,
(ख) राजस्थान में हिन्दी के ह० ग्रं० की खोज, भाग ३ में दो पद ,
(ग) शोध पत्रिका, भाग ६, अंक ३, सं० २०११ में प्रकाशित–'वार्तालाप' .

नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाता है :

(१) हरिराम व्यास के २ पद (रचनाकाल संवत् १६१२ के पश्चात्)[1]:
(१) अन्य भक्तों के साथ मीरां का नाम है[2] ।
(२) वे भक्तों को पिता जानकर हृदय लगाती हैं[3] ।

(२) नाभादास ने भक्तमाल में (प्रथम संस्करण का रचनाकाल संवत् १६४२ के पीछे किसी समय[4]) मीरां का वर्णन इस प्रकार किया है :—

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरधर भजी ।
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलजुगहिं दिखायो
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो
दुष्टनि दोष विचारी मृत्यु को उद्यम कीयो
बार न बांको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो
भक्ति निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृंखला, तजि मीरां गिरधर भजी ।

इससे निम्नलिखित बातों का पता चलता है:—
१ लोक लाज तथा कुल - शृंखला को त्याग कर मीरां ने गिरधर का भजन किया,
२ कलियुग में प्रकट होकर गोपिका के सदृश प्रेम दिखाया,
३ निरंकुश और निडर होकर रसिक श्री कृष्ण का यश गाया,
४ दुष्टों ने उसमें दोष देखकर उसकी मृत्यु का उपाय किया,
५ पर उसका बाल भी बांका न हुआ, (इस) जहर को अमृत के समान पी लिया, और
६ उसने भक्ति की दुंदभी बजाई तथा किसी से भी लज्जा नहीं की ।

(३) भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी ने अपनी भक्ति-रसबोधनी टीका के दस कवित्तों में (टीका संवत् १६६६ में समाप्त[5]) लगभग उन सभी किवदंतियों का समावेश कर दिया है जिनका वर्णन कुछ हेरफेर के साथ परवर्ती कवियों की रचनाओं में मिलता है । इनसे निम्नलिखित बातों का पता चलता है :—

---

१. मीरां-माधुरी, पृ० २५ :
२. "सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति विचारो" ।
३. "मीराबाई बिनु को भक्तनि पिता जानि उर लावे" ।
४. डा० श्रीकृष्णलाल : मीरांबाई, पृ० १६ :
५. मीरां-माधुरी, पृ० २७ :

१ जन्मभूमि मेड़ता में ही, अपने पिता के घर, गिरधारीलाल के प्रेम में वह पग गई थी।
२ राणा के साथ उसका विवाह हुआ और गिरधर के प्रेम में पगी हुई वह पति के ग्राम में आई।
३ पीहर से ससुराल विदा होते समय, उसके माता पिता ने वस्त्राभूषण लेने के लिये कहा, पर उसने केवल गिरधारीलाल की मूर्ति मांगी जो उसे मिल गई और वह प्रसन्न होकर चल पड़ी।
४ ससुराल पहुंचने पर वर-वधू का ग्रन्थि-बन्धन करके, सास ने उसको देवी की पूजा करने के लिए कहा, पर वह नहीं मानी। वह बोली कि मैं तो गिरधरलाल के हाथ बिक गई हूं।
५ इस पर सास अत्यन्त क्रुद्ध हुई। उसने अपने पति से जाकर कहा कि यह वधू किसी काम की नहीं है। इसने आते ही मेरा अपमान किया है, आगे तो न जाने यह क्या करेगी।
६ यह सुनकर राणा बहुत कुपित हुए, उसको मारने की सोची और उसके रहने के लिए अलग स्थान निश्चित किया।
७ पर मीरां को साधु-संगति ही सुहाती थी, उसे तो केवल श्याम की ही चाह थी।
८ इस पर उसकी नणद ने समझाया कि साधुओं से प्रेम करने में भारी कलंक लगता है; देशपति राणा, कुल, जाति आदि सभी लज्जित होते हैं। अतः साधु-संगति छोड़ दो पर, वह नहीं मानी।
९ इस पर कटोरा भर के जहर भेजा गया जिसे वह पी गई।
१० तत्पश्चात् राणा ने उसके पीछे चर लगाए जिन्होंने मीरां को गिरधरलाल के साथ बोलते और हंसते हुए सुनकर, राणा को इसकी खबर दी।
११ तब राणा ने तलवार लेकर पूछा कि जिसके साथ तुम रंग में भीगी हुई हो, उसे शीघ्र बताओ।
१२ मीरां ने गिरधर की मूर्ति को दिखाकर कहा कि मैं इसी से बातें कर रही थी। राणा खिसियाकर वापिस लौट गए।
१३ एक कुटिल विषयी ने साधु के वेश में, अपने को गिरधारीलाल का प्रतिनिधि बताकर मीरां से रति-दान मांगा। मीरां ने इस आज्ञा को शिरोधार्य करके उसको भोजन करने के लिए कहा। तत्पश्चात् साधु-समाज के बीच पलंग बिछा दिया गया। साधु का मुख सफेद हो गया, लज्जित होकर वह मीरां के पैरों पर गिर पड़ा।
१४ मीरां के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर अकबर, तानसेन के साथ, उसको देखने आया। गिरधारी-लाल की छवि निरख कर वह निहाल हो गया और एक पद बनाकर उनकी भेंट किया।
१५ वह वृन्दावन आई और वहां जीव गोस्वामी से मिलकर, उनके स्त्री-मुख न देखने का प्रण छुड़ाया।
१६ राणा की मलिन मति देखकर वह द्वारका में बस गई।
१७ मीरां की भक्ति को जानकर राणा बहुत दुखी हुए और उसको वापिस लिवा लाने के लिए, उन्होंने ब्राह्मणों को भेजा।

१८ यह सुनकर विदा लेने के लिए, वह रणछोड़जी की मूर्ति के पास गई और उसीमें लीन हो गई।

(४) तुकाराम के एक अभंग में मीरां का नाम सम्मान के साथ लिया गया है[1]।

(५) ध्रुवदास की भक्त-नामावली से निम्नलिखित बातें विदित होती हैं[2] :—

१ कुल की शंका न मानते हुए लाज छोड़कर मीरां ने गिरधर का भजन किया।

२ वह भक्ति की खान थी। उसका ललिता से बहुत प्रेम था और उसके साथ उसने रन क्षेत्र वृन्दावन का आनंद से भ्रमण किया।

३ वह नूपुर बांधकर, करताल लेकर नाचती थी। विमल-हृदय से भक्तों से मिलती थी। उसने संसार को तृण समान जाना,

४ इस कारण बंधु-वर्ग ने उसको जहर दिया, जो अमृत हो गया। इससे वे पछताए।

(६) चौरासी वैष्णवन[3] की तीन वार्ताओं, (गोविन्द दुबे[4], रामदास पुरोहित[5] और कृष्णदास अधिकारी[6]), में मीरांबाई का क्रमशः इस प्रकार उल्लेख है :—

(क) गोविन्द दुबे भगवद्वार्तार्थ मीरां के घर रहे। जब आचार्यजी ने ऐसा सुना तो एक श्लोक ब्रजवासी के हाथ भेजा। जिस समय वह पहुंचा, गोविन्द दुबे सन्ध्या-वदन करते थे। पत्र बांचते ही वे तत्काल उठे। मीरां ने बहुत समाधान किया, पर वे बोले नहीं और वहा से चले आए।

(ख) रामदासजी मीरांबाई के ठाकुरजी के आगे आचार्य महाप्रभु-विषयक पद गाते थे। इस पर मीरां ने दूसरा पद ठाकुरजी का गाने को कहा। उन्होंने इस पर मीरां को अपशब्द कहे और सकुटुम्ब वहा से चले आए, फिर कर उसका मुंह भी नहीं देखा और उसकी वृति छोड़ दी। मीरां ने बुलाया, पर वे नहीं आए, उसने भेंट भेजी, वह भी उन्होंने वापिस भेज दी।

(ग) कृष्णदासजी अधिकारी द्वारका में रणछोड़जी के दर्शनों के पश्चात् लौटते समय मीरां के गाव आए, और उसके घर गए। उस समय वहां अन्य मतावलंबी संत, महंत, स्वामी आदि थे। इनमें किसी को आए आठ, किसी को दस और किसी को पन्द्रह दिन हो चुके थे, परन्तु उनकी विदा नहीं हुई थी। कृष्णदासजी ने आते ही चलने की चर्चा चलाई। मीरां ने बैठने को कहा और कितनी ही मोहरें श्रीनाथजी को देने लगी, पर उन्होंने ली नहीं और कहा कि मैं तो वहां रहता हूं जहां आचार्यश्री के सेवक

१. मीरां-माधुरी : पृ० ३८-३६,—'जीव के जीवन, एका-जनार्दन, पाठक श्री कान्ह, मीराबाई'।
२. वही; पृ० ३२-३३ :
३. इसका प्रथम संस्करण सं० १६४२ से १६४५ माना गया है,—मीरांबाई, पृ० १८ :
४. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, संपादक : द्वारकादास पारीख, प्रथम संस्करण, २००५,— वार्ता प्रसंग ३, पृ० ३३१-३३२ :
५. वही; पृ० ४१७-४१८ :
६. वही; अष्ट सखान की वार्ता, पृ० १०२-१०३ :

होते हैं, अन्य मार्गवालों के साथ नहीं। तू आचार्यश्री की सेविका नहीं है, इस कारण मोहर हाथ से छुऊंगा भी नहीं। और वे वहां से उठकर चल दिए।

इस वार्ता के पाठ में कुछ भेद भी मिलता है। बीकानेर के श्री गिरधरदासजी मूंधड़ा की हस्तलिखित प्रति में ऐसा उल्लेख है कि जब कृष्णदास उसके घर पहुंचे, तब वहां अन्य वैष्णवों के साथ हरिवंश व्यास आदि भी उपस्थित थे।

(७) दो सौ बावन वैष्णवन[1] की दो–अजबकुंवर बाई की तथा गुसाईजी के सेवक हरिदास बनिया की, वार्ताओं से निम्नलिखित बातों का पता चलता है :—

 १ मीरांबाई की किसी देवरानी का नाम अजबकुँवर बाई था और वह गुसाईं विट्ठलनाथजी की सेविका थी।

 २ हरिदास बनिये की वार्ता में, किसी परदे में रहनेवाली जैमल की बहन का उल्लेख है जो पत्र द्वारा गुसाईंजी की शिष्या होती है:—

(८) दादूपंथी राघोदास की भक्त-नामावली और चतुरदास-कृत उसकी टीका में लगभग उन्हीं बातों का वर्णन है जिनका उल्लेख उनके पूर्व के भक्तमाल तथा उस पर प्रियादास की टीका में हुआ है[2]।

(९) नरसी मेहता के एक पद में मीरांबाई का नाम आया है, जिससे मीरां और नरसी का समकालीन होना सिद्ध होता है। इस पद में विष के अमृत किए जाने की चर्चा है। पर इस पद की प्रामाणिकता संदिग्ध है, क्योंकि नरसी का समय संवत् १४७० से १५३६ माना गया है[3]। संबंधित पद्यांश यह है —

तुं तारा बोर्द सांहांयुं जोजे सांमड़ा, न जोईश करणी हमारी रे।
मीरांबाईना विष अमृत कीधां, बीठ्ठलनी आरोग्या भाजी रे[4]।

इसी प्रकार अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, की 'नरसी मेहता रो मायरो' (रचयिता-रतना खाती) नामक हस्तलिखित प्रति[5] में राणा द्वारा भेजे गए विष के प्याले को अमृत कर पी जाने का उल्लेख मिलता है, किन्तु इसकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध ही है। 'मायरे' की चर्चा अन्यत्र की गई है जिसमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(१०) कृष्णगढ के राठौड़ राजा नागरीदास की पद-प्रसंग -माला में ३६ भक्तों का उल्लेख हुआ है, जिसमें मीरांबाई का भी वर्णन है[6]। इससे निम्नलिखित बातों का पता चलता है:—

 १ मेड़ते की मीरांबाई राणा के छोटे भाई से ब्याही थी। पति के देहान्त के बाद राणा, जो मीरां से वैष्णवों की संगति के कारण दुख पा रहे थे, ने इस अवसर पर उसको सती होने के लिए कहा। पर भगवान के रंग में रंगी मीरां ने इसको अस्वीकार कर दिया।

---

१. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, संपादक तथा प्रकाशक . ठाकुरदास सूरदास :
२. मीरां–माधुरी, पृ० ३९-४२
३. दिवेटिया : मीराबाईनां भजनो .
४. बृहत् काव्य दोहन, ग्रंथ सातवां; (ई० १९११)-'ज्ञान वैराग्यना पदो', पद नं० ७ पृ०३६ :
५. प्रति नं० ५०, (लिपिकाल-संवत् १९५२) :
६. मीरां–माधुरी, पृ० ४२-४८ :

उसने घर में जाकर ये बातें कहीं। राणा द्वारा दिये गए विष के प्याले को चरणामृत कहकर उसने मीरां को दिया। मीरां ने कहा कि, "राणा से कह देना कि ऐसा अमृत-प्याला तो वे रोज भिजवायें। न तो मुझे जीवन की प्रसन्नता है और न मृत्यु का डर। *मैं तो सबल धणी की शरण में हूं, वह अच्छा ही करेगा"।* *भगवान ने भी मीरां का प्रण रखा*—जहर को पलट कर अमृत कर दिया[1]।

(२२) फुटकर पद :

(क) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग३, में "मीरां संबंधी भजन" के अन्तर्गत, दूसरे भजन में इन बातों का पता चलता है :—

१ राणाजी ने मीरां से बात करना चाहा, पर जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया तो रुष्ट होकर, उन्होंने विष का प्याला भेजा जिसको चरणामृत समझकर वह पी गई[2]।

२ महल से उतरती हुई मीरां का हाथ राणा ने पकड़ा, तो वह बोली कि अपना नाता तो केवल *साथ हथलेवे का ही है, और कोई दूसरी बात है ही नहीं*[3]।

३ सब शृंगार छोड़कर उसने छापा-तिलक लगा लिया। राम के प्रेम में मतवाली मीरां धन्य है[4]।

(ख) एक और पद में नणद और मीरां का संवाद है। कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं[5] :—

नणद : *ऊंचा थारा बैठणा, ऊंची थारी जात*

राणा सरीसो वर पाईयो, थारो सहंस मेवाड़ में राज
खीर खांड को भोजन जीमता, ओढो दक्खिणी चीर
राणा सरीसो वर त्यागियो(थारो)सब भुलकाने तीर

× ×

लाजै पीहर सासरो, लाजै माई मौसाल
नित का आवै ओळमां, थारो भरम घरे संसार

---

१. कड़वा वचन श्रवण सुन्या रीप चढी मन माही।
जाय सिलगाई घरका आगे या नारी काम की नांहीं।
चरणामृत हूं ल्यायो थांके नेम करो मन माहो।
राणो पाल्यो जी।
जाई राणा ने यूं कहज्यो जी रोजीना पहुंचाई।
जीवण को म्हारे मोद नही है मरणा सूं डरपा नाही।
टाळयो टळे ज नाही वैणा हरि आछो करसी।
सवल धणो को सरणो म्हांके कमी काही की नाही।
प्रण राख्यो प्रभुजी जिनको जहर दियो पल्टाई।

२. वतलायो बोलै नही राणो गयो रिसाय।
विष का प्याला भेजिया ..... करि चरणामृत पी गई।

३. मीरा महल सुं ऊतरी, राणो पकड़ो हाथ। हथलेवा को साहिणो और न दूजी बात॥

४. छापा तिलक वणाइया, तजियो सब शृंगार। राम अमल राती रहे धनी मीरां राठौड़॥

५. राजस्थान में हिन्दी के ह० ग्रं० की खोज, भाग ३, में प्रकाशित :

मीरां : भाग लगाऊँ पीहर सासरे ...

मीरा शरणै राम कै, झल मारो संसार ।

(ग) शोध-पत्रिका भाग ६, अंक ३, संवत् २०११ में, "राजस्थान की मौखिक संतवाणी" निबंध में मीरां संबंधी एक पद दिया गया है। सांवली सी मीरां मार्ग में खड़ी है, जिसपर कोई इसका कारण पूछता है। अन्त में वह खीजकर उत्तर देती है कि 'राम वनवास चले गए हैं मैं खड़ी खड़ी उनकी राह देख रही हूं'। पूछने वाले ने पूछा कि 'तुम्हें साधु की संगति किसने दी'? मीरां ने उत्तर दिया कि 'मेरा गुरु सुघड़ सुनार और हीरों का पारखी है, उसीने साधु संगति दी है,' आदि। लोकगीत की शैली पर बना हुआ पद अत्यन्त ही सुन्दर है[१]।

(घ) राजस्थानी (कलकत्ता) भाग ३, अंक १ में श्री नरोत्तमदास स्वामी ने मीरां संबंधी एक पद प्रकाशित करवाया था जिससे निम्नलिखित बातों का पता चलता है—

१ मेड़तणी गढ़ चित्तौड़ की राणी, भोजराज की पत्नी थी, और

२ उसने सब सुखों को छोड़कर भक्ति का मार्ग अपनाया[२]।

(२३) बाबा बेणीमाधवदास के गोसाईं-चरित्र से यह पता चलता है :—

१ संवत् १६१६ में सुखपाल नामक ब्राह्मण मेवाड से मीरांबाई का पत्र लेकर तुलसीदास जी के पास आया। इस पर उन्होंने—

२ गीत कवित्त बनाकर इसका उत्तर लिखा और कहा कि सब कुछ त्याग कर हरि-भजन करना ही उचित है[३]।

रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह-कृत भक्तमाल में तथाकथित मीरां की पत्रिका तथा तुलसी द्वारा उसका उत्तर दोनों ही दिए गए हैं[४]।

---

१. ऊबी मीरां सावळड़ी सी नार, मारग बिच क्यूं खड़ी ?
चल्यौजा रे असल गिंवार, मेरी तो तन्नै के पड़ी ?
राम गया बनवास, संदेसो हर को ल्यूं खड़ी . . . ।
कण थानैं दीनी सिख बुद्ध, कण दीनी संगत साध की ?
गुरु म्हारा सुघगट सुनार, हीरा रा कहिये पारखी ।
वां म्हानैं दीनी सिख बुद्ध, दीनी है संगत साध की ।

२. एक राणी गढ चितौड़ा की ।
मेड़तणी निज भक्ति कमावै, भोजराइजी का जोड़ा की ।
सब सुख छाडि छनक मं चाली भक्ति कमावैं बाई चौड़ा की ।

३. सोरह से सोरह लगे, कामद गिरि ढिग वास ।
सुचि एकान्त प्रदेस महँ, आये सूर सु दास ।।
तब आयो मेवाड़ ते, विप्र नाम सुखपाल ।
मीराबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रबाल ।।
पढि पाती उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय ।
सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय ।।

४. देखिए : मीरां-माधुरी, पृ० ८८ :

(ख) आधुनिक इतिहास लेखकों और विद्वानों के मत :

मीरां के संबंध में, प्रसंगवश, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखनेवाले सर्वप्रथम व्यक्ति कर्नल जेम्स टाड थे। उनके अनुसार,—

Kumbha married a daughter of the Rathore of Merta, the first of the clans of Marwar. Mira Bai was most celebrated princess of her time for beauty and romantic piety. ..Rao Duda had three sons besides Maldeo,....Third Ratansingh, father of Mirabai, the celebrated wife of Kumbha Rana."[१]

यह मत काफी प्रचलित रहा। ग्रियर्सन[२], कार्तिकप्रसाद खत्री[३], और सरोजकार *शिवसिंह[४] ने इसी मत को माना। स्व० गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी[५] तथा कृष्णलाल* मोहनलाल झावेरी[६] ने भी इसका खंडन नहीं किया। टाड के इस मत को हिन्दी विश्वकोष[७], तथा आदर्श हिन्दी शब्द कोश[८] में भी स्थान मिला। इस समय भी पद्मावती 'शबनम' इसी मत का प्रतिपादन करती प्रतीत होती हैं[९] और श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा यद्यपि पूर्णतया इस मत के समर्थक नहीं हैं, तथापि संभावनाएं उन्होंने कुछ हेरफेर के साथ वैसी ही प्रकट की हैं[१०]। टाड की उक्त धारणा का कारण एक मंदिर भी रहा था जिसे मीरां द्वारा बनवाया हुआ कहा जाता रहा था। इस मत के अनुसार मीरां का समय लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी ठहरता है।

टाड के मत का खंडन स्ट्रेटन[११] ने और तत्पश्चात् कविराजा श्यामलदास[१२], मुंशी देवीप्रसाद[१३], हरविलास शारदा[१४], गौरीशंकर हीराचंद ओझा[१५] विश्वेश्वरनाथ रेउ[१६] तथा जगदीशसिंह गहलोत[१७] आदि इतिहासकारों ने किया। इनमें मुंशी देवीप्रसाद ने कर्नल टाड *की विद्वता-पूर्ण आलोचना करते हुए, प्रथम बार मीरां का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त लिखा।* टाड

---

१. Annals & Antiquities of Rajasthan.
२. The Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 12.
३. मीरांबाई का जीवन चरित्र :
४. शिवसिंह-सरोज, (मीरांबाई) :
५. Classical Poets of Gujarat.
६. Milestones in Gujarati Literature.
७. हिन्दी विश्वकोष, (श्री नगेन्द्रनाथ वसु, कलकत्ता), 'मीरांबाई' :
८. आदर्श हिन्दी शब्दकोष, (रामचन्द्र पाठक, बनारस), प्रथम सं०, द्वितीय खंड, पृ० ८८४ :
९. मीरां, एक अध्ययन, पृ० १८-१९ :
१०. मीरा स्मृति ग्रंथ में—'जनम जोगिण मीरा' नामक निबंध :
११. Chittore and the Mewar Family :
१२. वीरविनोद, 'महाराणा संग्रामसिंह' तथा महाराणा रतनसिंह' शीर्षकों के अन्तर्गत :
१३. मीरांबाई का जीवन चरित्र :
१४. Maharana Sanga, Page 95-96; Ajmer, 1918.
१५. उदयपुर राज्य का इतिहास :
१६. मारवाड़ का इतिहास :
१७. राजपूताने का इतिहास :

के उल्लेखों में काल-दोष बताते हुए, उन्होंने स्पष्ट किया कि मीरां के पिता रत्नसिंह राणा कुंभा के समय में नहीं, प्रत्युत राणा सांगा के समय में थे और खानवा के युद्ध में राणा की तरफ से लड़ते हुए काम आए थे। इसके अतिरिक्त, अपने मत की पुष्टि में उन्होंने मीरां के पदों में प्रयुक्त 'मेड़तणी' शब्द पर भी बल दिया।

मुंशीजी के अनुसार, मीरां मेड़ते के राव दूदा के बेटे रत्नसिंह की पुत्री थी और राणा सांगा के कुंवर भोजराज को संवत् १५७३ के लगभग ब्याही गई थी। उन्होंने मीरां के जन्म का कोई समय निर्धारित नहीं किया है। उनके अनुसार, कुंवर भोजराज की मृत्यु संवत् १५७३ और १५८३ के बीच किसी समय में हुई और मीरां की मृत्यु संवत् १६०३ में द्वारका में। मुंशीजी के मत का समर्थन, टाड के मत के उल्लिखित खंडनकर्ता इतिहासकारों के अतिरिक्त मैक्स आर्थर मैकालिफ[१], एच० एच० विल्सन[२], तथा डा० जी० रायचौधरी[३] प्रभृति विद्वानों ने भी किया है। गार्सां तासी ने यद्यपि अपना कोई विशेष मत नहीं दिया है तथापि उनका झुकाव विल्सन के मत की ओर ही प्रतीत होता[४] है। इनके अतिरिक्त, मोटे रूप से, थोड़े हेर-फेर के साथ, मुंशीजी के मत को स्वीकार करनेवाले कुछ विद्वान हैं—इराच जहांगीर सोराबजी तारापोरवाला[५], तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी[६], हरसिद्ध भाई दिवेटिया[७], लाला सीताराम[८], रामचन्द्र दुबल[९], मिश्रबन्धु[१०], डा० रामकुमार वर्मा[११], डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[१२], परशुराम चतुर्वेदी[१३], डा० श्रीकृष्णलाल[१४] डा० मोतीलाल मेनारिया[१५], नरोत्तमदास स्वामी[१६], महावीरसिंह गहलोत[१७], मुरलीधर श्रीवास्तव[१८], ज्ञानचंद जैन[१९], ब्रजरत्नदास[२०], स्वामी आनंदस्वरूप[२१], भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'[२२], डा० सावित्री सिन्हा[२३], डा० एच० गौज[२४], नलिनीमोहन सान्याल[२५], बांकेबिहारी[२६] आदि।

1. The Sikh Religion; Its Gurus, sacred writings & Authors.
2. Religious Sects of the Hindus, Page 136.
३. मीरा स्मृति ग्रंथ में "मीरांबाई का ऐतिहासिक जीवन वृत्त"।
४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास (अनु० वार्ष्णेय).
५. Selections from classical Gujarati Literature, Vol. I. Miran bai.
६. बृहत् काव्य दोहन,–'मीराबाई' नामक निबंध' : (७) मीरांबाईना भजनो :
८. Selections from Hindi Literature, Book IV (Calcutta).
९. हिन्दी साहित्य का इतिहास : (१०) मिश्रबन्धु-विनोद (११) हि० सा० का आ० इ० :
१२. हिन्दी साहित्य : (१३) मीरांबाई की पदावली, (१४) मीरांबाई :
१५. राजस्थानी भाषा और साहित्य ; राजस्थान का पिंगल साहित्य :
१६. मीरा-मंदाकिनी, (१७) मीरां ; जीवनी और काव्य : (१८) मीरां दर्शन :
१९. मीरा और उनकी प्रेमवाणी.
२०. मीरां-माधुरी :
२१. मीरां सुधा-सिन्धु;–भीलवाड़ा (उदयपुर) से स्वामी आनन्दस्वरूप द्वारा प्रकाशित।
२२. मीरा की प्रेम-साधना :
२३. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां :
२४. Journal of the Gujarat Research Society, Vol. XVIII, No. 2.
२५. मीराबाई :
२६. The story of Mirabai.

इस संबंध में भूलना न होगा कि ये विद्वान् केवल स्थूल रूप से ही एकमत हो सके हैं अन्यथा विषय-विस्तार में ये भिन्न भिन्न राय रखते हैं। साम्य केवल इतना ही है कि मीराँ मेड़ते के राठौड़ रत्नसिंह की पुत्री थी और मेवाड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज को ब्याही थी। कर्नल टाड के मत का खंडन यद्यपि मुंशी देवीप्रसाद ने किया तथापि स्वयं उनके कथन भी कहीं कहीं ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों की अपेक्षा रखते हैं। इस ओर इंगित भी किया गया है[१]। अब भी, जैसा पहले कहा जा चुका है, मीराँ को राणा कुंभा की पत्नी मानने की संभावना व्यक्त की जाती है[२] तथा दूसरी ओर राणा कुंभा के बेटे रायमल की[३]।

इस प्रकार मीराँ के जीवन की एक सीमा संवत् १४६० और दूसरी संवत् १६४५ है। निश्चय ही, जैसा तासी ने बहुत पहले कहा था[४], मीराँ के काल-निर्णायक मतों में कोई एक गलत है। पर, मोटे रूप से मीराँ के काल-निर्णय में मुंशी देवीप्रसाद का मत ही उचित प्रतीत होता है। उसका जीवनकाल संवत् १५५५ से १६०३ तक मान लिया जा सकता है।

यह भी एक आश्चर्य की ही बात है कि मीराँबाई जैसी राजकुल से संबंधित नारी के विषय में राजस्थान के किसी मान्य ख्यातकार, वंशावली या पीढ़ी लेखक ने कोई भी उल्लेख नहीं किया है, जबकि कई अन्यान्य राजकुल की बेटियों और बहुओं के उल्लेख मिलते हैं। संभवतः नाभाजी द्वारा वर्णित लोक-लाज व कुल-मर्यादा आदि का तोड़ा जाना इसका कारण रहा हो। जैसा प्रारंभ में कहा गया है, मीराँबाई अब भी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। इतिहास के खंडहरों को छोड़कर, यदि हम प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित मीराँ-संबंधी बातों पर विचार करते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है। उनके वर्णन अतिशयोक्तियों से अतिरंजित और किंवदंतियों से परिपूर्ण हैं। उल्लिखित मीराँ-संबंधी वर्णनों में, किंवदंतियां उत्तरोत्तर रूढ़ि ग्रस्त होती गई हैं। यही नहीं, उनकी संख्या में भी वृद्धि होती रही है। सन् १८११ में प्रकाशित बृहत् काव्य दोहन में, इस प्रकार की १८ दंतकथाओं का उल्लेख किया गया है[५]।

उक्त दोनों प्रकार के बहिर्साक्ष्यों का सम्यक् उपयोग करने के लिए, हमें निम्नलिखित बातों को भी ध्यान में रखना होगा :—

१. तत्कालिक राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां
२. धार्मिक वातावरण
३. विभिन्न सम्प्रदाय के श्रद्धालुओं की सामान्य मनोदशा, तथा
४. संभावनाओं की सृष्टि।

इनमें अंतःसाक्ष्य के मणिकांचन संयोग से कदाचित् मीराँ का संपूर्ण व्यक्तित्व अपने सुख-दुख के धूप-छांही ताने-बाने के साथ हमारे सम्मुख उपस्थित हो सकेगा।

१. मीरा स्मृति ग्रंथ में—बहुगुणा का लेख; तथा—मीराँ, एक अध्ययन (शबनम) :
२. मीराँ, एक अध्ययन, पृ० १८-१६ :
३. मीरा स्मृति ग्रंथ, (—बहुगुणा) :
४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास :
५. बृहत् काव्य दोहन,—"मीरांबाई", पृ० २५ से ३२ :

राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां :

मेड़ता तो अकबर की मृत्यु-पर्यन्त राजस्थान और दिल्ली की राजनीति का षड़यंत्र-केन्द्र बना हुआ था। राजस्थान में कोई एक सबल शासक न होने के कारण, भिन्न भिन्न राजघराने प्राय: युद्धों में उलझे रहते थे। राजस्थान की एकता का सूत्र राणा सांगा के नेतृत्व में अन्तिम बार पिरोया गया था, पर परवर्ती परिस्थितियों ने उसे तोड़ डाला। चित्तौड़ पर सदा से ही दिल्ली सल्तनत की आंख रही। मीरां का संबंध एक ओर तो मेड़ता से और दूसरी ओर चित्तौड़ से माना जाता है, और ये दोनों ही तत्कालीन राजस्थान की राजनीति के धुरे थे। तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अशान्त और पल पल में परिवर्तित राजनैतिक घटाघोप से आच्छादित और क्षुब्ध वातावरण में, मीरां का व्यक्तित्व और काव्य भी आलोड़ित होता रहा हो। ऐसे अवसरों पर राजपूत वीरांगनाएं केवल तीन काम ही जानती थीं—(१) या तो रण में स्वयं जाकर रणचंडी का आह्वान करना, (२) या जौहर की ज्वाला में कूद कर हुत हो जाना, (३) अथवा हंसते हुए, पति के साथ चिता में बैठ कर सती हो जाना। मीरां भी राजपूत राजघराने की नारी थी, पर उसने इन तीनों में से एक भी कार्य नहीं किया। न वह किसी युद्ध में लड़ी, न उसने जौहर किया और न वह सती हुई। उलटे उसने साधुओं की संगति की, लोक-लाज को छोड़ा, कुल मर्यादा को तोड़ा और वह भी लुक छिपकर या दबकर नहीं, प्रत्युत डंके की चोट, दिन-दहाड़े और सबके सामने। इसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। मर्यादा और प्रतिज्ञा-पालन में तत्पर राणा के घराने को यह सह्य हो ही कैसे सकता था? उसे प्रतीत होने लगा जैसे 'हिन्दुआने सूरज' पर कालिमा का धब्बा लगने वाला है। एक ओर, उस घराने की बहू मीरां-एक नारी, प्रेम और भक्ति की दीवानी; और दूसरी ओर विपरीत राजनैतिक वातावरण से क्षुब्ध, फेनिल सागर की उत्ताल तरंगों पर डगमगाती नैया की तरह, पार लगने में चिंतित चित्तौड़ का राजघराना। इसकी स्वाभाविक परिणति उसको कष्ट देने के रूप में हुई। पर कष्टों ने मीरां का आत्म-विश्वास और भी अडिग कर दिया। डा० हरमन गौज ने राजघराने की मीरां को मध्य-वर्ग (मिडिल-क्लास) के दृष्टिकोण से न देखने और परखने की बात कही है। पर संभवत: वे भूल गए कि अगर यह दृष्टिकोण न होता, और सामूहिक भावनाएं इस रूप में काम नहीं करतीं, तो जन-जन के कंठों की हार मीरां कैसे हो सकती थी? डा० गौज ने इसी प्रकार मीरां के द्वारा अकबर के भारमती के साथ ब्याह कराए जाने की संभावना व्यक्त की है, पर ऐसा उन्होंने राजपूतों की सामाजिक परम्परा को ध्यान में न रखने के कारण ही कहा प्रतीत होता है।

धार्मिक वातावरण :

भारत के कोने-कोने में उस समय भक्ति की लहरें हिलोरें मार रही थीं। उड़ीसा के रसिक कवि जयदेव के और मिथिला की अमराइयों से उठे विद्यापति के गान धार्मिक वायु-मंडल में प्रतिध्वनित हो रहे थे। बंगाल के चैतन्यदेव कीर्तन द्वारा पीयूष-वर्षण कर रहे थे और उनकी शिष्य परंपरा में थे वृंदावन के वासी सनातन, रूप और जीव गोस्वामी। काशी में रामानन्दजी द्वारा लगाया गया रामभक्ति का पौधा किशोरावस्था में था। वल्लभाचार्य और अष्टछाप के गायकों की वीणाएं, कृष्ण-प्रेम में पगी, उनकी माधुरीमें रमी, ब्रजमंडल में निनादित होने लगी

थीं। नरसी मेहता राग केदारा की लय में, खड़ताल के ठेके पर समस्त गुर्जर प्रदेश को भाव-विभोर कर रहे थे। साथ ही नाथ सम्प्रदाय भी उतने ही वेग से प्रवाहमान था। गोरखनाथ का प्रभाव उत्तर भारत, विशेषतया पंजाब और राजस्थान, पर बहुत पड़ा[१]। ब्रिग्स का अनुमान है कि गोरखनाथ संभवतः पंजाब के निवासी रहे होंगे[२]। 'वीरमायण' में जलंधरनाथ की सिद्धियों का उल्लेख हुआ है। नैणसी की ख्यात में नाथों के प्रभाव और उनके चमत्कारों के वर्णन मिलते हैं। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ ने राव जोधाजी के समकालीन किसी चिड़िया-नाथ की सिद्धियों का जिक्र किया है[३]। जोधपुर के महाराजा उदयसिंह का किसी जोगी नीवनाथ को संवत् १६४६ में जमीन दान देने का उल्लेख एक ताम्रपत्र में मिलता है[४]। और भी अनेक ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि उस समय राजस्थान में जोगी और नाथ सम्प्रदाय बहुत प्रबल थे। जोगियों की अलख लोकजीवन में घुल गई थी। इसके अतिरिक्त कबीर की अटपटी वाणी भी राजस्थान के टीलों को पारकर उसमें प्रवेश कर रही थी। चारण महात्मा ईसरदास, जांभोजी, सिद्ध जसनाथ, केसौदास, हरिदास निरंजनी और दादू प्रभृति महात्माओं ने सगुण-निर्गुण और योग की इन बहती हुई धाराओं में, अपने-अपने ढंग से महान् योग दिया। मरुधरा पर तलवारों की झंकार के साथ, जोगियों, संतों और भक्तों ने एक अजीब समां पैदा कर दिया था। मीरां का प्रादुर्भाव ऐसे ही वातावरण में हुआ। युद्ध के नगाड़ों के बीच इंगला-पिंगला, गगन-मंडल और हद-बेहद की बात करनेवाले जोगी को सुना और उसे ध्यान लगाते हुए देखा। दूसरी ओर कृष्ण की रूप-माधुरी को निहार कर, वह भाव-विभोर हो गई। वह इन दोनों राहों की पथिक बनी, उनको भली प्रकार समझा और अन्त में अपने अनुभव को शान्त रस के रूप में ढाल दिया। मीरां के समस्त व्यक्तित्व और काव्य में नाथपंथी जोगी, सगुण कृष्ण और निर्गुण ब्रह्म से संबंधित अभिव्यक्ति की मिली जुली त्रिवेणी बह रही है। उसका रोम-रोम इसमें रम गया है। मीरां की काव्य-वीणा के तीन ही तार हैं—जोगी, कृष्ण और निर्गुण ब्रह्म। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में ये तीनों अभिव्यक्तियां एक होती हैं—शान्त रस के रूप में। जो लोग मीरां को सगुण या निर्गुण किसी एक कटघरे में खड़ी करते हैं, वे स्पष्ट ही तत्कालीन राजस्थान के धार्मिक वातावरण और परिस्थितियों को समझने से इन्कार करते हैं तथा मीरां के पदों में अभिव्यक्त हुई उक्त तीनों प्रकार की भावनाओं को कुचलकर, उसके व्यक्तित्व को पंगु बना देना चाहते हैं। अष्टछाप के कवि सूरदास के जीवन और काव्य पर भी नाथ और निर्गुण संप्रदाय का प्रभाव सिद्ध किया जा चुका है[५], फिर इस संबंध में मीरां के पद तो एकदम ही स्पष्ट हैं।

३. सम्प्रदायों के श्रद्धालुओं की सामान्य मनोदशा :

(क) महात्मा संतों और भक्तों को नया धर्म खड़ा करने या संप्रदाय चलाने की चिन्ता

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (शुक्ल) पृ० १५-१६ :
२. Gorakhnath and the Kanphata Yogis, (Cal. 1938).
३. मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६२, टिप्पणी :
४. राजस्थान-भारती, भाग ३, अंक ३-४ :
५. डा० मुन्शीराम शर्मा : भारतीय साधना और सूर साहित्य :

नहीं होती, वे तो इन सबसे बहुत ऊंचे उठे हुए होते हैं। पर उनके श्रद्धालुओं द्वारा उनके नाम से नए मत-मतान्तर अथवा संप्रदाय चलाने की प्रथा हमारे यहां नई नहीं है। श्रद्धालुओं की यह लालसा प्रायः चिर नवीन बनी ही रहती है। जीवन भर संप्रदायों के विरुद्ध जूझने वाले कबीर का भी संप्रदाय उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा बनकर ही रहा। पर यह कोई सदैव आवश्यक नियम नहीं है कि सम्प्रदाय बने ही। अपवाद भी इसके हो सकते हैं, जिनमें मीरां भी एक है। विल्सन ने Religious Sects of The Hindus में मीरां-संप्रदाय की चर्चा की है, पर यह बात निराधार है[२]। लोक प्रचलित यह उक्ति भी इस कथन के विपरीत पड़ती है—

नाम रहेगा काम से सुनो सयानो लोग।
मीरां सुत जायो नहीं, शिष्य ना मुड्यो कोय॥

(ख) भक्तों और संतों के प्रति, उनके श्रद्धालुओं की मनोदशा, उनको प्रायः पौराणिक व्यक्तित्व बनाने में लगी रहती है। इसके लिए विविध उपाय काम में लाए जाते हैं, *यथा*—अतिरंजित चरित्र-चित्रण, चमत्कारों और सिद्धियों का समावेश, पात्र का निश्चल, शांत भाव से, भीषणतम कष्टों को सहन करना, पहले उपहास का पात्र समझा जाना किंतु पश्चात् लोक-जीवन में उसकी महत्ता प्रतिष्ठित हो जाना, और भगवद्-साक्षात्कार आदि आदि। मीरां के संबंध में भी ऐसा ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि उसको कष्ट दिए गए थे, तथापि पौराणिक ढंग के विविध प्रकार के कष्ट दिए जाने के उल्लेख श्रद्धालुओं की उक्त मनोदशा की तुष्टि ही प्रकट करते हैं।

(ग) किसी महान् व्यक्तित्व को अपने साथ मिला लेने अथवा उसको किसी न किसी रूप में सम्प्रदाय-विशेष से संबंधित कर लेने में भी यह मनोदशा सक्रिय रहती है। ऐसा होने पर महान् व्यक्तित्व तो महान् ही रहता है, पर उसके वैज्ञानिक विवेचन में कठिनाई आ उपस्थित होती है—और कभी कभी तो उसकी महत्ता भी पूर्णरूपेण नहीं समझी जा सकती। मीरां भी इस मनोवृत्ति की शिकार हुई है। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो उसको चैतन्य और गोस्वामियों, दूसरी ओर रैदास तथा तीसरी ओर तुलसीदासजी के संपर्क में लाया गया है।

(४) संभावनाओं की सृष्टि :

संभावनाएं भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हुआ करती हैं और वे विविध प्रकार के कार्य भी किया करती हैं। यह सत्य है कि श्रद्धालुओं के अतिरिक्त, साहित्यकार अपने ढंग से संभावनाओं की सृष्टि करता है। परन्तु जब साहित्य से इतिहास के तथ्य ढूंढ निकालने हों, तब वहां विशेष सतर्कता की आवश्यकता है। संभावनाओं के मूल तथ्य को जान लेने पर वह इतिहास की कड़ी बन सकता है। प्रतीत होता है, संभावनाओं की सृष्टि के कारण ही मीरां की तथाकथित वृन्दावन की यात्रा करनी पड़ी है।

---

२. मीरा स्मृति ग्रंथ में–'मीरा सम्प्रदाय' नामक लेख (–डा० सारवनाथ अग्रवाल):

इन सबको ध्यान में रखते हुए, इतिहास के आलोक में, यदि हम मीरां-संबंधी विविध वर्णनों को देखते हैं, तो निम्नलिखित स्रोत विशेष महत्त्व के प्रतीत होते हैं:—

(१) नाभादास का छप्पय ।

(२) "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" की तीन वार्ताएं ।

(३) नन्दराम का बारहमासा तथा मीरां-संबंधी एक भजन[1] ।

अन्य जो भी वर्णन मिलते हैं, उनमें प्रायः घुमा फिराकर, न्यूनाधिक रूप में वही बातें कही गई हैं जो उक्त प्रसंगों में वर्णित हैं ।

नाभाजी के छप्पय की व्याख्या उनके टीकाकारों ने अपने-अपने ढंग से की है । प्रायः सभी परवर्ती कवियों और लेखकों ने किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, मुख्य या गौण रूप में उन्हीं की बातों का सहारा लिया प्रतीत होता है । भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी ने श्रद्धालु मनोवृत्ति से, संभावनाओं की सृष्टि करते हुए अनेक किंवदंतियों का संग्रह किया है । बाद में, इसी प्रकार लिखनेवालों में दादूपंथी राघोदास की भक्तनामावली के टीकाकार चत्रदास तथा कृष्णगढ़ के राठौड़ राजा नागरीदास प्रमुख रहे । नाभाजी के छप्पय से तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं.—

१ लोक-लाज तथा कुल-मर्यादा का तोड़ा जाना,

२ दोष विचार कर मृत्यु का उद्यम किया जाना, और

३ निरंकुश और निडर होकर 'रसिक' का यश गाना ।

मीरां के पीछे दासी और चर लगाना, उसका रास्ते में खड़ी होकर किसी की राह देखना, छिप-छिप कर किसी से मिलना, एकान्त में किसी से बातें करना, तलवार लेकर राणा का मारने दौड़ना, डूबकर आत्महत्या कर लेने की आज्ञा देना आदि आदि किंवदंतियां 'लोकलाज' वाले तथ्य का ही संभावनाओं द्वारा अतिरंजित हुआ रूप है ।

विष का प्याला भेजना, सांप-पिटारा भेजना, सांप को उसके कमरे में खूटी पर लटकाना, उसके रहने का प्रबन्ध अलग करना, भांति-भांति से मारने के उपाय करना आदि संभावनाएं श्रद्धालुओं की इस मनोवृत्ति की सृष्टि हैं कि भक्तों को मरणान्तक कष्ट होते हैं—होते आए हैं । अभी तक प्रकाशित, मीरां के पदों के सबसे बड़े संग्रह ग्रन्थ, "मीरां-सुधा-सिंधु" में मीरां को पौराणिक ढंग के अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाने के उल्लेख मिलते हैं । स्मरणीय है कि स्पष्टतया जहर के प्याले भेजने की बात नाभाजी ने नहीं कही है। उसकी मृत्यु का उद्यम किया जाना उसके लिए गरल ही था । इस गरल को उसने अमृत की भांति पी लिया—इन उपायों को हंसते-हंसते सह लिया । वैसे, जहर, मृत्यु का सबसे सरल उपाय है ही । प्रायः सभी परवर्ती कवियों और लेखकों ने इस मूल बात को प्रकारान्तर से कहा है ।

तीसरा निष्कर्ष मीरां की भक्ति-पद्धति से संबंधित है । इसकी व्याख्या में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति अपनी सारी दुर्बलताओं के साथ आ खड़ी होती है । इसके अनुसार मीरां ने "रसिक"

---

१. राजस्थान में हिंदी के हस्त० लि० ग्रंथों की खोज, भाग ३, में—'मीरां संबंधी भजन' के अन्तर्गत दूसरा भजन, पृ० ३३० ।

कृष्ण का यश गाया था। परन्तु केवल मात्र "रसिक" कृष्ण का ही यश उसने गाया हो, ऐसी बात नहीं है। हां, नाभाजी ने केवल इसी का उल्लेख किया है। भागवत में श्री कृष्ण का चरित विस्तार से वर्णित है। मध्ययुग में श्री कृष्ण के किसी भी रूप से संबंधित जो सम्प्रदाय रहे, भागवत पुराण उनका प्रेरणा-स्रोत रहा है। अतः भागवत को उपजीव्य मानकर चलनेवाले संप्रदायों से, मीरां का सम्पर्क कराना उनके श्रद्धालुओं को अतीव आवश्यक जान पड़ा। संभावनाएं गढ़ ली गईं। "रसिक" का "रसखेत" वृन्दावन था, अतः वृन्दावन से भी मीरां का संपर्क आवश्यक हो गया। ध्रुवदास रचित भक्त-नामावली में, सर्व-प्रथम उल्लेख है कि मीरां अपनी सखी ललिता के साथ वृन्दावन निरखती फिरी थी। इसी प्रकार, मीरां के रूप, सनातन या जीव गोस्वामी से मिलने की संभावनाएँ साकार की गई। इस संबंध में नाभाजी का "रसिक" शब्द ध्यान में रखना चाहिए। "रसिक" से सभावना हुई "रसखेत" की, वृन्दावन की और उसके बाद कल्पना गढ़ ली गई मीरां की वृन्दावन यात्रा की। जब इस प्रकार 'यात्रा' की तैयारी कर दी गई, तो लगे हाथ गोस्वामियों मे किसी एक से मीरां का मिलन दिखा कर श्रद्धालुओं ने, उसकी यह यात्रा मानों सफल ही कर दी। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में प्रचलित प्रेम की परकीया रति के संबंध में श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' का कथन है कि 'प्रायः सभी वैष्णव भक्त कवियो ने किसी न किसी कुमारिका के संग मे सहज-साधना की'। रघुनाथ भट्ट, सनातन गोस्वामी आदि के उदाहरण देते हुए वे लिखते हैं कि 'रूप गोस्वामी ने मीरा के साथ.. सहज साधना सम्पन्न की'[१]। किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है। उक्त सम्प्रदाय में प्रचलित एक बात को ही अनुमान के आधार पर मीरां का नाम रूप गोस्वामी के साथ जोड़ दिया गया है। इसके मूल में यह किंवदंती काम करती प्रतीत होती है कि मीरां वृन्दावन में किसी एक गोस्वामी से मिली थी। चैतन्य के समय से बंगाल में वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय का विशेष उभार होने लगा। उसको बौद्ध तान्त्रिक मत और बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय का स्वाभाविक विकास कहा जा सकता है[२]। कई विद्वानो का मत है कि किसी न किसी रूप में तान्त्रिक पद्धति का व्यापक प्रभाव वैष्णव धर्म के उस रूप पर पड़ा है जो पूर्वी भारत में प्रचलित हुआ[३]। स्मरण रखने की बात है कि नाभाजी ने तथाकथित वृन्दावन यात्रा की कोई चर्चा नहीं की है। बाद में तो विभिन्न लेखकों ने अपने-अपने प्रमाणों द्वारा, संभावना से बनी इस कल्पना को साकार बनाने में कोई कसर नहीं रखी। इतिहास के आलोक में इस यात्रा की पगडंडी नजर नहीं आती। श्री हरविलास शारदा[४] इस विषय में मौन हैं। वे चतुर-कुल-चरित्र और वीरविनोद का हवाला देते हैं। इनसे उसका मेड़ते से सीधे द्वारका जाना और वहां बहुत वर्षों तक रहना प्रमाणित प्रतीत होता है। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[५] के उल्लेख से भी उसकी वृन्दावन-

१. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ७१, (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना) :
२. Obscure Religious Cults—Dr. Sashibhusan Dasgupta, (Calcutta): इस संबंध में और देखिए— Post Chaitanya Sahajiya Cult—M. M. Basu.
३. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८२७ :
४. Maharana Sanga, Page 88.
५. उदयपुर राज्य का इतिहास :

यात्रा सिद्ध नहीं होती, प्रत्युत द्वारका जाना ही अधिक संभव मालूम पड़ता है। पदाभिव्यक्तियों के आधार पर मीराँ का पितृ-गृह त्याग कर सीधे द्वारका जाना सिद्ध होता है[१]। 'शबनम' ने इसकी पुष्टि लोकगीतों में प्राप्त कुछ पदों से की है[२]—

(१) गढ़ से तो मीराँ उतरी करवा सोना जी हाथ
डांवों तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पुष्कर न्हावां जाय

(२) डांवों तो राणी छोड्यो मेड़तो, पूठ दयी चितौड़

(३) सूत्यो राणोजी निसभर नींद हो
कोई सूत्या ने सुपणो राणाजी ने आयो।

× ×

राणाजी पड्यो रे जूनागड़ रो मारग भ्रो
राणाजी कोई दीप उगायो मीराँबाई के देस।

(४) म्हें तो चाल्याँ ए माय म्हारी द्वारिका
म्हारो राम ही राम त्यो।

इसी प्रकार "इण सरवरियां री पाल, मीराँबाई सांपड़े"[३] तथा "ऊभी मीराँ सांवलड़ी सी मार मारग विच क्यूं खड़ी"[४] आदि पदों से यही अभिव्यक्ति ध्वनित होती है। डा० सुकुमार सेन ने धार्मिक अनुश्रुतियों के आधार पर यद्यपि मीराँ की वृन्दावन यात्रा और वहाँ जीव गोस्वामी से भेंट की चर्चा की थी[५], तथापि अब उनका भी यही निश्चित मत है, कि मीराँ की वृन्दावन यात्रा सर्वथा निराधार और कपोल-कल्पित है।

मीराँ को चैतन्य मत की अनुयायिनी मानने की बात भी सुनने में आती है, किन्तु यह भी निराधार है[६]।

चैतन्य और गोस्वामियों के सम्पर्क के अतिरिक्त, रैदास को मीराँ के गुरु मानने की बातें भी कही गई हैं। यह कल्पना प्रकारान्तर से नाभाजी द्वारा वर्णित मीराँ के 'भक्त' वाले पहलू से संबंधित है। रैदास को मीराँ का गुरु बना कर, उसे रैदासी सम्प्रदाय में खींचना श्रद्धालु अनुयायियों की मनोवृत्ति का ही परिणाम है, जिसमें, लेशमात्र भी सत्य नहीं है[७]।

नाभाजी के कथन का संभावनाओं द्वारा विकसित रूप मीराँ और तुलसी के तथाकथित पत्र-व्यवहार में भी दिखाई पड़ता है। सर्वप्रसिद्ध है कि मीराँ की भक्ति माधुर्य-भाव की थी। माधुर्य-

१. पद्मावती 'शबनम' : मीराँ-बृहत्-पद-संग्रह, प्राक्कथन, पृ० ७ :
२. मीराँ, एक अध्ययन, पृ० ७४ :
३. मीराँ-माधुरी, पृ० ३२, पद ८२ :
४. शोध-पत्रिका, भाग ६, अंक ३ में प्रकाशित :
५. मीरा स्मृति ग्रंथ, 'परिशिष्ट', पृ० ३७ :
६. मीरा स्मृति ग्रंथ,-परिशिष्ट, "मीराबाई और श्री चैतन्य," (-डा० सुकुमार सेन) :
७. देखिए : वही; -परिशिष्ट, पृ० ५६-५७-"गुरु रैदास", (-डा० तारकनाथ अग्रवाल), तथा *डा० श्रीकृष्णलाल : मीराँबाई, पृ० ४३-जीवनी, खंड :*

भाव की भक्ति मर्यादा नहीं जानती। इधर तुलसीदासजी मर्यादावादी थे। मर्यादावादी ही नहीं, उन्होंने अपने 'मानस' द्वारा मर्यादाएं बांधी भी हैं। तब मीरां सीधे उनकी अनुयायिनी कैसे हो सकती थी? पर श्रद्धालुओं ने रास्ता निकाल लिया। मीरां से पत्र लिखवा कर तुलसी से मार्ग-दर्शन कराने की प्रार्थना की गई। भला तुलसी क्यों चूकते! उन्होंने पत्र लिखकर अपना मत तो दिया ही, पत्रवाहक को जबानी भी अपनी बात समझा दी। कहना व्यर्थ है कि यह कल्पना सुन्दर होते हुए भी एकदम निराधार और अनैतिहासिक है[१]।

कुछ ऐसा ही प्रयत्न "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में किया गया है। मीरां एक समय वल्लभाचार्यजी की समकालीन रही थी। पर मीरां और पुष्टिमार्गीय अनुयायियों के संबंध का रूप कुछ भिन्न रहा। इस संबंध के दो चरण हैं—पहला चरण 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का और दूसरा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' का। पहले चरण में, मीरां पुष्टि-मार्ग की अनुयायिनी नहीं बनती, यद्यपि तीन वैष्णवों का सम्पर्क किसी न किसी रूप में उससे रहता है। उनमें से एक, रामदास तो मीरांबाई के पुरोहित ही थे। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'चौरासी वार्ता' का कुछ उपयोग किया जा सकता है, और विद्वानों ने ऐसा किया भी है[२], तथापि जो मूल बात है वह यह है कि इस प्रथम चरण तक मीरां पूर्णरूपेण वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं होती और सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा केवल उससे, सम्पर्क मात्र बना रहता है। "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" दूसरा चरण है जिसमें श्रद्धालु मनोवृत्ति की पूर्ण तुष्टि तथा चरम सीमा तक पहुंची हुई संभावनाओं की परिसमाप्ति देखी जा सकती है। "चौरासी वार्ता" में मीरां से जो सम्पर्क बना हुआ था, अब वह "दो सौ बावन वार्ता" में पूर्णता प्राप्त करता है। "दो सौ बावन" की दो वार्ताओं से आभास मिलता है कि जैसे मीरां पर भी परोक्ष रूप से संप्रदाय की मोहर लग चुकी है। तथाकथित 'जैमल की बेन' परदे में रहती हुई भी दीक्षा लेती है और वह भी पत्र द्वारा। प्रसिद्ध ही है कि मीरां जैमल की, रिश्ते की बहन थी। इसी प्रकार मीरां की तथाकथित देवरानी अजबकुंवर बाई गोसाईंजी की सेविका होती है। इस तरह जैमल की बहन का उल्लेख करके, मीरां के पीहर को और देवरानी का उल्लेख करके, मीरां के ससुराल को, सम्प्रदाय के श्रद्धालुओं ने अपने में समेटा है। स्त्री के लिए दो ही जगह होती है—पीहर और ससुराल। "दो सौ बावन" के वार्ताकार ने अत्यन्त चतुराई एवं सूक्ष्मता से, परोक्ष रूप में मीरां के वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने का आभास दिया है, क्योंकि समस्त परिवार के दीक्षित होने की प्रथा इस सम्प्रदाय में है। डा० रामकुमार वर्मा इस तथाकथित 'जैमल की बेन' को मीरां ही मान बैठे[३]। इस बात को निराधार सिद्ध किया ही जा चुका है[४]।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : इससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—

---

१. (क) डा० माताप्रसाद गुप्त : तुलसीदास, पृ० ४६, (तृतीय संस्करण) :
(ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८५, (२००६) :
(ग) मीरां-माधुरी, पृ० ६०-६२; (घ) मीरांबाई, आदि।

२. मीरांबाई, जीवनी खंड:

३. हि०सा० का आ० इ०, पृ० ७०८, (प्रथम संस्करण) :

४. (२)—जीवनी खंड, पृ० २३-२४ :

१. कि संवत् १५८२ तक (कृष्णदास अधिकारी और मीराँबाई की मिलन तिथि) मीराँबाई प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुकी थी,

२. कि मीराँ किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित नहीं हुई थी,

३. कि वार्ता में वर्णित वैष्णवों के व्यवहार संकीर्ण मनोवृत्ति को नहीं, उनकी अपने इष्ट के प्रति चरम एकान्तिकता को प्रगट करते हैं। उच्चकोटि की भक्ति में अपने इष्ट की अदला-बदली असम्भव होती है। एकनिष्ठता इस कोटि में नितान्त आवश्यक है और वही सिद्धि का आधार भी। ८४ वार्ता में जो प्रसंग मिलते हैं, उनसे उन भक्तों की एकान्तिक साधना का ही पता चलता है, किसी संकीर्ण मनोवृत्ति और द्वेष-भावना का नहीं[१]।

अज्ञात कवि नन्दराम रचित बारह मासा तथा भजन : इससे, एक और महत्त्वपूर्ण बात का पता चलता है। वह यह है कि मीराँ को कष्ट देने वाले स्वयं उसके पति ही थे, देवर अथवा बीजावर्गी मंत्री नहीं। उक्त दोनों पदों से यह बात एकदम स्पष्ट है। इसका समर्थन मीराँ के उन पदों से भी होता है जो राणा से संबंधित हैं। राणा से संबंधित पदों में जो अभिव्यक्ति है वह कदापि देवर, ससुर या किसी और व्यक्ति से नहीं हो सकती। वह तो केवल अपने पति से ही हो सकती है। इस बात का समर्थन अन्यत्र भी मिलता है[२]। नीचे दिए गए कुछ पदों से इसकी पुष्टि होगी। इस प्रसंग में केवल एक ही आपत्ति उठाई जा सकती है—ऐसे पदों की प्रामाणिकता की। मीराँ की प्रकाशित पदावलियों में प्रो० नरोत्तमदास स्वामी की 'मीरा-मंदाकिनी' अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय है। स्वामीजी के कथनानुसार, उसका आधार उन्नीसवीं शताब्दी विक्रम की लिपिबद्ध एक हस्तलिखित प्रति रही है। फिर ये पद, हिंदी और गुजराती की लगभग सभी बहु-प्रचलित पदावलियों में भी उपलब्ध हैं। उक्त बात के साथ एक स्वाभाविक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि मीराँ को सधवापन में ही कष्ट दिए गए थे। मीराँ के अनेक पदों में व्यक्त हुई भावनाओं से यह बात स्पष्ट होती है[३]। ऐसे कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ ये हैं—

(१) राणाजी म्हे तो गोविन्द का गुण गास्यां[४]।
(२) राणाजी म्हानें यह बदनामी लागे मीठी[५]।
(३) बड़े घर ताली लागी रे, म्हारां मनरी उणारथ भागी रे[६]।
(४) राणाजी थे क्यांनें राख्यो म्हां सूं बैर[७]।
(५) सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हांरो कांई कर लेसी[८]।

उपर्युक्त विवेचन को अन्तःसाक्ष्य के साथ मिला कर देखने से कदाचित् मीराँ के व्यक्तित्व

१. मीरा स्मृति ग्रंथ,—"पदावली परिचय," पृ० ड तथा ढ, —श्री ललिताप्रसाद सुकुल :
२. मीराँ, एक अध्ययन, पृ० ४६-५० :
३. वही;—'वैधव्य', शीर्षक के अन्तर्गत:
४. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ५०, पद १०६ :
५. मीराँ-माधुरी, पृ० ३७, पद ६६; मीराँबाई की पदावली, पृ० १०६, पद ३६ :
६. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ५०, पद ११० :
७. वही; पृ० ५१, पद १११ :
८. वही; पृ० ४६, पद १०८ :

की कुछ झांकी स्पष्ट हो सकेगी। इस विषय में समस्या खड़ी होती है—मीरां रचित ग्रन्थों और उनकी प्रामाणिकता की। मोटे रूप से उसके द्वारा रचित ग्रंथ निम्नलिखित बताए जाते हैं :

मीरां की रचनाएँ :

(१) गीत गोविन्द की टीका, (२) नरसी रो मायरो, (३) सत्यभामाजी नों रूसणो[1]
(४) राग सोरठ, (५) राग गोविन्द तथा (६) पदावली

इनमें 'नरसी रो मायरो' तो रतना खाती की रचना है, जिसका परिचय अन्यत्र दिया गया है। ऐसे कुछ[2] और 'मायेरों' की भी सूचना मिलती है, किन्तु भाषा, शैली तथा विषय-वस्तु के आधार पर ये मीरां के बनाए नहीं प्रतीत होते। गीत-गोविन्द की टीका राणा कुंभा की रचना है और "सत्यभामाजी नो रूसणो" गुजराती की रचना है जिसके रचयिता वल्लभ हैं। 'पदावली' से इसका कोई मेल नहीं है। "राग सोरठ" तथा "राग गोविन्द" कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं हैं। विभिन्न पदों को एकत्र कर ये नाम दिए गए हैं। इसी प्रकार अन्यान्य राग-नामधारी पदों को भी समझना चाहिये। अतः पदावली को छोड़ कर कोई भी ग्रन्थ मीरां का बनाया प्रतीत नहीं होता।

पदावली : मीरां की ख्याति का आधार उसकी पदावली ही है, जिसमें विभिन्न पदों को एकत्र किया गया है। पदावलियों के संपादकों में, केवल तीन विद्वानों ने हस्तलिखित प्रतियों के आधार की बातें कहीं हैं। ये हैं श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री उदयसिंह भटनागर[3] तथा श्री ललिताप्रसाद सुकुल। स्वामीजी की 'मीरा-मंदाकिनी' की चर्चा हो चुकी है। श्री भटनागर के दिए हुए ५५ भजन कुछ हेरफेर और पाठान्तरों के साथ प्रायः अन्य पदावलियों में प्राप्त हैं। रह गए श्री 'सुकुल' जिन्होंने दो प्रतियों (संवत् १६४२ की डाकोर की प्रति तथा संवत् १७२७ की काशी की प्रति) के आधार पर 'मीरा स्मृति-ग्रंथ' में मीरां की पदावली दी है। पर खेद है, कि इसका कोई भी प्रमाण उन्होंने नहीं दिया है। तथाकथित 'पदावली' को देखने पर पता चलता है कि उसकी भाषा बिल्कुल भ्रष्ट है। उसमें व्याकरण संबंधी भद्दी भूलों की भरमार है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

(१) शब्द के आदि का 'न' राजस्थानी में कभी 'ण' में नहीं बदलता। किन्तु इस पदावली में जगह-जगह ऐसे प्रयोग पाए जाते हैं —
 (क) आली म्हांणे लागां बृन्दाबण णीकां (पद ८)
 (ख) पिया थारे णाम लुभाणी जी (पद २५)
 (ग) सांवरो णंदणण्दण दीठ पड्यां माई (पद ८५)

(२) यद्यपि राजस्थानी में बहुधा संस्कृत शब्दों के 'न' को 'ण' कर दिया जाता है, तथापि मन,

---

१. बृहत् काव्य दोहन में प्रकाशित।
२. हस्तलिखित प्रति-आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स०, काशी, (लिपि काल सं० १८६७)।
३. राजस्थान में हिन्दी के ह० लि० ग्रंथों की खोज, भाग ३ :

कनक, जनम, तन, नभ आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनमें यह परिवर्तन नहीं होता[1]। 'पदावली' में जगह-जगह ऐसा प्रयोग है—

(क) म्हारो मण सांवरो णाम रटयांरी।
(ख) जणम जणम बीलतां पुराणी णामां स्याम मटयांरी।
(ग) कणक कटोरा इम्रत भरयां पीतां कूण नटयांरो।
(घ) बादड़ां णभ छाया।

(३) 'ळ' अथवा 'ल' का बिना किसी अर्थ संगति के 'ड़' किया गया है—

गोपाल, गोपाळ का गोपाड़ (पद १)
अबला का अबड़ा (पद ६१)
बल का बड़ (पद ६१)
मुरलियां का मुरड़ियां (पद ६४)
लाल का लाड़ (पद ३६)
कळ का कड़ (पद ३६)
मोल का मोड़ आदि।

इससे कभी कभी अनर्थ होने की संभावना रहती है। उदाहरण के लिए ऊपर के चार शब्द देखे जा सकते हैं—

(१) 'बल' (बळ) का अर्थ है ताकत, शक्ति अथवा किसी वस्तु का टेढ़ापन, जबकि बड़ एक वृक्ष विशेष को कहते हैं।

(२) लाल का अर्थ है, पुत्र, लाडला अथवा रत्न-विशेष, पर लाड़ का अर्थ है प्यार।

(३) कळ का मतलब है शान्ति पर कड़ का मतलब है कमर।

(४) मोल का अर्थ है भाव, खरीद, जबकि मोड़ का अर्थ है घुमाव, तथा सेवरा, (विवाह के अवसर पर सिर पर बाधने का मुकुट की तरह बना हुआ एक मांगलिक चिन्ह-विशेष, जो जरी आदि से बनाया जाता है)।

(४) बिना किसी अर्थ-संगति के तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'स' का एक ही वाक्य में असंगत प्रयोग—

सखी म्हारी नींद नशाणी हो (पद ३६)

(५) अनुस्वार और अनुनासिक के अस्वाभाविक और असंगत प्रयोग—

(क) अन्तर वेदण बिरह री म्हारी पीड़णा जाणी हो (पद ३६)
(ख) अङ्ग खीण व्याकुड़ भयां (वही)
(ग) पियरो पंथ निहारतां (वही)
(घ) णन्दणण्दण णभ छायां (पद ७२)

(६) एक ही शब्द का, एक ही प्रसंग और अर्थ में, दो रूपों में प्रयोग—

म्हारां री गिरधर गोपाड़ दूसरा णा कूयां
दूसरां णां कोयां साधां सकड़ ढोक जूयां (पद १)

१. डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ६४ :

(७) छोटे छोटे पदों का व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग तो और भी चिन्तनीय है—

(क) मीरां री लगण लाग्यां होणां हो जो हुयां (पद १)। जबकि शुद्ध प्रयोग होगा—
मीरां री लगण लगी होणी हो जो होई।

(ख) करम गति टारां णा री टरां। इसका शुद्ध प्रयोग होगा—
करम गति टारे ना री टरे अथवा करम गति टारी ना री टरी।

इस प्रकार के अनेक भ्रष्ट प्रयोगों और अशुद्धियों से 'पदावली' भरी पड़ी है। प्राचीनता की दुहाई मात्र देने से ही प्रति प्रामाणिक नहीं बन जाती। उलटे इससे गुमराह हो जाने की आशंका रहती है। इस 'पदावली' के आधार पर संपादित प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव की 'मीरां दर्शन' की पदावली इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस विषय में डा० मोतीलाल मेनारिया ने ठीक ही कहा है,—'भूल भुलैयां की तरह एक विचित्र परिस्थिति में इस प्रति के मिलने का वर्णन किया गया है जो मन में संदेह उत्पन्न करता है। ....मालूम पड़ता है राजस्थानी भाषा से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति ने यह सारा जाल रचा है। यदि मीरांबाई ने इस तरह की कर्णकटु और भद्दी भाषा में कविता की होती, तो वह कदापि इतनी लोकप्रिय नहीं हो पाती।....अतः इसकी भाषा को मीरांबाई की मूल भाषा मानना भारी भूल है'[१]। इस 'पदावली' की भाषा में स्पष्ट ही अपभ्रंश और गुजराती की मिली जुली छोंक देने का हास्यास्पद प्रयास किया गया है।

पदावली की भाषा : मीरां के पद बराबर गाए जाते रहे हैं। अतः उत्तरोत्तर उनकी भाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में उनका संग्रह परम्परा से प्राप्त सुने-सुनाए आधार पर किया गया है। मीरां की प्रसिद्धि उसके जीवनकाल में ही हो गई थी। अतः जहां भी वे पद गाए गए, उनकी भाषा पर तत्स्थानीय रंगत चढ़ती गई। श्रद्धालुओं ने अपनी ओर से भी पद बनाकर मीरां की भेंट चढ़ाए होंगे, इसमें सन्देह नहीं। हाल ही में प्रकाशित 'मीरां सुधा-सिंधु' में मीरां के नाम से गुजराती, पंजाबी, भोजपुरी, व्रज आदि भाषाओं के पदों का संकलन मिलता है। सब पदों की संख्या १३१२ है। कहना न होगा कि इनमें अधिकांश पद प्रक्षिप्त है। अतः केवल भाषा के आधार पर पदों का निर्णय करना एकांगी होगा। मीरां का अधिकांश जीवन राजस्थान में बीता। वह वहीं जन्मी और वहीं ब्याही गई। केवल जीवन के अन्तिम दिन गुजरात में बीते। उसकी वृन्दावन यात्रा अथवा वहां निवास निराधार है। इस कारण शुद्ध गुजराती, शुद्ध पंजाबी और शुद्ध भोजपुरी भाषाओं में मिलनेवाले पद, अपने वर्तमान रूप में कदापि मीरां के नहीं हो सकते। शुद्ध व्रजभाषा के पद भी सन्देहास्पद ही हैं। अधिक से अधिक ऐसे पदों में मीरां की भावना कुछ न कुछ रूप में भले ही सुरक्षित हो। मीरां की भाषा राजस्थानी थी। यही डा० सुनीतिकुमार चटर्जी कहते हैं। उनके अनुसार, मीरां की भाषा शुद्ध राजस्थानी थी, जो लोकप्रियता के कारण धीरे-धीरे परिवर्तित होती गई[२]। यही मत स्व० झवेरचन्द मेघाणी का है[३]। डा० मेनारिया[४]

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ६४ : २. राजस्थानी भाषा, पृ० ६७ :
३. मरु-भारती, वर्ष ३,—अंक ३, अक्टूबर, १९५५, 'राजस्थानी भाषा' :
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४७ :

और श्री नरोत्तमदास स्वामी[1] उसमें व्रजभाषा और गुजराती का मिश्रण भी मानते हैं। पदावलियों का इतिहास भी बड़ा रोचक है[2]।

---

१. राजस्थानी साहित्य : एक परि० : पृ० २८ :

२. (१) उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित 'राग कल्पद्रुम' नामक गीत संग्रह, संगीत शास्त्र की दृष्टि से तैयार किया गया था। इसमें ४५ पद मीराँ के संग्रहीत हैं जो उस समय सुनकर ही संभवतः लिखे गए थे।

(२) सवत् १६५५ में पंडित ईश्वरीप्रसाद रामचन्द्र ने "मीराँबाई के भजन" नामक पुस्तक में २० भजन छपाए थे।

(३) मुंशी देवीप्रसाद ने 'महिला मृदुवाणी' में २५ भजन मीराँबाई के छपाए थे।

(४) 'वृहत् काव्य दोहन' गुजराती में, प्राचीन कवियों का प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ है। इसके भाग ७ में ११३ पद मीराँ के दिए गए हैं।

(५) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से निकलनेवाली मीराँ की शब्दावली में १६८ पद हैं।

(६) इसी शब्दावली के आधार पर श्री मुरलीधर श्रीवास्तव ने 'मीराँबाई का काव्य' नामक पुस्तक प्रकाशित कराई। इसी समय से मीराँ के पदों के बहुत से संग्रह-ग्रंथ निकले जिनमें कुछ मुख्य मुख्य नाम ये हैं—

(७) मीरा की प्रेम साधना– भुवनेश्वर मिश्र 'माधव',

(८) मीराँबाई की पदावली– परशुराम चतुर्वेदी,

(९) मीराँ-माधुरी– ब्रजरत्नदास,

(१०) मीराँ, जीवनी और काव्य– महावीरसिंह गहलोत,

(११) मीरा और उनकी प्रेमवाणी– ज्ञानचंद जैन,

(१२) मीरा की प्रेमवाणी – रामलोचन शर्मा 'कंटक';

(१३) मीरा-मंदाकिनी– नरोत्तमदास स्वामी,

(१४) The Story of Mirabai—Bankey Behari,

(१५) मीरा की पदावली– मीरा स्मृति ग्रंथ में, ' '

(१६) मीराँ दर्शन– मुरलीधर श्रीवास्तव,

(१७) मीराँ पदावली– विष्णुकुमारी मंजु,

(१८) मीराँ– वृहत् पद-संग्रह– पद्मावती 'शबनम',

(१९) मीराँ सुधा-सिंधु, स्वामी आनन्दस्वरूप, (भीलवाड़ा) आदि।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित संग्रह ग्रन्थों आदि में भी मीराँ के पद पाए जाते हैं—

(१) Selections from Hindi Literature—Lala Sitaram,

(२) कविता कौमुदी– रामनरेश त्रिपाठी,

(३) स्त्री कवि कौमुदी—ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल',

(४) दस पद–राजस्थानी, भाग ३, अंक १, जनवरी १९३९, (कलकत्ता) में प्रकाशित,

(५) आठ पद– मीरा स्मृति ग्रंथ में, श्री जगदीश गुप्त द्वारा प्रकाशित,

(६) ५५ भजन-राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग ३ में उदयसिंह भटनागर द्वारा प्रकाशित।

(७) नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में पदों की सूचनाएं—

(क) १९०२ – संख्या ५७, ६४ तथा २४९,

(ख) १९१२-१४, संख्या ११५,

(ग) १९२६-२८, संख्या ३०३

(घ) १९२९-३१, संख्या २३१,

(ङ) १९३२-३४, संख्या १४५।

यहां यह कह देना भी असंगत न होगा कि मीरां का जीवन और काव्य एक दूसरे में घुल मिल कर एक हो गया है। उसके जीवन को काव्य से अथवा काव्य को जीवन से पृथक करके देखने में हम मीरां के साथ समुचित न्याय नहीं कर सकेंगे।

अंतःसाक्ष्य :

जीवन और काव्य : उनका क्रमिक विकास

बहिर्साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, मीरां के पदों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि उसके जीवन और काव्य का विकास क्रमशः शनैः शनैः इस प्रकार हुआ :—

प्रेमाभिव्यक्ति → जोगी से निवेदन → राणा से संघर्ष →
साधना कृष्णोन्मुख → निर्गुणोन्मुख → शान्त रसात्मक वाणी।

नीचे इस पर विचार किया जाता है :

अपने बालपन के संबंध में मीरां ने अधिक नहीं कहा है। प्रतीत होता है कि वह एक बार बीमार पड़ी थी। लोगों में चर्चा थी कि उसे पांडु-रोग हो गया है, पर वह तो अपने प्रियतम के लिए छुपछुप कर लंघन करती रही थी। वह वैद्य से भी दिखलायी गयी[१]। यद्यपि उसका बाल-काल लड़कियों के साथ खेलने में बीता तथापि न जाने क्यों उसने अपना रंग-रूप खो दिया[२]। तत्पश्चात् अनेकधः पदों में जो मीरां की प्रेमाभिव्यक्ति है, उससे उसके निरास प्रेम और विरह विदग्धता का पता चलता है। मीरां के इन पदों में एक टीस, एक कसक, मिलन की प्रबल लालसा, दर्शन की आतुरता, और अनुभूति जन्य विकलता, उद्याम और उदात्त रूप में व्यक्त हुई है जो भौतिक प्रेम के प्रतीकों से भरपूर है। इनके स्वरूप को समझने के लिए कुछ उदाहरण देखिए—

(१) प्रेमाभिव्यक्ति

(१) नातो नाम को मोसूं तनक न तोड़यो जाइ[३]।
(२) घड़ी एक नहिं आवड़े, दरसण बिन मोय[४]।
(३) मैं बिरहिणि बैठी जागूं, जगत सब सोवें री आली[५]।
(४) म्हारो जनम मरण रो साथी, थांने नहिं बिसरूं दिन राती[६]।
(५) पपइया रे पिव की बाणि न बोल[७]।
(६) घर आवो सजन मिठ बोला[८]।

---

१. मीरा-मंदाकिनी, पृ० २५, पद ५८ :
२. मीरां सुधा-सिंधु, पृ० २०६, पद १३६ :
३. मीरा-मंदाकिनी, पृ० २५, पद ५८ :
४. वही; पृ० २१, पद ४६ :
५. मीरां-माधुरी, पृ० ७६, पद २०६:
६. मीरा-मंदाकिनी, पृ० १३, पद ३१ :
७ वही; पृ० १६, पद ४० .
८ मीरां-माधुरी, पृ० ६६, पद १८६ :

(७) नैणां लोभी रे, बहुरि सकै नहिं ग्राय[1]।
(८) म्हारे घर ग्राज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा[2]।
(९) पिया मोहि दरसण दीजै हो[3]।

उपर्युक्त पदों की ग्रभिव्यक्ति को निम्नलिखित पदों की तीव्र संवेदनामय विरह-जन्य चीत्कार से मिलाने पर स्पष्ट हो जाता है कि उक्त भौतिक प्रतीकों का स्वर निरंतर कितना तीव्र ग्रौर प्रखर होता गया :—

(२) जोगी से निवेदन :

(१) तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी[4]।
(२) धूतारा जोगी एक बेरिया मुख बोल रे[5]।
(३) धूतारा जोगी एकर सूं हँसि बोल[6]।
(४) जोगिया री सूरत मन में बसी[7]।
(५) तुम्हरे कारण सब सुख छांड्या, ग्रब मोहि क्यूं तरसावौ[8]।
(६) जोगी मत जा मत जा, पाँइ पडूँ मैं चेरी तेरी हौं[9]।
(७) म्हारे घर होता जाज्यो राज[10]।
(८) जावो निरमोहिया जाणी तेरी प्रीत[11]।
(९) जाबादे जावादे जोगी किसका मीत[12]।
(१०) जोगिया जी छाइ रह्या परदेश[13]।
(११) जोगिया, मेरी तेरी[14]।
(१२) मिलता जाज्यो हो गुरु ग्यानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी[15]।
(१३) बालम मैं बैरागिण हूँगी[16]।

---

१. मीरां-माधुरी पृ० १६, पद ५१
२. वही; पृ० ७०, पद १६१ :
३. वही; पृ० ७६, पद २१२ :
४. मीरां-वृहत् पद संग्रह, पृ० २६८, पद ५४०. :
५. वही; पृ० २६६, पद ५४३ :
६. वही; पृ० २६६, पद ५४२ :
७. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ८, पद १७ :
८. मीरां-माधुरी, पृ० ८२, पद २२३ :
९. मीरा-मंदाकिनी, पृ० १०, पद २२ :
१०. वही; पृ०. २०, पद ४७ :
११. वही, पृ० १०, पद, २३ :
१२. वही, पृ० ११, पद २४ :
१३. वही पृ० १२, पद २८ :
१४. मीरां-माधुरी, पृ० १००, पद २७६ :
१५. वही; पृ० ११०, पद ३०६ :
१६. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ५७, पद १२८ :

(१४) जोगियो ने कह ज्यो जी आदेस[1] ।
(१५) जोगियाजी आवो ने या देस[2] ।
(१६) म्हारे घर रमतो ही आई रे तू जोगिया[3]
(१७) ऐसी लगन लगाइ कहाँ तूँ जासी[4] ।
(१८) मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होइ री[5] ।
(१९) जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल[6] ।
(२०) जोगिया से प्रीत कियां दुख होय[7] ।
(२१) कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत[8] ।
(२२) जोगियाजी निसदिन जोऊं बाट[9] ॥

उपर्युक्त पदों से स्पष्ट है कि मीरां की प्रेम-साधना में किसी न किसी जोगी का सहयोग अवश्य रहा था, और संभवतः यह जोगी तथा वह 'गुरु ज्ञानी' एक ही है जिसकी सूरत को देख कर मीरां लुब्ध हो गई थी (मिलता जाज्यो रे गुरु ज्ञानी) । डा० सावित्री सिन्हा का कहना है कि 'मीरां के आराध्य का दूसरा निर्गुण पंथी रूप पूर्णतया लौकिक है । जिस योगी के प्रेम में वह व्याकुल है, वह एक साधारण योगी है, जो उसके मन में प्रेम की अग्नि लगा कर चला गया है'[10] । शायद इस कथन में साधारण वासना की गंध प्रतीत हो । परन्तु यह भी असंभव नहीं है कि शुद्ध गुरु-प्रेम ही प्रचलित प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया हो । डा० श्रीकृष्णलाल के अनुसार, मीरां के योगी रूप आराध्य पद पर स्पष्टतः नाथ सम्प्रदाय के योगियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है[11] ।

'मीरां ने अपने आराध्य को बार बार जोगी नाम से ही सम्बोधन किया है । मीरां के जोगी की वेश भूषा भी नाथ-परम्परानुसार ही है । पदाभिव्यक्तियों के आधार पर यह सुस्पष्ट हो उठता है कि मीरां के ये आराध्य नाथ परम्परानुसार वेशभूषा से विभूषित नाथ-परम्परानुकूल जोगी कर्म में रत हैं'[12] ।

'जोगी मत जा मत जा' पद का हवाला देते हुए प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव कहते हैं कि इस प्रसिद्ध गीत में भी स्पष्ट ही जोगी के प्रति प्रेम निवेदित किया गया है । यह गुरु से अनुरोध

---

१. मीरा-मंदाकिनी; पृ० २६, पद ६०. :
२. वही; पृ० २८, पद ६४ :
३. वही; पृ० २०, पद ४६ :
४. वही; पृ० ६४, पद १४१ :
५. वही; पृ० ३०, पद ६८ :
६. मीरांबाई की पदावली, पृ० ११७, पद ५८ :
७. वही; पृ० ११७, पद ५७ :
८. वही; पृ० ११७, पद ५६ :
९. मीरां-माधुरी, पृ० ६६, पद २६६ :
१०. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० १२६ :
११. मीरांबाई, पृ० १२६ :
१२. मीरां, एक अध्ययन, पृ० ११५ तथा १३६ (अवतरण):

कभी नहीं हो सकता। यह तो प्रेमिका का प्रेमी से अनुरोध है[1]। 'मीरां की वेदना के पीछे एक कुचले हुए स्वप्न की, एक प्रेम दग्ध हृदय की विकलता है। उस वेदना में पार्थिव यथार्थता है'[2]। मीरां की यह प्रेम विदग्ध वाणी निश्चय ही साहित्य की एक अमूल्य थाती है। 'मीरां के नैसर्गिक व्यक्तित्व के साथ भौतिक भावना के सम्बन्ध स्थापन से यद्यपि हमारी निष्ठा तथा विश्वास पर गहरा आघात लगता है, पर उनकी अनुभूतियों के आलम्बन जोगी के रूप की स्पष्ट लौकिकता के प्रति निरपेक्षता सत्य की उपेक्षा होगी'[3]।

राणा से संघर्ष :

विवाहोपरान्त मीरां के जीवन में दूसरा मोड़ आता है। राणा से सम्बन्धित जो पद हैं, वे मीरां के वैवाहिक जीवन के कटु संघर्षों की कहानी कहते हैं। उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस अवस्था में मीरां का आत्मविश्वास अडिग है। वह 'राणाजी थें क्यांने राखो म्हां सूं बैर, थे तो राणाजी म्हाने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कैर'[4], तथा 'हरि मन्दिर में निरत करास्यां, घूंघरिया घमकास्यां'[5], आदि खुले शब्दों में राणा को क्या मेवाड़ के समस्त राजघराने को चुनौती देती है। आत्मविश्वास के साथ निशंक और निडर होकर खुले शब्दों में चुनौती देने वाली ऐसी दूसरी नारी को हिन्दी और राजस्थानी साहित्य नहीं जानता। *बीसलदेव रास की राजमती केवल जबान की तेज है, पर आत्मविश्वास से रहित।*

कृष्णोन्मुख साधना

इसके पश्चात् मीरां की साधना तीसरा मोड़ लेती है। वह है उसका कृष्णोन्मुख होना। परले सिरे की सांसारिक कटुता का घूट वह पी चुकी है तथा जोगी के माध्यम से प्रेम-साधना करके वह 'जग-हांसी' का शिकार भी हो चुकी है। अब तो वह उस 'वर' की खोज में चलती है जिससे उसका सुहाग (उसका चुड़ला) अमर हो जाए। संभवतः यही समय उसके विधवा होने का भी है। परन्तु इस कारण उसकी साधना में कोई भी अन्तर नहीं आता। उसके लौकिक प्रेम-प्रतीकों का उपयोग कृष्ण-प्रेम में होता है और उसके प्रेमालम्बन होते हैं श्री कृष्ण। धीरे-धीरे वह उनकी माधुरी में रंगती जाती है। घर-बार का त्याग भी वह संभवतः कर देती है। पर उसकी, इस विरक्तिमयी प्रेम-साधना में प्रारंभिक भौतिक प्रतीक पूर्णतया नहीं छूट पाते। वह आराध्य के सगुण तथा साकार सान्निध्य के लिये कैसी लालायित है यह बात निम्नलिखित पदों से स्पष्ट है—

(१) प्रभु बिन ना सरै माई[6]।
(२) चालां वाही देस प्रीतम पावां चालां वाही देस[7]।

---

१. मीरां दर्शन, पृ० १०८ : २. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० १२७, (–प्रो० मंगल) :
३. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां, पृ० १२७ : ४. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ४१, पद १११ :
५. वही; पृ० ४०, पद १०६ :
६. मीरां-माधुरी, पृ० ७४, पद २०१ :
७. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ३०, पद ९६ :

(३) हरि बिन क्यूं जीऊं री माय[1] ।
(४) पिया बिन सूनो छै जी म्हारो देस[2] ।

अब मीरां प्रबल मानसिक संघर्षों में से गुजर रही है। श्यामसुन्दर पर जीवन न्यौछावर करने की कामना लेकर वह चल पड़ी है। वे श्यामसुन्दर ऐसे हैं, जिन पर वह जीवन निछावर कर सकती, जिनके साथ होली खेल सकती और जिनके अभावमें वह अपने को अकेली और दुखी पाती है—

(१) स्याम सुंदर पर वार, जीवड़ा मैं वार डारूंगी[3] ।
(२) भवनपति तुम घरि आज्यो हो[4] ।
(३) नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात, किस विध होइ परभात[5] ।
(४) किण संग खेलूं होली, पिया तज गये है अकेली[6] ।

परन्तु मीरां पथ से विचलित नहीं होती। पार्थिव मिलन का हलका सा-बहुत ही हलका सा आभास, महासागर में उठे क्षुद्र बुद्बुद् की भांति कभी कभी प्रतिभासित हो जाता है। निरन्तर साधन में रत वह कृष्ण के निकटतर आती जाती है। नीचे के पदों से यह बात प्रतीत होती है—

(१) लगन म्हारो स्याम सूं लगी, नैना निरखि सुख पाइ[7] ।
(२) कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मनभावन की[8] ।
(३) श्री गिरधर आगे नाचूंगी[9] ।
(४) म्हारा ओलगिया घर आया जी[10] ।
(५) जोसीड़ा नें लाख बधाई रे, अब घर आए स्याम[11] ।
(६) जोगियो आणि मिल्यो अनुरागी[12] ।

शनैः शनैः वह साधना की यह मंजिल पूर्णतया तय कर लेती है। कृष्ण का सान्निध्य उसे प्राप्त हो गया है। उसका रोम रोम कृष्ण-प्रेम में भीग गया है—

(१) निपट बॅकट छबि अटके मेरे नैना[13] ।
(२) या मोहन के मैं रूप लुभानी[14] ।

---

१. मीरां-माधुरी, पृ० ५४, पद १४१ : २. वही, पृ० ७५-७६, पद २०५ :
३. मीरा-मंदाकिनी, पृ० १४, पद ३३ :
४. वही; पृ० १७, पद ४२.
५. वही; पृ० १६, पद ३८ :
६. वही; पृ० ७४, पद १६० :
७. मीरां-माधुरी, पृ० ५८, पद १५४ :
८. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ३०, पद ६७ .
९. वही; पृ० ६४, पद १३८ :
१०. वही; पृ० ३३, पद ७६ :
११. वही; पृ० ३२, पद ७३ :
१२. मीरां-वृहत्-पद-संग्रह, पृ० ३००, पद १२ :
१३. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ६, पद १२ :
१४. वही; पृ० ६, पद १३ :

(३) नंदनंदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई[1] ।
(४) भई हों बावरी सुनके बाँसुरी, हरि बिनु कछु न सुहाये माई[2] ।
(५) पतियाँ में कैसे लिखूँ लिखि ही न जाई[3] ।
(६) मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों[4] ।
(७) मैं गिरधर के घर जाऊँ[5] ।
(८) भज केसव गोविंद गोपाला, हरि हरि राधेस्याम पहिरें बनमाला[6] ।

निर्गुणोन्मुख साधना :

इस प्रकार सगुण भक्ति की चरमसीमा में पहुंच कर मीराँ की साधना चौथा मोड़ लेती है। सगुणभक्ति का पर्यवसान निर्गुण-भक्ति में होता है। 'अध्यात्म की दृष्टि से नाम रूपों को ही सगुण माया अथवा प्रकृति कहते हैं। परन्तु नाम-रूपों को निकाल डालने पर जो "नित्य-द्रव्य" बच रहता है, वह निर्गुण ही रचना चाहिए। क्योंकि कोई भी गुण बिना रूप के नहीं रह सकता। वास्तविक ब्रह्म-स्वरूप निर्गुण ही है'[7]। उसकी साधना केवल सगुण कृष्ण भक्ति की सीमा में ही नही बंधी रहती, वास्तविक निर्गुण ब्रह्म स्वरूप को पाने के लिए वह धीरे-धीरे निर्गुणोन्मुखी होती है और यही से चौथा मोड़ प्रारंभ होता है—

(१) स्याम तेरी आरति लागी हो[8] ।
(२) कोई कछु कहे मन लागा[9] ।
(३) राम नाम मेरे मन बसियो, राम रसियो रिझाऊँ[10] ।
(४) गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि से मिलूं कैसे जाइ[11] ।
(५) मनखा जनम पदारथ पायो, एसी बहुर न आसी[12] ।
(६) मैंने रात रतन धन पायो[13] ।

शनैः शनैः वह शुद्ध निर्गुण की गायिका हो जाती है। इस सीमा में प्रवेश करने पर उसके राम और श्याम में कोई भेद नही रह गया है। दोनों ही कबीर के राम की भांति ब्रह्म के पर्याय हो गए हैं। जो लोग केवल राम और रमैया नाम वाले मीराँ के पदों पर आपत्ति करते हैं, उन्हें साधना की इस भाव-भूमि पर विचार करना चाहिए। निर्गुण की भाव-भूमि पर आकर मीराँ ने उच्चकोटि के पदों की सृष्टि की है, जिसको पाकर कोई भी साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। कुछ पद देखिए—

---

१. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ३४, पद ७६ : २. वही, पृ० ३७, पद ८७ :
३. वही; पृ० ३८, पद ९१ : ४. वही; पृ० ३६, पद ९२ :
५. वही; पृ० ६५, पद, १४२: ६. मीराँ-माधुरी, पृ० १३१, पद ३५५ :
७. श्री बालगंगाधर तिलक : गीता रहस्य, पृ० २४३ तथा २२६, (तृतीय मुद्रण, संवत् १९७५;
८. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ७१, पद १५४ : ९. वही, पृ० ३७, पद ८९ :
१०. वही; पृ० ४१, पद ९५ : ११. वही; पृ० ४२, पद ९७ :
१२. वही; पृ० ५५, पद १२३ : १३. वही; पृ० ६२, पद १३२ :

(१) नैनन वनज बसाऊं री, जो मैं साहिब पाऊं[1] ।
(२) लागी मोहि राम खुमारी हो[2] ।
(३) हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी[3] ।
(४) रमैया, मैं तो थांरे रंग राती[4] ।
(५) जागो म्हांरा जगपति राइक हँसि बोलो क्यूं नहीं[5] ।
(६) चलो अगम के देस, काल देखत डरै[6] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक अपूर्व दृढ़ता के साथ उत्तरोत्तर मीरां के जीवन और काव्य का विकास होता है। भौतिक प्रेम से आरंभ होकर, लोकलाज और सांसारिक कष्टों का उपहास करते हुए, प्रबल मानसिक संघर्षों में अपूर्व सन्तुलन रखते हुए, उसकी साधना कृष्णोन्मुख होती हुई उन्हीं के रंग में रंग जाती है। साधना के इस धरातल से भी उठ कर वह शुद्ध निर्गुण की भाव-भूमि पर पहुंच जाती है और उसकी भी चरम-सीमा छू लेती है। यही कारण है कि उसके पदों में एक मांगलिक और पावन प्रभाव है। अवश्य ही समस्त राजस्थानी और हिंदी - साहित्य में मीरां का व्यक्तित्व बेजोड़ है। उसके काव्य और जीवन की विशेषता "क्षत्रियत्व" अथवा "क्षात्रतेज" शब्द में निहित है। आदि से अन्त तक उसका क्षात्र तेज सदा जागरूक रहा है। वह निरीह कहीं नहीं है। अगर है तो केवल एक स्थल पर—अपने आराध्य के सम्मुख।

शान्त रसात्मक वाणी :

स्वानुभूति से ओतप्रोत, प्रसादान्त एवं शान्त रसपरक पद संभवतः मीरां ने जीवन के अन्तिम दिनों में कहे हैं। इनमें मानों उसके समस्त जीवन का सार मुखरित हो उठा हो—

(१) तुम सुणो दयाल म्हांरी अरजी[7] ।
(२) राम नाम रस पीजै मनुआं, राम नाम रस पीजै[8] ।
(३) जग में जीवण थोड़ा, राम कुण करै रे ससार[9] ।
(४) नहिं एसो जनम बार बार[10] ।
(५) भज मन चरण कँवल अविनासी[11] ।

शिवानी वसु ने लिखा है—'चिर-दुखिनी मीरा, चिर-विरहिणी मीरा'[12] । मीरां के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जीवन्त झांकी के लिए इसमें इतना और जोड़ देना चाहिए—क्षात्र तेज की प्रतिमा मीरां, चिर मांगलिक मीरां।

---

१. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ३८, पद ८६ : २. वही; पृ० ४, पद ७ :
३. मीरां-माधुरी, पृ० १०७, पद ३०० : ४. वही; पृ० १०६, पद २६६ :
५. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ३५, पद ८१ : ६. मीरांबाई की पदावली, पृ० १५८-५६, पद १६२ :
७. मीरा-मंदाकिनी, पृ० ६१, पद १३१ : ८. वही; पृ० ५१, पद ११३ :
९. वही; पृ० ५६, पद १२५ : १०. मीरांबाई की पदावली, पृ० १६०, पद १६५ :
११. वही; पृ० १६०, पद १६४ : १२. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ० १६७ :

अध्याय १४

गद्य साहित्य

(क) सामान्य परिचय

१४ वीं शताब्दी :

राजस्थानी गद्य का निर्माण विक्रम चौदहवी शताब्दी पूर्वार्द्ध से लेकर आज तक अविच्छिन्न रूप से होता आया है। विपुल और विभिन्न प्रकार के गद्य की परिपाटी का श्रेय राजस्थानी को ही है। संवत् १३३० में लिखित 'आराधना'[१] नामक टिप्पणी को पुरानी राजस्थानी गद्य का सर्वप्रथम नमूना कहा जा सकता है। चौदहवी शताब्दी गद्य के अन्य नमूने संग्रामसिंह रचित 'बालशिक्षा' (संवत् १३३६[२]); 'नवकार-व्याख्यान' (सं० १३५८[३]); 'सर्वतीर्थ-नमस्कार-स्तवन' (१३५९[४]); 'अतिचार' (१३६९[५]); 'तत्व-विचार-प्रकरण'[६]; 'धनपाल कथा'[७] आदि में पाए जाते हैं। पर छोटी-छोटी होने के कारण इन रचनाओं का महत्त्व प्राचीन परम्परा की कड़ी के रूप में ही आंका जाना चाहिए, गद्य की प्रौढ़ कृतियों के रूप में नहीं।

१५ वीं शताब्दी :

गद्य का प्रौढ रूप तो पन्द्रहवी शताब्दी से मिलता है। संवत् १४११ में लिखित आचार्य तरुणप्रभ सूरि का 'षड़ावश्यक-बालावबोध'[८] राजस्थानी गद्य की सर्वप्रथम प्रौढ़ कृति है। विषय के अनुसार, गद्य के नमूने धार्मिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक तथा व्याकरण-संबंधी कृतियों के रूप में उपलब्ध होते हैं। पद्य की भांति गद्य के क्षेत्र में भी जैन विद्वानों की देन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। धार्मिक गद्य लिखनेवालों मे आचार्य तरुणप्रभ सूरि[९] तथा श्री सोमसुन्दर सूरि[१०] के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। व्याकरण लिखनेवालों में कुलमंडन सूरि[११] का नाम प्रमुख है। श्री माणिक्यचंद्र सूरि कृत 'पृथ्वीचन्द्र वाग्विलास'[१२] इस शताब्दी के कलात्मक गद्य का सर्वश्रेष्ठ नमूना है। ऐतिहासिक गद्य में जैनों की गुर्वावलियों[१३] तथा पट्टावलियों के नाम आते हैं। 'चार प्रांतीय भाषाओं के सर्वयों' में प्रादेशिक बोलियों के अच्छे उदाहरण

---

१. प्राचीन-गूजराती-गद्य संदर्भ, पृ० २१८-२१९ में प्रकाशित। २, ३, ४ तथा ५—वही :
६. राजस्थान-भारती, वर्ष ३, अंक ३-४ में प्रकाशित।
७. वही; वर्ष ३, अंक २ :
८. प्राचीन गूजराती गद्य संदर्भ, तथा शोध-पत्रिका, भाग ६, अंक २, दिसम्बर, १९५७ :
९. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पैं० ६५६, ७६४ :
१०. वही; तथा प्राचीन-गूजराती गद्य-संदर्भ, पृ० ६७-१२६ :
११. (क) प्राचीन गूजराती गद्य संदर्भ, पृ० १७२-१८० :
(ख) जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पैं० ६५२, ६५३ :
१२. वही :
१३. भारतीय विद्या, वर्ष १, अंक २, संवत् १९९६ :

मिलते हैं[१]। 'धनपाल कथा'[२] में इसी नाम के कवि के जीवन का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ की रचनाओं—'मुत्कलानुप्रास'[३] तथा 'कालिकाचार्य कथा'[४] में, इसी प्रकार दर्शनीय गद्य प्राप्त होता है। इस शताब्दी में विभिन्न रूपों और विभिन्न विषयों को लेकर प्रचुर गद्य-साहित्य का निर्माण हुआ है।

आलोच्य काल :

सोलहवीं शताब्दी से गद्य साहित्य के जो भी विभिन्न रूप मिलते हैं, प्रायः उन सबके पूर्व-रूप पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखित गद्य साहित्य में मिल जाते हैं।

संवत् १५०० के आसपास लिखित चारण गाडण सिवदास की "अचलदास खीची री वचनिका"[५] चारण गद्य का प्रौढ़तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

आलोच्यकाल के जैन गद्य लेखकों में श्री मेरुसुन्दर,[६] श्री पार्श्वचन्द्र[७] तथा उपाध्याय गुण-विनय[८] के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने विपुल गद्य-साहित्य का निर्माण किया।

इनके अतिरिक्त अनेकशः विद्वानों ने आलोच्यकाल में विभिन्न विषयों को लेकर, विविध साहित्य-रूपों में गद्य के भाण्डार को भरा। इनमें जिनसूरि[९]; हेमहंस गणि[१०], संवेगदेव गणि[११]; राजवल्लभ[१२]; साधुकीर्ति[१३]; सोमविमल सूरि[१४], चारित्र सिंह[१५], जयसोम[१६],

---

१. राजस्थानी, वर्ष ३ अंक ३ : २. राजस्थान-भारती में प्रकाशित :
३. वही— 'कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रंथ :
४. ह०प्र०—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :
५. ह० प्र० नं० ६६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर : (देखें—पृ० १८-२० तथा ८३-८७) :
६. (क) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७६४ :
   (ख) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १५८२;
   (ग) युगप्रधान श्री जिनदत्त सूरि, पृ० ६९-७० (नाहटा) :
७. (क) श्री पार्श्वचन्द्रगच्छ टुक रूपरेखा;
   (ख) जै० सा० नो सं० इ०;
   (ग) जै० गु० क०, भाग १-३ :
८. शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक १-२, सं० २०१३,—'उपाध्याय गुणविनय और उनके ग्रंथ, —नाहटा। विशेष देखिए : 'जैन साहित्य' नामक अध्याय।
९. १०. जै० सा० नो सं० इ०, पै० ७६४ :
११. वही; तथा जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १५०० ;
१२. जै० सा० नो सं० इ०, पै० ५१८ :
१३. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० ७१९ ;
   (ख) जै० सा० नो सं० इ०, पै० ८५१, ८८१ तथा ८८४ :
   (ग) युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि, पृ० १९२ (घ) ऐति० जै० का० संग्रह, पृ० ४३ :
१४. (क) जै० सा० नो सं० इ० , पै० ७६१, ७७६, ८९१, ८९६ आदि;
   (ख) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १५९६ :
१५. (क) जै० इ०, पै० ७३६, ८५६, ८८२; (ख) जै० क०, भाग ३, पृ० १५१४, १५९६;
   (ग) युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि, पृ० १९७ :
१६. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १५९७ (ख) यु० प्र० जि० सूरि, पृ० १९७, २०३ :

शिवनिधान[1], विमलकीर्ति[2], समयसुन्दर[3], कुशलभुवन गणि[4] आदि मुख्य हैं। पूर्व-शताब्दी की तरह जैन विद्वानों ने इस काल में, धार्मिक, ऐतिहासिक, लौकिक, वैज्ञानिक, मनोरंजक, वर्णनात्मक तथा टीका-ग्रन्थों के रूप में अनेक प्रकार से प्रौढ़तम गद्य-साहित्य का निर्माण किया। इसी प्रकार वात, ख्यात, विगत, विलास तथा ज्योतिष आदि के टीका-ग्रन्थों के रूप में चारण और जैनेतर गद्य-साहित्य के योग-दान से, राजस्थानी गद्य प्रौढता की चरम सीमा को पहुँच गया।

नीचे, इस काल में पाए जानेवाले विविध प्रकार के मुख्य-मुख्य गद्य-रूपों और उनके आधार पर इस साहित्य की झांकी के दिग्दर्शन कराए जाते हैं, जिससे इसकी विशालता, विविधता, सरसता, गंभीरता, प्रेषणीय और हृदयग्राही उत्कृष्ट शैली का किंचित् अनुमान लगाया जा सके।

(ख) गद्य : उसके विविध रूप :

(१) बालावबोध :

सरल और सुबोध टीका को बालावबोध कहते हैं। इसमें मूल पाठ तो बहुत ही थोड़ा रहता है, पर उसका विवेचन विस्तार से रहता है। अपढ़, मंदबुद्धि और साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति के लिये बालावबोध का निर्माण किया जाता है। मूल की व्याख्या के साथ-साथ सिद्धांतों को सुस्पष्ट कराने के लिए यत्र-तत्र, प्रसंगानुकूल, कथाएं दी जाती हैं, जो इस शैली की विशेषता है। ये कथाएं प्रायः हर कहीं से—विशेषतया लोक-साहित्य से ली हुई होती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य जनसाधारण में धर्मचर्चा फैलाना होता है। पन्द्रहवी शताब्दी के प्रमुख बालावबोधकार तरुणप्रभ सूरि और सोमसुन्दर सूरि का उल्लेख किया जा चुका है। आलोच्यकाल के प्रौढ़ बालावबोधकारों में मेरुसुन्दर और पार्श्वचन्द्र के नाम विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं। उदाहरण देखिए :—

(क) मेरुसुन्दर-कृत 'पुष्पमाला बालावबोध' से —

"*अन्यदा चउमासा नइ दिनि श्रेष्टि संघाति देवपूजा निमति गए हुते,* चौतविशा सागाधन्य ए श्रेष्टि; जे प्रभूत धन नइ वेचिवइ जिन वीतराग नइ पूजइ। पणि आज अम्हे अम्हाराइ वित्ति करी, जिन पूजी, नर जन्म सफल करां। इसुं चीतवी गोपालिइ पांच कउडाना फूल लेई जिन पूजा कीधी। बीजइ कर्म करि श्रेष्टि संघातइ गुरु समीपि उपवास पच्चर की घरि आवि आपणा भागनउ दिनाईयउ अन्त परो साधी वाट जोवइ। जु इणि वेलाइ कोई भाग्यवंत आवइ,

१. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १५६८ :
२. (क) जै० गु० क०, भाग ३, पृ० १६०२;
   (ख) ऐति० जै० का० सं०, पृ० ४६ ;
   (ग) युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि पृ० १६३ :
३. (क) जै० गु० क०, भाग, ३, पृ० १६०७;
   (ख) जै० सा० नो सं० ६०;
   (ग) समयसुन्दर-कृति-कुसुमांजलि (—नाहटा) :
   (घ) ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, सं० २००६ :
४. जै० सा० नो सं० ६०, पैरा ८६१ :

सूं हू संविभाग करावउं । इसिइ पर्चीतव्या ग्लाननइ काजि महात्मा वाहिरथा आव्या तिणि परम श्रद्धाइ दान दीधउ । आपणउ धन्य मानतउ भावना भावइ इसिइ श्रेष्ठि ते कर्म करतूं विमल चित देखी रलीयायत हुउं"[१] ।

(ख) कल्याणतिलक रचित "कालिकाचार्य कथा बालावबोध" से—

"तिहां विवेकीश्रा श्रावक दान सील तप भावनाइ करी आपणी लक्ष्मी सफल करइ । सविहूं माहि भावना गुरुई । भावना हुती प्रभावना गुरुइ । तउ आज अमको श्रावकी श्रावक प्रभावना करी आपणा जन्म जीवतव्य सफल करइ । एवं विविध पुण्य प्रमाण चडइ । ते देव-गुरुना प्रसाद"[२] ।

(ग) षडावश्यक पर बालावबोध : १६ वीं शताब्दी—

"अत्र नागिल कथा । महापुर नगर । भोज राजा । लक्ष्मण श्रेष्ठि । तेहनइं नंदा बेटी श्राविका । बाप घर चिंता करइ । तिसइं बेटी कहइ । जीणिइं दीवइं काजल नहीं, कालिकि न हुइं, जिहां दसा वाटि घूटइ जि नहिं, जे सर्वदा स्थिर हुइं, जिहां चोपड घूटइ नहीं, एहवुं दीवउ जेहनइं घरि सदा रहइ ते वर टाली बीजउ न परणउं । सेठि चिंतौ पडिउं"[३] ।

(घ) पार्श्वचन्द्र सूरि कृत "आचारांग सूत्र वार्तिक द्विश्रुत" पर बालावबोध–

"हिव श्री आचारांग नउ बीजउ श्रुत स्कंध प्रारंभीयइ छइ । तिहां पहिलइ श्रुत स्कंधि नव ब्रह्मचर्याध्ययन कह्या । तेहनइं विषइ जे साधुनउ आचार नथी कह्यउ, ते आचार इण श्रुत स्कंधि विस्तर सहित कहीस्यइ । पहिलइ स्कंधि जे अध्ययन कह्या, तेह माहि जे आचार संक्षेप थकी कह्यउ छइ, तेहि ज इहां विस्तारी बोलीस्यइ । ते संक्षेप नउ नाम मात्र कही । तेह ऊपरि बीजउ स्कंध जांणिवउ । तेह कहइ छइ"[४] ।

(२) टब्बा :

बालावबोध विस्तृत टीका है और टब्बा अति संक्षिप्त । मूलग्रन्थ के शब्दार्थ-रूप लिखे जाने वाली संक्षिप्त भाषा टीका 'टब्बा' कहलाती है । शब्द का अर्थ उसके ऊपर, नीचे या पार्श्व में लिखा जाता है । उदाहरण इस प्रकार है :—

(क) संवेगदेव गणि रचित "चउसरण पयन्ना टब्बा" से—

"जेहे संसारनुं कंद उछेदिउ । जेहे ज्ञान प्रकाश करी चंद्रमा सूर्य लघु कीधा जीता । ते सिद्ध शरण हुजे हे संप्राप्ति छांडिया । जेहे परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामिउं । दुर्लभ मुक्ति रूप लाभ छई जेहनइ । जेहे संरंभ पदार्थनु आरोप मूंक्यउ । त्रिभुवन रूप घर धरिवा स्तंभ समान । ते सिद्ध शरणि हुजे हे आरंभ छांडिया । इम सिद्धनइं शरणि करी । न्याय सहित

१. हस्त० प्रति;—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर । २. हस्त० प्रति;—वही :
३. Catalogue of the Gujarati & Rajasthani Mss. in the India Office Library, page 23 (S. 3368)—Oxford University Press, 1954.
४. ह० प्रति;—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :

ज्ञान नूं कारण। जे ऋषिना विनयादिक गुण तेहनइ विषइ जीणइं अनुराग कीधु। ते शरणनु पडि वजणहार मस्तक भूमिकांई लगाडी यली इम बोलइ विनयपूर्वक जे ऋषि सर्व जीवनइं बांधव समान। अनइ दुर्गति रूप समुद्रनइ पारि गया छइं"[१]।

(३) औक्तिक : (व्याकरण ग्रंथ) :

(क) जयसागरोपाध्याय-कृत "उक्ति समुच्चय" से (सत्रहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध अनुमानतः)—

"तत्र करइ लियइ दिइ। इत्युच्चारे वर्तमान काले वर्तमाना। परस्मैपदं वीयते। कीजइ। लीजइ। दीजइ। इत्युच्चारे कर्मणि आत्मने पदं। करिजि, लेजि, देजि, इत्युच्चारे वर्तमानकाले सप्तमी। परस्मैपदं। कीजउ, लीजउ, दीजउ, इत्युच्चारे आत्मने पदं। लेतउ देतउ, इत्युच्चारे अतीत काले। ह्यस्तनी, अद्यतनी, परोक्षाणां परस्मैपदं। कीधउ, लीधउ, दीधउं इत्युच्चारे आत्मने पदं ॥६॥ करिस्यइ, लेसिइ, देस्यइ इत्युच्चारे भविष्यत्काले भविष्यंती परस्मै पदं। करीसिइ, लीजिसइ, इत्युच्चारे आत्मने पदं ॥७॥ भविष्यत्कालोद्देशेन आशीर्वाद विशेषार्थे आशी: ॥८॥ भविष्यत्काले एव काल्हि करिस्यइ इत्यर्थ योग पुनः स्वस्तिनी ॥६॥ जउ करतउ लियत इत्युच्चारे क्रियातिपत्ति परस्मै पदं। जउ इम कीजत लीजतइ इत्युच्चारे त्वात्मने पदं"[२]।

(४) कथा ग्रंथ :

इनमें वर्णनात्मक शैली में लिखी महापुरुषों की कथा अथवा उनके जीवन की कोई घटना सन्निहित रहती है। ये जैनों द्वारा प्राय: अपने धर्म-निरुपणार्थ लिखे गए हैं। चरित्र ग्रंथों के लिए भी प्राय: यही बात लागू है। एक उदाहरण देखिए:—

(क) "कालिकाचार्य कथा" से —

"हिव श्री कालिकाचार्य पांचसइं शिष्यनइ परवारि परिवरया हूंता। ठामि ठामि गाम नगरि विहार क्रम करता, श्री उज्जेणी नगरीइं आव्या। सुखइं समाधिइं भविकलोक हुइ प्रतिबोधता हूंता रहइ छइ। इसइ एकदा प्रस्तावि। घणी महाराती नउ संघाडउ आव्यउ। तेह माहि, श्री कालिकाचार्यनो बहिनी सरस्वती महासती पुणि आविइइ। बहिर्भूमिकाइं। सरस्वती महासती प्रति रूप पात्र देखी, श्री गर्द्दभिल्ल राजाइं चीतव्यउं। माहरइ घणोइ अंतेउरी छइ। पुणि इसी काइ स्त्री नहीं। अंतेउर माहि मूंकायुं तउ भलुं। इसउं चीतवी तत्काल आपणा दूत धर्मकिकर आंतउर माहि मूकउ। ति वारइ दूते बलात्करिइं, सरस्वती महासती ऊपाडी अंतेउर माहि मूकी। ति वारइं ऊपाडतां गाढ स्वरइं महासती रुदइ छइ"[३]।

(५) चरित्र ग्रंथ :

(क) "भुवन भानु केवलि चरित्र भाषा" से —

"ततः अन्यदा प्रस्तावि कर्म परिणाम राइं, कुंडलिनी नगरीयइ परमू सुश्रावक सुभद्र सार्थवाह

---

१. ह० प्र०,—श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर :
२. ह० प्र०,—श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर :
३. ह० प्र०,—वही : (लिपिकाल—संवत् १६६०, भादवा सुदी ६) :

नइ गुहां गमि ते जीव रोहिणी इसइ नामि पुत्रिका पणइ ऊपजावी। ते रोहिणी सकल कला शास्त्र भणी। तया परम शुश्रायिका हुई। एक श्री अरिहंत टाली, बीजउ देवता तेहनइ हीयइ न वसइ। निश्चावद्ध देव वांदइ। गुरु नमस्करइ। धर्म सांभलइ। साध्वी कन्हं भणइ। गुणिइ परिचर्या करिइ। पछइ अति स्नेह लगी पिताइं ते पुत्री घर जमाई करी"[१]।

(ख) "सीता चरित्र भाषा" से–

"अथ उदाहरण शील प्रस्ताव —"इहैव भरतक्षेत्रे मिथिला नगरयां नगरी रहिप्यमीए समृद्धा चउरासी चौहटा बहुत्तरि पावटा अनेक वावड़ी पुहकरणी कुयार तलाव महाद्रह खण्डोखली टांका संख्या काई नहीं। अति ही मनोहर प्रधान इत्यादि सरोवरादि फल फूल पत्र कूपल लताये करि विराजमान वनखण्ड वृक्ष करि विराजते शोभते। कुवण वृक्ष। ताल तमाल नारेल खिजूर, कठवड़ो, अम्बा, आंवली, रायण, जंजीरी, नारंगी, सदाफल अनेक फूल प्रचुरा मिथिलाए नगरीए आगार प्रतउली द्वार....."[२]।

(६) चर्चा ग्रंथ :

इनमें दूसरे की मान्यताओं का खंडन करते हुए, अपने मत की पुष्टि की जाती है। उदाहरण इस प्रकार हैं:—

(क) "अंचलमतोत्पत्ति" से —

"कागज वलता देज्यो। ते माहे मूल सूत्र कइ पंचांगी माहिला अक्षर लिखिज्यो। युगति विचारणा। हृदय कल्पित किसो म लिखिज्यो। जयकेसर सूरिनां कीधां बोलियां मांहि मुहपतीना अक्षरनी प्रत्युत्तर युगति हृदय कल्पित देखी आपणी आस्ता ऊतरी छइ। तेह भणि जे लिखउ पंचांग मांहिला अक्षर लिखिज्यो। तथा श्री पूज्य एकइं ठामइं एम देखाडउ। श्रावक उत्तरासंग करी सामायक आवश्यक करइं। इसा अक्षर एकइं ठामिइ श्री पंचांगी मांहि श्री देखाडिस्यइ तउ श्री श्रद्धा करिस्युं। अपरं युगति। कल्पना ना लिखेवी। युगति विचारणा नउ कागल आविस्यइ तउ शिष्य तेह थकी विमणी युगति विचार लिखिस्यइ। अक्षर सूत्रना प्रसाद करिस्यो तउ तथास्तु करीस्यइ"[३]।

(७) प्रश्नोत्तर :

(क) "ऋषिहाना ७४ प्रश्नोत्तर" से —

"हिवं तुम्हे ते प्रश्न माहि प्रश्न २ बीजा लिख्या छइ। तेहनउ उत्तर लिखियइ छइ। दशा-श्रुत स्कंध माहि प्रतिमाधरनउ आलावउ लिख्यउ छइ।....एतलइ सूर्य आथिमइ। तउ जल माहि-लउ पग जल माहि ज राखइ परंपमचातरइ नही। वीतरागनी पहवी आज्ञा छइ। च्यारि पहर रात्रि तिहां ज रहइ। एहवउ भाव लिख्यउ छइ, अक्षरे आघउ पाछउ हुइ ते न जाणियइ।

१. ह० प्र०,–श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर, (रचनाकाल संवत् १६५० से पहले)।
२. मरु-भारती में 'खोये पन्ने' नामक निबंध से (–नाहटा)। ह० प्र०,–अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :
३. ह० प्र०,–श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर (रचनाकाल–संवत् १६२५)।

एहवा अक्षर सूत्र माहि दीसता नथी। तुम्हे अक्षर विना जाणियइ छइ नही लिख्यउ हुइ। परं इम सूत्र नइ मिलतउ नथी। सूत्र माहि पूर्व्वापर विरुद्ध न हुइ। सूत्र माहि इम कह्यउ छइ। केवली असावद्य अपरोपघातिनी भाषा बोलइं इहं। तउ तेह थकी विपरीत दीसइ छइ। वली वृत्ति माहि इम छइ। शिशिर कालि प्रहर पहिलउ अनइ प्रहर पाछिलउ; उस्न कालि अर्द्ध प्रहर पहिलउ, अर्द्ध प्रहर पाछिलउ साधुनइ विहार निषेध्यउ छइ। तउवली प्रतिमाधरनउ कहिवउ किसउ। इम तउ आम्ह सूत्र माहि नथी जाण्यउं आयमता लगइ विहार करइ जं"[1]।

(ख) "संदेह पद प्रश्नोत्तर" से—

प्रश्न : माली देहरानी सोपारी लेई वाणीयां नइं हाटि बेचइ।
तिहां श्रावक अजाणपणइं लिइं। तउ कांइ दोस
देणहार लेणहार नइ आणइ कि ना ?

उत्तर : तत्रार्थे अजाणिइ श्रावकनइ दोष न लागइ। जाणी लिइ निस्सूगतादि दोष ऊपजइ। ते भणी जाणी न लिइ।

प्रश्न : पकवान सोपारी तुरकां नइ वेचाइ कि ना ?

उत्तर : तत्रार्थे तुरकांनइ देवा भणी श्रावक लिइ तु दीजइ।
वली मिथ्यात्वी म्लेच्छ लिइं तु दीजइं, तेहना द्रव्य देहरइ लागं।
इम द्रव्य वधारतां दोष नहीं"[2]।

जैनों के विभिन्न गच्छों में काफी मतभेद है। इस संबंध में, 'प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक' (तपा-खरतर भेद प्रत्युत्तर) दर्शनीय है[3]।

(८) पट्टावली ; गुर्वावली :-

इनमें जैन-गुरुओं की पट्ट-परंपरा अथवा गुरु-परम्परा का ब्योरा रहता है। उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) "खरतरगच्छ पट्टावली" (मणिधारी तक) से—

"अनइ गिरिनारि पर्वत ऊपरि नागदेव श्रावक अष्टमइ करी अंबिका आराधी। युग-प्रधान गुरु जाणिवा भणी। पछइ अंबिकायइ हथाली माहि दासानुदास इव सर्व देवा० ए गाथा सानाने अक्षरे लिखी दीधी जे वाचइ ते जाणिज्यो युग-प्रधान। पछइ धानकइ २ आचार्य नइ हाथ देखाडउ। परं कोई वाची न सक्यउ। पछइ जिनदत्त सूरि नइ हाथ दिखाड्यउ। हाथ ऊपरि वास क्षेपकरी अक्षर प्रगट करी शिष्य कन्हा गाथा वाची। तदा कालथी युगप्रधान पदवी प्रगट थई। पंचनदी साधक सिंधु देशि अनेक अवदात कारक, श्री जिनदत्त सूरि सं० १२११ आसाढि सुदी ११ अजयमेरु नगरि स्वर्ग प्राप्त हूआ। संवत १२०५ वर्षे जिनसेखर सूरि हुंति

---

१. ह० प्र०,—श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर :
२. ह० प्र०,—वही :
३. श्री मन्मोहनयश : स्मारक ग्रंथमाला, ग्रंथांक २२, संपा०—बुद्धिसागर गणी।

रुद्रपल्लीय गच्छ हुअउ । श्री जिनदत्त सूरि नइ पाटि सं० ११६३ भाद्रवा सुदी ८ जेहनउ जन्म रासल श्रावक देल्हणदेवी नउ पुत्र संवत् १२०३ फागुण सुदि ६ दिने"[1] ।

(ख) गुर्वावली :

"खरतर गच्छगुर्वावली" से —

"श्री जिनहंस सूरिनइ वारइ सं० १५६६ श्री शांतिसागराचार्य थकी आचार्या या गच्छ जुअउ थयउ । तेहनइ पाटि श्री जिनमाणिक्य सूरि सं० १५८२ भाद्रवा सुदी ६ बलाही देवराज कारित नंदी महोत्सवइ । श्री जिनहंस सूरइ आपणइ हाथि थाप्या । गुजराति, मारवाडि, पूर्वदेस, सिंधु- प्रमुख देस अद्‌त विहार । आनकोपाध्याय वाचक पद स्थापक । संवत् १६१२ वर्ष आसाढ सुदि ५ अणसण करी स्वः प्राप्त थया । तेहनइ पाटि विजयमान श्री जिनचंद्र सूरि विद्यमान वर्त्तइ"[2] ।

(९) नियमपत्र; समाचारी तथा हित शिक्षा आदि :

इनमें जैन धर्म संबंधी निर्देश रहते हैं :—

(क) हित शिक्षा[3]—

"खोटुं कदापि बोलवुं नहि । चाडी चुगली करवी नहि । चोरी दारी करवी नहि । कोइनुं भूंडुं चितववुं नहि । गाळो कोइने देवी नहि । कोइ साथे कलह करवो नहि । विना कामे कोइने घरे जावुं नहि । कोइनी निंदा करवी नहि । कोइनुं मर्म प्रकाशवुं नहि । कोइ साथे इर्ष्या करवी नहि । सर्व साथे मित्र भाव राखवोजी । कोइ साथे शत्रुभाव राखवो नहि । सदाय लज्जावंत रहेवुंजी । कदापि निर्लज्जता धारण करवी नहि" ।

(ख) नियम पत्र[4]—

"साधु साध्वीनइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भिन्न भिन्न श्रावकनइ न कहणा, यथायोग्य ते संघनइ कहणा, श्री संघइ यथा योग्य चिन्ता करणी" ॥२८॥

(ग) समाचारी[5] —

"धनागरा मांहि थाणा सूठ हरड़इ दाख खारक ए सहु एक द्रव्य । परंद्रव्य पचखाण ना धणी जुवा २ न खाइ, एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य" ।

(१०) विहारपत्री[6] :

इनमें जैनाचार्यों के भ्रमण का वृत्तान्त होता है। इतिहास के लिए इनका उपयोग हो सकता है ।

---

१. ह० प्र०,—श्री म० जै० ग्रं०, बीकानेर :
२. ह० प्र०,—श्री म० जै० ग्रं०, बीकानेर .
३. श्री मत्सारसंग्रह प्रकरणमाळा, भाग १ सी,—'हित शिक्षा विषे छूटा बोल' से (सन् १९१३) :
४. युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि,—'परिशिष्ट क' :
५. वही;—'परिशिष्ट ख"
६. वही :

एहवा अक्षर सूत्र माहि दीसता नथी। तुम्हे अक्षर विना जाणियइ छइ नही लिख्यउ हुइ। परं इम सूत्र नइ मिलतउ नथी। सूत्र माहि पूर्व्वापर विरुद्ध न हुइ। सूत्र माहि इम कह्यउ छइ। केवली ग्रसावद्य ग्रपरोपघातिनी भाषा बोलइं इहं। तउ तेह थकी विपरीत दीसइ छइ। वली वृत्ति माहि इम छइ। शिशिर कालि प्रहर पहिलउ ग्रनइ प्रहर पाछिलउ; उस्म कालि ग्रर्द्ध प्रहर पहिलउ, ग्रर्द्ध प्रहर पाछिलउ साधुनइ विहार निषेध्यउ छइ। तउवली प्रतिमाधरनउ कहिवउ किसउ। इम तउ ग्राम्ह सूत्र माहि नथी जाण्यउं ग्रायमता लगइ विहार करइ ज"[1]।

(ख) "संदेह पद प्रश्नोत्तर" से—

प्रश्न : माली देहरानी सोपारी लेई वाणीयां नइं हाटि वेचइ।
तिहां श्रावक ग्रजाणपणइं लिइं। तउ कांइ दोस
देणहार लेणहार नइ ग्राणइ कि ना?

उत्तर : तत्रार्यं ग्रजाणिइ श्रावकनइ दोष न लागइ। जाणी लिइ निस्सूगतादि दोष ऊपजइ। ते भणी जाणी न लिइ।

प्रश्न : पकवान सोपारी तुरकां नइ वेचाइ कि ना?

उत्तर : तत्रार्यं तुरकांनइ देवा भणी श्रावक लिइ तु दोजइ।
वली मिथ्यात्वी म्लेच्छ लिइं तु दीजइं, तेहना द्रव्य देहरइ लागै।
इम द्रव्य वधारतां दोष नहीं"[2]।

जैनों के विभिन्न गच्छों में काफी मतभेद है। इस संबंध में, 'प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक' (तपा-खरतर भेद प्रत्युत्तर) दर्शनीय है[3]।

(८) पट्टावली ; गुर्वावली :

इनमें जैन-गुरुग्रों की पट्ट-परंपरा ग्रथवा गुरु-परम्परा का ब्यौरा रहता है। उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) "खरतरगच्छ पट्टावली" (मणिधारी तक) से—

"ग्रनइ गिरिनारि पर्वत ऊपरि नागदेव श्रावक ग्रष्टमइ करी ग्रंबिका ग्राराधी। युग-प्रधान गुरु जाणिवा भणी। पछइ ग्रंबिकायइ हथाली माहि दासानुदास इव सर्व देवा० ए गाथा सोनाने ग्रक्षरे लिखी दीधी जे वाचइ ते जाणिज्यो युग-प्रधान। पछइ थानकइ २ ग्राचार्य नइ हाथ देखाडउ। परं कोई वाची न सक्यउ। पछइ जिनदत्त सूरि नइ हाथ दिखाड्यउ। हाथ ऊपरि वास क्षेपकरी ग्रक्षर प्रगट करी शिष्य कन्हा गाथा वाची। तदा कालथी युगप्रधान पदवी प्रगट थई। पंचनदी साधक सिधु देशि ग्रनेक ग्रवदात कारक, श्री जिनदत्त सूरि सं० १२११ ग्रासाढि सुदी ११ ग्रजयमेरु नगरि स्वर्ग प्राप्त हुग्रा। संवत १२०५ वर्षे जिनसेखर सूरि हुंति

१. ह० प्र०,—श्री ग्रभय जैन ग्रंथालय बीकानेर :
२. ह० प्र०,—वही :
३. श्री मन्मोहनयश : स्मारक ग्रंथमाला, ग्रंथांक २२, संपा०—वृद्धिसागर गणी।

रुद्रपल्लीय गच्छ हूअउ । श्री जिनदत्त सूरि नइ पाटि सं० ११६३ भाद्रवा सुदी ८ जेहनउ जन्म रासल श्रावक देल्हणदेवी नउ पुत्र संवत् १२०३ फागुण सुदि ६ दिने"[१] ।

(ख) गुर्वावली :

"खरतर गच्छगुर्वावली" से —

"श्री जिनहंस सूरिनइ वारइ सं० १५६६ श्री शांतिसागराचार्य थकी आचार्या या गच्छ जुअउ थयउ । तेहनइ पाटि श्री जिनमाणिक्य सूरि सं० १५८२ भाद्रवा सुदी ६ बलाही देवराज कारित नंदी महोत्सवइ । श्री जिनहंस सूरइ आपणइ हाथि थाप्या । गुजराति, मारवाडि, पूर्वदेस, सिंधु- प्रमुख देस कृत विहार । आनकोपाध्याय वाचक पद स्थापक । संवत् १६१२ वर्षि आसाढ सुदि ५ अणसण करी स्वः प्राप्त थया । तेहनइ पाटि विजयमान श्री जिनचंद्र सूरि विद्यमान वर्त्तइ"[२] ।

(६) नियमपत्र; समाचारी तथा हित शिक्षा आदि :

इनमें जैन धर्म संबंधी निर्देश रहते हैं :—

(क) हित शिक्षा[३] —

"खोटुं कदापि बोलवुं नहि । चाडी चुगली करवी नहि । चोरी दारी करवी नहि । कोइनुं भूंडुं चितववुं नहि । गाळो कोइने देवी नहि । कोइ साथे कलह करवो नहि । विना कामे कोइने घरे जावुं नहि । कोइनी निंदा करवी नहि । कोइनुं मर्म प्रकाशवुं नहि । कोइ साथे इर्ष्या करवी नहि । सर्व साथे मित्र भाव राखवोजी । कोइ साथे शत्रुभाव राखवो नहि । सदाय लज्जावंत रहेवुंजी । कदापि निर्लज्जता धारण करवी नहि" ।

(ख) नियम पत्र[४] —

"साधु साध्वीनइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भिन्न भिन्न श्रावकनइ न कहणा, यथायोग्य ते संघनइ कहणा, श्री संघइ यथा योग्य चिन्ता करणी" ॥२८॥

(ग) समाचारी[५] —

"धनागरा मांहि थाणा सूठ हरडइ दाख खारक ए सहु एक द्रव्य । परंद्रव्य पचखाण ना धणी जुदा २ न खाइ, एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य" ।

(१०) विहारपत्री[६] :

इनमें जैनाचार्यों के भ्रमण का वृतान्त होता है। इतिहास के लिए इनका उपयोग हो सकता है ।

---

१. ह० प्र०,—श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :
२. ह० प्र०,—श्री अ० जै० ग्रं०, बीकानेर :
३. श्री सत्यार्थचंद्र प्रकरणमाळा, भाग १ लो,—'हित शिक्षा विषे छुटा बोल' से (सन् १९१३) :
४. युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि,—'परिशिष्ट क' :
५. वही :—'परिशिष्ट ख'
६. वही :

(११) वचनिका :

कवि मंछ ने अपने डिंगल के रीतिग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक गीतां रो' में वचनिका के दो भेद बताए हैं[१]— पद्य बंध और गद्य बंध। वचनिका गद्य-पद्य-मिश्रित रचना को कहते हैं। प्रत्येक वचन या वाक्य तुकान्त होने के कारण ऐसी रचना शैली का नाम वचनिका पड़ा है[२]। डा० टैसीटरी के शब्दों में:—

It is a prose governed by no rules except that each phrase or sentence *in it, no matter whether long or short, is required to rhyme with the next* phrase or sentence; rhymes being generally contributed in pairs. Intermixed with the Vacanika, in a proportion which may vary considerably, there can be verses of different kinds, usually duhas, chappaya kavittas and Gahas.[३] और गद्यबंध में तो कई छन्दों के जोटे अर्थात् युग्म वचनिका रूप में जुड़ते चले जाते हैं। "वचनिका" का प्रयोग पृथ्वीराज रासो में भी मिलता है[४]। नीचे पद्यबंध और गद्यबंध दोनों वचनिकाओं के उदाहरण देखिए:—

पद्यबंध : अचलदास खीची री वचनिका से[५]—

पद्य— एकइ वनि वसंतड़ा, एवड़ अंतर काइ।
सीह कवड़ी ना लहै, गैवर लाखि बिकाइ॥
गैवर गळइ गलत्थियो, जंह खंचै तंह जाइ।
सीह गलत्थण जे सहै, तउ दह लाखि विकाइ॥

गद्य —

पग पग पउसि पउसि हस्ती की गज घटा, तीं ऊपरि सात सात सं जोध धनक धर सांवठा। सात सात कोलि पाइक की थंटी। सात सात कोलि पाइक ऊठी। खेहा उडण भुइ फरफरी घुंहंचक्री ठांइ ठांइ ठठरी। इसी एक रया घट उडि चत्र दिसि पडी तिणि वाजि तर्के निगाद, धर आकास धडहडी। थाप थाप हो! थारा आरम्भ पारम्भ लागि, गढ लेवणहारो। कि ना थाप थाप हे! थारा सत तेज अहंकार। राइ दुग रावणहार।

गद्यबंध :

जिन समुद्रसूरि की वचनिका :

इसमें जैसलमेर स्थित खरतर गच्छाचार्य श्री जिनसमुद्र सूरि के राव भातल द्वारा आमंत्रित किए जाने और उनके नगर प्रवेश के समय, स्वागत-उत्सव तथा राव के यश-वैभव के वर्णन हैं।

---

१. वेत दवा, जिम वचनका, पद गद बंध प्रमाण।
   दुय दुय विध तिणरी दखूं, सुणजे जका सुजाण॥पृ० २४२:
२. राजस्थान-भारती, भाग ५, अंक १, जनवरी, १९५६,—श्री जुगलसिंह खीची:
3. Vacanika Rathora Ratan Singhji ri—Tessitori, Intro: Page VI.
४. डा० विपिनविहारी त्रिवेदी : चंद वरदायी और उनका काव्य, पृ० २८५-२८६, १९५२:
५. ह० प्र० नं० ६६, अ० सं० ला०, बीकानेर। और देखिए—पृ० १८-२० तथा ८३-८७:
६. राजस्थानी, भाग २, (राजस्थानी साहित्य परिषद्, कलकत्ता) में—
   'दो पद्यानुकारी कृतियां', पृ० ७७ से:

आचार्यश्री संवत् १५०६ में जन्मे, १५२१ में दीक्षित हुए; १५३० में इनको आचार्य पद की प्राप्ति हुई और संवत् १५५५ में ये अहमदाबाद में स्वर्गवासी हुए। संवत् १५४८ के वैशाख में सूरिजी जोधपुर पधारे थे। उदाहरण देखिए—

"तेरह सास राठउडों तणी कहीजइ। तेह मोहे मोटउ थी राठउड़ी रायां मोहे वडउ राउ श्री सातल, जिणइ मालमिया सुरताण तणउ बळ, भांजी कीयउ तल्ल। खुवाइ-खुवाइ तोब तोब करतउ नाठउ, जातउ घणउ घाठउ, माल्हा ला हिरणी तणी परि भाठउ। घणी गाळइ घाली वंदि छोड़ावी, रेत रहावी, खांडइ जइत्र अणावी नव कोटि मारुयाड़ि भली मल्हावी। मोटउ साहस कीयउ, वडउ पवाडउ पसीयउ, बंदी छोड़ावी तउ इग्यारस तणउ पारणउ कीयउ। दिन दातार, रिण झूझार। वाचा अविचल, कोट कटक घत सबळ। धूहड़िया माल जगमाल वीरम चउंडा रिणमल कुळमंडण, श्री योधरायां नंदण। हाडी जसमादे राणी कूखि अवतार, यादव थी वयरसल्ल तणी धूइ श्री फलां राणी तणउ भरतार। नवकोटि मारुयाड़ि-तणउ नाइक, मंडोवर देस सुखदायक। प्रतापी प्रचंड, आण अखंड। राजाधिराज, सारइ सर्वकाज"।

इसी प्रकार एक और "श्री शांतिसागर सूरि की वचनिका" भी उल्लेखनीय है।

(१२) काव्य ग्रंथों का गद्य :

काव्य ग्रंथों में भी कहीं-कही उत्तम गद्य की झलक मिल जाती है तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचा हुआ, "जगत्सुंदरी प्रयोगमाला" नामक वैद्यक का ग्रंथ सबसे प्राचीन रचना है, जिसमें कहीं-कहीं गद्य-भाषा का प्रयोग हुआ है[1]। संवत् १५१२ में रचित "कान्हडदे प्रबन्ध" में दो जगह गद्य में वर्णन मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए[2]:—

"राजा कान्हडदे तणइ कटकि पाखिलइ पुहरि कडाहि चडइ। बाज पडइं। सिंहयी बीडा। प्रवाहि घोडा पडपता न सहइ। थानांतरि वाहिलां सुखासण चाल्यां। कंठलीया किस्या। भंडार भरीया। आलोचि आत्मानइ आव्या। मंत्र मुहाडि हुई। सोल्लुष सीपामण हुई। गोत्र देव्यानइ नैवेद्य नीपनां। सूरा सुभट चित्री तणे घरे घोडा पाठव्या। छत्रीस वर्ग तणा घोड़ा। किस्या किस्या घोडा। उज्जरा। गहरा। कारा"...।

इसी तरह आलोच्य काल के पश्चात् रचित 'चांदकुंवर री बात'[3] में भी कई स्थलों पर गद्य का प्रयोग किया गया है।

(१३) शिलालेख तथा ताम्रपत्र :

(क) शिलालेख[4]—

॥ॐ॥ श्री पार्श्वनाथ प्रसादात्। थंभ प्रतिष्ठा करावणहारना नाम। प्रशस्ति लिखि-

१. (क) अनेकान्त, वर्ष २, पृ० ६१५;
   (ख) कामताप्रसाद जैन : हिंदी जैन साहित्य का सं० इ०, पृ० ३१-३२, तथा ५८-५९
२. राजस्थान पुरातत्व ग्रंथमाला, ग्रंथांक ११, जयपुर; पृ० ४०-४१ से :
३. ह० प्रति० (क) एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता; (ख) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर;
   (ग) शोध-पत्रिका, भाग २, अंक ३, (भोगीलाल जयचंद भाई सांडेसरा द्वारा प्रकाशित);
   (घ) राजस्थान में हिंदी के ह० लि० ग्रंथों की खोज, भाग ३, पृ० १६० :
४. जैन लेख संग्रह, जैसलमेर; तृतीय खंड, पृ० १२८, शिलालेख २५०५, (कलकत्ता, १९२९)

यइ थई। ऊकेशवश छाजहड़ गोत्रे। पूर्वइ क्षत्रिय। राठौड वशे। तिहाँ आरथाम राजा। तिहनइ पुत्र धांधलादि १३। धांधलोनो पुत्र ऊदिला। तिहनो पुत्र रामदेव। शत्रुघ्न काजलाते॥ संप्रति थेप्टिनइ पोले आप्यो। जिणइ थावकउ धर्म आदर्‌यउ। तेहनइ अनुक्रमी ऊधरण हुयो। तेहनउ पुत्र कुशलपर। ....चहुआण थइसी राजारइ राज्यनइ विषइ मत्रीश्वर हुयो। रायपुर नगर मांहिं चैहरउ कराव्यउ। तत्पत्नी सोलालवार धारिणी, कर्मदि नामत। तेहनि सभत पांच पुत्र। . सवत् १६३३ वर्षे। मार्गशीर्ष मासे बहुल पक्षे। षष्ठयां तिथौ। सामवासरे। पुष्य नक्षत्रे"।

(ख) ताम्रपत्र[1]—

"श्री महारावतजी श्री तेजसी (सि) घजी वचनातु आगे भराम ण परोत धामा जोग्य अतृ थने श्री क्रस्नार्पण सुरज सुरज परव मह‍े गाम दमालेडी नीम सीम मुदा जीमाहे ज्मीन बीगा ११०० आघारेसे या चद्रार्क यावत उदक अघाट कर सारी लागट वलगट टंकी टुसी सहीत नीरदोस करे आपी जणीरी मारा वसरो थई न चोलण करेगा नहीं। चोलण करे जणी नं चीतोड भागानु पाप छे। स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधरा (व) ष्टी वर्स (र्ष) स्ह (सह) स्राणी (स्त्राणि) विष्टा या (या) जाय (य) ते कृमो (मि) हुवे श्री मरव ... समत १६२१ रा वर्स भादवा सुदि ११ वीने थरिस्तु"।

(१४) पत्र तथा पट्टे परवाने :

(क) "बारहट लक्खा का परवाना"[2]—

"सीघावता बारटजी श्री लखोजी समसत चारण वरण वीसजाम्रा सीरदारों सु श्री जे *माताजी की आवज्यो अठे तवत आगरा श्री पातसाजी १०८ श्री अकबरसाहजी रा हजुरात दरी-*घानां माहीं भाट चारणां रा कुल री नवीक कीधी जण वपत समसत राजेसुर हाजर था वां का सेवागीर श्री हाजर था जकां सुण अर मोसु समचार क्ह्या जद सब पचारी सला सु कुल गुरु गगारामजी प्रगणं जेसलमेर गाव जाजीयां का जकाने अरज लीय अठे बुलाया गुर पधारया श्री पातसाहजी नी रुबकारी में चारण उत्पत्ती सास्त्र सिवरहस्य सुणायो पडतां कबुल कीधो जण पर भाट झुटा पडया गुरां चारण वसरी पुपत रापी. समत १६४२ रा मती माहा सुद ५ दसकत पचोली पन्नालाल हुकम बारठजी का मु लीधी तवत आगरा समसत पचांकी सलाह सु आपांणी या गुरां सु अधीकता दुजो नहीं छ"।

(१५) वात

राजस्थानी का वात-साहित्य बहुत ही समृद्ध है। इनकी सख्या भी अपरिमेय है। ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक आदि कथानकों पर सभी विषयों की वातें हैं—धर्म और नीति की, वीरता की, हास्य की प्रेम की, देवताओं की। शैली की दृष्टि से घटनात्मक और वर्णनात्मक वातों की बहुलता है। घटनात्मक वातों में घटनाएं, एक के बाद एक, क्रमश

१ ओझा प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृष्ठ १००, टिप्पणी (३)
२ ना० प्र० प०, (न० सं०) भाग १, स० १९९७,—'चारणों और भाटों का झगड़ा'—गुलेरी

चल-चित्रों की भाँति आती चली जाती हैं। वर्णनात्मक वातों में, कहनेवाले की दृष्टि अति पैनी होती है—सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों का भी ब्यौरेवार वर्णन उसमें रहता है। शैली की वैयक्तिकता राजस्थानी वातों की अपनी विशेषता है। 'वातें' तीन मुख्य रूपों में मिलती हैं –(क) गद्यमय (ख) गद्य-पद्यमय तथा (ग) पद्यमय। एक बात और। राजस्थानी 'वातें' कहने और सुनने के लिए हैं, पढ़ने के लिये नहीं। उदाहरण देखिए[1]:—

(क) "जगदेव पँवार" की वात" से—

"मालवौ देस मांहे धारा नगरी। तठै पँवार उदियादीत राज करै। नै तिणरै राणियां दो, तिण मांहै पटराणी बाघेली। तिणरै कँवर रिणधवल हुवो। नै दूजी रांणी सोलंखिणी। तिका दुहागण। तिणरा कँवर को नाँव जगदेव दीधौ। साँवळै रंग, पिण ज्योतिधारी नै रिण धवल राज रो धणी"।

(ख) "जगमाल मालावत" की वात से–

"रात घड़ी एक दो गई। तद डंको सुणियो। तरै योगेसर जांणियो कोई सिरदार आवै छः। तिसै हाथीरो घोरघंट सुणी, तुररी सहनाई सुणी, घोड़ां को कळहळ सुणी। चराकां सो–एक मूंढा आगे हुवां चँवर ढुळंतां हाथी मायें बैठो सिरदार दीठो। तिसै कंइक असवार महिलाँ आया। तिसै फरास आय मेंलां आगै चौक मांहै जाजम, दुलीचा बिछाया, गिलमां बिछाई, तकिया लगाया। तिसै तेजसोजी गादी तकियां आय बैठा। जोगेसर तमासा देखै छः"।

(ग) "वातां मारवाड़ि री मारवाड़ि री राठौड़ां री" से[2]–

"वात मेड़ता री जैमल री। जैमल मेड़तो उभो मेल्हि नै नोसरि गयो। राव मालदे मेड़तो लीयो। जैमलरा घरां री जायगा कोटड़ी पाड़ि। मूला वहाड़ीया। संवत् १६१३ फागुण सुद १२ मेड़तो लीयो ....."।

(घ) "राठोड़ां री वात राव सीहैजी सूं राजा रायसिङ्घजी ताँई" से[3]–

"अर रायसंघजी राज करें देसमां अमल वसतुर हुवो पछै पातसाह अकबर गुजरात रयास पर आवै स (छे) रा अजमेर हुवा तद अठासु रायसंघजी रामसंघजी कुंजा उमराव सारा साथ ले अजमेर पातसारो पावां लागा पंण पातसा ईहां सु राजी नहीं.. पछै इहां अरज कीवी जो

1. 'राजस्थानी वातां' से,–(सपादक : सूर्यकरण पारीक, १६३४)। संपादक के अनुसार, 'वर्तमान संकलन में आई हुई कहानियां लगभग १५० से २०० वर्ष पुरानी हस्तलिखित पोथियों में से चुनकर ली गई हैं। प्रायः सभी कहानियां प्राचीन हैं और परम्परा द्वारा राजस्थान में ख्याति प्राप्त हैं। पोथियों में लिपिबद्ध होने के समय से अनुमानतः १०० वर्ष पुरानी तो ये कहानियां अवश्य होनी चाहिए'।
2. Tessitori: Descriptive Catalogue, Sec. 1 Pt. I (Jodhpur State), page 56,—'Apparently the chronicle was compiled not long after the death of Malde, possibly under Ude Singha. The last date mentioned in the chronicle seems to be Samvat 1637'.
3. वही;–Sec. I Pt. II, (Bikaner State), Page 25—26.

गुजरात पर हरवल म्हे हुतां चाकरी मुजरो कर देयासां तद पातसा कंन्हें बीकानेर री नव मोहरी लिपायो अजमेर रो सुबं तईनाय ईण भांत चाकर हुआ"[१]।

(१६) ख्यात; विगत; विलास आदि :

(क) ख्यात :

"बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात सीहैंजी सूं"[२] से—

"पछै जैतसी रा बेटा लोक सारो नीसरीयो अर बीकानेर मालदे रै हुवो सेहर गिरदवाई से अंमल रहो दुजो देस मां तो कोई न हुवो अर ए सरसं गया। उठं लोक कबीलो सारो राख अर कल्यांणमलजी भीवराज माडव रं पातसाह सूर कंन्हे गया अर परीया बीरम सु मेड़तो छुटो सु उ पंण उठं आयो सु पातसाह नु कहो ये मालदे पर हालो तद पातसाह कहै थांरो भरोसो नही जो मुसलमांन हुवो मे भेळो खाणो खावो तो भरोसो आवं तद भीवराज बीरंम पातसा भेळा जीमंण तयार हुआ तद पातसा कहो जो अब जीमंण कु तंम तयार हुवे सु माउ साच मयो अब चालो।"।

(ख) विगत :

"बीदावतां री विगत" से[३] —

"मोहिल अजीत नै रांणो वछो इयांरो राजथांन लाडंणु नै छापर हुतो नै द्रुणपुर मोहिल कांन्हो वस्तो पछै महाराई श्री जोधजी सगलानुं मारि नै मोहिले रै री धरती ले नै राजि थो बीदेजी नुं रायीयो"।

(ग) विलास : "दलपत विलास"—

यह महाराजा रायसिंह के द्वितीय पुत्र दलपतसिंह की सम-सामयिक रचना है। इसमें दलपतसिंह का विवरण है। साथ ही, अन्य प्रासंगिक वर्णन भी मिलते हैं। इससे बहुत सी नवीन एवं महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बातों का पता चलता है। दुर्भाग्यवश यह रचना अधूरी है. "Otherwise it might have rivalled, in utility as well as interest, much better known histories like the Akbarnama, the Muntakhab-ut-tawarikh, and Tabaqat-i-Akbari.[४] इसकी रचना रायसिंहजी के समय में[५], संवत् १६२१ से १६६८ के बीच किसी समय हुई थी[६]। उदाहरण देखिए[७] :—

---

१. इसके संबंध में देखिए– 'दयालदास री ख्यात', भाग २,–डा० दशरथ शर्मा :

२. ह० प्र० नं० १६२।१४, अ० सं० ला०, बीकानेर।
और देखिए– दयालदास री ख्यात, की भूमिका, पृ० ४ :

३. (क) Tessitori : Descriptive Catalogue, Sec. I, Pt. II, Page 19-
"Date about the end of the S. Century 1600".
(ख) ह० प्र० नं० २३३।७१७,–अं० सं० ला०, बीकानेर, 'Raj. Catalogue' पृ० ११
(ग) 'दयालदास री ख्यात' की भूमिका, पृ० ४-५ :

४. दयालदास री ख्यात, भाग २, Introduction, Page 5

५. —वही;

६. राजस्थान-भारती, भाग २, अंक १, जुलाई, १९४८, पृ० ५१ :

७. ह० प्र० नं० १८५।७,–अ०सं० ला०, बीकानेर :

"इण प्रस्तावि श्रोपि राजाजी अर मुंहते पातिसाहजी नुं अरदास करि अंर जोधपुर फिडो कियो। ताहरां राजाजी नूं मेड़तो दे अर आबू सिरोही नुं विदा कीया संवत् १६३४ अर पातसाहजी मालवै सिघाया। मांनसिंघ राजउतनुं राणेजी ऊपरि विसरी बिदा हुई। भोपतजी पातसाहजी रै साथि। राजि साथि सईद हासिम कासिम नुं योधपुर दे अर राजि साथि विदा कीया। तुरसमखांन नुं पाटण दे अर राज साथि विदा कियो। कहियो- तुं पाटणि ताहरां जाए जाहरां राजाजी तोनूं विदा दे। काम पार घाति अर पाटण जाए; दखल करे। राजाजी मेड़ते पधारीया कुंअर दळपतजी नुं तेड़ो मेल्हियो। कहाड़ियो-म्हांनुं थे वेगा आइ मिलिया। राजि मेड़ते हुंता आघाही ज कूच कीयो। अर कुंवर श्री दलपतजी घरतो महा होइ वगड़ी जाइ मिलीया। राजाजी रै पाए लागा। राजि कांटाळीयं पधारि ऊतरीया"।

(१७) पीढियां-वंशावली तथा जन्मपत्रियां :

(क) पीढियां :

"निरवाणां री पीढियां" से[१]—

"नीरवाणा री साय निरवांण पेहली देवड़ा था देवडांया निरवांण कहुंणा निरवांण सीरोही था भाय कवरसी दाहलीया कन्हा पांडेलो लीयौ उदेपुर लीयौ पछै वलो गांव सोलहर पांडेला नजीक छै तठै रायो पछै कछवाहो रायसल सुजावत सयू भोजावत नें भोवा हेमा रा कन्हा पांडेलो लीयौ तरै निरवाणा था पांडेलो छुटो .."।

(ख) जन्मपत्रियां :

"राजायां री जन्मपत्रियां" से[२]—

"सं० १४६७ वर्षे आसाढ सुदी ३ उदयातुगत घटी २ पल १३ संमये राव जोधा सुत दूदाजी जन्म मेड़तीया ... सं० १५६४ वर्षे आसु सुदि ११ रवी विरमदेजी सुत जैमल मेड़तीया जन्म"...... ।

(१८) ज्योतिष; शकुन आदि : (टीका और स्वतंत्र ग्रंथ) :

(क) राजा रायसिंहजी कृत "रत्नमाला टीका" से[३]—

"इतरा काम बृहस्पतिवार कीजई। धर्म कीजई। पौष्टिक कीजई। यत कीजई। विद्या भणीजइ। मांगलिक कांम कीजई। सोनारा कांम कीजई। लूगडा पहिरीजई। घर कराईजई। घर माहे रहीजइ। हालीजइ। रथरउ कांम। घोड़ा रउ कांम। ग्रोसारा काम। आभरण रा कांम। इतरा कांम बृहस्पतिवार कीजई"।

१. Descriptive catalogue, sec. I., pt. I (Tessitori), page 69.
... The Ms. is undated but its age can be approximately fixed towards the middle of the Samvat Century 1700 (page 66).

२. ह०प्र० नं० २३६।२,—अ० सं० ला०, बीकानेर;—catalogue, पृ० १२१। और देखिए— D. C. Sec. I Pt. II (Tessitori), पृ० ३६-४०, तथा दयालदास री ख्यात, भाग २, Introduction, पृ० ७ :

३. ह० प्र० नं० ३३०।१२, अ० सं० ला०, बीकानेर :

(ख) शकुन पर[1] —

"पछइ सुंभ विहाउइ जिणि वातरा संवण जोईजइ सु वात कागलि लिपि नइ आप सीरै रासीजइ। चवकी रइ गभि बेसीजइ पछइ कृष्ण स्मरण कीजइ विन घड़ी ॥ आघी थकइ संवण लइ बैसीजइ तारा निरमला हुवै भर ध्रू रउ तारउ रूडौ दीसइ तां लग बैसीजइ ध्रू रा तारा परगट हुवा पछइ ऊठीजइ तठा विचौं कोई संवण योलइ सु विचारीजइ। पछइ वले पाछिली राति नक्षत्र थके जाइ चवकी रै सु वे विचि बैसीजइ"।

उपर्युक्त विविध गद्य रूपों और उनके उदाहरणों से, राजस्थानी गद्य के अक्षय भांडार और उसकी प्रौढ़ता तथा महत्ता का कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा। कठिन से कठिन विषय की संक्षिप्त और सरस व्याख्या राजस्थानी गद्य की ही विशिष्टता है। अनेक गद्यरूपों के माध्यम से, सभी प्रकार के विषयों को अत्यन्त कौशल और प्रवाहपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त किया गया है। पद्य की तरह गद्य में भी ऐतिहासिक ग्रन्थों की तो कमी ही नहीं है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि, 'असमी भाषा के प्राचीन साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें ऐतिहासिक ग्रंथों की कमी नहीं है। अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में यह बहुत खटकता है'[2]। इस संबंध में निवेदन इतना ही है कि यह 'खटकनेवाली' बात राजस्थानी में तो कदापि नहीं है, अन्य भाषाओं में भले ही हो। इसी प्रकार डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है कि 'व्रजभाषा और राजस्थानी गद्य का पूर्णरूप से विकास भी न हो पाया था कि अंगरेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ व्यावहारिक दृष्टिकोण से गद्य-पुस्तकों की आवश्यकता हुई'[3]। राजस्थानी गद्य के विषय में लेखक का कथन उचित प्रतीत नहीं होता। इसकी परम्परा बहुत पुरानी है। आलोच्यकाल के गद्य-साहित्य से इसके पूर्ण विकास का पता चलता है। वस्तुतः विपुल गद्य और ऐतिहासिक साहित्य का निर्माण, ये दो राजस्थानी साहित्य की विशेषताएं रही हैं।

---

१. *ह० प्र० नं० ६६,—अ० सं० ला० बीकानेर।* इस प्रति को देखने से पता चलता है कि उक्त गद्यांश संवत् १६२६ और १६३३ के बीच किसी समय लिपिबद्ध किया गया था।
२. हिंदीभाषा का इतिहास, भूमिका, पृ० ५८, (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५३) :
३. आधुनिक हिंदी साहित्य (१८५०-१९००), पृ० ६७, (१९५२ ई०) :

अध्याय १५

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में हमने सामान्यतया परम्परा के रूप में संवत् १५०० से पहले पाए जाने वाले राजस्थानी साहित्य का, तथा विशेषतया इसके बाद संवत् १६५० तक के साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया।

राजस्थानी : डिंगल

समष्टि रूप से राजस्थानी के अन्तर्गत उसकी पाँचों बोलियों में रचित चारण शैली, जैन शैली, लौकिक शैली, सन्त शैली, तथा गद्य और उसके विविध रूपों का साहित्य आता है।

चारण शैली की रचनाएँ अब डिंगल नाम से अभिहित हैं। 'डिंगल' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत और सामने आए हैं। कविराव मोहनसिंह के अनुसार दंगल से डंगल >डिंगल बना है; 'दंगल भाषा' का आशय युद्ध समय में ओज-वृद्धि करने वाली भाषा है[1]। श्रद्धेय डॉ० सुकुमार सेन ने प्रस्तुत पुस्तक की 'प्रस्तावना' में 'डिंगल' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'डिंगर' से बतलाई है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का भी ऐसा ही अनुमान है[2]। 'डिंगर' शब्द के अर्थ[3] और डिंगल की विषय-वस्तु को देखते हुए यह मत भी विशेष ग्राह्य नहीं हो सकता। हाँ, ध्वनि-साम्य के आधार पर डिंगर का डिंगल होना समीचीन है।

डिंगल में रचना करने वाले अधिकांश कवि मारवाड़, मेवाड़ तथा बीकानेर राज्यों के रहे हैं[4]। शेष शैलियों में रचना करने वाले कवि एवं संत तथा गद्य-लेखक राजस्थान के प्रायः सभी प्रान्तों में हुए हैं। कालक्रम से इन प्रान्तों की सीमा में परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे थे और उनमें कइयों के शासक-राजवंश भी समय-विशेष के लिए बदले थे[5]। यहाँ राजस्थान और उसके प्रान्तों से अभिप्राय आलोच्यकालीन राजस्थान से है।

काल-विभाजन

संवत् १५०० से राजस्थानी, 'पुरानी राजस्थानी' या 'जूनी गुजराती' से अपना अलगाव कर लेती है। भाषा के क्षेत्र में पुराने 'अइ' और 'अउ' रूपों के स्थान पर क्रमशः 'ऐ' और 'औ' का

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३, 'सम्पादकीय'—पृष्ठ २; साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. हिन्दी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० २९ तथा ८१, संवत् २०१५
३. The Practical Sanskrit-English Dictionary by Vaman Shivram Apte; Third Edition, 1924; पृ० ४६१ पर 'डिंगर:' के अर्थ इस प्रकार हैं—
1 A servant, 2 A knave, cheat, rogue, 3 A depraved or low man, 4 A fat man, 5 Throwing, casting forth, 6 An insult.
४. द्रष्टव्य : 'पृथ्वीराज रासो की विवेचना' के अन्तर्गत कविराजा श्यामलदास का 'पृथ्वीराज रासा की नवीनता' नामक निबन्ध, पृ० २६, २७; साहित्य संस्थान, उदयपुर, संवत् २०१५
५. (क) ओझा निबन्ध संग्रह, भाग १; पृ० १–३६, साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९५४
(ख) राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली : गौ० ही० ओझा, सन् १९३७

वर वंक वधे चहुवाण वंस, विडण वंक आंकह चलै ।
सामळ सुहड़ सो खंड किय, खळां सरे सारण खळै ॥१४॥[1]

पटे धटे झपटे, नीक पजवट्ट निहट्टे ।
अरघ धार वेहार, जाड़ फट्टे नीवट्टे ।
दळं रुण्ड वेरंड, मूंड सुंडाहळ डंडह ।
भांजि हड्ड मूडण्ड, खंड वेहंड प्रचंडह ।
पड़चड़े घड़े घड़ मेहड़े, सुर जैकार समंचरै ।
साचवां सेन सहि संघरै, करमसीह भारथ करै ॥२२॥[2]

कवि वीठू मेहा का स्थान डिंगल के मूर्धन्य कवियों में है । वीररस का फड़कता हुआ सजीव वर्णन तथा डिंगल का निखरा रूप जैसा इनके काव्य में मिलता है, वह बारहट ईसरदास, दुरसा आढ़ा तथा पृथ्वीराज राठौड़ आदि कुछेक कवियों को छोड़कर अन्यत्र नहीं पाया जाता ।

(३) कर्मसी आसिया : ये महाराणा उदयसिंह (संवत्१५९४–१६२८) के समकालीन थे और मेवाड में आसिया शाखा के चारणो के पूर्वज थे । राणा उदयसिंह ने इनको पसूंदा नामक ग्राम दिया था । ६१ कवित्तों में इन्होंने सूजा बालेछा के विभिन्न युद्धों का वीररसपूर्ण वर्णन किया है । काव्य का साराश यह है :—सूजा बालेछा चौहान वंश का रत्न था । वह राणा उदयसिंह का कृपापात्र वीर सामन्त था । एक बार शत्रुओं के साथ अलग से सेना एकत्र कर युद्ध करने के कारण, महाराणा उस पर रुष्ट हो गए । इस कारण वह जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया और उससे जागीर प्राप्त कर वहीं रहने लगा । जब राव मालदेव और राणा उदयसिंह के बीच युद्ध की नौबत आई, तब वह कृतज्ञता-वश, स्वामी-सेवक धर्म का पालन करते हुए, अपने पूर्व स्वामी राणा उदयसिंह के पास चला आया और मालदेव की दी हुई जागीर भी उसने अपने पास रखी । उसकी ख्याति दिन पर दिन फैलने लगी । वह मडोवर पर भी रण-वाद्य बजाने लगा । यह देखकर मालदेव ने उसके विरुद्ध सेना भेजी । दोनों ओर के दलो में डटकर युद्ध हुआ, जिसमें उसकी विजय हुई । रचना के उदाहरणस्वरूप दो कवित्त नीचे दिए जाते हैं :—

जिसौ राम संग्राम, करण सरिसौ वीसक्कर ।
जिसौ पत्थ वंराट, घेन लीजंती वाहर ।
जिसौ दोठ हणमंत, द्रोण कर गिंहि ऊपाड़ण ।
जिसौ निरखि नरसिंघ, उअर हरिणाकुस फाड़ण ।
कमधजां कंध काढण करे, ओरि परिग्गह आपरौ ।
तेरसी भांति चढ़ियौ तरै, रिणि क्रियंत सामंत रौ ॥४७॥[3]

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृष्ठ ४७; साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. वही; पृ० ५२
१. वही; पृ० ८५

फूट कूंत धासक्क, हक्क धक्का फारक्कां।
खल खंडर नर कच्चर, फिर फर मुट्टां चक्कां।
पड़ै जोध अनिमंघ, कंध भाजै करड़क्कै।
भुवडंडे भालरां, खिवै डंडा खरड़क्कै।
ऊथले धड़ा भांजे धड़ा, थाणासे बालाउता।
राउते किया मछरी करे, गरा पूर भांजे गतां॥५१॥[1]

इसी प्रकार सिरोही के राव रायसिंह (संवत् १५९०–१६००[2]) के सम्बन्ध में कहे गए इनके फुटकर कवित्त भी मिलते हैं[3]।

(४) ईसर रतनू : इन्होंने १९ कवित्तों में जयमल मेड़तिया की वीरता का वर्णन किया है। अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब किले की रक्षा का व्रत जयमल ने लिया। मुगल सेना के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ते हुए अन्त में वह काम आया। 'कवित्तों' में इसी घटना का वर्णन किया गया है। एक छन्द से यह आभास मिलता है कि मुगलों के घेरे के पूर्व ही महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ में नहीं रहते थे। जयमल स्वयं महाराणा के पास आया और युद्ध के लिए आज्ञा लेकर चित्तौड़ गया। यदि यह बात सत्य है, तो इतिहास पर नया प्रकाश डालती है। संबंधित पद यह है :—

कन्हा राण खुमाण, साहिसह चीड़ो साहे।
धड़े धरे गहवरे, सार भुअ डंडि सबाहे।
अभंग माल ईसरे, छोह असि छांटा छोड़े।
चड़े खड़े निव्वड़े, भड़े बांकुड़े सजोड़े।
घेरा धराट वीरंभ रा, खेध जोध मासी खरा।
आविया रोद्र मुणि आवता, चित्रकूट दूदा हरा॥३॥[4]

इस बात की पुष्टि, विक्रम सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के जाड़ा महड़ू नामक कवि की रचना से भी होती है :—

रावती महिमा बोड़ो राले, घड़ियो माल चीत्रगढ़ घाले।
अकबर साह चीत्रगढ़ आयो, साह बहादर नाम सवायो।[5]

(५) जाड़ा महड़ू : इनकी शार्दूल परमार पर लिखी ११२ छन्दों की रचना मिलती है[6]। जाड़ा का वास्तविक नाम आसकरण था परन्तु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८; पृ० ८८, साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग : जगदीशसिंह गहलोत; 'सिरोही राज्य', पृ० ४२; २०१७
३. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, पृ० १९१–१९२,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६०
४. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृ० ९५–९६; साहित्य संस्थान, उदयपुर
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११, पृ० ११;—वही
६. वही

प्रचलन हो जाता है। 'राजस्थानी' का 'विकसित-काल' इसी समय से प्रारम्भ होता है। राजस्थानी की विभिन्न शैलियों,उसकी प्रकृति और भाषा के विकास-क्रम को ठीक से ध्यान में न रखने के कारण, डा० टैसीटरी द्वारा प्रचालित-पोषित मत का पिष्ट-पेषण घुमा-फिरा कर अब भी किया जाता है[1], जो सर्वथा अनुचित है। इस सम्बन्ध में प्रो० न० भो० दिवेटिया का मत अपेक्षाकृत अधिक संगत है जिन्होंने 'जूनी पश्चिमी राजस्थानी' का काल वि० १३वीं शताब्दी से संवत् १५५० तक माना है[2]। दिवेटिया के समय राजस्थानी साहित्य की उतनी सामग्री उपलब्ध नहीं थी जो आज है। अद्यावधि प्राप्त रचनाओं के आधार पर संवत् १५०० से राजस्थानी साहित्य का इतिहास प्रारम्भ होता है।

पूर्व-परम्परा

राजस्थानी ही आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में एक ऐसी भाषा है जिसका पद्य तथा गद्य, दोनों प्रकार का साहित्य वि० १३वी शताब्दी से आज तक निर्विच्छिन्न रूप से पाया जाता है। पुरानी राजस्थानी साहित्य का एक बड़ा भाग जैनों द्वारा रचित तथा जैन धर्म से सम्बन्धित है। संवत् १५०० के बाद भी जैन शैली की विशिष्टता उल्लेखनीय है।

देशी भाषाओं के विकास से पहले, देश के पश्चिमी भाग में रचा गया अधिकांश अपभ्रंश साहित्य जैन कवियों की देन है। लगभग विक्रम सातवी शताब्दी से ११–१२वी शताब्दी तक अपभ्रंश, कुछ स्थानीय भेदों के साथ, देश की राष्ट्रभाषा रही थी। देशी भाषाओं के प्रारम्भिक विकास के समय भी देश के पश्चिम और पूर्व में रचित साहित्य के काव्य-रूप, रचना-प्रकार और विषय-वस्तु में भी समानता रही है। डा० सुकुमार सेन ने नव्य भारतीय आर्य-भाषा-साहित्य की ऐसी ६ प्रमुख विशेषताओं तथा बंगाली और पश्चिमी भारतीय आर्य-भाषा-साहित्य के प्रारम्भिक काव्य-रूपों की ५ सामान्य विशेषताओ का उल्लेख किया है[3]। अपभ्रंश से पूर्व प्राकृत साहित्य भी बड़े परिमाण में जैनों द्वारा रचित है[4]।

चारण साहित्य : ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य

चारण शैली का साहित्य प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में मिलता है। आलोच्य काल में विवेचनीय कुछ और कवियों का उल्लेख नीचे किया जाता है जिनकी रचनाओं में प्रबन्धात्मकता के गुण पाए जाते हैं।

(१) करण रतनू[5] : इसने २५ कवित्तों (छप्पयो) में वीरमदेव मेड़तिया की वीरता का वर्णन किया है। वीरम के विभिन्न वीर कृत्यों का उल्लेख और विशेषतया अजमेर के मलिक शमशेर के साथ किए गए उसके युद्ध और विजय का ओजस्वनी वर्णन इन कवित्तो में मिलता है। उदाहरणस्वरूप एक छन्द देखा जा सकता है :

---

१. डिंगल साहित्य : डॉ० जगदीश प्रसाद; पृ० ११, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, १९६०
२. गुजराती भाषा अने साहित्य; (संक्षेपकार—के० का० शास्त्री) पृ० १७७,संवत् २०१३
३. History of Bengali Literature : Dr. Sukumar sen, Page 15, 22-23, 1960
४. (क) प्राकृत और उसका साहित्य : डा० हरदेव बाहरी; पृ० ३३, १४१, प्रथम संस्करण
(ख) The Jains in the History of Indian Literature : Winternitz, 1946
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८; साहित्य संस्थान, उदयपुर; संवत् २०१४

ताप कोप बहु तपे, वाउ भौ भीठ विवज्जै ।
नद्द सद्द नीसांण, गोड़ि यह घोड़ि गरज्जै ।
दळ बादळ इव डवे, वेग तेगां संवारव ।
भड़ां घड़ां ओवड़े, धार पीळी धारारव ।
रिणि रत्त नीर दड़ड़ रिड़ं, सालुळि मिलि सम्मां समां ।
पावस्स वीर विपरीत परि, रूठ बूठ माथे रिमां ॥१०॥[1]

जिस स्थान पर युद्ध हुआ, कवि के शब्दों में, वहाँ पर जाने से आज भी रण का समस्त दृश्य साकार हो उठता है :—

अजे ढोल घड़हड़ं, अजे पुड़ पंखि प्रभासें ।
अजे हवक भड़ हुवे, मेछ तिरि जाबू वासें ।
अजे रुण्ड रड़वड़ें, चंच रातळां चड़क्खे ।
आगंपणि आरिक्ख, कलळ कंपार फड़क्खे ।
वीरंम जतें विहंडे विचित्र, चूरि महारण चाचरे ।
तिणि खेति तरसि वीरा रसहि, अजेस वीर अवसरे ॥२४॥[2]

कवि के विषय में विशेष पता नहीं चलता । उपर्युक्त 'कवित्त' तथा ईसर रतनू (जिनके विषय में आगे लिखा गया है) के कवित्त संवत् १७१९ में संग्रहीत हस्तलिखित पोथी से लिए गए हैं । अतः संवत् १६५० के आस-पास इन दोनों कवियों के होने का अनुमान लगाया जा सकता है ।

(२) थीठ् मेहा : इनका उल्लेख पहले कर आए हैं (पृ० ११२–११५) । ३१ कवित्तों में कवि ने वागड़ के कर्मसी और सांवलदास चौहान[3] की वीरता का वर्णन किया है । कवि के अनुसार, जब उदयपुर के महाराणा उदयसिंह ने डूंगरपुर के महारावल आसकरण पर अपनी सेना भेजी, तब ये दोनों वीर महारावल की ओर से महाराणा की सेना के विरुद्ध लड़कर काम आए थे । आसकरण का शासनकाल संवत् १६०६ से १६३७ तक माना जाता है और महाराणा की यह चढाई संवत् १६१३ के पहले किसी समय हुई थी[4] ।

यह वीर रस की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है जिसमें इन दोनों वीरों की वीरता का सजीव अंकन किया गया है । उदाहरण इस प्रकार है :—

डाइणि डक्क डहक्क, हक्क होए हलकारां ।
वाजे धक्क धड़क्क, लंक मूटे भूझारां ।
उरे कूंत खरड़क्क, सार झावक्क, सबक्कां ।
फोकर फटिय मुवक्क, रकत ऊबके खळक्कां ।

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृ० ३६, साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. वही; पृ० ३९
३. बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास : गौ० ही० ओझा, पृ० ८२, २२१ फुटनोट, सन् १९३७
४. (क) डूंगरपुर राज्य का इतिहास : गौ० ही० ओझा, पृ० ८९–९०, संवत् १९९२
   (ख) उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली : गौ० ही० ओझा

घर वंक वपै चहुवाण वंस, विढण वंक आंकहू चलै।
सामळै मुहड़ सौ खंड किय, सळां सरे सारण सळै ॥१४॥[1]

पटे घटे ऊपटे, नीक पजवट्ट निहट्टं।
अरघ धार वेहार, जाड़ फट्टं नीवट्टं।
रुळे रुण्ड वेरंड, मूंड सूंडाहळ डंडह।
भांजि हड्ड भूडण्ड, खंड वेहंड प्रचंडह।
धड़चड़े घड़े घड़ वेहड़े, सुर जैकार समंचरं।
साचवां सेन सहि संघरं, करमसीह भारथ करं ॥२२॥[2]

कवि पीठू मेहा का स्थान डिंगल के मूर्धन्य कवियों में है। वीररस का फड़कता हुआ सजीव वर्णन तथा डिंगल का निखरा रूप जैसा इनके काव्य में मिलता है, वह बारहठ ईसरदास, दुरसा आढ़ा तथा पृथ्वीराज राठौड़ आदि कुछेक कवियों को छोड़कर अन्यत्र नहीं पाया जाता।

(३) कर्मसी आसिया : ये महाराणा उदयसिंह (संवत्१५९४–१६२८) के समकालीन थे और मेवाड़ में आसिया शाखा के चारणों के पूर्वज थे। राणा उदयसिंह ने इनको पनूंदा नामक ग्राम दिया था। ६१ कवित्तों में इन्होंने सूजा वालेछा के विभिन्न युद्धों का वीररसपूर्ण वर्णन किया है। काव्य का सारांश यह है :—सूजा वालेछा चौहान वंश का रत्न था। वह राणा उदयसिंह का कृपापात्र वीर सामन्त था। एक बार शत्रुओं के साथ अलग से सेना एकत्र कर युद्ध करने के कारण, महाराणा उस पर रुष्ट हो गए। इस कारण वह जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया और उनसे जागीर प्राप्त कर वहीं रहने लगा। जब राव मालदेव और राणा उदयसिंह के बीच युद्ध की नौबत आई, तब वह कृतज्ञता-वश, स्वामी-सेवक धर्म का पालन करते हुए, अपने पूर्व स्वामी राणा उदयसिंह के पास चला आया और मालदेव की दी हुई जागीर भी उसने अपने पास रखी। उसकी ख्याति दिन पर दिन फैलने लगी। वह मंडोवर पर भी रण-वाद्य बजाने लगा। यह देखकर मालदेव ने उसके विरुद्ध सेना भेजी। दोनों ओर के दलों में डटकर युद्ध हुआ, जिसमें उसकी विजय हुई। रचना के उदाहरणस्वरूप दो कवित्त नीचे दिए जाते हैं :—

जिसौ राम संग्राम, करण सरिसौ वीसवकर।
जिसौ पत्थ वैराट, घेन लीजंतौ बाहर।
जिसौ वीठ हणमंत, द्रोण कर गिरिंह ऊपाड़ण।
जिसौ निरवि नरसिंघ, उअर हरिणाकुस फाड़ण।
कमधजां कंध काढण करे, ओरि परिग्गह आपरौ।
तेरसौ भांति चढ़ियौ तरै, रिणि क्रियंत सामंत रौ ॥४७॥[3]

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृष्ठ ४७; साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. वही; पृ० ५२
३. वही; पृ० ८५

फूट कूंत घासक्क, हूक्क धक्को फारक्कां।
खल खंडर नर कचर, फिर्रा फर त्रूट्टां चक्कां।
पड़ै जोध अनिमंध, कंध भाजै करड़क्कं।
भुवडंडे भाखरां, खिवे डंडा खरड़क्कं।
ऊपले घड़ा भांजे घड़ा, बाणासे वालाउतो।
राउते किया मछरी करे, गरा पूर भांजै गतां ॥५१॥[1]

इसी प्रकार सिरोही के राव रायसिंह (संवत् १५९०–१६००[2]) के सम्बन्ध में कहे गए इनके फुटकर कवित्त भी मिलते हैं[3]।

(४) **ईसर रतनू** : इन्होंने १९ कवित्तों में जयमल मेड़तिया की वीरता का वर्णन किया है। अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब किले की रक्षा का व्रत जयमल ने लिया। मुगल सेना के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ते हुए अन्त में वह काम आया। 'कवित्तों' में इसी घटना का वर्णन किया गया है। एक छन्द से यह आभास मिलता है कि मुगलों के घेरे के पूर्व ही महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ में नहीं रहते थे। जयमल स्वयं महाराणा के पास आया और युद्ध के लिए आज्ञा लेकर चित्तौड़ गया। यदि यह बात सत्य है, तो इतिहास पर नया प्रकाश डालती है। संबंधित पद यह है :—

कन्हा राण खुमाण, साहिसह बीड़ो साहे।
घड़े धरे गहवरे, सार भुअ डंडि सबाहे।
अभंग माल ईसरे, छोह असि छोटा छोड़े।
घड़े खड़े तिण्वड़े, भड़े वांकुड़े सजोड़े।
वैरा घराट वीरंभ रा, खेध जोध माझी खरा।
आखिया रोद्र सुणि आवता, चित्रकूट दूदा हरा॥३॥[4]

इस बात की पुष्टि, विक्रम सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के जाडा महडू नामक कवि की रचना से भी होती है :—

माझी महिमा बीड़ो साले, चढ़ियो माल चीत्रगढ़ चाले।
अकबर साह चीत्रगढ़ आयो, साह बहादर नाम सवायो।[5]

(५) **जाड़ा महडू** : इनकी दादू'ल परमार पर लिखी ११२ छन्दों की रचना मिलती है[6]। जाडा का वास्तविक नाम आसकरण था परन्तु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८; पृ० ८८, साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग : जगदीशसिंह गहलोत, 'सिरोही राज्य', पृ० ४२; २०१७
३. मुहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, पृ० १९१–१९२,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६०
४. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृ० ९५–९६; साहित्य संस्थान, उदयपुर
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११, पृ० ११;—वही
६. वही

'जाडा' कहा करते थे। प्रवाद प्रचलित है कि रहीम खानखाना की प्रशंसा में उसके बनाए चार दोहों[1] के बदले रहीम ने भी उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा कहा :—

घर जड्डी अंबर जड़ा, जड्डा महडू जोय।
जड्डा नाम अलाहवा, और न जड्डा कोय ॥[2]

प्रस्तुत रचना में दो घटनाओं के वर्णन प्रधान हैं–(१) शार्दूल के पिता मालदेव परमार का चित्तौड़ पर आई अकबरी सेना के विरुद्ध लड़ कर प्राण-त्यागना तथा (२) शार्दूल का (अकबर से बदनौर की जागीर मिलने पर) मारवाड़ के राठौड़ों की सेना से युद्ध और उसकी विजय।

शार्दूल परमार महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के छोटे पुत्र भीमसिंह का साला एवं परमार कर्मचन्द का वंशज था[3]। महाराणा अमरसिंह (प्रथम) का जीवन-काल संवत् १६१६ से १६७६[4], और रहीम का संवत् १६१३ से १६८६[5] तक माना जाता है। भीमसिंह का समय विक्रम सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध अनुमानित है[6]। इन बातों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि जाडा महडू विक्रम सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के कवि थे। वर्णित घटनाओं के आधार पर भी यह रचना आलोच्यकाल की सीमा के बाहर पड़ती है।

चारण साहित्य : ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

चारण शैली का मुक्तक साहित्य प्रधानतया गीतों, और दोहों-सोरठों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इस संबंध में दुरसा आढ़ा[7], पृथ्वीराज राठौड़[8], पीठवा मीसण[9], बारहठ हरिसूर[10], कर्मसी आसिया[11] दूदा आसिया[12], लूणकरण महडू[13], ईसरदास बारहट[14], आदि उल्लिखित कवियों के अतिरिक्त, अधोलिखित के नाम और लिए जा सकते हैं :—

---

१. रहीम-रत्नावली, संपादक—मायाशंकर याज्ञिक : साहित्य सेवा-सदन, काशी, पृ० ६६–६७ (तृतीय संस्करण)। दो दोहे देखें :—

खानखाना नवाब रे, खांड़े आग खिवंत।
जलवाला नर प्राजलै, तृणवाला जीवंत ॥
खानखाना नवाब री, आदम गीरी धन्न।
मह ठकुराई मेरु-गिरि, मनी न राई मन्न ॥

२. वही
३. वीर विनोद, भाग २ में इसका उल्लेख देखिए।
४. उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली, पृ० ४७५–५०७ : गौ० ही० ओझा
५. रहीम-रत्नावली : पृ० ३, ७
६. (क) उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली, पृ० ४९६, ५०५ : गौ० ही० ओझा
(ख) उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५१४, ५१६ : गौ० ही० ओझा
(ग) वीर विनोद भाग २, पृ० २३७–२३८, २८७
७. (क) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १०; पृ० १०९ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
(ख) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २; पृ० ७५ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
८. भाग १०; पृ० २९–३२; भाग २; पृ० १६–१७
९. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २, पृ० ४–६
१०. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १, पृ० ४–६
११. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २, पृ० ४१–४२
१२. वही; पृ० ७०–७१
१३. वही; पृ० ८६–८७
१४. वही; पृ० ९३–९४

(१) माल्हड़ बारसड़ा ने राठौड़ शेखा सूजावत का कटारी से युद्ध करने का वर्णन किया है। शेखा संवत् १५८६ में जोधपुर के राव गांगा के साथ गांधाणी गाँव में युद्ध होने पर मारा गया था। कवि, शेखा का समकालीन मालूम पड़ता है[1]। एक दोहला देखिए :—

रिम घड़ रिणि सांकड़ ग्रंथे, मातं जुपि तातं मछरि।
सेखा तणी कटारी समहरि, अर्फारस ऊगी तणं अरि ॥१॥

(२) पाता बारहट : इस कवि ने राठौड़ रत्नसिंह दूदावत (मेड़तिया) का अखैराज परमार के मुकाबले में वीरता प्रदर्शित करने का वर्णन एक गीत में किया है। कवि रत्नसिंह का समसामयिक जान पड़ता है। यह गीत अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि रत्नसिंह पर अधिक गीत उपलब्ध नहीं हैं। ये रत्नसिंह इतिहासकारों द्वारा सुप्रसिद्ध मीराँबाई के पिता बताए गए हैं। एक दोहला इस प्रकार है :—

करि करभ सजे साबळ काळासे, मंत्र खत्र दाख ते सू मन।
सायर अखैराज समभीयो, अगसति रतनं आचमन ॥१॥[2]

(३) गांगा संढायच का राठौड़ वीर जैता पंचायणोत पर लिखा गीत मिलता है। जैता संवत् १६०१ में जोधपुर के राव मालदेव की ओर से शेरशाह सूर के विरुद्ध लड़कर वीरगति को प्राप्त हुआ था। प्रतीत होता है कि कवि जैता का समकालीन था। गीत में उपर्युक्त घटना का वर्णन है, जिसका एक दोहला यह है :—

डाळा अनि सुहड़ घणू डोलांणा, सार लहरि वाजती साह।
जड़ वह लाज महा भू जैता, निर्भंस पुड़ धरहरियो नाह ॥१॥[3]

इनके अतिरिक्त, 'शाख री कविता' की श्रेणी के, अनेक राठौड़ वीरों पर ज्ञात और अज्ञात कवियों के गीत मिलते हैं[4]।

वीर कविता के परिपार्श्व में राजस्थानी का पीछोला या मसिया[5] तथा पड़ूत्तर[6] साहित्य भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

एक दो छन्दों के रूप में अवशिष्ट, अनेक प्राचीन अज्ञात कवियों की मुक्तक रचनाओं के नमूने भी यत्र-तत्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए, महाराणा कुम्भा के दरबार में कहा गया किसी अज्ञात चारण कवि का निम्नलिखित छन्द देखा जा सकता है :—

जद घर पर जोवतो, दीठ नागोर धरंतो।
गायत्री संग्रहण, देख मन मांहि डरंतो।

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २; पृ० १६–१७ (फुटनोट) तथा १८–१९
२. वही; पृ० २६–२७
३. वही; पृ० ३७–३८
४. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ७ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
५. द्रष्टव्य : (क) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ५ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
(ख) राजस्थान रा पीछोला; क्षत्रिय युवक संघ, पिलानी
६. राजस्थानी पड़ूत्तर, भाग ५: साहित्य संस्थान, उदयपुर

सुर कोटी तेतीस, आण नीरन्ता चारो ।
नहिं चरंत पीवंत मनह करती हंकारो ।
कुम्भेण राण हणिया कलम, आजस डर डर उतरिय ।
तिण वीह द्वार शंकर तणें, कामधेनु तंडव करिय ॥

चारण शैली के मुक्तक काव्य की विशेषताएँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—

१. ऐतिहासिक घटना-विशेष या तथ्य-विशेष पर प्रकाश डालना,
२. प्रतिबोध कराना,
३. उत्साह-वृद्धि करते हुए प्रेरणा देना,
४. यथातथ्य या समयोपयोगी वर्णन द्वारा उचित मार्ग-निर्देशन का प्रयास करना,
५. किसी सत्य का स्पष्ट रूप से उद्‌घाटन करना,
६. 'साख री कविता' के रूप में किसी घटना-विशेष, व्यक्ति-विशेष या तथ्य-विशेष की स्मृति सुरक्षित रखना । ऐसी कविताएँ इतिहास की मूल्यवान थाती हैं ।

वीररसात्मक कविता चारण शैली की बपौती रही है । डिंगल कविता के संदर्भ में मिश्र-बन्धुओं का भूषण के विषय में यह कथन कि 'युद्ध का ऐसा उत्तम वर्णन किसी कवि ने नहीं किया'[2] अत्युक्ति मात्र लगता है ।

समय के साथ इस कविता का स्वर भी बदला है । महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय से (जीवन-काल वि० संवत् १७२९–१७६७[3]) जो वीर-कविताएँ रची गई, उनका स्वर कुछ अंशों में आलोच्यकालीन कविताओं से भिन्न है[4] ।

पौराणिक और धार्मिक काव्य; कृष्ण काव्य : राम काव्य

पुरानी राजस्थानी में कृष्णकाव्य रामकाव्य की अपेक्षा अधिक प्राचीन है । मीरां का समय विद्वान् लोग विक्रम सोलहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध मानते हैं ; कृष्ण से संबंधित उसके नाम पर चलनेवाले बहुत से पद पाए जाते हैं । आलोच्य काल में (मीरां को छोड़कर) कृष्ण से संबंधित राजस्थानी कविता की विशेषता अधोलिखित है :—

(१) द्वारका के श्रीकृष्ण-चरित का ही वर्णन किया गया है;
(२) ऐसे काव्य प्रबन्धात्मक हैं ।

आधुनिक आर्य भाषाओं के राम साहित्य की रचना १५ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है लेकिन अधिकांश इसके बाद ही हुई है, जब रामभक्ति के आविर्भाव और प्रचार के साथ-साथ राम-कथा का विकास भी अन्तिम परिणति तक पहुँच चुका था[5] । कृत्तिवास पंडित की बंगाली

---

१. (क) उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली : गौ० ही० ओझा, पृ० ३२१ फुटनोट
 (ख) वीरविनोद, भाग १, पृ० ३३३–३३४
२. भूषण-ग्रंथावली, पृ० ५२; ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१५
३. उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५९५–६०९; गौ० ही० ओझा, सं० १९८८
४. तुलनीय—प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ४ के गीत; साहित्य संस्थान, उदयपुर
५. राम-कथा (उत्पत्ति और विकास) : डा० कामिल बुल्के, पृ० २१५, सन् १९५०

रामायण इस दृष्टि से सबसे प्राचीन है, जिसका रचना-काल संवत् १५०० के लगभग है[1]। राजस्थानी में रामचरित सम्बन्धी रचनाओं का प्रारम्भ वि०१६ वीं शताब्दी से होता है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के संवत् १६५३ में लिखित गुटके में उपलब्ध 'सीता चौपाई' नामक काव्य का रचनाकाल संवत्१६०० के लगभग है[2]। इस विषय की सबसे बड़ी और प्रसिद्ध रचना रामरासौ है, जिसका वर्णन यथास्थान कर आए हैं।

चारण काव्य : पौराणिक और धार्मिक-मुक्तक

चारण शैली में भगवद्भक्ति तथा शान्त रसात्मक गीतों की रचना करने वाले कुछ और कवि निम्नलिखित हैं।

(१) **करमसी आसिया** का उल्लेख ऊपर कर आए हैं। भगवान शंकर की स्तुति में कहे गए इनके गीत का एक दोहला देखिए :—

ईखे अंगि एह करामत ईसर, थर कौतक ब्रहॅलोक थयं।
मांडे आप रहण मेदाने, दाने तो गढ़ लंक दियं ॥१॥[3]

(२) जयमल बारहठ का स्थान तो अज्ञात है किन्तु संवत् १६०० के अन्तर्गत इनका वर्तमान रहना पाया जाता है। इनके गीतों में, राम की सेना को आई देख कर मन्दोदरी का विभिन्न प्रकार से रावण को समझाना तथा युद्ध में राम की विजय का वर्णन मिलता है। एक गीत का एक दोहला इस प्रकार है :—

समंद्र झळझळे घर चळे सेस सिर सळसळे,
कपि दळे किलकिले इम कहायो।
मेर गिर टळटळे मांण देतां मळे,
ऊठि दससीस जगदीस आयो ॥१॥[4]

(३) **धना** : इनका विशेष उल्लेख नहीं मिलता। ये बारहट ईसरदास के समकालीन बताए जाते हैं। एक गीत में कवि स्वयं को संबोधित करते हुए भगवान के जाप करने और अन्य विषयों को वृथा समझ कर छोड़ देने को कहता है। दो छन्द इस प्रकार हैं :—

प्राणियाँ नांम समिर पुरषोतम, अंनि विषय परहरे आळ।
पगसों पग खोड़तौ न पेखे, क्रम क्रम जाळ नाखतौ काळ ॥३॥
प्रिसण मरण हरि समय पाळिस्यै, मेल्हे मा चित सूय मना।
धरि हरि चेत समरि धरणीधर, धरणीधरि ऊवरिसि 'धना' ॥४॥[5]

यह रचना संवत् १६०० के अन्तर्गत रचित बताई गई है और अनुमान किया गया है कि

---

१. History of Bengali Literature : Dr. Sukumar Sen, Page 67-69; 1960
२. द्रष्टव्य—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८४०—८४२, कलकत्ता, सन् १९५९
३. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १२, पृ० ४०—४१; साहित्य संस्थान, उदयपुर
४. वही; पृ० ५३ तथा ५०—५२
५. वही; पृ० ५९

सुप्रसिद्ध भक्त धन्ना जाट यही थे[1]। भक्त धन्ना जाट का जन्म संवत् १४७२ में बताया जाता है[2]। अतः प्रतीत होता है कि ये और भक्त धन्ना जाट भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे।

(४) परमानन्द बीठू चारणां की बीठू शाखा के थे। इस शाखा के चारणों का निवास अधिकतर बीकानेर राज्य में पाया जाता है। इनका वास-स्थान अज्ञात है। इनका रचनाकाल संवत् १६५० के आसपास रहा होगा, ऐसा अनुमान है। एक गीत में इन्होंने सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की महिमा का बखान किया है, जिसका एक दोहला यह है :—

सु तण कोटि तिणि तिणि कोटि शिर,
सिरी सिरी फोटि वदन समराय।
वदनि वदनि छो कोटि जीह वळि,
जपि तो गुण न सकां जगनाय ॥२॥[3]

१७वीं शताब्दी के ऐसे अन्य हरिभक्त कवियों में ओपा आढ़ा तथा कान्हा बारहठ के नाम प्रमुख हैं। इन दोनों का १७वीं शताब्दी के अन्तर्गत होना तो पाया जाता है[4] किन्तु इसका पता नहीं लगता कि ये आलोच्यकाल की सीमा में आते हैं या नहीं।

लोक साहित्य

अधुनाप्राप्त बहुत से लोक गीतों की प्राचीनता का तो पता नहीं लगता किन्तु प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं और पुरुषों आदि से सम्बन्धित होने के कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि 'साख री कविता' की भाँति लोक मानस ने घटना-विशेष या पुरुष-विशेष के लोक-ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ ही तत्-तत् सम्बन्धी विभिन्न भावनाओं से युक्त लोकगीतों का निर्माण किया। प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं और पुरुषों से सम्बन्धित ऐसे अनेकशः लोकगीतों में बानगी के तौर पर कुछ के नाम लिए जा सकते हैं। मोकल के वियोग की घटना का विलाप[5], जल्ले और उसकी प्रेयसी की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति[6], रामदेवजी से विनय[7], पाबूजी की प्रशंसा[8], गोगाजी के वीर कृत्य[9], इतिहास-प्रसिद्ध पिछोला सरोवर और 'राणाजी के देश' का मंगल-गान[10], नागजी से दो घड़ी रुक जाने का अनुरोध[11], हरस और उसकी बहन जीण की मरम-भेदी करुण कथा[12] आदि-आदि से सबंधित लोकगीत ऐसे ही हैं।

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १२, पृ० ५८, फुटनोट; साहित्य संस्थान, उदयपुर
२. खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास : श्री ब्रजरत्नदास, पृ० ८०, संवत् २००९
३. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १२, पृ० ७६–७७
४. वही; पृ० १४–४०
५. राजस्थानी लोकगीत, भाग ६, पृ० ४३–४८; साहित्य संस्थान, उदयपुर
६. राजस्थानी लोकगीत, भाग ४, पृ० ९८–१०६; " " "
७. राजस्थानी लोकगीत, भाग २, पृ० १–३; " " "
८. राजस्थानी लोकगीत : रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, पृ० ९–१०, जयपुर, सवत् २०१४
९. राजस्थानी लोकगीत, भाग २; पृ० ५२७–५३२; रामसिंह, पारीक, स्वामी, सन् १९३८
१०. राजस्थानी लोकगीत, भाग १; पृ० ३–५ : " " " "
११. विरह प्रकृति और भक्ति, (भाग ३), पृ० १०७–११० : साहित्य-संस्थान, उदयपुर
१२. (क) राजस्थानी लोकगीत भाग १, पृ० ९५–११५; " " "
(ख) 'हरस-जीण', राजस्थानी सभा, बम्बई द्वारा प्रस्तुत, राजस्थानी नृत्य-नाटिका; १९६०

ब्रह्म-मूहूर्त में 'लाखो फूलाणी', और 'दोय घड़ी दिन चढ़ियाँ धनासरी में बाधो कोटड़ियो' आदि प्रसिद्ध गीतों के गाए जाने का निर्देश-उल्लेख बाँकीदास ने भी किया है[1]।

राजस्थानी नारी ने तो लोक गीतों के समवेत स्वरों में ही अपनी शत-शत भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। रूठी रानी उमादे का चरित इतिहास में निराला है। वह जीवन भर अपने मान के कारण अपने पति से दूर रही किन्तु अवसर पड़ने पर पति की आज्ञा मानकर किले की रक्षार्थ जोधपुर भी गई[2]। लोकगीतों[3] और वातों[4] में उसकी स्मृति चिरनवीन बनी हुई है।

राजस्थानी लोकगीतों के रस-सरोवर की अनन्त उर्मियों का सुरंगा स्वरूप देखते ही बनता है। हमारे इतिहास में जो भी सुन्दर तेजस्वी तत्व है, वह लोक में कहीं न कहीं सुरक्षित है। लोक सम्पर्क के बिना अन्य सब शास्त्र अधूरे हैं[5]।

बहुत से प्राचीन दोहे कुछ रूप बदल कर लोकजीवन में आज भी प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, 'बीझा सोरठ' के प्रसंग में उद्धृत (पृ० २२०) एक सोरठे—

गया करावणहार, जोवण हारा जाइसी।
खड़हड़ीया खंधार, धणी विहूंणा धवलहर॥

को 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' (प्रबन्धों का रचनाकाल—संवत् १२९० से १५२८ के बीच किसी समय) में भी देखा जा सकता है[6]। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की हस्तलिखित प्रतियों में[7] पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह के कई दोहे परिवर्तित रूप में मिलते हैं[8]। अतः ऐसे दोहों की प्राचीनता निर्विवाद है। 'ढोला-मारू' के दोहों-सोरठों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है[9]।

---

१. बाँकीदासरी ख्यात; पृ० २१०, राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, सन् १९५६
२. Ajmer : Historical And Descriptive : Har Bilas Sarda, Page 151; 1941
३. राजस्थानी लोकगीत, भाग २, पृ० ५३५—५३८ : रामसिंह, पारीक, स्वामी; सन् १९३८
४. राजस्थानी वाता, भाग १, पृ० ६९—७८, साहित्य संस्थान, उदयपुर
५. सम्मेलन-पत्रिका, 'लोक-संस्कृति विशेषांक', पृ० ६५, संवत् २०१०
६. पृ० ३४; सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, सन् १९३६
७. प्रति नं० ७८, ८० तथा १२०, (Catalogue of the Rajasthani Mss.)
८. पृ० ३५
९. 'ढोला मारू रा दूहा : ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०११। इसके ६२ तथा ५४० नं० के दोहों का क्रमशः इनसे मिलान कीजिए :—
   (क) कुरजाँ थोनें पाँखड़ी, थाँको वणा वहेस।
   सायर लंघी पिव मिळू, पिव मिळ पाछी देस॥
   —राजस्थानी-पडूत्तर, भाग ५, पृ० ४१; साहित्य संस्थान, उदयपुर
   (ख) घम घमती पग घूंघरा, पग बाजत पायाल।
   दाहजादी रह आंगणे, छूटी हँसत छंछाल॥
   —राजस्थानी दोहावली, भाग १, पृ० १९४; साहित्य संस्थान, उदयपुर

अनेक यशस्वी कवियों व सन्तो की प्रसिद्ध उक्तियाँ कहावतों के रूप में जनसाधारण में आज भी कही सुनी जाती हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे[1]।

जैन साहित्य : रासक, रास, रासो

पुरानी राजस्थानी और आलोच्य काल के जैन साहित्य का एक प्रमुख काव्य रूप रासक, रास व रासो रहा है। लगभग विक्रम १३ वीं शताब्दी में रचित संदेशरासक में सामोर नगर वर्णन के अन्तर्गत एक छन्द से पता लगता है कि रासक पढ़े जाते थे[2]। इसी समय से रासक के तीन तत्वों (गीत, नृत्य, काव्य) से गीत-श्रव्य रास काव्यों का विकास होने लगा था। चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में रचित 'वर्ण रत्नाकर' में 'रासय' का उल्लेख नृत्य वर्णन के अन्तर्गत किया गया है[3]। रासक का गीत तत्व तो फागु, धमाल, चर्चरी, बारहमासा आदि के रूप में मिलता ही है। जायसी के पदमावत में 'वसंत-खंड'[4], तथा 'नागमती-वियोग खंड'[5] के अन्तर्गत

---

१. (क) चम्पादे के प्रसंग में (पृ० १४९ पर) उद्धृत दूसरे दोहे का परिवर्तित रूप—
"नरां नाहरां डिगमरां पाकां ही रस होय"
—राजस्थानी कहावतां, भाग पहलो,पृ० १९२; राजस्थानी साहित्य परिषद्, कलकत्ता

(ख) काल फिरत है हाल रैण दिन लोइ रे। हनै राव अरु रंक गिणे नहिं कोइ रे।
यह दुनियां वाजिन्द वाट की दूब है। हरिहां पाणी पहिले पाल बन्धे तो खूब है॥
—पचामृत में 'वाजिन्दजी' की वाणी; स्वामी मंगलदास, पृ० ८८, सन् १९४८
"पाणी आडी पाळ बांधै", "पाणी पहलां पाळ बांधै" आदि;—
—राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो; पृ० १२-१३

(ग) मरदां मरणो हक्क है ऊबरसी गल्लाह। सापुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लाह॥
—हालां झालां रा कुंडळिया; संपा०—डा० मेनारिया, पृ० ५०, संवत् २००७
"मरदां मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय"
—राजस्थानी कहावता, भाग दूसरो, पृ० ६३

२. कहव ठाइ चउवेइहिं वेउ पयासियइ, कह बहुरुवि णिवध्दउ रासउ भासियइ॥४३॥
—सन्देश रासक; पृ० १२, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, सन् १९६०

३. 'रासय द्विधह नृत्यक कुशल'—पृ० ४९; एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९४०

४. नवल वसंत; नवल सब बारी। सेंदुर बुक्का होइ धमारी॥
खिनहिं जलहिं; खिन चांचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई॥
—जायसी ग्रंथावली, पृ० ८२, संवत् २०१३

५. फागु करहिं सब चांचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
घंत बसंता होइ धमारी। मोहि-लेखे संसार उजारी॥—वही, पृ०१५५

विशेष द्रष्टव्य :—
'चांचरि'—(क)'शृंगार प्रधान,एक नृत्य और गीत जो विशेषतः फागुन में गाया जाता है',
(ख)'हाथों में दो छोटे डंडे लेकर लड़के लड़कियों की टोली का मंडली नृत्य, जिसे लकुट रास भी कहते हैं',
(ग)'वसन्त ऋतु में गाया जाने वाला राग, जिसमें होली फाग आदि हैं'।
—पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या): डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, संवत् २०१२; पृ०—क्रमशः ३५२ व १८२
'धमारी'—'होली का एक राग और और उत्सव' —पृ० ३५३; वही

चाँचर और धमाल का उल्लेख हुआ है। पृथ्वीराज रासो में भी पृथ्वीराज के जन्म के समय धमाल गाए जाने का वर्णन मिलता है[1]।

पुरानी राजस्थानी, पुरानी हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के अध्येताओं के लिए 'रासक', 'रास', 'रासो' आदि के स्वरूप, तत्व, विषय, छन्द तथा उनकी परम्परा और भाषा का अध्ययन नितान्त आवश्यक है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

राजस्थानी नाट्य-परम्परा का मूल जैन-रचनाओं में ही मिलता है[2]।

जैनाचार्यों ने संत-शैली में भी पुष्कल रचनाएँ की हैं, किन्तु अभी तक इसका विशेष अध्ययन हुआ नहीं है। अपभ्रंश के परमात्म-प्रकाश[3] तथा पाहुड़ दोहा[4] के नाम तो प्रसिद्ध है ही। विक्रम १७वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के सुविख्यात विद्वान् और कवि महोपाध्याय समयसुन्दर की ऐसी अनेक रचनाओं का संपादन-प्रकाशन नाहटा बन्धुओं ने अभी किया है[5], जो इस दिशा में अपने ढंग का पहला कार्य है। राजस्थानी के अलावा हिन्दी में भी अनेक जैन कवियों ने ऐसी रचनाएँ की हैं। बनारसीदास तथा रूपचन्द के नाम इस संबंध में उल्लेखनीय हैं[6]।

सुधारक परक सम्प्रदाय भी कई जैन धर्मानुयायियों ने स्थापित किए। उदाहरण के लिए, 'कबीर साहब के प्रायः समसामयिक लोका साह ने वि० सं० १५०९ में गुजरात के अन्तर्गत मूर्ति-पूजन के विरुद्ध अपने उपदेश प्रारम्भ किए और संवत् १६५७ के लगभग मध्यभारत में तारण स्वामी ने दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों में अपना तारण-पंथ चलाया'[7]।

जैन कवियों का सम्मान बादशाह अकबर भी करता था[8]। संवत् १६२८ में जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि कृत 'अकबर प्रतिबोध रास'[9] से पता चलता है कि आचार्यश्री ने अकबर को जैन धर्म का उपदेश दिया था।

सन्त साहित्य

राजस्थान का सन्त साहित्य एक प्रकार से अभी तक उपेक्षित ही रहा है। दादू तथा उनके

---

१. पुत्री-पुत्र उछाह, दान मानह धन दिद्धिय।
धाम धाम गावत धमारि, मनहु अहिवन मनि लिद्धिय॥
—पृथ्वीराज रासो (प्रथम भाग), पृ० २१; साहित्य संस्थान, उदयपुर, संवत् २०११

२. द्रष्टव्य :
(क) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ९; प्रस्तावना, पृ० १४–१६, साहित्य संस्थान, उदयपुर
(ख) रास और रासान्वयी काव्य; भूमिका पृ० ५०–५२, ना० प्र० स०, काशी
(ग) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास : डॉ० दशरथ ओझा

३. परमात्म प्रकाश दोहा : योगिन्दु; श्री रामचन्द्र जैन शास्त्र माला, बम्बई, सन् १९३०

४. पाहुड़ दोहा : मुनि रामसिंह; सपा०—डा० हीरालाल जैन, कारंजा, संवत् १९९०

५. समयसुन्दर-कृति-कुसुमांजली : अगरचंद भंवरलाल नाहटा, संवत् २०१३

६. (क) बनारसी-विलास : बनारसी दास जयपुर; संवत् २०११
(ख) अर्ध-कथानक : बनारसीदास; हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, सन् १९५७

७. 'आलोचना'; वर्ष ४, पूर्णांक १५, अप्रेल १९५५, पृ० २९

८. (क) जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम 'प्रेमी', पृ० ३९५–४०२, सन् १९५६
(ख) बाँकीदासरी ख्यात : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, पृ० १७३, सन् १९५६

९. रास और रासान्वयी काव्य, पृ० २६९–२८७; ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१६

शिष्य-प्रशिष्यों की कुछ वाणियाँ तो सम्प्रदाय के विद्वानों और प्रेमियों द्वारा संग्रहीत-सम्पादित की गई हैं, किन्तु अन्य आलोच्यकालीन सन्तों की वाणियों के वैज्ञानिक प्रकाशन पर अभी ध्यान नहीं गया है जो नितान्त आवश्यक है। सन्तों की देन महान् है[१]। उन्होंने अपनी अनुभूति के परिपक्व विचारों से मानव को यही प्रेरणा देने का प्रबल प्रयास किया है कि वह भौतिक जगत से आगे बढ़कर आध्यात्मिक जगत के रहस्य को जाने जिससे वह अपनी मानवता को सार्थक सिद्ध कर सके[२]।

गोरखनाथ : नाथ-सिद्ध

गोरखनाथ और नाथ-पंथ का राजस्थान में बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। नाथ सिद्धों की विभिन्न संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भी कुछ रचनाएँ प्रकाश में आई हैं। इनमें कइयों की भाषा अंशतः राजस्थानी है, जो १६ वीं शताब्दी के बाद की है[३]। नाथ सिद्धों के नाम पर जो रचनाएँ मिलती हैं, उनमें अनेक की प्रामाणिकता संदिग्ध है[४]। 'पूर्ण विश्वास के साथ यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये रचनायें उन्हीं सिद्धों की हैं जिनके नाम से वे प्रचलित और प्रचारित हैं'[५]। उदाहरण के लिए, 'नाथ-सिद्धों की बानियाँ' में गोपीचन्द के नाम से प्रकाशित 'गोपीचन्द जी का पद संवाद'[६] नामक रचना को देखा जा सकता है। यह वास्तव में एक लोकगीत है जिसका उल्लेख पृ० २२३ पर कर आए हैं।

दादूपंथ : गरीबदास, सुन्दरदास

दादू के उल्लिखित शिष्यों के अलावा उनके पंथ के दो और सुविख्यात सन्तों का यहाँ नामोल्लेख कर देना आवश्यक है। पहले हैं गरीबदासजी महाराज जो दादूजी के अत्यन्त कृपालु शिष्य थे। संवत् १६६० में जब दादजी ने स्वर्गारोहण किया, तब उनके सम्पूर्ण शिष्यों ने गुरु के स्थान पर गरीबदासजी को स्थानापन्न किया था। इनका रचनाकाल अनुमानतः संवत् १६५५ से १६८० तक माना जाता है[७]। दूसरे सुन्दरदासजी हैं जो 'पंथ' के बड़े ही समर्थ संत और कवि थे। दादूजी के निधन के समय उनके अन्य शिष्यों के साथ नराणा ग्राम में ये भी उपस्थित थे और अपनी प्रतिभा का परिचय छोटी सी अवस्था में ही इन्होंने वहाँ दिया था। इनका जन्म संवत् १६५३ में हुआ माना जाता है[८]।

दोनो ही सन्त आलोच्य काल की सीमा के बाहर पड़ जाते हैं।

जहाँ तक दादूजी के जीवन चरित का सम्बन्ध है, अन्य अनेक उल्लेखों के अतिरिक्त, स्वामी

---

१. द्रष्टव्य : श्री दादूदयालजी की वाणी; श्री मंगलदास स्वामी; 'भूमिका', जयपुर, सन् १९५१
२. वही; 'निवेदन', पृ० ६
३. (क) नाथ-सिद्धों की बानियाँ; ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१४
   (ख) सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति एन्ड अदर वर्क्स ऑफ नाथ योगीज : डॉ० कल्याणी मल्लिक
   (ग) गोरखबानी : डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
४. नाथ-सिद्धों की बानियाँ, भूमिका, पृ० ५
५. वही; परिचय, ृ० ७
६. वही; पृ० २०–२२
७. महाराज श्री गरीबदासजी की वाणी; प्राक्कथन, पृ० 'ख', 'छ', प्रथम संस्करण, जयपुर
८. सुन्दर-सार : संपा०—बाबू श्यामसुन्दरदास; भूमिका पृ० ११–१५, सन् १९२८

जनगोपाल कृत 'श्री दादू जन्म लीला परची'[1] से भी कुछ सहायता मिल सकती है किन्तु प्रायः बाकी सभी आलोच्यकालीन सन्तों के जीवन चरित के बारे में परम्परागत जनश्रुति और प्राचीन साम्प्रदायिक रचनाकारों के वाक्यों के आधार पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

मीरांबाई

मीरां के नाम पर कहे जाने वाले अधिकांश पद आज तो लोकगीतों के रूप में ही जीवित रहे हैं; लोक मानस पर सवार होकर उन्होंने दूर-दूर की यात्रा की है। प्रदेश-विशेष की बोली[2] तथा लोक-भावना के अनुरूप होकर वे लोकगीतो के अभिन्न अंग बन चुके हैं। मीरां के मूल पदों की भाषा निश्चय ही राजस्थानी थी, जिसके नमूने दुर्भाग्य से हमें आज उपलब्ध नहीं हैं। खुसरो, गोरखनाथ, चन्द बरदाई, 'रामानन्द तथा कबीर की भाँति 'मीरां' की भाषा' भी, प्राचीन काव्यों की भाषा-सम्बन्धी समस्या में जटिल प्रश्न बनी हुई है[3]।

मीरां के लोक-प्रचलित पदों के आधार पर ही भिन्न-भिन्न बातें कह दी जाती हैं जिनकी सत्यता आंशिक ही कही जा सकती है। कहीं उसके 'शृंगारिक पदों में विशुद्ध प्रगीतात्मक तत्व' खोजे जाते हैं[4] और कहीं तुलसी, सूर, घनानन्द, नन्ददास आदि 'उदात्त कोटि' के भक्तों के बीच उसकी 'आत्मा की पुकार' की विरलता प्रदर्शित की जाती है[5]। एक ओर उसके पदों में, 'प्रेमातिरेक के कारण पायी जाने वाली तन्मयता' देखकर उस पर निम्बार्क मत की छाप देखी जाती है[6] और दूसरी ओर 'सूफियों के प्रेम की पुष्टि' में उसके प्रेम का प्रमाण दिया जाता है[7]। प्रामाणिक पदावली के अभाव में, ऐसे विभिन्न परस्पर विरोधी मत-मतान्तरों की गुत्थी मीरां के पदों की लोकगीतात्मक व्याख्या से ही सुलझाई जा सकती है। कहा गया है कि कला-विहीनता

---

१. श्री दादू जन्म लीला परची : संपादक—सुखदयाल दादू; श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

२. (क) निमाड़ी और उसका साहित्य : डॉ० कृष्णलाल हंस, पृ० २९७-२९८; हिन्दुस्तानी एके० इलाहाबाद, सन् १९६० :—"निमाडी भाषी क्षेत्रमें हमें कुछ ऐसे गीत भी मिले हैं, जिनकी अन्तिम पंक्ति से वे गुरु गोरखनाथ, कबीर व मीरा के पद जान पड़ते हैं ...।....इन कवियों के कहे जाने वाले पदों की रचना किसी अन्य ने की होगी. ...पर लोकप्रियता देखकर इन गीतों के प्रचलन के लिए अन्त में इनके साथ इन कवियों के नाम जोड़ दिए गए होंगे।"
उदाहरणार्थ 'मीरा' के नाम पर चलने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"भजो सांझ सवेरा हो, पिया मानो अरज म्हारी ॥
या तन को करूँ दीवलो, मनसा करूँ बाती हो।
तेल जलाऊँ रूड़ा प्रेमरो, झारूँ दिन अरु राती।
. . . .
मीरा वियोगन हो रही, अपनी कर लीजो हो॥"

(ख) चन्द्रसखी और उनका काव्य : शबनम, लोकसेवक प्रकाशन, बनारस, संवत् २०११
इसमें चन्द्रसखी के नाम से प्रकाशित बहुत से पद, मीरां के ही पदों के गेय रूपान्तर हैं, जिनको लोकगीतों के अन्तर्गत रखना ही अधिक उपयुक्त है।

३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३७२; ना०प्र०स०, काशी, संवत् २०१४

४. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास : जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० २३, २६७; ना० प्र० स०, काशी

५. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, 'रीतिबद्ध काव्य', पृ० १७०, ५४९, संवत् २०१५

६. हिन्दी साहित्य : डॉ० श्यामसुन्दर दास, पृ० २१४, सन् १९५३

७. तसव्वुफ अथवा सूफीमत: चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० १०, सन् १९४८

मीरां की सबसे बड़ी कला है[1]; किन्तु यह कला-विहीनता लोकगीतों की कला है जो लोक मानस के विभिन्न तत्-तत भावों का कला विहीन चित्रण करते हैं। मीरां के नाम पर पाए जाने वाले राम, रमैया तथा कृष्ण सम्बन्धी पदों के विषयों में यहाँ यह लिख देना भी अप्रासंगिक न होगा कि लोकगीतों मे राम और कृष्ण का भेद नहीं किया जाता[2]। उसके लोक प्रसिद्ध भक्त रूप का प्रासंगिक उल्लेख तो बहुतों ने किया ही है[3]।

बंगाली विद्वानों ने भी अपनी अपनी रुचि के अनुसार मीरां के पदों का संकलन-प्रकाशन किया है। इनमें श्री अनाथनाथ बसु[4] तथा श्री स्वामी वामदेवानन्द[5] द्वारा संपादित 'मीराबाई' नामक पुस्तकों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें मीरां संबंधी परम्परागत प्रचलित मत और लोक-प्रिय पदों का संकलन ही मिलता है; उसके जीवन और साहित्य पर प्रकाश डालने वाली कोई विशेष सामग्री प्राप्त नहीं होती।

पंजाबी विद्वान् डॉ० मोहनसिंह की सूचना के अनुसार, सिक्खों के 'आदि ग्रंथ' में तीन पद मीरांबाई के भी पाए जाते हैं[6]।

हाल ही में श्रुतांजलि[7], सुधांजलि[8] तथा प्रेमांजलि[9] नामक पुस्तकों के माध्यम से मीरां के जीवन चरित, विचारधारा तथा पदों सम्बन्धी कुछ नई सामग्री सामने आई है। बताया गया है कि स्वयं मीरां ने पांडिचेरी आश्रम की श्रीमती इन्दिरा देवी को उनकी भाव-समाधि में समय-समय पर अपने बहुत से पद सुनाए थे। ऐसे ७२ पदों का संकलन श्रुतांजलि में किया गया है। इसी प्रकार मीरां द्वारा बताई गई अपनी जीवनी, विचारधारा और समय-समय पर उसके द्वारा दिए गए निर्देश आदि का सविस्तर उल्लेख इन पुस्तकों के सम्पादकद्वय—श्रीमती इन्दिरा देवी और श्री दिलीपकुमार राय ने किया है। यहाँ पर इन सब बातों के विषय में विशेष विचार न कर इतना कहना ही पर्याप्त है कि हमारे अध्ययन का विषय, स्रोत और दृष्टिकोण इनसे भिन्न है। भौतिक रूप से मृतक, प्राणियों की आत्माओं द्वारा दिए जाने वाले निर्देशन-विषय को अस्वीकार न करते हुए भी[10], साहित्य के क्षेत्र में हम ऐसी सामग्री का विवेचन अवांछित और अनावश्यक समझते हैं।

---

१. Gujarat And Its Literature : K. M. Munshi, Page 183; Bombay, 1954.
२. द्रष्टव्य–(क) राजस्थानी लोकगीत, भाग २ : रामसिंह, पारीक और स्वामी, पृ० ३२९
(ख) विरह प्रकृति और भक्ति, भाग ३, पृ० ७५; साहित्य संस्थान, उदयपुर
३. एक और उदाहरण देखें :—मीरां जनमी मेड़ते परणाई चितौड़
राम भजन परताप सो सकल सिष्टी सिर मौड़। आदि
—'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय', के अन्तर्गत श्री संग्रामदासजी महाराज की कुण्डली, पृ० २७७;
प्रकाशक : वैद्य केवलराम स्वामी, बीकानेर, सन् १९५९
४. मीराबाई; प्रकाशक :—श्री जितेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १३६४ बंगाब्द
५. मीराबाई; प्रकाशक :—स्वामी वामदेवानन्द, उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, १३६४ बंगाब्द
६. A History of Pujnabi Literature : Dr. Mohan Singh, Page 33, 35; 1956
७. प्रकाशक :—श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी, सन् १९५१
८. प्रकाशक :—एलाइड बुक स्टाल, डैक्कन जीमखाना, पूना ४, सन् १९५८
९. प्रकाशक :—एम० सी० सरकार एन्ड सन्स लि०, कलकत्ता, सन् १९५२
१०. Amrit Bazar Patrika, Puja No; Page 247–248; Calcutta, 1955

नवीनतम सूचना के अनुसार मीरांबाई पर शोध-प्रबन्ध भी लिखा गया है[1] और उसकी पदावली का अधिकारी विद्वान् द्वारा किया गया संकलन भी प्रकाशन की राह में है[2]।

गद्य साहित्य

राजस्थानी गद्य के विविध रूपों में—जैन विद्वानों द्वारा रचित और 'वात' रूप में पाया जाने वाला—दो प्रकार का गद्य साहित्य, प्राचीन परम्परा और सम्पन्नता के करण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैन गद्य की भांति 'वात साहित्य' भी स्वतंत्र अध्ययन का विषय है।

वातों के विभिन्न प्रकार और अनेक विषय हैं। कथा साहित्य की भिन्न-भिन्न शैलियों के उत्तम नमूने वे प्रस्तुत करती हैं और लोक जीवन की झांकी के दिग्दर्शन तो कराती ही हैं। यह साहित्य मौखिक परम्परा का साहित्य है किन्तु बहुत-सी वातें लिपिबद्ध भी मिलती हैं जिनकी प्राचीनता का पता लग सकता है[3]। 'वात रयणी चारणी री', 'वात बीझरै अहीर री', आदि ऐसी ही वातें हैं[4] जो सम्भवतः आलोच्यकाल के भीतर ही किसी समय रची गई होंगी।

ऐतिहासिक लोकगीतों और 'साख री कविता' की भांति बहुत सी वातें घटना-विशेष या पुरुष-विशेष से सम्बन्धित भी मिलती हैं, जिनके रचना काल के विषय में प्राचीनता का अनुमान होते हुए भी, निसंदिग्ध रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। 'राजा सिघराव जैसिंघ री वात'[5], 'राजा भोज अर पाण्डे बुररच री वात'[6], 'वात राजा मान री'[7] आदि वातें इसी कोटि की हैं।

'पर बीती' और 'पर बीती'—दोनों ही प्रकार की अनेक वातें राजस्थानी जन समाज में, मौखिक परम्परा से, पीढ़ी-दर पीढ़ी कही सुनी जाती रही हैं। कथा की रोचकता के लिए कभी-कभी वातों के बीच-बीच में दोहे सोरठे आदि भी कहे जाते हैं। राजस्थान की कुछ जातियों का तो वात कहना आंशिक रूप से परम्परागत पेशा भी रहा है। वात चूंकि कहने और सुनने के लिए होती हैं, अतः श्रोताओं में, हूंकारा देने वाले का 'हूंकारा' देना आवश्यक होता है। इस विषय में यह प्रसिद्ध है :—

वात कहतां वार लागै, वात में हूंकारो लागै।
हूंकारे वात मीठी लागै, फौज में नगारो बाजै॥

पद्य साहित्य की भांति राजस्थानी गद्य की परम्परा भी, आधुनिक भारतीय आर्य भाषा साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनकाल से तथा क्रमबद्ध रूप में मिलती है। आलोच्य-काल में गद्य के भिन्न-भिन्न विविध-विषय-युक्त रूपों का चरम विकास हुआ और उसकी व्यंजना शक्ति प्रौढ़ता की सीमा तक पहुंच गई। ब्रज भाषा की अपेक्षा राजस्थानी गद्य-परम्परा अधिक समृद्ध

---

१. हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध : डा० उदयभानुसिंह, पृ० २०४–३०५, सन् १९५९
२. पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जोधपुर से; संग्राहक—स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा
३. (क) राजस्थानी वातां, भाग ३; साहित्य संस्थान, उदयपुर : 'इस संकलन की वातें संवत् १८२३ में लिपिबद्ध पोथी से ली गई हैं', अतः ये वातें १८वीं शताब्दी की निश्चित रूप से हैं।
(ख) राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग १; राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर : इसमें प्रकाशित 'खीची गंगेव नीबावत रो दो-पहरो' और 'राजान राउत रो वात-वणाव' चारण कवियों की १८वीं शताब्दी की बहुत महत्वपूर्ण रचनाएँ है। इनमें पहली रचना गद्य-काव्य है और दूसरी मिश्र-काव्य।
४.५.६.७. राजस्थानी वातां; क्रमशः भाग १, ४, ५ तथा २; साहित्य संस्थान, उदयपुर।

और विविध-विषय सम्पन्न रही है[1]। राजस्थानी की प्रचलित गद्य शैली ने ब्रज भाषा गद्य को एक मार्ग और एक ढांचा प्रदान किया है[2]।

राजस्थानी : हिन्दी

राजस्थानी अत्यन्त समृद्ध, समर्थ और स्वतंत्र भाषा है। उसका साहित्य सब प्रकार से सम्पन्न, वैविध्यपूर्ण और विशाल है। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में राजस्थानी ही एक ऐसी भाषा है जिसकी साहित्यिक परम्परा सबसे अधिक प्राचीन है तथा जो निर्विच्छिन्न रूप से आज तक चली आई है।

पुरानी राजस्थानीका विकास गुर्जरी या सौराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है जब कि हिन्दी का शौरसेनी अपभ्रंश से। भाषाशास्त्र के अनेक देशी विदेशी विद्वानों ने प्रकारान्तर से स्वीकार किया है कि (१) पुरानी राजस्थानी या जूनी गुजराती एक ही है; दोनों का साहित्य समय-विशेष तक एक ही रहा था, (२) राजस्थानी गुजराती के अधिक निकट है; हिन्दी के नहीं, (३) भाषा के उद्गम, विकास, प्रकृति और व्याकरण की दृष्टि से, राजस्थानी का 'हिन्दी-परिवार' की भाषाओं—बोलियों के साथ साम्य नहीं है[3]। अतः भाषा-विज्ञान की दृष्टि से राजस्थानी और उसके साहित्य का विवेचन, हिन्दी-परिवार की भाषाओं, उपभाषाओं के साथ करना न्याय संगत नहीं है। वस्तुतः वह हिन्दी-परिवार की भाषा है ही नहीं।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल

राजस्थानी साहित्य के प्रसंग में हिन्दी साहित्य के तथाकथित 'आदिकाल' के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक हो जाता है। यह इसलिए कि साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य के 'आदिकाल' में राजस्थानी साहित्य को विवेचनीय समझा है। आदिकाल की स्थूल सीमा संवत् १००० से १४०० तक मानी गई है, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित साहित्य-सामग्री की चर्चा सामान्यतया की जाती है :—

(१) खड़ी बोली, (२) अवधी, (३) ब्रज (४) मैथिली (५) अपभ्रंश-अवहट्ठ तथा (६) पुरानी राजस्थानी, राजस्थानी।

हिन्दी

स्मरणीय है कि हिन्दी स्वयं एक रूप भाषा नहीं है। मध्यदेश के पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी प्रदेशों की आठ बोलियों के समुदाय को 'हिन्दी' के नाम से पुकारा जाता है। डॉ॰

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ॰ २७०, सन् १९५२
२. मध्यकालीन हिन्दी गद्य : हरिमोहन श्रीवास्तव, पृ॰ ५०; राजकमल प्रकाशन, सन् १९५५
३. (क) भारतीय भाषा विज्ञान : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी;
पृ॰ १७०–१७१, २६६, ३१० आदि; संवत् २०१६
(ख) हिन्दी शब्दानुशासन : किशोरीदास वाजपेयी; पृ॰ ५२४–५२५, संवत् २०१४
(ग) भोजपुरी भाषा और साहित्य : डा॰ उदयनारायण तिवारी; पृ॰ ७२–७३, सन् १९५४
(घ) हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास : डा॰ उदयनारायण तिवारी; पृ॰ १७८–१७९, सं॰ २०१२; तथा इनमें वर्णित हिन्दी-परिवार की भाषा-उपभाषाओं संबंधी सूचनाएँ।

खड़ी बोली, ब्रज, कन्नौजी तथा बुन्देली—पश्चिमी हिन्दी समुदाय की हैं और अवधी या कोशली, बघेली, और छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिन्दी की[1]। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी का सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत से है और पूर्वी हिन्दी का अर्धमागधी प्राकृत से[2]। आदिकाल के अन्तर्गत विवेचनीय साहित्य, हिन्दी परिवार की खड़ी बोली, अवधी और ब्रज का ही है।

(१) खड़ी बोली

खड़ी बोली के कवियों में सर्वप्रथम अमीर खुसरो (संवत् १३१०–१३८२) समझे जाते हैं। इन्होंने फारसी में साहित्य-निर्माण किया है और हिन्दी में भी इनकी थोड़ी सी रचनाएँ मिलती हैं। खुसरो की हिन्दी कविता[3] के नाम पर जो सामग्री सामने है, उसकी भाषा विश्वसनीय नहीं है[4]; उसमें बहुत से प्रयोग आधुनिक हैं। खुसरो के पूर्ववर्ती कवि मसऊद के 'हिन्दवी' में लिखे एक दीवान का उल्लेख मात्र मिलता है। इसी प्रकार शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी (संवत् १२३०-१३२२) और शेख शरफ़ुद्दीन बू अली कलन्दर (देहान्त–सं० १३८०; खुसरो के समकालीन) के नामोल्लेख भी खड़ी बोली के कवियों में किए जाते हैं; किन्तु कविता के नाम पर इनकी कोई विशेष रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं[5]।

'उत्तर भारत की खड़ी बोली में काव्य का निर्माण १२ वीं सदी ई० तक का प्राचीन मिलता है और दो चार नमूने १३ वीं सदी के भी मिलते हैं। खड़ी बोली में साहित्य के निर्माण की परम्परा उत्तर भारत में इसके बाद कई सदियों तक लुप्त रही। तुलना की नजर से खड़ी की अपेक्षा अवधी और ब्रज का साहित्य इससे काफी बाद का है'[6]। दक्खिनी हिन्दी में साहित्य रचना विक्रम १४ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से शुरू हुई। बन्दानेवाज ख्वाजा गेसूदराज (संवत् १३७५–१४७९) की रचनाओं में 'अरबी फारसी मिश्रित हिन्दी गद्य'[7] का नमूना देखा जा सकता है[8] :— "ए अज़ीजो असलान ख़ुदा सों मिलना जुदा होना, यों दोनों भी है। यो बात पीरसों में राज को ख़बर देकर बन्दे को सरफ़राज़ कर"।

इस प्रकार खड़ी बोली की कोई प्रधान रचना आदिकाल में नहीं मिलती।

गोरखनाथ और अन्य नाथ-सिद्धों की जो रचनाएँ सामने आई हैं, उनकी भाषा सोलहवीं शताब्दी के बाद की है[9]। रामानन्दजी का जीवन-काल संवत् १३५६ से १४९१–९२ तक अनुमानित किया गया है[10]। उनकी जो थोड़ी-बहुत हिन्दी की रचनाएँ मिलती हैं, उनकी भाषा के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

---

१. भाषार इतिवृत्त : डा० सुकुमार सेन; साहित्य सभा, वर्द्धमान
२. वही; तथा उक्ति–व्यक्ति-प्रकरण,–'Study', पृ० २, संवत् २०१०
३. खुसरो की हिन्दी कविता; ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१०
४. दक्खिनी हिन्दी: डा० बाबूराम सक्सेना; पृ० ३०, हिन्दुस्तानी ए०, इलाहाबाद, सन् १९५२
५. वही; पृ० ३०–३१। ६. वही; पृ० ३१–३२। ७. वही; पृ० ३५–३६
८. उर्दू साहित्य का इतिहास : डा० एजाज हुसैन; पृ० ९–१०, राजकमल प्रकाशन, सन् १९५७
९. (क) गोरखबानी : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
(ख) नाथ-सिद्धों की बानियाँ : ना० प्र० स०, काशी
(ग) सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति एण्ड अदर वर्क्स ऑफ नाथ योगीज : डा० कल्याणी मल्लिक
इस सम्बन्ध में इन पुस्तकों की भूमिकाएँ देखें।
१०. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ; पृ० ४०, ना० प्र० स०, काशी; संवत् २०११

(२) अवधी : पुरानी अवधी या प्राचीन कौशली का प्राचीनतम नमूना 'उक्तिव्यक्ति-प्रकरण' में मिलता है। इसका विशेष महत्व तत्कालीन भाषा और उसके विकास-सम्बन्ध को लेकर है। आदि काल में रचित अवधी की और कोई रचना सामने नहीं है।

खड़ी बोली और अवधी की रचनाएँ उपलब्ध न होते हुए भी यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आदिकाल में उनकी परम्परा रही अवश्य होगी।

(३) ब्रज भाषा

ब्रज भाषा में साहित्य-सृजन का प्रारंभ संवत् १५५० के बाद से हुआ है[1]। इससे पहले ब्रज की जो रचनाएँ मिलती हैं वे राजस्थानी मिश्रित हैं अथवा राजस्थानी से अत्यधिक प्रभावित हैं। 'ब्रज भाषा पर खड़ी बोली का, राजस्थानी का तथा पांचाली का प्रभाव पड़ा है'[2]।

पृथ्वीराज रासो : इस संबंध में पृथ्वीराज रासो का उल्लेख ही यहाँ अभीष्ट है क्योंकि एक तो उसकी भाषा को पिंगल अर्थात् पुरानी ब्रज बतलाया गया है और दूसरे विद्वानों द्वारा वह आदिकाल में विवेचनीय समझा गया है। यहां रासो संबंधी चर्चा के विशेष विस्तार में न जाकर निष्कर्ष रूप में अधोलिखित बातें कहनी ही आवश्यक हैं :—

(१) अकबर के शासन काल से पूर्व ऐसा कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता जिसमें कवि चन्द वरदाई का पृथ्वीराज रासो के रचयिता के रूप में उल्लेख हो।

(२) पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह (प्रबन्धों का रचनाकाल–संवत् १२९० से १५२८; लिपि काल–संवत् १५२८) के दो छन्दों[3] से केवल इतना ही विदित होता है कि 'चंद बलद्दिउ' नामक किसी कवि ने पृथ्वीराज की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छन्द लिखे थे। इनसे यह मालूम नहीं पड़ता :—

(क) कि चन्द वरदाई पृथ्वीराज का समकालीन और उनका दरबारी कवि था,

(ख) कि उसने पृथ्वीराज के विषय में प्रबन्ध-काव्य की रचना की थी,

(ग) कि उस काव्य का नाम 'पृथ्वीराज रासो' था।

(३) अब तक पृथ्वीराज रासो की जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनको चार रूपान्तरों (वृहद्, मध्यम, लघु और लघुतम) में विभाजित किया गया है; किन्तु

(क) रूपान्तरों वाली बात अधिक स्पष्ट नहीं है। प्रतियों के आधार पर न तो रूपान्तरों के ठीक समय का पता चलता है और न ही उनके पुष्ट आधार का। ये रूपान्तर एक काल के भी हो सकते हैं और भिन्न-भिन्न कालों के भी।

(ख) हस्तलिखित प्रतियाँ (i) स्वयं में स्वतंत्र भी हो सकती हैं, (ii) परस्पर कुछ अंशों में सम्बन्धित भी हो सकती हैं, और (iii) एकाधिक या सभी प्रतियों की एक आधार-भूत प्रति भी कोई हो सकती है।

---

१. (क) ब्रजभाषा व्याकरण : डा० धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
(ख) राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया; पृ० ३१,५५, सन् १९५२

२. हिन्दी शब्दानुशासन : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी; पृ० ५२३–५२४, संवत् २०१४

३. (क) 'न जाणउ चंदबलद्दिउ कि न वि छुट्टइ इह फलह'
(२) 'जंपइ चंदबलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ' —पृ० ८६

(ग) लघुतम रूपान्तर की प्रति को छोड़कर शेष सब प्रतियाँ संवत् १७०० के पूर्व की नहीं हैं।
(घ) यदि लघुतम रूपान्तर की प्रति (जिसका लिपिकाल आषाढ़ सुदी ५, संवत् १६६७ है) प्रामाणिक है, तो रासो की अब तक प्राप्त प्रतियों में वह सबसे प्राचीन है।
(ङ.) 'इस प्रकार यदि पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द पृथ्वीराज का समकालीन था, तो प्राप्त प्रतियों में से कोई भी उसकी कृति नहीं है'[1]।

(४) कुछ विद्वानों के अनुसार पृथ्वीराज रासो की रचना चन्द वरदाई ने पृथ्वीराज के राजत्व-काल में की थी[2] किन्तु समय समय पर इसमें प्रक्षेप होता गया; वर्तमान में प्राप्त 'रासो', इस प्रकार एक हाथ और एक समय की रचना नहीं है[3]। मूल रासो को पृथ्वीराज की समसामयिक प्राचीन रचना मान कर ही हिन्दी के आदिकाल में इसकी चर्चा की जाती है। इसको अपभ्रंश रूप में ढालने का प्रयास भी इसी कारण किया जाता है[4]। वास्तव में अनुमान और अनुश्रुति के आधार पर ही रासो को पृथ्वीराज की समकालिक रचना मान लिया गया है, जिसके लिए अन्वीक्षण और ठोस प्रमाणों की आवश्यकता है।

(५) रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में उठने वाला विवाद केवल ऐतिहासिक पहलू को लेकर ही नहीं है,जैसा कुछ विद्वानों ने कहा है[5]; ओझाजी के पश्चात् उस पर भी पुनर्विचार हुआ है[6]। महत्व की बात तो उसकी भाषा को लेकर है। 'सच तो यह है कि वर्तमान रासो में

---

१. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो : हजारीप्रसाद द्विवेदी, नामवरसिंह; पृ० १७५, सन् १९५७
२. (क) The Modern Vernacular Literature of Hindostan, Page 3.
   (ख) 'पृथ्वीराज रासो की विवेचना' के अन्तर्गत मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का 'पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा'; पृ० २४९–२५०; साहित्य संस्थान, उदयपुर
   (ग) हिन्दी नवरत्न : मिश्रबन्धु; तृतीय संस्करण
३. (क) हिन्दू भारत का उत्कर्ष या राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास, भाग २ : श्री सी० वी० वैद्य; काशी, सवंत् १९८२
   (ख) पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह : मुनि जिनविजय; 'प्रास्ताविक वक्तव्य', पृ० ९–१०
   (ग) हिन्दी साहित्य : डा० श्यामसुन्दरदास; पृ० ९४–९५, नवम सस्करण, सन् १९५३
   (घ) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८, ४४, संवत् २००३
   (ङ) हिन्दी काव्यधारा : राहुल साकृत्यायन; पृ० २८, सन् १९४५
   (च) हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २१, ५०, सन् १९५२
   (छ) असली पृथ्वीराजरासो : पं० मथुराप्रसाद दीक्षित; 'प्राक्कथन; मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, सन् १९५२
   (ज) अपभ्रंश साहित्य : डा० हरिवंश कोछड़। (पृ० ७१ पर 'रासो' की प्राचीनता के संबंध में उद्धृत डा० कोछड़ के मत की जाँच उपयुक्त संदर्भ में होनी आवश्यक है)।
४. रास और रासान्वयी काव्य; पृ० २१९–२२६, ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१६
५. पृथ्वीराज रासो में कथानक-रूढ़ियाँ : श्री व्रजविलास श्रीवास्तव; पृ० ११-१३, सन् १९५५
६. (क) पृथ्वीराज रासो, (सम्पादकीय) भाग १, पृ० १–१५; भाग २, पृ० १–९; भाग ३, पृ० १–१४ तथा भाग ४, पृ० १–३६; साहित्य संस्थान, उदयपुर
   (ख) पृथ्वीराज रासो की विवेचना, पृ० ४०७–५३८ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
   (ग) ओझा निबन्ध संग्रह, भाग २। रासो संबंधी निबंधों पर सम्पादकीय टिप्पणियाँ
   (घ) रास और रासान्वयी काव्य; भूमिका, पृ० १८०–१८४ आदि आदि

पाँच पंक्तियाँ भी ऐसी नहीं हैं जिनकी भाषा को बारहवीं शताब्दी की भाषा कहा जा सके[1]।

(६) यह सही है कि 'रासो' इतिहास-ग्रन्थ नहीं, काव्य-ग्रन्थ है; काव्य को इतिहास की कसौटी पर कसकर प्रामाणिकता की जाँच करना ठीक नहीं है। इस बात को ध्यान में रखने के बावजूद भी न तो रासो की प्रामाणिकता की समस्या हल होती है और न ही उसके निर्माण काल की। जिस तरह विशेष प्रकार[2] के छन्दों के आधार पर असली पृथ्वीराज रासो के खोजने का प्रयास शंका का विषय है, उसी प्रकार काव्य-रूढ़ियों और शुक-शुकी (द्विज-द्विजी) के संवाद के सहारे उसके असली या मिलावटी अंशों की परख करना भी। मिलावट करने वाले जैसे इन छन्दों में प्रक्षेप कर सकते हैं, वैसे ही शुक-शुकी संवाद की कल्पना काव्य-रूढ़ियों के अनुकूल कर कथा में भी। 'असली' रासो के सम्बन्ध में किए गए ये दोनों प्रयास स्तुत्य और महत्वपूर्ण होते हुए भी आंशिक ही कहे जाएँगे।

(७) अद्यावधि उपलब्ध सामग्री के आधार पर सम्पूर्ण 'रासो' के वैज्ञानिक संपादन किए बिना ही उसकी भाषा में एकरूपता खोजना समीचीन नहीं है। भाषा पर विचार करने के लिए रासो में प्रयुक्त 'षड्भाषा'[3] का संकेत भी ध्यान में रखना चाहिए। 'वर्ण रत्नाकर' में 'भाटवर्णना' के अन्तर्गत भाट को ६ भाषाओं के भी तत्वज्ञ होने की आवश्यकता बताई है[4]। कवि चंद के अनुसार, रासो के नायक पृथ्वीराज भी ६ भाषाओं के जानकार थे[5]। 'रासो' को पिंगल की तो नहीं, डिंगल-शैली प्रभावित पिंगल-प्रधान रचना कहना चाहिए।

(८) रासो की रचना, 'राजपूताने के'[6] किसी व्यक्ति द्वारा, 'राजस्थान में'[7], विक्रम १७ वी शताब्दी में हुई है। उसको अंतिम रूप मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय (संवत् १७६०) में दिया गया था। उसकी भाषा संवत् १६०० के आसपास की है, अतः मोटे रूप से यही उसका रचनाकाल भी माना जा सकता है[8]।

पृथ्वीराज रासो न तो 'आदिकाल' की रचना है और न ही उसमें विवेचनीय। वह 'भक्ति-काल' की अब तक उपेक्षित वीर-शृंगार काव्य-परम्परा में विवेचनीय है।

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ४८, सन् १९५२
२. छद प्रवंध कवित्त जति, साटक गाह दुहत्थ। लहुगुर मंडित खंडि यहि, पिंगल अमर भरत्थ॥
'इस प्रवन्ध काव्य में कवित्त(छप्पय), साटक(शार्दूल विक्रीडित), गाह (गाहा, गाथा) और दुहत्थ(दोहा) हैं, जिनके लघु, गुरु, मात्रा और विश्रामादि सब पिंगल मतानुसार तथा संस्कृत काव्यकार भरत-सम्मत हैं'। —पृथ्वीराज रासो, भाग १; पृ० १० तथा 'सम्पादकीय' पृ० १; साहित्य संस्थान, उदयपुर।
३. उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसः।
षट भाषा पुराणंच, कुराणं कथितं मया॥ —पृथ्वीराज रासो, भाग १;पृ० १२, उदयपुर
४. 'पुनु भड्डसन भाट. संस्कृत पराकृत. अवहट्ठ. पैशाची. सौरसेनी. मागधी छह भाषाक तत्वज्ञ'।
५. संस्कृतं प्राकृतं चैव अपभ्रंशः पिशाचिका।
मागधी सूरसेनीच, षट् भाषाश्चैव ज्ञायते॥—पृथ्वीराज रासो, भाग १;पृ० २९, उदयपुर
६.. 'पृथ्वीराजरासो की विवेचना' में श्यामलदास का 'पृथ्वीराज रासा की नवीनता', पृ० १-३
७. वही ; तथा रास और रासान्वयी काव्य; भूमिका, पृ० १९१ आदि।
८. द्रष्टव्य—ओझा निबन्ध संग्रह, द्वितीय भाग; पृ०११२, सन् १९५४, साहित्य-संस्थान, उदयपुर

(४) मैथिली :

मैथिली पूर्वी समुदाय की भाषा है। इस समुदाय में मैथिली के अलावा भोजपुरी, मगही, बंगाली, उड़िया और आसामी (असमी) की गणना की गई है। बिहारी की तीनों भाषाएँ, मैथिली, मगही और भोजपुरी हिन्दी-परिवार के अन्तर्गत नहीं हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका सम्बन्ध मागधी प्राकृत से है[१]। जहाँ तक मैथिली का संबंध है वह एक स्वतन्त्र भाषा है[२]।

मैथिली के सर्वप्रथम कवि विद्यापति नहीं, उमापति उपाध्याय हैं, जो मिथिला के अन्तिम हिन्दू राजा हरसिंहके मंत्री थे (संवत् १३८१ से पहले)। इनके पारिजात-हरण नामक संस्कृत नाटक में इक्कीस गीत मैथिली के मिलते हैं। साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से समकालीन नव्य भारतीय आर्यभाषा साहित्य में उमापति के ये गीत अनुपम हैं[३]। लगभग इसी समय की दूसरी कृति ज्योतिरीश्वर ठाकुर की वर्णरत्नाकर है जिसमें पुरानी मैथिली गद्य का आदि रूप मिलता है। उमापति के पद-चिन्हों का अनुकरण, आगे चलकर विद्यापति ने किया। विद्यापति के जीवन-काल के विषय में कुछ मतभेद है। उनका जीवन-काल संवत् १४०७ से १४९७ तक माना गया है[४]; किन्तु अभी डा० सुकुमार सेन ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि संवत् १५१७ (लक्ष्मणाब्द ३४१=क्रिस्टाब्द १४६०) में 'विद्यापति न केवल जीवित ही थे प्रत्युत समर्थ और अध्यापन-रत थे'। इसके पश्चात्, उनके अनुसार, विद्यापति अधिक दिन जीवित रहे, ऐसा प्रतीत नहीं होता[५]। सो, कालक्रम की दृष्टि से विद्यापति 'आदिकाल' की सीमा के भीतर नहीं आते।

इस प्रकार यदि मैथिली हिन्दी-परिवार की अन्य भाषाओं के साथ विवेचनीय है, तो आदिकाल में उमापति के २१ गीत और वर्णरत्नाकर ही आते हैं।

(५) अपभ्रंश-अवहट्ठ :

अपभ्रंश का साहित्य सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की सम्मिलित धरोहर है। अवहट्ठ का साहित्य भिन्न-भिन्न स्थानों की प्रान्तीय भाषाओं से प्रभावित हुआ है। चूंकि उस समय प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं में उतना भेद नहीं था जो आज है अतः प्रान्तीय विभिन्नताओं के भीतर इसका एक ऐसा भी ढाँचा है, जो प्रायः एक सा है[६]।

अपभ्रंश-अवहट्ठ के साहित्य का उल्लेख, इन कारणों से, हिन्दी साहित्य के आदिकाल की पृष्ठभूमि के रूप में ही निम्नलिखित बातों को लेकर किया जा सकता है :—

(१) भाषा-विकास की दृष्टि से, (२) विचारधारा की दृष्टि से,
(३) साहित्य-परम्परा की दृष्टि से, (४) काव्य-रूपों और छन्दों की दृष्टि से,

---

१. भाषार इतिवृत्त : डा० सुकुमार सेन; साहित्य-सभा, वर्द्धमान
२. वही; तथा Grammar of the Maithili Language : Grierson
३. History of Bengali Literature : Dr Sukumar Sen, Page 24; 1960
४. विद्यापति की पदावली : बेनीपुरी; 'विद्यापति का परिचय', पृ० ११, ३१, संवत् १९८८
५. विद्यापति-गोष्ठी : डा० सुकुमार सेन; पृ० २२-२३, साहित्य-सभा, वर्द्धमान
६. कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा : शिवप्रसाद सिंह; पृ० ७, सन् १९५५

(५) देशी-भाषाओं के विकास के समय, वर्तमान भारतीय आर्यभाषा-साहित्य के मूल में निहित एकता के दृष्टिकोण से।

(६) पुरानी राजस्थानी; राजस्थानी

पुरानी राजस्थानी की कुछ रचनाओं का उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। गुजराती और राजस्थानी के विद्वानों ने प्राचीन रचनाओंका संकलन-संपादन किया है और विभिन्न शास्त्रागारों व जैन-भंडारों में उपलब्ध अनेकानेक रचनाओं का पता साहित्य संसार को है। हिन्दी के 'आदिकाल' की सीमा में आनेवाली पुरानी राजस्थानी भी बहुत सी रचनाएँ प्राप्त हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'हिन्दी-परिवार' की किसी भी भाषा की ऐसी कोई प्राचीन कृति सामने नहीं है जिसके आधार पर आदिकाल का ढाँचा खड़ा किया जाय। मैथिली की उल्लिखित दो रचनाओं को छोड़कर, केवल पुरानी राजस्थानी ही एक ऐसी भाषा है, जिसका गद्य और पद्य, दोनों प्रकार का साहित्य प्रभूत परिमाण में उपलब्ध है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी के तथाकथित 'आदिकाल' को इसी साहित्य का सहारा है।

यदि पुरानी राजस्थानी या जूनी गुजराती के साहित्य को 'आदिकाल' में विवेचनीय समझा जाय, तो कोई कारण नहीं कि गद्य और पद्य की अनेक रचनाओं में उसके केवल बीसलदेव रास का ही उल्लेख किया जाय। इसी प्रकार जब सिद्धान्त रूप में एक बार यह मान लिया गया कि राजस्थानी साहित्य हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विवेचनीय है, तब हिन्दी साहित्य के इतिहास की दीर्घ परम्परा में उसका समुचित उल्लेख न करना दुराग्रह ही कहा जाएगा।

राजस्थानी साहित्य की महत्ता सर्वविदित है[1]; आवश्यकता उसके समुचित मूल्यांकन तथा हस्तलिखित प्रतियों के रूप में सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध रचनाओं के प्रकाशन की है। हिन्दी बनाम राजस्थानी के सम्बन्ध में प्रश्न दो हैं—(१) क्या राजस्थानी साहित्य का मूल्यांकन हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत किया जाए, अथवा (२) अन्य प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति स्वतन्त्र रूप से। पूर्वाग्रह को यदि छोड़ दें तो सब प्रकार से दूसरी बात ही ठीक है। राष्ट्रभाषा के रूप में 'हिन्दी' की सार्वभौम सत्ता से कौन इन्कार करता है? किन्तु 'जनपदीय भाषाओं के प्रति अनुदार होने का अर्थ है हिन्दी की अवनति। राष्ट्र-भाषा तो हमारी हिन्दी ही है। .. .अपनी अपनी जनपदीय भाषाओं की उन्नति .....में हिन्दी का कल्याण है"। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध भाषाविज्ञानी डा० ग्रियर्सन की यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि राजस्थानी तथा विहारी की मैथिली, मगही एवं भोजपुरी बोलियाँ हिन्दी-क्षेत्र के बाहर की हैं।

आशा करनी चाहिए कि अन्य प्रमुख वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं के साहित्य की भाँति राजस्थानी के साहित्य और उसकी सुदीर्घ परम्परा का, स्वतन्त्र रूप से विद्वानों द्वारा समुचित मूल्यांकन किया जाएगा।

---

१. द्रष्टव्य : राजस्थानी साहित्य का महत्व: सपा०—रामदेव चोखानी, ना०प्र०स०, सं० २०६०
२. साहित्य की समस्याएँ : श्री शिवदानसिंह चौहान; पृ० २२२ पर डा० अमरनाथ झा के भाषण का उद्धरण; आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५९

सहायक ग्रन्थों की सूची

[अप्रकाशित तथा हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण पुस्तक में यथास्थान दे दिया है, अतः इस सूची में उनका निर्देश नहीं किया गया है ।]

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, संवत् २००७

२ अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास : डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, सन् १९३८

३ अर्ध-कथानक : सम्पादक—नाथूराम 'प्रेमी'; हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई, सन् १९५७

४ अपभ्रंश काव्यत्रयी : गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९२७

५ अपभ्रंश पाठावली : श्री मधुसूदन चिमनलाल मोदी, सन् १९३५

६ अपभ्रंश व्याकरण : हेमचन्द्र; अनुवादक—श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, संवत् २००५

७ अपभ्रंश साहित्य : डा० हरिवंश कोछड़; भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली

८ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त, संवत् २००४

९ अष्टछाप परिचय : श्री प्रभुदयाल मीतल, संवत् २००६

१० असली पृथ्वीराज रासो; संपादक—पं० मथुराप्रसाद दीक्षित;
मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, सन् १९५२

११ आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन् १८५०–१९००) : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९५४

१२ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, सन् १९५२

१३ आपणा कविओ, भाग १ : श्री केशवराम काशीराम शास्त्री

१४ 'आलोचना', वर्ष ४, पूर्णांक १५, अप्रेल, १९५५ ई०, राजकमल प्रकाशन

१५ ईसर बारोटकृत हरिरस ग्रंथ : पींगळशी पाताभाई, संवत् १९८०

१६ उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण : भारतीय विद्याभवन, बम्बई, संवत् २०१०

१७ उत्तरी भारत की संत परम्परा : श्री परशुराम चतुर्वेदी, संवत् २००८

१८ उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९८५

१९ उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९८८

२० उर्दू साहित्य का इतिहास : डा० एजाज हुसेन; राजकमल प्रकाशन, सन् १९५७

२१ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह : सर्वश्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा, संवत् १९९४

२२ ओझा निबन्ध संग्रह, भाग १ : गौ० ही० ओझा; साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९५४

२३ ओझा निबंध संग्रह, भाग २ : " " " "

२४ ओझा निबंध संग्रह, भाग ३ तथा ४ : " " " "

२५ कबीर : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९४७

२६ कबीर की विचारधारा : डा० गोविन्द त्रिगुणायत, संवत् २००९

२७ कबीर ग्रन्थावली : संपादक—डा० श्यामसुन्दरदास; ना० प्र० स० काशी, संवत् २०१३

२८ करनी चरित्र : श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य;
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८

२९ कवि चरित : श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, सन् १९५२
३० कविता कौमुदी : पं० रामनरेश त्रिपाठी, संवत् १९९०, प्रयाग
३१ कान्हड़दे-प्रबन्ध : पद्मनाभ; राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर, सन् १९५३
३२ काव्यादर्श : दण्डिन्; भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना, सन् १९३८
३३ काव्यानुशासन : हेमचन्द्र; रसिकलाल पारिख, रामचन्द्र अथवले, सन् १९३८
३४ काव्य मीमांसा : राजशेखर; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९२४
३५ कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा : विद्यापति; संपादक—श्री शिवप्रसादसिंह, सन् १९५५
३६ कुमारपाल चरितं : भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, सन् १९३६
३७ कृष्ण रुक्मणी री वेलि : सम्पादक—डा० टेसीटरी; एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
३८ कृष्ण रुक्मणी री वेलि : सं०—नरोत्तमदास स्वामी; श्रीराम मेहरा एण्ड कं०, आगरा
३९ कृष्ण रुक्मणी री वेलि : सं०—आनन्दप्रकाश दीक्षित; विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
४० कृष्ण रुक्मणी री वेलि : संपा०—श्री कृष्णशंकर शुक्ल; साहित्य निकेतन, कानपुर
४१ कृष्ण रुक्मणी री वेलि : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९३१
४२ खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास :
श्री ब्रजरत्नदास; हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, संवत् २००९
४३ खुसरो की हिन्दी कविता : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१०
४४ गीत मंजरी : सादूल ओरियंटल सिरीज, बीकानेर; सन् १९४४
४५ गीता रहस्य : श्री बाल गंगाधर तिलक, तृतीय मुद्रण, संवत् १९७५
४६ गुजराती भाषा अने साहित्य : प्रो० न० भो० दिवेटिया;
संक्षेपकार—के० का० शास्त्री; श्री फोर्बस् गुजराती सभा बंबई, सन् १९५७
४७ गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति : श्री बेचरदास जीवराज दोशी, बंबई युनिवर्सिटी, सन् १९४३
४८ गुजराती साहित्य, खण्ड ५ मो; संपादक—श्री क० मा० मुन्शी, बंबई, सन् १९२९
४९ गुजराती साहित्यनां स्वरूपो (पद्य विभाग) : डा० मंजुलाल र० मजमुदार, सन् १९५४
५० गुजराती साहित्यनी रूपरेखा : श्री विजयराय कल्याणराय वैद्य, पहली आवृति
५१ गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन : श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, सन् १९५१
५२ गुर्जर रासावली : गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९५६
५३ गोरखबानी : सम्पादक—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, संवत् १९९९
५४ गोरा हट जा, 'परम्परा', जोधपुर, वर्ष १, अंक २, सन् १९५६
५५ चन्द वरदायी और उनका काव्य : डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, सन् १९५२
५६ चन्द्रसखी और उनका काव्य : 'शबनम', लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, संवत् २०११
५७ चारणो अने चारणी साहित्य : श्री झवेरचन्द मेघाणी, सन् १९४३
५८ चौरासी वैष्णवन की वार्ता : संपादक—श्री द्वारकादास पारीख, संवत् २००५
५९ छन्द प्रभाकर : श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
६० छन्द राउ जइतसी रउ बीठू सूजइ रउ कहियउ : सं०—टैसीटरी, ए०सो०; कलकत्ता
६१ जायसी ग्रंथावली : सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल; ना०प्र०स०, काशी, संवत् २०१३

६२ जेठवे रा सोरठा, 'परम्परा', जोधपुर, वर्ष २, अंक ५, सन् १९५८
६३ जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय :
सम्पादक—मुनि जिनविजय; श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९२६
६४ जैन गुर्जर कविओ, भाग १ : श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, सन् १९२६
६५ जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, खण्ड १ : श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, सन् १९४४
६६ जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, खण्ड २ : श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, सन् १९४४
६७ जैन लेख संग्रह, जैसलमेर : तृतीय खण्ड, कलकत्ता, सन् १९२९
६८ जैन सती मण्डल (दो भाग) : लालन निकेतन, मढड़ा, सन् १९२२
६९ जैन साहित्य और इतिहास : पं० नाथूराम 'प्रेमी'; हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई, सन् १९५६
७० जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास : श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, सन् १९३३
७१ जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९५
७२ डिंगल कोष, 'परम्परा', जोधपुर, अंक ३–४, सन् १९५६–५७
७३ डिंगल में वीर रस : डा० मोतीलाल मेनारिया, संवत् २००८
७४ डिंगल साहित्य : डा० जगदीशप्रसाद; हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इला०, सन् १९६०
७५ डिंगल साहित्य में नारी : श्री हनुवंतसिंह देवड़ा, सन् १९५५
७६ डूंगरपुर राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९२
७७ ढोला मारूरा दूहा : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०११
७८ तसव्वुफ अथवा सूफीमत : श्री चन्द्रबली पाण्डेय; सरस्वती मन्दिर, बनारस, सन् १९४८
७९ तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, (तृतीय संस्करण) सन् १९५३
८० दक्खिनी हिन्दी : डा० बाबूराम सक्सेना; हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५२
८१ दयालदास री ख्यात, भाग २ : सादूल ओरियंटल सिरीज, बीकानेर
८२ दादा श्री जिनकुशल सूरि : सर्वश्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, संवत् १९९६
८३ दादू : आचार्य क्षितिमोहन सेन, १३४२ बंगाब्द
८४ दादूदयाल का सबद : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९०७
८५ दादू सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय : स्वामी मंगलदास, श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर
८६ देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र, सन् १९४९
८७ देशी नाममाला : हेमचन्द्र; बंबई संस्कृत सिरीज, सन् १९३८
८८ दोधक वृत्ति : हेमचन्द्र; श्री भगवानदास, सन् १९१६
८९ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : सम्पादक-प्रकाशक—ठाकुरदास सूरदास
९० नरसी मेहता को माहेरो : श्यामलाल हीरालाल, मथुरा
९१ नरसी रो माहेरो : साह शिवकरण रामरतन दरक, इन्दौर
९२ नागदमण : साँया झूला; सम्पादक—चारण हमीरदान, पालणपुर, सन् १९३३
९३ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट
९४ नाट्य शास्त्र : भरत मुनि; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा
९५ नाथ-संप्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५०

९६ नाथ-सिद्धों की बानियाँ : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४
९७ निमाड़ी और उसका साहित्य : डा० कृष्णलाल हंस; हिन्दु०एके०, इला०,सन्१९६०
९८ पंचामृत : स्वामी मंगलदास; जयपुर, सन् १९४८
९९ पंदरमा शतकना चार फागु काव्यो : श्री के० बी० व्यास
१०० पंदरमा शतकना प्राचीन गूर्जर काव्य : श्री केशवलाल हर्षदलाल ध्रुव, संवत् १९८३
१०१ पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) :
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल; साहित्यसदन, चिरगांव, झांसी, संवत् २०१२
१०२ पद्मचन्द कोष : श्री गणेशदत्त शास्त्री, लाहोर, सन् १९२५
१०३ पाइयलच्छी नाममाला : धनपाल; केसरबाई जैन ज्ञान भंडार, पाटण, संवत् २००३
१०४ पाइयसद्दमहण्णवो : पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द शेठ, कलकत्ता, संवत् १९८५
१०५ पाहुड़ दोहा : मुनि रामसिंह; सम्पादक—डा० हीरालाल जैन, कारंजा, संवत् १९९०
१०६ पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह : सम्पादक—मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, सन् १९३६
१०७ पुरानी राजस्थानी : डा० टैसीटरी; हिन्दी अनुवाद—ना०प्र०सभा, काशी, संवत् २०१२
१०८ पुरानी हिन्दी : श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत्२००५
१०९ पूर्व आधुनिक राजस्थान : डा० रघुबीरसिंह; साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९५१
११० पृथ्वीराज रासो, भाग १ : सम्पादक—कविराव मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, उदयपुर
१११ पृथ्वीराज रासो, भाग २ : " " " " "
११२ पृथ्वीराज रासो, भाग ३ : " " " " "
११३ पृथ्वीराज रासो, भाग ४ : " " " " "
११४ पृथ्वीराज रासो की भाषा : डा० नामवरसिंह, सन् १९५६
११५ पृथ्वीराज रासो की विवेचना : साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९५९
११६ पृथ्वीराज रासो में कथानक-रूढ़ियाँ : श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव, सन् १९५५
११७ प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
११८ प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् (तपा-खरतरभेद प्रत्युत्तर) : श्री मन्मोहनयशः स्मारक ग्रंथमाला
११९ प्राकृत और उसका साहित्य : डा० हरदेव बाहरी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण
१२० प्राकृत पैंगलम् : सम्पादक—श्री चन्द्रमोहन घोष, ए० सो० कलकत्ता, सन् १९०२
१२१ प्राकृत-प्रवेशिका : ए०सी० वूल्नर; अनु०—बनारसीदास जैन, लाहोर,सन् १९३३
१२२ प्राकृत सर्वस्व : मार्कण्डेय; सं०—भट्टनाथ स्वामी, विजगापट्टम्, सन् १९१२
१२३ प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह : गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९२०
१२४ प्राचीन गूजराती गद्य-संदर्भ : सम्पादक—मुनि जिनविजय, अहमदाबाद, संवत् १९८६
१२५ प्राचीन फागु संग्रह : सम्पादक—डा० भोगीलाल सांडेसरा, सन् १९५५
१२६ प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १, प्रथम संस्करण, साहित्य संस्थान, उदयपुर
१२७ " " " भाग २ : " " "
१२८ " " " भाग ३ : " " "
१२९ " " " भाग ४ : " " "

१३० प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ५, प्रथम संस्करण; साहित्य संस्थान, उदयपुर
१३१ " " " भाग ६ : " " "
१३२ " " " भाग ७ : " " "
१३३ " " " भाग ८ : " " "
१३४ " " " भाग ९ : " " "
१३५ " " " भाग १० : " " "
१३६ " " " भाग ११ : " " "
१३७ " " " भाग १२ : " " "
१३८ प्रेमांजलि : श्रीमती इन्दिरा देवी और श्री दिलीपकुमार राय; एम. सी. सरकार एन्ड सन्स लि०, कलकत्ता, सन् १९५२
१३९ बपनाजी की वाणी : सम्पादक—स्वामी मंगलदास, जयपुर, सन् १९३७
१४० बड़ा रुक्मणी मंगल : साह शिवकरण रामरतन दरक, इन्दौर
१४१ बनारसी विलास : बनारसीदास, जयपुर, सन् १९५२
१४२ बांकीदास ग्रंथावली, दूसरा भाग; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९३१
१४३ बांकीदास री ख्यात : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर,जयपुर, सन् १९५६
१४४ बांसवाड़ा राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९३
१४५ विरुद-छिहत्तरी : दुरसा आढ़ा; सम्पादक—बख्शी जागीरसिंहजी बछराज, जोधपुर
१४६ विरुद-छिहत्तरी : दुरसा आढ़ा; श्री प्रताप सभा, उदयपुर
१४७ बिहारी की वाग्विभूति : आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, संवत् २००८
१४८ बीकानेर जैन लेख संग्रह : सर्वश्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा
१४९ बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खंड : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९६
१५० बीसलदेव रास : सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त तथा अगरचंद नाहटा, सन् १९५३
१५१ ब्रजभाषा का व्याकरण : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, सन् १९४३
१५२ ब्रजभाषा व्याकरण : डा० धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
१५३ ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन : डा० सत्येन्द्र; साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, १९४९
१५४ भक्त-चरितांक, 'कल्याण', वर्ष २६, जनवरी, १९५२
१५५ भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ : डा०सुनीतिकुमार चटर्जी, सन् १९५७
१५६ भारत निर्माता, भाग १ : एज्यूकेशनल पब्लिशिंग कं० लि०, लखनऊ
१५७ भारत भूमि और उसके निवासी : श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, सन् १९३९
१५८ भारत राज्य मण्डल (गुजराती इतिहास) : सर मनुभाई मेहता
१५९ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, सन् १९५४
१६० भारतीय दर्शन : डा० बलदेव उपाध्याय, सन् १९४८
१६१ भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य : डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, सन् १९५५
१६२ भारतीय भाषा विज्ञान : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, संवत् २०१६
१६३ भारतीय साधना और सूर साहित्य : डा० मुन्शीराम शर्मा, संवत् २०१०

१६४ भाव-प्रकाशन : शारदातनय; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ौदा
१६५ भाषार इतिवृत्त : डा० सुकुमार सेन; साहित्य सभा, बर्द्धमान
१६६ भाषा रहस्य : डा० श्यामसुन्दरदास; इन्डियन प्रेस लि०, प्रयाग
१६७ भूषण-ग्रंथावली : मिश्रबन्धु; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१५
१६८ भोजपुरी भाषा और साहित्य : डा० उदयनारायण तिवारी, सन् १९५४
१६९ मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि : सवंश्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, संवत् १९९७
१७० मध्यकालीन धर्म-साधना : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५६
१७१ मध्यकालीन प्रेम-साधना : श्री परशुराम चतुर्वेदी, सन् १९५२
१७२ मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था : अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ अली, सन् १९२८
१७३ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सन् १९२८
१७४ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : डा० सावित्री सिन्हा, सन् १९५३
१७५ मध्यकालीन हिन्दी गद्य : श्री हरिमोहन श्रीवास्तव, सन् १९५९, राजकमल प्रकाशन
१७६ मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास : डा० ईश्वरीप्रसाद, सन् १९५२
१७७ महाराणायशप्रकाश : श्री भूरसिंह शेखावत
१७८ महाराज श्री गरीबदासजी की वाणी : संपादक—स्वामी मंगलदास, जयपुर
१७९ महिला-मृदुवाणी : मुन्शी देवीप्रसाद
१८० माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध : गणपति; गायकवाड़ ओ० सिरीज, बड़ौदा, सन् १९४२
१८१ मान-पद्य-संग्रह, तीसरा भाग : सेठ रामगोपाल मोहता; बीकानेर, संवत् २००७
१८२ मारवाड़ का इतिहास, प्रथमभाग : पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, जोधपुर
१८३ मारवाड़ का मूल इतिहास : पं० रामकर्ण आसोपा, जोधपुर, सन् १९३१
१८४ मारवाड़ी अंक, 'चाँद', वर्ष ८, खण्ड १, नवम्बर, १९२९
१८५ मारवाड़ी व्याकरण : पं० रामकर्ण आसोपा
१८६ मालवी और उसका साहित्य : श्री श्याम परमार; राजकमल प्रकाशन
१८७ मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग : मिश्रबन्धु; द्वितीय संस्करण
१८८ मीराँ एक अध्ययन : 'शबनम', लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, संवत् २००७
१८९ मीराँ और उनकी प्रेमवाणी : श्री ज्ञानचन्द्र जैन, सन् १९४५
१९० मीराँ की प्रेमवाणी : श्री रामलोचन शर्मा, 'कंटक'
१९१ मीरा की प्रेमसाधना : श्री भुवनेश्वर मिश्र, 'माधव', सन् १९४७
१९२ मीराँ:जीवनी और काव्य : श्री महावीरसिंह गहलोत, संवत् २००२
१९३ मीराँ-दर्शन : प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव, सन् १९५६
१९४ मीराँ-पदावली : विष्णुकुमारी मंजु
१९५ मीराँबाई : डा० श्रीकृष्ण लाल, संवत् २००७
१९६ मीराबाई : श्री अनाथनाथ बसु; श्री जितेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, १३६४ बंगाब्द
१९७ मीराबाई : स्वामी वामदेवानन्द; पंचम संस्करण;
उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, १३६४ बंगाब्द

१९८ मीराबाई का जीवन चरित : मुन्शी देवीप्रसाद; बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता
१९९ मीराँबाई का जीवन चरित्र : श्री कार्त्तिकप्रसाद खत्री
२०० मीराँबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, संवत् २०१२
२०१ मीराबाई की शब्दावली और जीवन चरित्र : बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९१०
२०२ मीराबाईना भजनो : श्री हरसिद्धभाई दिवेटिया, सन् १९५६
२०३ मीराँ-बृहत्-पद-संग्रह : शबनम; लोक सेवक प्रकाशन; बनारस, संवत् २००९
२०४ मीरा-मंदाकिनी : नरोत्तमदास स्वामी; द्वितीय संस्करण, गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा
२०५ मीराँ-माधुरी : श्री ब्रजरत्नदास, संवत् २०१३
२०६ मीरा स्मृति ग्रंथ : बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, संवत् २००७
२०७ मीरा, सहजो और दयाबाई : श्री वियोगी हरि
२०८ मीराँ-सुधा-सिन्धु : स्वामी आनन्दस्वरूप, भीलवाड़ा, संवत् २०१४
२०९ मुंहता नैणसीरी-ख्यात, भाग १ : राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६०
२१० मुहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १; नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् १९८२
२११ मुहणोत नैणसी की ख्यात, भाग २ : „ „ „ „ संवत् १९९१
२१२ यशोनाथ पुराण : सिद्ध रामनाथ
२१३ युगप्रधान श्री जिनदत्त सूरि : सर्वश्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, संवत् २००३
२१४ योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, संवत् २००३
२१५ रघुनाथ रूपक गीतांरो : कवि मंछ; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १९९७
२१६ रहीम रत्नावली : सम्पादक—पं० मायाशंकर याज्ञिक, तृतीय संस्करण, साहित्य सेवासदन, काशी
२१७ राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग : श्री जगदीशसिंह गहलोत, जोधपुर, सन् १९३७
२१८ राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग : श्री जगदीशसिंह गहलोत, जोधपुर, सन् १९६०
२१९ राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, संवत् १९९३
२२० राजरसनामृत : मुंशी देवीप्रसाद
२२१ राजरूपक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १९९८
२२२ राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, सन् १९५२
२२३ राजस्थान की जातियाँ : श्री बजरंगलाल लोहिया, सन् १९५४
२२४ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद : डा० कन्हैयालाल सहल
२२५ राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थ सूची, भाग २, जयपुर
२२६ राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थ सूची, भाग ३, जयपुर
२२७ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग १ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
२२८ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग २ : „ „
२२९ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग ३ : „ „
२३० राजस्थान रा दूहा भाग १ : श्री नरोत्तमदास स्वामी
२३१ राजस्थानी, भाग २ : राजस्थानी साहित्य परिषद्, कलकत्ता

२३२ राजस्थानी कहावतां, भाग १ : श्री नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास, राजस्थानी साहित्य परिषद्, कलकत्ता
२३३ राजस्थानी कहावतां भाग २: श्री नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास; वही—
२३४ राजस्थानी दोहावली, भाग १ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
२३५ राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी; साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९४९
२३६ राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, संवत् २००८
२३७ राजस्थानी भाषा और साहित्य : श्री नरोत्तमदास स्वामी, संवत् २०००
२३८ राजस्थानी लोकगीत : रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, जयपुर, संवत् २०१४
२३९ राजस्थानी लोकगीत, भाग १ : रामसिंह, पारीक और स्वामी; राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८
२४० राजस्थानी लोकगीत, भाग २ : " " " सन् १९३८; वही—
२४१ राजस्थानी लोकगीत, भाग १ : . . . . साहित्य संस्थान, उदयपुर
२४२ राजस्थानी लोकगीत, भाग २ : . . . . . " " "
२४३ राजस्थानी लोकगीत, भाग ३ (विरह, प्रकृति और भक्ति) " " "
२४४ राजस्थानी लोकगीत, भाग ४ : . . . . " " "
२४५ राजस्थानी लोकगीत, भाग ५ (राजस्थानी-मडूत्तर) " " "
२४६ राजस्थानी लोकगीत, भाग ६ : . . . . " " "
२४७ राजस्थानी लोकगीत : श्री सूर्यकरण पारीक, संवत् २०१२, प्रयाग
२४८ राजस्थानी वार्ता, भाग १ : साहित्य संस्थान, उदयपुर
२४९ राजस्थानी वार्ता, भाग २ : " " "
२५० राजस्थानी वार्ता, भाग ३ : " " "
२५१ राजस्थानी वार्ता, भाग ४ : " " "
२५२ राजस्थानी वार्ता, भाग ५ : " " "
२५३ राजस्थानी वार्ता : श्री सूर्यकरण पारीक
२५४ राजस्थानी वीर गीत, भाग १ : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
२५५ राजस्थानी व्याकरण : श्री सीताराम लालस, सन् १९५४, जोधपुर
२५६ राजस्थानी साहित्य, एक परिचय : श्री नरोत्तमदास स्वामी, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर
२५७ राजस्थानी साहित्य का महत्व : सं०—रामदेव चोखानी; ना०प्र०स० काशी, संवत् २०००
२५८ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : श्री मोतीलाल मेनारिया
२५९ राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जयपुर, सन् १९५७
२६० रामकथा (उत्पत्ति और विकास) : डा० कामिल बुल्के, सन् १९५०
२६१ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना : श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', सन् १९५७
२६२ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ : बड़ाबाजार लाइब्रेरी, कलकत्ता, १९५९
२६३ रास और रासान्वयी काव्य : डा० दशरथ ओझा, डा० दशरथ शर्मा; ना०प्र०स०, काशी
२६४ रहस्य : डा० श्यामसुन्दर दास

२६५ रेवातट : डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय, सन् १९५३
२६६ लोकगीत, 'परम्परा', जोधपुर, चैत्र, संवत् २०१३
२६७ वंशभास्कर : सूर्यमल मिश्रण
२६८ वचनिका राठौड़ रतनसिंहजीरी महेसदासोतरी-खिड़िया जगा री कही : टॅसीटरी
२६९ वर्ण रत्नाकर : ज्योतिरीश्वर : एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९४०
२७० वसन्त विलास : सम्पादक—कांतिलाल बलदेवराम व्यास
२७१ वसन्त विलास फागु : केशवदास कायस्थ; फॉर्बस् गुजराती सभा, सन् १९३३
२७२ विक्रम विशेषांक : श्री जैन सत्य-प्रकाश
२७३ विद्यापति की पदावली : सम्पादक—श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, लहेरियासराय
२७४ विद्यापति गोष्ठी : डा० सुकुमार सेन, साहित्य सभा, वर्द्धमान
२७५ विज्ञप्ति-त्रिवेणी : सम्पादक—मुनि जिनविजय; आत्मानन्द सभा, भावनगर
२७६ वीर काव्य : डा० उदयनारायण तिवारी, संवत् २००५
२७७ वीर विनोद, भाग १ : कविराजा श्यामलदास
२७८ वीर विनोद, भाग २ : " "
२७९ वीर सतसई : सूर्यमल मिश्रण; बंगाल हिन्दी मण्डल, संवत् २००५
२८० वृहत् काव्य-दोहन, ग्रंथ सातमा, सन् १९११
२८१ शान्ति कुटि वैदिक ग्रंथमाला, जिल्द ५ : श्री विश्वबन्धु शास्त्री, लाहोर, सन् १९४५
२८२ शिवसिंह सरोज : श्री शिवसिंह सेंगर; नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
२८३ श्री जम्भ गीता : स्वामी भोलाराम महन्त,
ग्राम पीपलगट्टा, हरदा, होशंगाबाद, संवत् १९८५
२८४ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन-चरित्र : सुरजनदास रचित,
स्वामी रामदास, कोलायत्, संवत् २००७
२८५ श्री दादू जन्म लीला परची, स्वामी जनगोपाल कृत : श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर
२८६ श्री दादूदयालजी की वाणी : स्वामी मंगलदास, जयपुर, संवत् २००८
२८७ श्री देवियाण : बारहट ईसरदास; सं०—शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी, १९४८
२८८ श्री पार्श्वचन्द्र गच्छ टूंक रूपरेखा; अहमदाबाद, संवत् १९९७
२८९ श्री ब्रजांक, 'नाम माहात्म्य'; अगस्त, १९४०
२९० श्री सत्पार्श्वचन्द्र प्रकरण माला, भाग १लो; भावनगर, सन् १९१३
२९१ श्रीमद्भागवत्; गीताप्रेस, गोरखपुर
२९२ श्रीमद् विजयराजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ
२९३ श्री यदुवंश-प्रकाश अने जामनगरनो इतिहास, तृतीय खंड :
मावदानजी भीमजी भाई रतनू, सन् १९३४
२९४ श्री राधा का क्रमिक विकास : डा० शशिभूषण दासगुप्त, सन् १९५६
२९५ श्री रामस्नेही संप्रदाय : वैद्य केवलराम स्वामी, बीकानेर, सन् १९५९
२९६ श्री स्वामी दादूदयाल की वाणी : श्री चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, अजमेर, सन् १९०७

२३२ राजस्थानी कहावतां, भाग १ : श्री नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास,
राजस्थानी साहित्य परिषद्, कलकत्ता

२३३ राजस्थानी कहावतां भाग २: श्री नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास; वही—

२३४ राजस्थानी दोहावली, भाग १ : साहित्य संस्थान, उदयपुर

२३५ राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी; साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९४९

२३६ राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, संवत् २००८

२३७ राजस्थानी भाषा और साहित्य : श्री नरोत्तमदास स्वामी, संवत् २०००

२३८ राजस्थानी लोकगीत : रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, जयपुर, संवत् २०१४

२३९ राजस्थानी लोकगीत, भाग १ : रामसिंह, पारीक और स्वामी;
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८

२४० राजस्थानी लोकगीत, भाग २ : " " " सन् १९३८; वही—

२४१ राजस्थानी लोकगीत, भाग १ : . . . . . साहित्य संस्थान, उदयपुर

२४२ राजस्थानी लोकगीत, भाग २ : . . . . . " " "

२४३ राजस्थानी लोकगीत, भाग ३ (विरह, प्रकृति और भक्ति) " " "

२४४ राजस्थानी लोकगीत, भाग ४ : . . . . " " "

२४५ राजस्थानी लोकगीत, भाग ५ (राजस्थानी-पड़ूत्तर) " " "

२४६ राजस्थानी लोकगीत, भाग ६ : . . . . . " " "

२४७ राजस्थानी लोकगीत : श्री सूर्यकरण पारीक, संवत् २०१२, प्रयाग

२४८ राजस्थानी वार्ता, भाग १ : साहित्य संस्थान, उदयपुर

२४९ राजस्थानी वार्ता, भाग २ : " " "

२५० राजस्थानी वार्ता, भाग ३ : " " "

२५१ राजस्थानी वार्ता, भाग ४ : " " "

२५२ राजस्थानी वार्ता, भाग ५ : " " "

२५३ राजस्थानी वार्ता : श्री सूर्यकरण पारीक

२५४ राजस्थानी वीर गीत, भाग १ : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर

२५५ राजस्थानी व्याकरण : श्री सीताराम लालस, सन् १९५४, जोधपुर

२५६ राजस्थानी साहित्य, एक परिचय : श्री नरोत्तमदास स्वामी, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर

२५७ राजस्थानी साहित्य का महत्व : सं०—रामदेव चोखानी; ना०प्र०स० काशी, संवत् २०००

२५८ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : श्री मोतीलाल मेनारिया

२५९ राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जयपुर, सन् १९५७

२६० रामकथा (उत्पत्ति और विकास) : डा० कामिल बुल्के, सन् १९५०

२६१ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना : श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', सन् १९५७

२६२ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ : बड़ाबाजार लाइब्रेरी, कलकत्ता, १९५९

२६३ रास और रासान्वयी काव्य : डा० दशरथ ओझा, डा० दशरथ शर्मा; ना०प्र०स०, काशी

२६४ रूपक रहस्य : डा० श्यामसुन्दर दास

२६५ रेवातट : डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय, सन् १९५३
२६६ लोकगीत, 'परम्परा', जोधपुर, चैत्र, संवत् २०१३
२६७ वंशभास्कर : सूर्यमल मिश्रण
२६८ वचनिका राठौड़ रतनसिंहजीरी महेसदासोतरी–खिड़िया जगा री कही : टेसीटरी
२६९ वर्ण रत्नाकर : ज्योतिरीश्वर : एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९४०
२७० वसन्त विलास : सम्पादक—कांतिलाल बलदेवराम व्यास
२७१ वसन्त विलास फागु : केशवदास कायस्थ; फॉर्बस् गुजराती सभा, सन् १९३३
२७२ विक्रम विशेषांक : श्री जैन सत्य-प्रकाश
२७३ विद्यापति की पदावली : सम्पादक –श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, लहेरियासराय
२७४ विद्यापति गोष्ठी : डा० सुकुमार सेन, साहित्य सभा, वर्द्धमान
२७५ विज्ञप्ति-त्रिवेणी : सम्पादक—मुनि जिनविजय; आत्मानन्द सभा, भावनगर
२७६ वीर काव्य : डा० उदयनारायण तिवारी, संवत् २००५
२७७ वीर विनोद, भाग १ : कविराजा श्यामलदास
२७८ वीर विनोद, भाग २ : „ „
२७९ वीर सतसई : सूर्यमल मिश्रण; बंगाल हिन्दी मण्डल, संवत् २००५
२८० वृहत् काव्य-दोहन, ग्रंथ सातमा, सन् १९११
२८१ शान्ति कुटि वैदिक ग्रंथमाला, जिल्द ५ : श्री विश्वबन्धु शास्त्री, लाहोर, सन् १९४५
२८२ शिवसिंह सरोज : श्री शिवसिंह सेंगर; नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
२८३ श्री जम्भ गीता : स्वामी भोलाराम महन्त,
ग्राम पीपलगट्टा, हरदा, होशंगाबाद, संवत् १९८५
२८४ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन-चरित्र : सुरजनदास रचित,
स्वामी रामदास, फोलायत्, संवत् २००७
२८५ श्री दादू जन्म लीला परची, स्वामी जनगोपाल कृत : श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर
२८६ श्री दादूदयालजी की वाणी : स्वामी मंगलदास, जयपुर, संवत् २००८
२८७ श्री देवियाण : बारहट ईसरदास; सं०—शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी, १९४८
२८८ श्री पार्श्वचन्द्र गच्छ टुंक रूपरेखा; अहमदाबाद, संवत् १९९७
२८९ श्री प्रजांक, 'नाम माहात्म्य'; अगस्त, १९४०
२९० श्री मत्पार्श्वचन्द्र प्रकरण माळा, भाग १लो; भावनगर, सन् १९१३
२९१ श्रीमद्भागवत्; गीताप्रेस, गोरखपुर
२९२ श्रीमद् विजयराजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ
२९३ श्री यदुवंश-प्रकाश अने जामनगरनो इतिहास, तृतीय खंड :
मावदानजी भीमजी भाई रत्नू, सन् १९३४
२९४ श्री राधा का क्रमिक विकास : डा० शशिभूषण दासगुप्त, सन् १९५६
२९५ श्री रामस्नेही संप्रदाय : वैद्य सेवलराम स्वामी, बीकानेर, सन् १९५९
२९६ श्री स्वामी दादूदयाल की वाणी : श्री चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, अजमेर, सन् १९०७

२९७ श्री हरिपुरुषजी की वाणी : साधु देवादास, जोधपुर, संवत् १९८८
२९८ श्री हरिरस : बारहट ईसरदास; श्री मानदान बारठ, ग्रामनगरी, संवत् १९९४
२९९ पुष्पांजलि : श्री अरविन्दाश्रम; पांडिचेरी, सन् १९५१
३०० संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो : संपादक—हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह, सन् १९५७
३०१ संत-अंक, 'कल्याण', वर्ष १२, अगस्त, १९४७
३०२ संत कबीर : डा० रामकुमार वर्मा
३०३ संत काव्य : श्री परशुराम चतुर्वेदी; किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२
३०४ संत-वाणी अंक, 'कल्याण', गीता प्रेस, गोरखपुर
३०५ संतवाणी (दादू वचनामृत) : सम्पादक—पं० लक्ष्मीदत्त गोपाल शास्त्री, संवत् २००९
३०६ संत साहित्य विशेषांक; 'साहित्य-सन्देश', आगरा
३०७ संत-सुधा-सार : श्री वियोगी हरि, सन् १९५३
३०८ संदेश-रासक : अब्दुल रहमान; सम्पादक—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और
विश्वनाथ त्रिपाठी; हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई, सन् १९६०
३०९ संदेश-रासक : अब्दुल रहमान; सम्पादक—मुनि जिनविजय और हरिवल्लभ भायाणी
३१० समयसुन्दर-कृति-कुसुमांजलि : सर्वश्री अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, संवत् २०१३
३११ सम्मेलन-पत्रिका, 'लोक संस्कृति विशेषांक', प्रयाग, संवत् २०१०
३१२ साहित्य की समस्याएँ : श्री शिवदानसिंह चौहान; आत्माराम एण्ड सन्स, सन् १९५९
३१३ साहित्य दर्पण : विश्वनाथ; निर्णयसागर प्रेस, बंबई, सन् १९१५
३१४ सिद्ध-चरित्र : श्री सूर्यशंकर पारीक, रतनगढ़, संवत् २०१५
३१५ सिद्धान्त कौमुदी : निर्णयसागर प्रेस, बंबई, सन् १९३९
३१६ सिद्ध साहित्य : डा० धर्मवीर भारती, सन् १९५५
३१७ सुकाव्य-संजीवनी, प्रथम भाग : श्री शंकरदान जेठी भाई देथा
३१८ सुधांजलि : इन्दिरादेवी और दिलीपकुमार राय; हरिकृष्ण मंदिर, पूना, सन् १९५८
३१९ सुन्दर-ग्रंथावली, प्रथम खण्ड : पुरोहित हरिनारायण,
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, संवत् १९९३
३२० सुन्दर-सार: संपादक—श्री श्यामसुन्दरदास; इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग, सन् १९२८
३२१ सूरदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; तृतीय संस्करण, संवत् २०००
३२२ सोरठी गीत कथाओ : श्री झवेरचन्द मेघाणी, सन् १९३१
३२३ हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह महता, सन् १९५०
३२४ हरस-जीण (नृत्य नाटिका) : राजस्थानी सभा, बम्बई, सन् १९६०
३२५ हरिरस : बारहट ईसरदास; सम्पादक—श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य,
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, संवत् १९९९
३२६ हालां झालां रा कुंडळिया : बारहट ईसरदास; सं०—डा० मेनारिया, संवत् २००७
३२७ हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य : डा० ओम्प्रकाश, प्रथम संस्करण
३२८ हिन्दी काव्य-धारा : श्री राहुल सांकृत्यायन, सन् १९४५

३२९ हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम-प्रवाह : श्री परशुराम चतुर्वेदी, सन् १९५२
३३० हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, संवत् २००७
३३१ हिन्दी काव्य शास्त्र : आचार्य शान्तिलाल 'बालेन्दु', सन् १९५३
३३२ हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास : श्री शमसेरसिंह नरूला, सन् १९५६
३३३ हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेमकाव्य : श्री गुरुदेवप्रसाद वर्मा, सन् १९५७
३३४ हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : श्री नामवरसिंह, सन् १९५४
३३५ हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध : डा० उदयभानुसिंह, सन् १९५९
३३६ हिन्दी छन्द-प्रकाश : श्री रघुनन्दन शास्त्री; प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
३३७ हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : श्री कामताप्रसाद जैन, सन् १९४७
३३८ हिन्दी नवरत्न : मिश्रबन्धु; तृतीय संस्करण
३३९ हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डा० दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
३४० हिन्दी नाट्य साहित्य : श्री ब्रजरत्नदास, संवत् २००१
३४१ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य : डा० कमल कुलश्रेष्ठ, सन् १९५३
३४२ हिन्दी भाषा का इतिहास : डा० धीरेन्द्र वर्मा, सन् १९५३
३४३ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास : डा० उदयनारायण तिवारी, संवत् २०१२
३४४ हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास : श्री जितेन्द्रनाथ पाठक,ना०प्र०स०काशी,संवत्२०१५
३४५ हिन्दी विश्वकोष : श्री नगेन्द्रनाथ बसु, कलकत्ता, सन् १९३१
३४६ हिन्दी वीर काव्य : डा० टीकमसिंह तोमर
३४७ हिन्दी शब्दानुशासन : आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, ना० प्र० स०, काशी, संवत् २०१४
३४८ हिन्दी शब्दसागर : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
३४९ हिन्दी सन्त काव्य-संग्रह : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५२
३५० हिन्दी साहित्य : डा० श्यामसुन्दरदास, सन् १९५३
३५१ हिन्दी साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२
३५२ हिन्दी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, संवत् २०१५
३५३ हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२
३५४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, सन् १९३८
३५५ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संवत् २००३
३५६ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १ : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत्२०१४
३५७ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६ (रीतिबद्ध) : " " २०१५
३५८ हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२
३५९ हिन्दी साहित्य कोश : ज्ञानमण्डल, बनारस, संवत् २०१५
३६० हिन्दुई साहित्य का इतिहास : गार्सा द तासी; अनुवादक—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
३६१ हिन्दू भारत का उत्कर्ष या राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास, भाग २ :
श्री सी० वी० वैद्य; काशी, संवत् १९८६

१६२ A catalogue of Mss. in the Library of H. H. the Maharana of Udaipur : Pt. Motilal Menaria.
१६३ A Catalogue of Rajasthani Mss. in the Library of H. H. the Maharaja of Bikaner : C. Kunhan Raja
१६४ A Concise History of the Indian People : H.G. Rawlinson, 1952
१६५ A Descriptive Catalogue of Bardic And Historical Mss. Sec. I, Part I, (Jodhpur State) : Dr. Tessitori.
१६६ A Descriptive Catalogue of Bardic And Historical Mss. Sec. I, Part II (Bikaner State) : Dr. Tessitori.
१६७ A Descriptive Catalogue of Bardic And Historical Mss. Sec. II, Part I (Bikaner State) : Dr. Tessitori
१६८ A Descriptive Catalogue of the Rajasthani Mss. in the Collections of the Asiatic Society, Calcutta, Part I : Dr. Sukumar Sen, 1957.
१६९ A Grammar of the Maithili Language : Dr. Grierson.
१७० A History of Punjabi Literature : Dr. Mohan Singh Dewana, 1956.
१७१ Ajmer : Historical And Descriptive : Har Bilas Sarda, Ajmer, 1941.
१७२ Amrita Bazar Patrika, Puja No., 1955, Calcutta.
१७३ An Advanced History of India : Majumdar, Roychaudhuryand Datta, 1948.
१७४ Annals And Antiquities of Rajasthan : Tod.
१७५ Cambridge History of India, Vol. III, 1928.
१७६ Chittore And the Mewar Family : Straton.
१७७ Classical Poets of Gujarat : G. M. Tripathi.
१७८ Crescent in India : S. R. Sharma (Hindi Translation, 1954).
१७९ Encyclopaedia of Religion And Ethics, Vol. IV.
१८० Gazetteer of the Bikaner State : Captain P. W. Powlett.
१८१ Geographical Factors in Indian History : K. M. Panikar; Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1955.
१८२ Gorakhnath And the Kanphata Yogis : G. W. Briggs, Calcutta, 1938.
१८३ Gujarat And Its Literature : K. M. Munshi, 1954.
१८४ Historical Grammar of Apabhramsa : Dr.V.G.Tagare, Poona, 1948.
१८५ History of Bengali Literature : Dr. Sukumar Sen, 1960.
१८६ India—A Short Cultural History : H. G. Rawlinson, Bombay, 1958.
१८७ India's Culture Through the Ages : Mohanlal Vidyarathi, Kanpur 1952
१८८ India Through the Ages : Dr. Jadunath Sarkar, Calcutta, 1928.

३८९ Influence of Islam on Indian culture :
Dr. Tarachand, Allahabad, 1954.
३९० Linguistic Survey of India, Part I : Grierson.
३९१ Maharana Sanga : Har Bilas Sarda, Ajmer.
३९२ Milestones in Gujarati Literature : K. M. Jhaveri.
३९३ Modern Vernacular Literature of Hindostan : Grierson.
३९४ Note on the Principal Rajasthani Dialects : Grierson.
३९५ Obscure Religious Cults : Dr. S. B. Dasgupta, Calcutta University.
३९६ Origin And Development of the Bengali Language Vol. I :
Dr. S. K. Chatterjee.
३९७ Oxford History of India : V. A. Smith, 1923.
३९८ Preliminary Report on the Operation in Search of
Mss. of Bardic Chronicles : H.P. Sastri; Asiatic Society, Calcutta.
३९९ Punjab Castes : L. Ibbotson.
४०० Rasa Mala : Forbes.
४०१ Religious Sects of the Hindus : H. H. Wilson.
४०२ Selections from Classical Gujarati Literature, Vol. I; Taraporewalla
४०३ Selections from Hindi Literature, Book IV ;
Lala Sitaram; Calcutta University, 1924.
४०४ Specimen with a Dictionary And a Grammar of the Dialects Spoken
in the State of Jeypore : G. Mecalister, Allahabad Mission Press, 1898.
४०५ Studies in Indian History And Culture : N. N. Law; London, 1925.
४०६ Sufism : A. J. Arbery, 1950.
४०७ Sufism, Its Saints and Shrines : John A. Subhan; Lucknow, 1938.
४०८ The Art And Architecture of Bikaner State : Dr. H. Goetz, 1950.
४०९ The Catalogue of Gujarati And Rajasthani Mss. in the India office
Library; Oxford University Press, 1954.
४१० The Jains in the History of Indian Literature : Dr. M. Winternitz, 1946.
४११ The Nirguna School of Hindi Poetry : Dr. P. D. Badthwal,
Indian Book shop, Benaras.
४१२ The Practical Sanskrit English Dictionary :
Vaman Shivram Apte, Bombay, 1924.
४१३ The Sikh Religion, Its Gurus, Sacred Writings and Authors : Mecauliff.
४१४ The Story of Mirabai : Bankey Behari; Gita Press, Gorakhpur, 1939.
४१५ Tribes And Castes of the Central Provinces : R. V. Russel.

पत्र-पत्रिकाएँ

१ अजन्ता
२ अनेकान्त
३ आलोचना
४ कल्पना
५ धारण
६ जनवाणी
७ जैन जगत
८ जैन धर्म-प्रकाश
९ जैन सत्य-प्रकाश
१० जैन साहित्य-संशोधक
११ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका
१२ भारतीय विद्या
१३ भास्कर
१४ मरु-भारती
१५ राजस्थान
१६ राजस्थान-भारती
१७ राजस्थानी
१८ राजस्थानी साहित्य
१९ वरदा
२० शोध-पत्रिका
२१ संत-वाणी
२२ सम्मेलन-पत्रिका
२३ संयुक्त राजस्थान
२४ सरस्वती
२५ साहित्य-सन्देश
२६ सेनानी
२७ हिन्दी अनुशीलन
२८ Indian Antiquary
२९ Journal of the Asiatic Society, Calcutta
३० Journal of the Gujarat Research Society, Bombay

नामानुक्रमणिका

अ

अंगद १७०, १७३
अंचल मतोत्पत्ति ३३९
अंजनासुन्दरी २४०
अंजनासुन्दरी चौपाई २६३
अंजनासुन्दरी रास २६९
अंडाल २९५
अंतरवेद १३५
अंबड़ चरित २४७
अकबर १०७, १०८, १०९, ११०, १११ ११२, १२०, १२१, १३१, १३३, १३५, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४६, १४८, १५३, १५४, १५५, २२६, २८२, २८८, २९१, ३०३, ३०५, ३१५, ३४४, ३४५ ३५३, ३५४, ३६१, ३६८
अकबरनामा १५४, १५५, ३४६
अकबर प्रतिबोध रास ३६१
अकबरसाहजी ३४४
अकबरियाह १५३
अकबरियो १४२
अकबरी १५६, १८१
अक्षयचन्द्र शर्मा २४१
अखा ७७, १४९
अखैराज चौहान ९१
अखैराज परमार ३५५
अगो भाणोत बारहट १२०
अगड़दत्त रास २५९, २६९
अगरचन्द नाहटा ४, ५, १०४, १४०, १५१, १५४, १९७, २२२, २२६, २३८, २४३
अचलदास खीची ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, १४७
अचलदास खीची री वात १४७
अचलदास खीची री वचनिका १८, ३०, ७४, ७५, ८३, १४७, ३३५, ३४२
अचलेसरि ८५
अजबकुँवर बाई ३०७, ३२१
अजमेर ८९, ११७, १४० २९७, ३४५, ३४६ ३५०
अजमेर मेरवाड़ा ३, ३५
अजयमेरु ३४०
अजानेर २१५
अजितनाथ वीनती २४९
अजित स्तवन २५९
अजीत मोहिल ३४६
अणहलपुर ९३
अतिचार ३३४
अतिचार चोपई २५४
अतिशत स्तवन २५५
अतिशय सहित महावीर स्तवन २५५
अध्यात्म रामायण १७१
अनाथनाथ वसु ३६४
अनाथी संधि (विमलविनय) २३७
अनिरुद्ध १५८, १९१
अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ४, १८, ८३, ८७ १०१, १०२, ११२, ११६, १२०, १२१, १३२, १३६, १४६, १४७, १५१, १५५, १६२, १७०, १७६, १७७, १९३, १९४, १९६, २१०, २२४, २२६, २६७, २९८, ३०७, ३५८, ३५९
अपभ्रंश-काव्यत्रयी २३७
अबुलफजल ४, १५५
अब्दुल रहमान १९५
अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, ११४, १५१, १९६, २२२
अभय धर्म २५९
अभरंग (नगाड़ा) ७८
अमर १५५
अमरकुमार चौपाई २६६
अमरथान ८५
अमरनाथ झा डा० ३७२
अमरबाई १२६
अमरमाणिक्य २६५
अमर गतगी २५४
अमरसिंघ १४८
अमरसिंह राठोड़ १३२, १४०, १४८
अमरसिंह राणा (प्रतापसिंघोत) १४६, १५०, १५५, ३५४

अमरसिंह राणा (द्वितीय) ३५६, ३७०
अमरसी १४६
अमरसेन वयरसेन चोपाई २५८, २६३
अमरुक शतक १९५
अमीर खुसरो ३६३, ३६७
अम्बड़ चोपाई २५७
अम्बदेव सूरि २३०
अम्बालाल प्रेमानन्द शाह २४१
अम्बिका १८३, १८४, २१२, ३४०
अयोध्या १७०, १७१, १७२, १७३
अरगंज (खड्ग) ७८
अरजण १४०, २२७
अरजन ८५, १४०
अरब खां १४८
अरवद पहाड़ि १४४
अरावली ३, ३५, २६१
अर्जुन ११४, १३८
अर्बुद ३
अर्बुद तीर्थ विज्ञप्ति २४९
अलफखान ९३
अलवर ३, ३४, २७३
अलाउद्दीन खिलजी ६३, ९१, ९२, ९३, ९४, ९६, २१७, २६८
अलावदीन ९७
अलू १३६
अलूखान ९६
अल्लूजी चारण (कविया) १२, १३३
अवन्ति सुकुमाल स्वाध्याय २५२
अवंती ३३
अशोक ६३
अशोकवाटिका १७२
अष्टछाप ३१५, ३१६
अष्ट लक्ष्मी २४५
अष्टापद तीर्थ बावनी २४९
असाइत १९५
अहमदाबाद ९१, १४१, २८१, ३४३
अहिनारी १८१
अहिल्या १७१

आ

आँख कान संवाद (सहजसुन्दर) २४५, २५३
आईने अक्बरी ४
आउए १३२, १४९
आगमछत्रीशी २५४
आगरा १००, १४०, १५९, २४४, ३४४,
आचारंग सूत्र बालाव बोध २३७
आचार्य (महाप्रभु वल्लभाचार्य) ३०६, ३०
आछलदे ११४
आणासुन्दर २४८
आठ देसी गूजरी ४
आठमद प्रभाव २६५
आडावळा २०४
आदेवळ १४४
आडां (गांव) १३९
आत्मप्रतिबोध जयमाल २५६
आत्मराज रास २५३
आत्म शिक्षा २५४
आदर्श हिन्दी शब्दकोष ३१२
आदि जिन विनती २५५
आदिनाथ शत्रुंजय स्तवन २५३
आदिनाथ स्तवन २५९
आदीश्वर स्तवन विज्ञप्तिका २५४
आनन्दप्रकाश दीक्षित डा० १६१, १६
आनन्द रामायण १७१
आनन्द सन्धि (विनयचंद) २३७
आनन्दस्वरूप स्वामी ३१३
आनन्दी २१६
आबू ८९, १०६, १४२, २८२, ३४
आबू रास २३०
आमेर २८२, २८७
आमोद (आम्रपद) २०६
आम्बेर १५०
आम्बो मोरियो २२३, २२६
आम्बो मोर्योजी आंगणे २२६
आरब १४८
आर० बी० रसेल ११४
आराधना २५५, ३३४
आराधना चौपाई २६५
आराधना मोटी २५४
आराम शोभा चौ० २५७
आर्दकुमार चौ० २६६
आर्द्रकुमार धमाल २४३
आर्द्रकुमार धवल २५०
आर्द्रकुमार विवाहलउ २४४
आलणसी ७८
आला चारण १२, ६७, ८२
आशानन्द बारहट १२६
आशुतोष मुखर्जी ७०
आषाढ़भूति २६६

आषाढ़ भूति चौ० (संबंध) २६६
आषाढ़भूति धमाल २४३
आसकरण २२५
आसकरण महारावल ३५१
आसथानजी राव ११३
आसराज २८८, २२९
आसाइत २३९
आसा बारहट १०४, १२३, १२४, १२५
१८५
आसिदवेग १५४
आस्याम ३४४
इ
इच्छाराम सूर्यराम देसाई २९९
इन्द्र १३, १३३, १८७, १९२, २११
इन्दिरा देवी ३६४
इबोट्सन् ११४
इब्राहिम (बादशाह) १००
इराच जहाँगीर सोराबजी तारापोरवाला ३१३
इलापुत्र चरित्र २५१
इलापुत्र रास २५७
ई
ईडर १७६, १९६ १९७, १९८
ईंदा ८२
ईरियावली रास २५३
ईलाती पुत्र सझाय २५३
ईस्वर सूरि २४७
ईश्वरीप्रसाद रामचन्द्र ३२६
ईसरदास बारहट ७०, १०४, १०५, १२५,
१२६, १२८, १८५, १८७, १८९, २९८,
३१६, ३५२, ३५४, ३५७
ईसर रतनू ३५१, ३५३
ईसागसीह २९५
उ
उगमसी ७५
उगमसी भाटी २७२
उज्जेणी २३८, ३३८। उज्जैन २०८
उज्वल नीलमणि १८६
उडिंगल नागराज १६, १७
उत्तर पुराण १०
उत्तराध्ययन छत्रीसी २५४
उत्तराध्ययन छत्रीस गीत २५८
उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण ३०, ३६८
उक्ति समुच्चय ३३८
उदयनारायण तिवारी डा० १५, ३६, १४१
उदयपुर ३, ९, ३४, १५५, ३४७, ३५१
उदयपुर राजकीय भंडार १७०
उदयभानु २४६
उदयराज उज्वल, ९, १३
उदयसिंह भटनागर ९, ११५, ३२३
उदयसिंह (मोटा राजा) १३२, १४९, ३४५
उदयसिंह राठौड़ १३३, ३१६
उदयसिंह राणा १०५, ११०, १२०, १४०, १५०,
१५२, १६२, ३२३, ३५१, ३५२, ३५३
उदयागिर १२१
उदियादीत (पँवार) ३४५
उदरगीत २५६
उदल ७६
उदाह राजर्षि संधि (संयममूर्ति) २३७
उदैराम ७
उदसीघ १४५
उद्द २२२
उद्धव २२१
उद्योतन सूरि ४
उपदेश रसायन रास २३५
उपदेश रहस्य गीत २५४। उमादे १४७
उमादे (भटियाणी राणी) १०४, १२४, ३५९
उमादे भटियाणी रा कवित्त १०५
उमादे रा कवित्त १२४
उमादेवडी २६०
उमापति उपाध्याय ३७१
उर्मिला १७१
उलक १०८, १०९
उषा १९१, १९२
उषाहरण १९१
उष्णगीत २२३, २२८। उसमान खान ८५
ऊ
ऊकेशवंश ३४४
ऊजळी २१७, २१८
ऊदल १३४
ऊदा साढू १४८
ऊदिला ३४४
ऊधौ-उद्धव ४३
ऊमरकोट ११३, २९८
ऊमरखान १०३
ऊमरा सूमरा २०४, २०५, २६१, २६२
ऊमादे के गीत २२६
ऋ
ऋषभदास २५०

कूर्मरिसि १६४
कूमनेर ९०
कूभा ११०
कृत्तिवास पंडित ३५६
कृत्तिवासीय रामायण १७१, २३८, ३५७.
कृष्ण ४५, ४७, १३८, १५१, १५८, १५९, १६७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८७, १८८, १९३, २१०, २११, २१२, २२१, २३६, ३०४, ३०९, ३१६, ३१९, ३२७, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३५६, ३६४
कृष्णकुमार १९१
कृष्णगढ़ ३०७, ३१८
कृष्णजी री वेलि १६६
कृष्णदास अधिकारी ३०६, ३०७, ३२२
कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ३१२
कृष्णशंकर शुक्ल १६१
के० का० शास्त्री २३३, २४०, २४१, २९६
केकैयी १७१, १७२
केलण भाटी ९०
केलवा १२४
केलू वीठू चारण ६८
केवट १७१
केशवदास कायस्थ २२१
केशी प्रदेशी बंध २५५
केसव ९३
केसौ १९०
केसौदास गाडण १५६, १६९, १८९, १९०, १९१, ३१६
कोटड़ा १०५
कोटा ३, ३५
कोश्या वेश्या २४२
कोसाना (गाँव) १०४, १२४
कौशल्या १७१, १७२, १७३
क्हान २२१
क्रन्न १८१ । क्रन्न ३४४
क्रस्नध्यान १२७
क्रिसनजी री वेलि १६२
क्रिसनजी री वेलि गासुला करमसी रुणेचा री कही १६६
क्रिसन रुकमणी री वेलि १६२, १९४
क्षितिमोहन सेन २८१

ख

खंघार २२०
खंदक बाहुबलि गीत २६३
खंधक चरित्र सज्झाय २५४
खंमणोर १११
खरतर आचरण गीत २६५
खरतरगच्छ गुर्वावली ३४१
खतरगच्छ पट्टावली (मणिधारी तक) ३४०
खांडेलौ (पाडेलौ) ३४७
खाकी २८३
खाटावास १३५
खानवा ६३, ६४, ३१३
खापर २५८
खालसा २८३
खिलचीपुर ८३
खींची गगेव नीबावत रो दोपहरो ३६५
खेड़ ७९, १०६
खेतल ११०
खेतसी कांधल १००,
खेतसी राणा १३७ । खेता राणा २९८
खेतु (पेतु) २९८
खेमराज २५८

ग

गग ९०, १९२, २६६, २७९
गंगा १३, ११०, १२१, १२४, १२५, १६८, १७१, १८७, २०४, २२३, ३०८
गंगाजी १३४
गंगा (ब्राह्मणी) २२४
गगाजी रा दूहा १५५, १६८
गंगारामजी ३४४
गज गुण चरित्र १९०
गजनी पान ८५
गजमोख १६९, १७६
गजराज ओझा १२
गजसिंह १९०
गजसुकुमाल संधि (संयममूर्ति, मूलप्रभ) २३७
गढ चीत्तौड़ा ३११
गढ सामोर १९८, १९९, २००
गणपति ५, १९६, २०६
गणपतिचन्द्र १५
गणेशप्रसाद द्विवेदी २८१, २८४
गयराज १९८
गया ९०, ९९
गरभवेलि (लावण्यसमय, सहजसुन्दर) २४३, २५३,
गरीबजन २८३

गरीबदास २८२, ३६२
गरुड़पुराण १२७, १८८
गर्दभिल्ल ३३८
गवरि १६४
गवरिज्या १६४
गवाळियों का स्वर्ग २२२, २२३, २२६
ग्वालियर ८
ग्वालेर ८
गांगा राव २२५, ३५५
गांगा संढायच ३५५
गांघाणी (गाव) ३५५
गागुरणि ८७
गागरोण गढ़ ८३, ८५, १५४
गाडण पसाइत ८७, २४०
गाढ़ा (गाँव) २९१
गिर २८३
गिरनार १४२
गिरधर ३०४, ३०५, ३०६, ३०९, ३२४, ३३१, ३३२
गिरधरदासजी मूधड़ा ३०७
गिरनार नेमिनाथ वीनती २४९, २५०
गिरव्रज १७२
गिरिनारि ३४०
ग्रियर्सन ३४, ३५, ३६, ६९, ७१, २३३, ३१२, ३७२
गीदोली ७७, ७८, १०६,
गीगीबाई २१६
गीत गोविन्द की टीका ३२३
गीत राजि श्री रोहितासजी रो १४५
गीत सुरतांण जैमलोत रो १४३
गीतार्थ पदावबोध कुलक २५४
गीधा १०४
गुडगाँव ३४
गुड़ा १२७
गुजराती जोड़णी कोश २३८
गुण आगम १२७, १८८
गुणगजमोख १६९
गुण छमाप्रव १२७, १८८
गुण जोघायण ८७, ८८, ८९, २४०
गुण निंद्रातत: १८६, १८७, २९८
गुण निरंजन प्राण १०५, १८५
गुण भागवत हंस १२७, १८७
गुण रत्नाकर छन्द २५३
गुण रासलीला १८८
गुण रूपक १९०
गुणवंत १९६
गुणविनय उपाध्याय २४८, २६९, ३३५
गुण वैराट १२७, १८८
गुण सुन्दरी चौपाई २६९
गुरु गोविन्दसिंह ७
गुरु-चेला संवाद २४५
गुरु छत्रीसी २५४
गुर्जरत्रा ३
गुलेरी (चन्द्रधर शर्मा) १५, १३५, १६७
गुसाईंजी (विट्ठलनाथजी) ३०७
गुह १७२
गूदोज १२४, १४१
गेपौ सिंढायच १३४
गोकल, गोकलि २११
गोकुल ११६, २२१, २४०
गोग ११५
गोग गणिका २०८
गोगा (राठौड़) ७५, ७६, ७७, ७९, ८२, ८३, १०२
गोगाजी चौहान ३१, ८४, ११३, ११४, ११५, २७२, ३५८
गोगाजी रा छन्द ११५
गोगाजी रा रसावला ११४
गोगाजी री पैडी १०५
गोढवाड १३१
गोतम स्वामी चतुष्पदिका २४९
गोपाल लाहोरी ४, १५६
गोपीचन्द २२३, ३६२
गोपीचन्द का पद संवाद ३६२
गोपीचन्द गीत २२२, २२३
गोपीनाथ शर्मा डा० १५४
गोरख २६। गोरख २६, ११९
गोरख (नाथ) ६४, ६५, ८१, १९०, १९१, २७४, २७५, २७७, २७९, २८०, २९१, २९२, ३१६, ३६२, ३६३, ३६७
गोरधनजी बोगसा १३८
गोरा ११९, २६७, २६८, २६९
गोरा बादल २६७
गोरा बादल पदमणी चौपई २६, २६६
गोरा बादल री चौपई २६७
गोरिल्ल २६९
गोरी (बादशाह) ७८, ८५, ८६
गोरी संवाद (लावण्यसमय) २४५

गोरै, गोरी २६
गोवर्द्धनराम माधवराम त्रिपाठी ३१२
गोवर्द्धन शर्मा २०१
गोविन्द ३०८, ३३२
गोविन्दचन्द्र २०७
गोविन्द दुबे ३०६
गोविन्ददासजी महन्त १७७
गोसाईं चरित ३०४, ३११
गोसाईंजी (विट्ठलनाथ) ३२१
गौड़ी पार्श्वछन्द २५९
गौतम स्वामी २४०
ग्रीव २८३
घ
घड़सी २८३
घड़सीसर ११८
घनानन्द ३६३
घरि आवोजी आंबो मोहोरीयो २२६
घाघ और भड्डरी १९७
घूमर २२३, २२५
चंडीदान (मिश्रण) ८
चण्डीदान सांदू १४
चंदन बाला २४०
चंदन बाला चरित्र चौपाई २५०
चंदन बाला रास २३०, २५७
चंदन राजा मलयागिरि चौपाई २४८
चन्दवलहिउ ३६८
चन्द वरदाई ३६३, ३६८, ३६९, ३७०
चंदेवरी, चंदेरी ३८
चन्द्रदेव शर्मा प्रो० १५३, १५४
चंद्रसखी ३६३
चन्द्रसेन १२०, १२३, १२४, १४०, १४२, १४३, १४४, १४५, २००
चन्द्रहास आख्यान २०९
चंदा २८३
चंद्रावती २००
चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी २८२
चंपादे १४९, ३६०
चंपापुर १७१
चंपावती २६२
चउंड २४
चउंडा ३४३
चउसरण २५५
चउसरण प्रकीर्णक संधि (चारित्रसिंह) २३७
चउसरण पयन्ना टब्बा ३३७
चतुर कुल चरित्र ३१९
चतुरदास ३०७
चतुरभुज २८३
चतुर्विंसती जिन स्तवन २४९
चतुर्भुज २२१
चत्रकोट ९७
चत्रदास ३१८, २८३
चरण २८३
चरणदास महात्मा ३४, ३०३, ३०८
चर्चरिका २३०
चवंड २४
चांद कुंवर री वात ३४३
चांपादे १४९, १५२
चाचा ८३, ८८, ९१, २९८
चाणक्य वेल १५०
चानण खिड़िया चारण ६७, ११६
चामंड ७५
चावंड १५५
चार प्रांतीय भाषाओं के सर्वे ३३४
चार मंगल गीत २६९
चारित्र मनोरथ माला २५४
चारित्रसिंह २७०, ३३५
चारुचन्द्र २५८
चिड़िया (गाँव) १८९
चिड़िया नाथ ३१६
चित्तौड़ ८९, ९९, ११०, १३७, १९४, २५१ २५७, २६८, ३०८, ३११, ३१५, ३२०, ३५३, ३५४
चित्रकूट चैत्य परिपाटी स्तवन २५४
चित्रकूट ३५३। चित्रकोट २५१
चित्रसेन पद्मावती रास २५७
चिहुंगति वेलि २४३
चीतौड़ ९०, ११०, १३७, १३८, १३९, ३४४
चीत्रोड़ ९०, २९८
चुंडराज १२४
चूंडा १२, ६७, ७५, ८२, ८७, ८८, ९०, ९७, ९९ १०२, १०६, २९८
चूंडाजी दधवाड़िया १५०, १६९
चैतन्य ३१५, ३१७, ३१९, ३२०
चैत्य परिपाटी २४९
चैन २८३
चोखनाथजी २८०
चौंड २४
चौकड़ी ३००

चौवीस जिन पंचबोल स्तवन २५०
चौवीस जिन स्तवन २४९
चौवीस दंडक गर्भित पार्श्वनाथ स्तवन २५४
चौमुजा सिढायच ११६
चौरासी वैष्णवन की वार्ता ३०३, ३०६, ३१८, ३२१, ३२२
चोहथ बारहट २३, ६९, ११६, २४०

छ

छंद (राव जैतसी रो) २७
छंद प्रभाकर २३५
छंद राव जैतसी २३, २६, ४०, २४०
छंद राव जैतसी रो १७, २०, २४०
छंद श्री गोरखनाथ १९०, १९१
छप्पन १५५
छाजहड़ गोत्र ३४४
छापर ३४६
छापरउ २४
छापर-द्रोणपुर ११७
छिताई २१७
छिताई चरित्र २१६, २१७
छीहल २५५, २५७
छीहल बावनी २४४, २५६
छोटा हरिरस १२७

ज

जंगल देश १२
जंबू अंतरंग रास २५३
जंबू अंतरंग रास विवाहलो (सहजसुन्दर) २४४
जंबू चौपाई २६५
जंबू द्वीप पन्नति वृत्ति २५८
जंबू रास २६९
जंबू वेलि (सीहा) २४३
जंबू स्वामी २४०
जंबू स्वामी चरित २३०, २६४
जंबू स्वामी चौपाई २५०
जंबू स्वामी पंचभव वर्णन चौपाई २५०
जंबू स्वामी फाग २४२
जइत १०१, १०३
जइत-पद-वेलि (कनकसोम) २४३, २६६
जइतसी १७, २४, २४०
जइसी २८३
जगजीवनजी २७३, २८३
जगडू २३०, २३५, २४०
जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला ३४३
जगदीशसिंह गहलौत १४, ८३, ११८, ३१२
जगदेव ३४५
जगदेव पँवार की बात ३४५
जगध्दर शर्मा २९२
जगनाथ २८३
जगन्नाथदास २७३, २९५
जगमाल ७६, ७७, ७८, ७९, १०६, १४०, ३४३
जगमाल मालावत की बात ३४५
जगीलाल २८३
जदंबा (जगदंबा) बावनी २६६
जदुपति २३९
जदूनाथ १७८, १७९
जनक १७१
जनकपुर १७१, १७२
जनगोपालजी २७३, २८२, २८८, ३६२-३६३
जनराघो २८३
जनलछमन ३०३, ३०९
जनहरदास २८३
जनहरिदास २९३, २९४
जनार्दन १९१
जमणाजी बारहट १३७
जमन २७९
जमना १८२
जमुण १६५
जमुना १८०
जयकीर्ति सूरि २५१
जयकेसर सूरि ३३९
जयचन्द्र विद्यालंकार ३६
जयतसी ११९
जयदेव १७१, ३१५
जयपुर ३५
जयमल बारहट ३५७
जयमल राठौड़ ११०, १२०, ३५३
जयशेखर सूरि २३१
जयसलमेर १३०
जयसागर २३१, २४८, २४९, ३३८
जयसिंह ८२, १५२
जय सुन्दरी २६६
जयसेन चौपाई २५२
जयसोम २६९, २७०, ३३५
जरासंध १३८, १८३
जरासेन १३३
जलंधरनाथ ७५, ७६, ८२ ८३, ३१६

जल्ला ३५८
जवाद (घोड़ी का नाम) ७८
जशोदा १७८, १७९, १८०
जसनाथ सिद्ध ३१, २७३, २७४, २७९, २८०, ३१६
जसनाथी २७४, २७५, २७९, २८०
जसमादे हाडी ३४३
जसराज १२९
जसवन्त १७७
जसाजी हाला १२७, १२८, १२९
जसू जोइया ७९
जसोदा १८४
जसोधन २५३
जहाँगीर १०७, १३५
जाखो मणिहार १५१
जांगल ३। जागळू ७९, ९९
जांभोजी ३१, २७३, २७४, २७६, २७७, २७९, ३१६
जाडेचा फूल धवलोत १४८
जाजीयां ३४४
जाडा महड़ू (आसकरण) ३५३, ३५४
जानकी १७४
जानकी मगल १६७
जान ट्रेल साहब २८२
जान्हवी १६८
जामनगर १२६, १२७
जामरावल १२६, १२७, १२९, १३०
जार्ज टामस ३
जार्ज मैक्मैन २९८
जालौर ४, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, १२०, १२४, २५२
जावड़ भावड़ रास २५०
जायसी ३६०
जिणपदम सूरि २४२
जिनकुशल सूरि २५८
जिनकुशल सूरि सप्ततिका २४९, २५०
जिनचन्द्र सूरि २४२, ३४१, ३६१
जिनचन्द्र सूरि गीत २६६
जिनचन्द्र सूरि फागु २४२
जिनदत्त सूरि २३५, २३७, ३४०, ३४१
जिनपति सूरि धवल गीत २४४
जिनपद्म सूरि २३०
जिन पालित जिन रक्षित रास २६६
जिन पालित जिन रक्षित संधि २३७, २५९
जिन प्रतिमाधिकार चौपाई २६५
जिन प्रतिमा स्थापना द्विपंचाशिका २५४
जिन प्रभ सूरि ४
जिन माणिक्य सूरि ३४१
जिन राज सूरि २४९
जिनराज सूरि अष्टक २६९
जिनवल्लभ सूरि २३७, २६६
जिनसमुद्र सूरि ३४२
जिनसमुद्र सूरि की वचनिका ३४२
जिनसागर सूरि २५२
जिनसूरि ३३५
जिनसेखर सूरि ३४०
जिनहंससूरि २५८, ३४१
जिनेन्द्रातिशय पंचशिका २५१
जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वर्णना रास २३०
जिनेश्वर सूरि संयमश्री विवाह वर्णन रास २४४
जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास २३५
जिनोदय सूरि विवाहला २४४
जियोजी साखला २८०
जिलवाड़ा ९१
जिह्वा-दांत संवाद (नरपति) २४५
जीदराऊ ११४
जीदराव खीची ११३
जीभ दात संवाद (हीरकलश) २४५, २६५
जीरापल्ली पार्श्वनाथ रास २४५
जी० राय चौधरी डा० ३१३
जीव गोस्वामी ३०२, ३०५, ३०८, ३१५, ३१९, ३२०
जीवदया रासु २३०
जीव प्रतिबोध गीत २७०
जीव स्वरूप चौपाई २६९
जुगलसिंह खीची १२, ८३
जुजठ्ठळ (युधिष्ठिर) ४६
जुरासिंह १८४
जूनागढ़ ७८, २१३, २१५, ३२०
जेठवा २१७, २१८, २१९
जेठवा-ऊजली ७३, २१७
जेठवें रा सोरठा २१८
जेठालाल वाडीलाल दलाल २९८
जेसलगिर १२४
जैसाणै ११८
जैणसी ८५
जैतमाल ७७, १०६, १४९
जैतराम ३०४, ३०९

जैतसी राव १७, २४, २७; ९२, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, ११९, १६२, २२५, ३४६
जैतसी रावल ११८, ११९
जैतसी रासो २७, ९८, १०४
जैतसी री पायड़ी छन्द ९८, ११२
जता राठौड़ १२०, ३५५
जैतारण १२२, १३९, १४०, २२४, २२५
जैदेव १५७
जैन गुर्जर कविओ १७०
जैमल १२०, २८३, ३०७, ३२१, ३४५, ३४७
जैमल की (बहन) बैन ३०७, ३२१
जमलि १२०, ३५५
जसलमेर ३४, ३९, ८७, ८८, ९०, ९९, १०४, १०५, १०७, ११८, ११९, १२१, १२४, १३०, १३४, १४९, १५२, २५८, २५९, ३४२, ३४४
जैसलमेर चरित्र १३०
जैसलमेर पार्श्वनाथ स्तवन २६९
जैसाण १३०
जोइसहीर २६५
जोगणपुर १४६
जोघ १०९, ३१६, ३४६
जोधउ १७
जोधनयर २२९
जोधपुर ३, ३४, ६७, ६८, ९९, १०४, १०७, ११२, १२०, १२३, १२४, १२५, १३२, १३३, १३५, १३६, १४०, १४२, १४४, १४९, १६९, १९०, २२५, २२८, २६४, २७१, २८२, २९८, ३४३, ३४७, ३५२, ३५५, ३५९
जोधा, ६७, ८८, ८९, ९०, ९९, ११७, १९६, २४०, ३१६, ३४७,
जोधाण १३४
जोघौ १७, १९६
जौनपुर २८१
ज्ञानचन्द जैन ३१३
ज्ञानचन्द्र २३९, २४६
ज्ञानसागर २४७
ज्ञानाचार्य २४७
ज्योतिरीश्वर ठाकुर ३७१
ज्योतिषसार २६५

झ

झरडा ११३
झवेरचन्द मेघाणी १४१, ३२५
झाबू २८३
झाबरमल्ल शर्मा ११५, २९२
झालावाड़ ३
झीमा (झीमी) चारणी १४७
झीरापल्ली (जीरापल्ली) पार्श्वनाथ स्तोत्र २४९
झुंझुनू ८८, ९०
झूलणा अकबर पातसाहजी रा १०६, १११
झूलणा दीवांण श्री प्रतापसिंघजी रा १०६, १०९
झूलणा महाराज रायसिंघजी रा ७५, १०६, १०७
झूलणा रावत मेघा रा १४५
झूलणा राव श्री अमरसिंघ गजसिंघोत रा१४५

ट

टहले १३५
टाड ३, ६६, ८३, १५३, १५४, १५७, ३१२, ३१३, ३१४
टीकूं २८३
टीला २८३
टैरेसा २९५
टैसीटरी ६, ११, १७, १८, २०, २१, २२, २३, २६, २८, ७०, ८३, ८७, ९७, ९८, १०२, १०३, ११२, ११५, ११६, ११७, ११९, १२१, १२२, १३०, १५३, १५४, १५५, १५७, १५८, १५९, १६१, १६२, १६६, २३९, २७१, ३४२, ३५०
टोडा १९६, २२४
टौंक ३, ३५

ठ

ठाकुरजी रा दूहा १५५, १६७
ठाकुरसी रोहडियो ११७

ड

डंक और भड्डली ग्रंथ १९७
डाकोर ३२३
डिंगल कोष २४१
डिंगल नाम माळा ७
डिंगल में वीर रस ७४
डिस्क्रिप्टिव कैटालौग २३९
डीडवाणा २९०, २९१
डूगरसपपति २५२
डूगर कालेज बीकानेर १५३
डूगरपुर ३, ३५, ९१, ३५१
डूंगर बावनी २४४, २५२

डूगरसिंह १५०
डूला आशिया चारण ६७
ढ
ढउलउ २८
ढवूरो बारठ १३१
ढिल्ली १०४
ढोलउ २०४
ढोला २८, २०२, २०३, २०४, २०५, २६०, २६१, २६२
ढोला मारवण री चौपई २०१, २५९, २६०, २६१, २६२
ढोला मारू ३१, ३८, ४१, १६१, २०५, २१७, २४७, २५९, २७६, ३५९
ढोला मारूनी वात २०५
ढोला मारू रा दूहा २८, ७३, २०१, २६०, २६१, २६२, २७६, ३५९
ढोला मारु री चौपाई १५६
ढोला समुद २७६
ढोसी (गाँव) ११९
ण
णदणण्दण ३२३
णन्दणण्दण ३२४
त
तत्व विचार प्रकरण ३३४
तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी २९९, ३१३
तवकात-इ- अकबरी १५४, ३४६
तरुणप्रभ सूरि २३१, ३३४, ३३६
तलवाडा १०६
ताज १५९
तानसेन ३०५
तारण स्वामी ३६१
ताराचन्द डा० २८१, २८४
तासी ७१, २३३, २८१, ३१३, ३१४
तीर्थरत्नमुनि १५६
तुकाराम ३०३, ३०६
तुरसम खान ३४७
तुलछी १६८
तुलसीदास १६६-१६७, १६७, २०१, ३११, ३१७, ३२०, ३२१, ३६३
तेजपाल २४०
तेजसार रास २५९
तेजसीं ३४४
तेजा (जासड़ जाट) २७२
तेजानन्द २८३
नेजा वाघौड़ १२१
तेतली मंत्री रास २५३
तेसितोरी ७१
तोगमलां १०८
तोगां ७५
तोगा १०८
त्र
त्रवणी ३
त्रिपुर १७७
त्रिपुर सुन्दरी री वेलि ४०, १७७
त्रिभुवन दीप प्रबन्ध २३९
त्रिभुवन सी १०६
त्रिवेणी १६४, ३१६
त्रिसरा १७५
थ
थंमणा पार्श्वनाथ स्तवन २५७
थवूकड़ा ७
थर्मापोली ६६
थावच्चाकुमार भास २५०
थावच्चासुकोशल चरित्र २६६
द
दण्डी ३२
ददेरा ११४
दधीच ८९
दमघोप १८२
दमयंती २४०, २५१
दमास्वेडी (गाँव) ३४४
दयाबाई ३४, ३०३, ३०८
दयालदास ९८, १०७, १४५, २८३
दयालदास री ख्यात ६७, १०७, १०८, ११७, ११८, १३१, १३४, १४०, १४८
दलपतजी ३४७
दलपत विलास १५४, ३४६
दलपतसिंह ३४६
दला जोइया ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८२
दलै ८०, ८२
दल्ला आसिया १३५
दल्ह २१६
दविस्तुनुल मजाहिब २९१
दशरथ ओझा डा० २३३
दशरथ शर्मा डा० ९८, १७१, १७२, १७३, २३४
दशाश्रुत स्कन्ध ३३९
दसमुख १७६

दसरथ राव उत १६७, १७२
दससीस १७४
दसाणण १७४
दहकंध १७५, १७६
दांता ३
दाऊद २८१
दाणलीला १२७
दातार सूर रौ संवाद १३२
दादू (दादू दयाल) ३५, ६४, २७३, २७५, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९३, २९८, ३१६, ३६१, ३६२, ३६३
दादू जन्मलीला परची २८८, ३६३
दादूपंथ ६५, २७५, २८१, २८३, २८४, २९१ ३६२
दादू महाविद्यालय जयपुर २९२
दानचन्द्र कृत टब्बा १५६
दामउ १९८
दामा ३४४
दामो १९७, १९८
दाहलीया कवरसी ३४७
दि अन्डर वल्ड आफ इण्डिया २९८
दिगम्बर तेरह पंथी शास्त्र भंडार (जयपुर) की सूची ९५
दिनमान कुलक २६४
दिलीपकुमार राय ३६४
दिल्ली ४, ५, ८, ३४, ६३, ७८, ७९, ९३, १००, ११४, १२७, १३७, १४१, १४२, १५५, २६८, ३१५
दुदा १४३
दुमुह प्रत्येक बुध चौपाई २६९
दुरजनां १३३
दुरजोधण १३८, १८९
दुरसा आढ़ा १३५, १३९, १४१, १४२, १४६, १५०, १५३, १५४, १५६, १९४, ३५२, ३५४
दुसासण १८९
दुर्गा सात्तसी २५९, २६२
दुर्योधन १३८
द्रुणपुर ३४६
दूदा आसिया चारण ६७, १३१, ३५४
दूदा राव २९७, ३००, ३१२, ३१३, ३४७
दूदो १२४
दूहा मातृका २३०
दूहा शतक २५४
दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा १४४, १४५
देईदास (देवीदास) १२०
देऊ ८२
देया (शंकरदान जेठी भाई) १४०
देपाल चारण ६८, २४५
देपाल ठाकुर २५०
देपाल (जोइया) ८०
देल्हण देवी ३४१
देव ३०३, ३०९
देवगिरि २१७
देवदत्त चौपई २६३
देवराज ८२
देवराज रतनू १३३
देवल चारणी ११३
देवल बाई १२६
देवल दे ९६
देवसेन १९५
देवागिर ९७
देवादास साधु २९१
देवियाण १२७, १८९
देवीदास रावल ११८
देवीप्रसाद मुंशी ९, १४, १५६, २३३, २९९, ३१२, ३१३, ३१४, ३२६
देवौ १५०
देशनोक ६९
देशीनाममाला २३६, २४१
देसाई (मोहनलाल दलीचन्द) ३०, १६१, १६९, १७०, २०२, २२२, २२६, २३८, २३९, २५५
दोलतिया २२६
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता १५४, ३०३, ३०७, ३२१
दौलतखां २२५
द्रुणपुर ३४६
द्रूतारउ (ध्रुवतारा) ३४८
द्रोणगिरि १७२
द्रोणपुर १६२
द्रौपदी १३८, १८८
द्वारका १२६, १८२, १८३, १८४, २११, २१२, २१६, ३०२, ३०५, ३०६, ३०८, ३१३, ३१९, ३२० ३५६

ध

धड़सी ३४४

डूंगरसिंह १५०
डूला आशिया चारण ६७
ढ
ढउलउ २८
ढवूरो धारठ १३१
ढिल्ली १०४
ढोलउ २०४
ढोला २८, २०२, २०३, २०४, २०५, २६०, २६१, २६२
ढोला मारवण री चौपई २०१, २५९, २६०, २६१, २६२
ढोला मारू ३१, ३८, ४१, १६१, २०५, २१७, २४७, २५९, २७६, ३५९
ढोला मारूनी वात २०५
ढोला मारू रा दूहा २८, ७३, २०१, २६०, २६१, २६२, २७६, ३५९
ढोला मारु री चौपाई १५६
ढोला समुद २७६
ढोसी (गाँव) ११९
ण
णदणण्दण ३२३
णन्दणण्दण ३२४
त
तत्व विचार प्रकरण ३३४
तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी २९९, ३१३
तबकात-इ- अकबरी १५४, ३४६
तरुणप्रभ सूरि २३१, ३३४, ३३६
तलवाड़ा १०६
ताज १५९
तानसेन ३०५
तारण स्वामी ३६१
ताराचन्द डा० २८१, २८४
तासी ७१, २३३, २८१, ३१३, ३१४
तीर्थरत्नमुनि १५६
तुकाराम ३०३, ३०६
तुरसम खान ३४७
तुलछी १६८
तुलसीदास १६६-१६७, १६७, ३०१, ३११, ३१७, ३२०, ३२१, ३६३
तेजपाल २४०
तेजसार रास २५९
तेजसी ३४४
तेजा (जाखड़ जाट) २७२
तेजानन्द २८३
तेजा वाघोड़ १२१
तेतली मंत्री रास २५३
तेसित्तोरी ७१
तोगमखां १०८
तोगां ७५
तोगा १०८
त्र
त्रवणी ३
त्रिपुर १७७
त्रिपुर सुन्दरी री वेलि ४०, १७७
त्रिभुवन दीप प्रबन्ध २३९
त्रिभुवन सी १०६
त्रिवेणी १६४, ३१६
त्रिमरा १७५
थ
थंमणा पार्श्वनाथ स्तवन २५७
थबूकड़ा ७
थर्मापोली ६६
थावच्चाकुमार भास २५०
थावच्चासुकोशल चरित्र २६६
द
दण्डी ३२
ददेरा ११४
दधीच ८९
दमघोष १८२
दमयंती २४०, २५१
दमाखेड़ी (गाँव) ३४४
दयाबाई ३४, ३०३, ३०८
दयालदास ९८, १०७, १४५, २८३
दयालदास री ख्यात ६७, १०७, १०८, ११७, ११८, १३१, १३४, १४०, १४८
दलपनजी ३४७
दलपत विलास १५४, ३४६
दलपतसिंह ३४६
दला जोइया ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८२
दलै ८०, ८२
दल्ला आसिया १३५
दल्ह २१६
दविस्तुनुल मजाहिब २९१
दशरथ ओझा डा० २३३
दशरथ शर्मा डा० ९८, १७१, १७२, १७३, २३४
दशाश्रुत स्कन्ध ३३९
दसमुख १७६

दसरथ राव उत १६७, १७२
दससीस १७४
दसाणण १७४
दहकंध १७५, १७६
दाँता ३
दाऊद २८१
दाणलीला १२७
दातार सूर री संवाद १३२
दादू (दादू दयाल) ३५, ६४, २७३, २७५, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९३, २९८, ३१६, ३६१, ३६२, ३६३
दादू जन्मलीला परची २८८, ३६३
दादू पंथ ६५, २७५, २८१, २८३, २८४, २९१ ३६२
दादू महाविद्यालय जयपुर २९२
दानचन्द्र कृत टब्बा १५६
दामज १९८
दामा ३४४
दामो १९७, १९८
दाहलीया कवरसी ३४७
दि अन्डर वल्ड आफ इण्डिया २९८
दिगम्बर तेरह पंथी शास्त्र भंडार (जयपुर) की सूची ९५
दिनमान कुलक २६४
दिलीपकुमार राय ३६४
दिल्ली ४, ५, ८, ३४, ६३, ७८, ७९, ९३, १००, ११४, १२७, १३७, १४१, १४२, १५५, २६८, ३१५
दुदा १४३
दुमुह प्रत्येक बुध चौपाई २६९
दुरजनां १३३
दुरजोधण १३८, १८९
दुरसा आढ़ा १३५, १३९, १४१, १४२, १४६, १५०, १५३, १५४, १५६, १९४, ३५२, ३५४
दुसासण १८९
दुर्गा सातमी २५९, २६२
दुर्योधन १३८
दुणपुर ३४६
दूदा आसिया चारण ६७, १३१, ३५४
दूदा राव २९७, ३००, ३१२, ३१३, ३४०
दूदो १२४
दूहा मानूवा २३०
दूहा शतक २५४
दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा १४४, १४५
देईदास (देवीदास) १२०
देऊ ८२
देया (शंकरदान जेठी भाई) १४०
देपाल चारण ६८, २४५
देपाल ठाकुर २५०
देपाल (जोइया) ८०
देल्हण देवी ३४१
देव ३०३, ३०९
देवगिरि ३१७
देवदत्त चौपई २६३
देवराज ८२
देवराज रतनू १३३
देवल चारणी ११३
देवल बाई १२६
देवल दे ९६
देवसेन १९५
देवागिर ९७
देवादास साधु २९१
देवियाण १२७, १८९
देवीदास रावल ११८
देवीप्रसाद मुंशी ९, १४, १५६, २३३, २९९, ३१२, ३१३, ३१४, ३२६
देवी १५०
देशनोक ६९
देशीनाममाला २३६, २४१
देसाई (मोहनलाल दलीचन्द) ३०, १६१, १६९, १७०, २०२, २२२, २२६, २३८, २३९, २५५
दोलतिया २२६
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता १५४, ३०३, ३०७, ३२१
दौलतखां २२५
द्रुणपुर ३४६
द्रुतारउ (ध्रुवतारा) ३४८
द्रोणगिरि १७२
द्रोणपुर १६२
द्रोपदी १३८, १८८
द्वारका १२६, १८२, १८३, १८४, २११, २१२, २१६, ३०२, ३०५, ३०६, ३०८, ३१३, ३१९, ३२० ३५६

ध

धहर्मी ३४४

धनदेव पदारथ चौपाई २६३
धनपाल कथा ३३४, ३३५
धन्ना २५१, २५७
धन्ना जाट ३५८
धन्नारास २५१
धन्नाशालिभद्र चौपाई २६९
धर्म खटोला २६३
धर्मघोष सूरि २९
धर्मरत्न २७०
धर्मसमुद्रगणि २५२
धर्मसिंह २४६
धांधल ११३, ११४, ३४४
धाधल्ल ११३
धारानगरी ३४५
धारू मेघवाल २७२
धीरज ८३, ८५
धीरू ८२
धीरेन्द्र वर्मा डा० ३५, ७१, ३४८
धूड़सार ९
धौलपुर ३
धौलीधूप २७३
ध्रुवदास ३०३, ३०६, ३१९
ध्रौल १२७, १२८, १२९

न

नंद १६७, १८०
नंदकुमार १७९
नंदनंदन १८१, ३३२
नंदन मणिहार संधि (चारुचन्द्र) २३७
नंद बत्तीसी २४७
नंद बत्रीसी २१६
नंद-राणी १७९
नंदराम ३०३, ३०८, ३१८, ३२२
नंदा ७७, ३३७
नंदिग्राम १७३
नगर अंजार २१३, २१४, २१५
नगरकोट साहित्य परिपाटी २४९
नन्नसूरि २५८
नमिराजर्षि गीत २५८
नमिराजर्षि संधि २५७
नमि साधु ३३
नयरंग २७०
नरपति २०९, २१६
नरबद २२५
नरवर २०२, २०३, २०५, २६०, २६
२६२
नरमा १९६, २०६
नरसिंहराव भो० दिवेटिया ३४, ३५०
नरसिंह सिंधल २२४
नरसी २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २५०
३०३, ३०७, ३१६
नरसी रो माहेरो २१२, ३०७, ३२३
नराणा २८२, २८३, २८६, ३६२
नरूजी १५०
नरो २९८
नरोत्तमदास स्वामी ९, १३, १४, १६, २८
२९, ३६, ६६, ७१, ७२, ७५, १०४,
१३०, १५५, १५७, १६१, १६२, १६६,
१९४, २९५, २९६, २९९, ३११, ३१३,
३२२, ३२३, ३२६
नर्बद २२४, २२५
नल भाट ९७
नल-नील १७३, १७४
नल (राजा) २०२, २६०
नल दमयंती प्रबन्ध २६९
नल दमयंती रास २५७
नल दवदंती रास २५१
नलिनी मोहन सान्याल ३१३
नवकार छन्द २५९
नवकार प्रबन्ध २५०
नवकार व्याख्यान ३३४
नवपल्ल पार्श्व लघु वीनती २४९
नसीरखाँ १२१
नाग १६८, १७८, १७९, १८०, १८२
नागउर १७
नागजी २१८, २१९, ३५८
नागजी-नागमती ७३, २१७, २१८
नागजी रा सोरठा २१८
नागणी १७८, १७९, १८०, १८१
नागदमण १७७, १७८, १८१, ३३९
नागदेव ३४०
नागमती २१८
नागर ७७, २८३
नागरवेल २१८
नागरी प्रचारिणी सभा २८, १६९, १७०,
१९८, २१०
नागरीदास ३०३, ३०७, ३१८
नागा २८३

नागिल ३३७
नागौर १७, ८८, ९०, ९१, ९९, १०७, १०८, १२४, १४०, २२५, २७६, २९१, ३५५
नागौरी देवी २७७
नाट्यशास्त्र १२
नाथ-पंथ (सम्प्रदाय) ६४, १५१, १८६, २७४, २७५, २७७, २८०, २९३, ३१६, ३२९, ३६२
नानणपाई १३५
नानीबाई २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २८२
नाभाजी (नाभादास) १५२, १५४, १५६, १६७, २९५, ३०३, ३०४, ३१४, ३१८, ३१९, ३२०
नामवरसिंह डा० ७१, २४३
नारद ६९, १११, १७५
नारनौल २६, ९९, ११९
नारायणदास साधु २८८
नारायणवल्ली बालावबोध (उपाध्याय कुशल धीर) १५६
नाहटा बन्धु ३६१
निंदास्तुति १२७
निजाम २८३, २८६
नियतानियत प्रश्नोत्तर प्रदीपिका २५४
नियमपत्र ३४१
निरंजन जोगलीला ग्रंथ २९३
निरजनी सप्रदाय २७५, २९०, २९१, २९२, २९३
निरवाणां री पीढियाँ ३४७
निर्गुण संप्रदाय ६४, २७५
निराढ़ूण २८३
निश्चय व्यवहार स्तवन २५४
निहालदे सुल्तान के पवाड़े २१६
नीबनाथ ३१६
नीसाणी विवेक वार्त्ता १९०
नेतौ १५०
नेमिगीत २५१
नेमिनाथ २११, २४०, २४२
नेमिनाथ चतुर्मासिकम् (सिद्धिचन्द्र गणि) २४३
नेमिनाथ चतुष्पदिका २३०
नेमिनाथ धमाल २४३
नेमिनाथ फागु २४२
नेमिनाथ बत्तीसी हिंडोलणा २६५
नेमिनाथ बारमास चतुष्पदिका (विनयचन्द्र सूरि) २४३
नेमिनाथ बारमास वेल प्रबन्ध (गुणसौभाग्य) २४३
नेमिनाथ भाव पूजा स्तोत्र २४९
नेमिनाथ राजिमती बारमास (चारित्र-कलश) २४३
नेमिनाथ वसंत फुलड़ा २५१
नेमिनाथ विवाहलो २४९
नेमिनाथ स्तुति २४९
नेमि फाग २६६
नेमि राजुल बारहमास वेलि २४३
नेमि विवाहलउ (जयसागर) २४४
नेमीश्वर मनोरथ माला २४९
नैणसी ९८, १०६, ११३, १४५, २२४, २२५
नैणसी की ख्यात ३, ८३, ११६, १२०, १३७, १४८, १५४, २३९, २९७, २९८, ३१६
नौ अष्टक २६६
नौबोली छन्द ४

प

पंच कल्याण स्तु० २५८
पंचतीर्थ नमस्कार स्तवन २४९
पंचदंड चौपाई (मालदेव) २४६
पंच पांडव चरित रासु २३५
पंच भदरा १५०
पचसती द्रौपदी चौपाई २६५
पंचसहेली २५५, २५६
पचाख्यान २४७
पंचाख्यान चौपाई २६५
पचालीय १८९
पंचेरी ९९
पंथी गीत २५६
पउम चरिउ ७१
पत्ता ११०
पत्थ ३५२
पद प्रसंग माला ३०७
पदम भगत तेली १८१, २१०
पदमणि १६४
पदमावती १९८, १९९, २००
पदमावत ३६०
पदमा सादू १४८
पदमिण २६८
पदमिणी २०३, २६७
पदमीयो २१०

पदमो २१०
पदिमणि १५९
पदावली (मीरां की) ३२३, ३२४, ३२५, ३२६
पद्म २३०
पद्मचरित्र २५७
पद्मनाभ ५, ९१, ९२, ९३, २५२
पद्मराजवाचक २६६
पद्मसुन्दर २४७
पद्मा १३२
पद्मावती पद्मश्री रास २६३
पद्मावती 'शबनम' ३१२, ३२०
पद्मिनी ११५, २६७, २६८
पन्नालाल पंचोली ३४४
परतापसी ११०, १३९
परदेशी राजानो रास २५३
परमाणद १९१
परमात्म प्रकाश ३६१
परमानंद ३०४
परमानंद बीठू ३५८
परसुराम १७२, १७३
परसुराम चतुर्वेदी २०१, २७७, २८१, २८२, २८४, २९१, २९३, २९७, २९९, ३१३
पसूदा (गाव) ३५२
पांचेटिया १४२, १९४
पाडिचेरी ३६४
पाइअलच्छीनाममाला २३६
पाइयसद्दमहण्णवो २३६, २३९
पाक्षिक छत्रीसी २५४
पाटण ९३, ३४७
पाटण भंडार १९७
पातल ११०, १३८, १३९, १४५
पातल्ल १२४
पातसाह सूर मांडवरी ३४६
पाता बारहट ३५५
पानीपत ७३, १३७, १४६
पाबूजी राठौड़ ३१, ८४, ११३, ११४, २७२, ३५८
पाबूजी के पवाड़े २१६, २३९
पाबूजी रा छन्द ११२, ११४
पाबूजीरा परवाड़ा ११३
पाबूरासा १३५
पारथ १३८, २८७
पारिजात हरण ३७१
पारियात्र मंडल ३
पार्वती १९३
पार्वती मंगल १६७
पार्श्वचन्द्र २४८, २५४, ३३५, ३३६, ३३७
पार्श्वजन्माभिषेक २५८
पार्श्वनाथ ३४३
पार्श्वनाथ जीराउला रास २५०
पार्श्वनाथ विवाहलु (पेथो) २४४
पार्श्वनाथ स्तवन २५७, २६९
पार्श्वनाथ स्तोत्र २४९
पालनपुर ३
पाल्हणसी ८६
पावगढ़ १२४
पाहुड़ दोहा ३६१
पिंगल २०२, २०३, २११, २६०, २६१
पिंगल नागराज १६, १७
पिंगल शिरोमणि ७, ८, १६, २५९
पिंगल सिरोमणि उडिंगल नाममाळा ७
पिछोला सरोवर ३५८
पिरथी राज १२०
पीगळशी पाताभाई १२५
पीई २९८
पीठवा मीसण १४९, ३५४
पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल २७५, २८१, २८४, २९३, २९६, २९९
पीताम्बर भट्ट १२६
पीथळ १४६, १४९, १५६
पीपासर २७६
पुण्य पाप फल (स्त्री वर्णन) चौपाई २५०
पुरंदर कुमार चौपाई २४७
पुरंदर चौपाई २६३
पुण्यसागर २५८
पुरातन प्रबन्ध संग्रह १९५ ३६८, ३६९
पुरुषोत्तम
पुरुषोत्तमदास स्वामी १२
पुष्कर २६०, ३२०
पुष्पदंत १०, ७१
पुष्पमाला बालावबोध ३३६
पुष्पावती २०७
पुष्टिमार्ग ३२१
पूगल ६८, ७९, ८२, ९९, २०२, २०३, २०४, २६०, २६१, २६२

पूज्यवाहण गीत २५९
पूर्व आधुनिक राजस्थान १५४
पृथुराज १६९
पृथ्वीचन्द्र वाग्विलास ३३४
पृथ्वीराज चौहान ३६१, ३६८, ३६९
पृथ्वीराज (राठौड़) ४, ९, ७०, १३२, १३५, १३९, १४६, १४९, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५९, १६०, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १८१, १९०, १९४, ३५२, ३५४
पृथ्वीराज रासो ७१, ९२, २३४, ३४२ ३६१, ३६८, ३६९, ३७०
पृथ्वीसिंह महता ३६
पेथड़ २४०
पैंतीस वाणी अतिशय गर्भित स्तवन २५८
पैलाद २१५
पैहलाद १३४
पोगळ २०५
प्रताप राणा ९, १०७, ११०, १११, १३२, १३८, १३९, १४१, १४२, १४३, १४४, १५०, १५३, १५४, १५५, १९४, २४०
प्रतापगढ़ ३, ३५
प्रतापसिंह १४१
प्रथीराज १५२, १६०
प्रद्युम्न १५८
प्रद्युम्न चरित १९८
प्रबन्ध चिंतामणि ७१, १९५
प्रभाकर गुणाकर चोपई २५२
प्रमानन्द २८३
प्रभावती २४०
प्रयाग ८८
प्रश्नोत्तर काव्य वृत्ति २५८
प्रश्नोत्तर चत्वारिंसत् शतक (तपा-खरतर भेद प्रत्युत्तर) ३४०
प्रसन्नचन्द्र राजर्षि रास २५३
प्रहलाद २८३, २९५
प्राकृत पैंगलम् २३८
प्राकृत व्याकरण १९५
प्राकृत सर्वस्व ३३
प्राग २८३
प्रागदासजी २९१
प्रागवड़ १४३
प्राग्वाट ३
प्राणधन ३०३, ३०९
प्रियुदास १५७
प्रियाग १६४
प्रियादास ३०३, ३०४, ३०७, ३१८
प्रेमदीपिका १५५
प्रेमांजलि ३१४
प्रेमानन्द २५०

फ

फतमल २२३, २२४
फतमल का गीत २२२, २२४
फतहपुर ८८, ९०, ९९
फतेपान ८५
फार्बस् गुजराती सभा २०५
फीरोजखा ८८, ९१
फीरोजा ९२, ९३, ९४, ९५
फूलां राणी ३४३

ब

बंक चूलनो पवाडउ रास २३९
बंकचूल पवाड़ो २३९
बदा नेवाज ख्वाजा गेसू दराज ३६७
बखनाजी २७३, २८३, २८६, २८७, २८८
बख्तावर ३०३, ३०९
बगडावत २१६
बगड़ी (गाँव) १४१
बड़ा रुक्मिणी मंगल २१०
बडोच २०६
बडोदा १९१
बदनोर १२०, ३५४
बदरीदान कविया १३
बदरीप्रसाद साकरिया १४
बनवारि २८३
बनारसीदास (जैनकवि) ३६१
बंबियाखान ९०
बभीषण १७४
बनियर ६६
बल्ल १८७
बलदेव १८२, १८३
बलभद्र १८०, १८४। बलराम १८३, २१२
बलि ८९, १३०, १३३
बलूदा १६९
बहलोलखां ८८, १३८
बहादरखान ९६
बहादर ढाढी ७४
बांकीदास ८, १५८, ३५९
बांकीदास की ऐतिहासिक बातें १५४

पदमो २१०
पदिमणि १५९
पदावली (मीरां की) ३२३, ३२४, ३२५, ३२६
पद्म २३०
पद्मचरित्र २५७
पद्मनाभ ५, ९१, ९२, ९३, २५२
पद्मराजवाचक २६६
पद्मसुन्दर २४७
पद्मा १३२
पद्मावती पद्मश्री रास २६३
पद्मावती 'शबनम' ३१२, ३२०
पद्मिनी ११५, २६७, २६८
पन्नालाल पंचोली ३४४
परतापसी ११०, १३९
परदेशी राजानो रास २५३
परमाणंद १९१
परमात्म प्रकाश ३६१
परमानद ३०४
परमानंद वीठू ३५८
परशुराम १७२, १७३
परशुराम चतुर्वेदी २०१, २७७, २८१, २८२, २८४, २९१, २९३, २९७, २९९, ३१३
पसूदा (गांव) ३५२
पांचेटिया १४२, १९४
पांडिचेरी ३६४
पाइअलच्छीनाममाला २३६
पाइयसद्दमहण्णवो २३६, २३९
पाक्षिक छत्रीसी २५४
पाटण ९३, ३४७
पाटण मंडार १९७
पातल ११०, १३८, १३९, १४५
पातल्ल १२४
पातसाह सूर मांडवरो ३४६
पाता बारहट ३५५
पानीपत ७३, १३७, १४६
पाबूजी राठौड़ ३१, ८४, ११३, ११४, २७२, ३५८
पाबूजी के पवाड़े २१६, २३९
पाबूजी रा छन्द ११२, ११४
पाबूजीरा परवाड़ा ११३
पाबूरासा १३५
पारथ १३८, २८७
पारिजात हरण ३७१
पारियात्र मंडल ३
पार्वती १९३
पार्वती मंगल १६७
पार्श्वचन्द्र २४८, २५४, ३३५, ३३६, ३३७
पार्श्वजन्माभिषेक २५८
पार्श्वनाथ ३४३
पार्श्वनाथ जीराउला रास २५०
पार्श्वनाथ विवाहलु (पेयो) २४४
पार्श्वनाथ स्तवन २५७, २६९
पार्श्वनाथ स्तोत्र २४९
पालनपुर ३
पाल्हणसी ८६
पावगढ़ १२४
पाहुड़ दोहा ३६१
पिंगल २०२, २०३, २११, २६०, २६१
पिंगल नागराज १६, १७
पिंगल शिरोमणि ७, ८, १६, २५९
पिंगल सिरोमणे उडिंगल नाममाळा ७
पिछोला सरोवर ३५८
पिरथी राज १२०
पीगळशी पाताभाई १२५
पीई २९८
पीठवा मीसण १४९, ३५४
पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल २७५, २८१, २८४, २९३, २९६, २९९
पीताम्बर भट्ट १२६
पीथळ १४६, १४९, १५६
पीपासर २७६
पुण्य पाप फल (स्त्री वर्णन) चौपाई २५०
पुरंदर कुमार चौपाई २४७
पुरंदर चौपाई २६३
पुण्यसागर २५८
पुरातन प्रबन्ध संग्रह १९५ ३६८, ३६९
पुरुषोत्तम
पुरुषोत्तमदास स्वामी १२
पुष्कर २६०, ३२०
पुष्पदंत १०, ७१
पुष्पमाला बालावबोध ३३६
पुष्पावती २०७
पुष्टिमार्ग ३२१
पूगल ६८, ७९, ८२, ९९, २०२, २०३, २०४, २६०, २६१, २६२

पूज्यवाहण गीत २५९
पूर्व आधुनिक राजस्थान १५४
पृथुराज १६९
पृथ्वीचन्द्र वाग्विलास ३३४
पृथ्वीराज चौहान ३६१, ३६८, ३६९
पृथ्वीराज (राठौड़) ४, ९, ७०, १३२, १३५, १३९, १४६, १४९, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५९, १६०, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १८१, १९०, १९४, ३५२, ३५४
पृथ्वीराज रासो ७१, ९२, २३४, ३४२ ३६१, ३६८, ३६९, ३७०
पृथ्वीसिंह महता ३६
पेथड़ २४०
पैंतीस वाणी अतिशय गर्भित स्तवन २५८
पैलाद २१५
पैहळाद १३४
पोगळ २०५
प्रताप राणा ९, १०७, ११०, १११, १३२, १३८, १३९, १४१, १४२, १४३, १४४, १५०, १५३, १५४, १५५, १९४, २४०
प्रतापगढ़ ३, ३५
प्रतापसिंह १४१
प्रथीराज १५२, १६०
प्रद्युम्न १५८
प्रद्युम्न चरित १९८
प्रवन्ध चिंतामणि ७१, १९५
प्रभाकर गुणाकर चोपई २५२
प्रभानन्द २८३
प्रभावती २४०
प्रयाग ८८
प्रश्नोत्तर काव्य वृत्ति २५८
प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक (तपा-खरतर भेद प्रत्युत्तर) ३४०
प्रसन्नचन्द्र राजर्षि रास २५३
प्रह्लाद २८३, २९५
प्राकृत पैंगलम् २३८
प्राकृत व्याकरण १९५
प्राकृत गवस्व ३३
प्राग २८३
प्रागदासजी २९१
प्रागमद १४३
प्राग्वाट ३
प्राणधन ३०३, ३०९
प्रिथुदास १५७
प्रियाग १६४
प्रियादास ३०३, ३०४, ३०७, ३१८
प्रेमदीपिका १५५
प्रेमांजलि ३१४
प्रेमानन्द २५०

फ

फतमल २२३, २२४
फतमल का गीत २२२, २२४
फतहपुर ८८, ९०, ९९
फतेपान ८५
फार्वस् गुजराती सभा २०५
फीरोजखा ८८, ९१
फीरोजा ९२, ९३, ९४, ९५
फूलां राणी ३४३

ब

बंक चूलनो पवाडउ रास २३९
बकचूल पवाड़ो २३९
बदा नेवाज ख्वाजा गेसू दराज ३६७
बखनाजी २७३, २८३, २८६, २८७, २८८
बख्तावर ३०३, ३०९
बगड़ावत २१६
बगड़ी (गाँव) १४१
बड़ा रुक्मिणी मंगल २१०
बड़ोच २०६
बड़ोदा १९१
बदनोर १२०, ३५४
बदरीदान कविया १३
बदरीप्रसाद साकरिया १४
बनवारि २८३
बनारसीदास (जैनकवि) ३६१
बबियाग्वान ९०
बर्नीपण १७४
बर्नियर ६६
बळ १८७
बलदेव १८२, १८३
बलभद्र १८०, १८४। बलराम १८३, २११
बलि ८९, १३०, १३३
बडूदा १६९
बहलोलखां ८८, १३८
बहनग्गान ९६
बहादुर ढाढी ७४
बांकीदास ८, १९४, ३५९
बांकीदास की ऐतिहासिक बातें १५४

बांके विहारी ३१३
बांझू २८३
बांसवाड़ा ३, ३५
बाई सफलादे ८६
बागड ३, ३५१
बाघजी रा दूहा १०५, १२५
बाघजीरा पीछोला १२५
बाघा कोटड़ा १०५, १२५, ३५९
बाघेली (पटराणी) ३४५
बाजिदजी २७३, २८६, २८९, २९०, ३६०
बादर ढाढी ७४
बादल २६७, २६८, २६९
बाप्पा रावल ११०
बाबर ९८, १००, १०२, १०९, ११०, ११२, १४४
बारहट लक्खा १३५, १४०, ३४४
बारहट लक्खा का परवाना ३४४
बारहमासा ३०८
बारह व्रत रास २६९
बारुजी सौदा १३७
बाललीला १२७
बालशिक्षा ३३४
बाली १९२
बालेन्दु २३६
बावसूई २९८
बिभीषण १७२, १७४
बिरुद छिहत्तरी १४२, १४४, १४५
बिल्हण चरित चोपई २१६
बिश्नोई सम्प्रदाय २७४, २७५, २७६, २७७
बिहार पत्री ३४१
बीझा २१९, २२०
बीझा सोरठ ७३, २१७, २२० ३५९
बीका (राव) ९९, १०३, १०८, ११६, ११७, १६२, २४०
बीकानेर ३, ५, ९, ३४, ६८, ६९, ७५, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०३, १०५, १०७, ११६, ११८, ११९, १२०, १२१, १३०, १३१, १३२, १३४, १३५, १४०, १४२, १४८, १५०, १५२, १५३ १५४, २२५, २५७ २६४, २७७, २७९, ३०७ ३४६, ३४९, ३५८
बीकानेर री ख्यात १५४
बीकानेर रै राठौडां री ख्यात सीहैजी सू ३४६
बीजा दूदावत सरवहिया १२७
बीजावर्गी मंत्री ३०१, ३२२
बीझा २१९
बीठलदास रैदासी ३०२
बीठू बारठ २९८
बीठू मेहा ११२, ३५१, ३५२
बीदा ११७, ११८, १६२
बीम्स ७१
बीरमजी राठौड़ ७५
बीसलदेव रास १५१, १९५, २३३ ३३० ३७२
बीसू चारण २०४, २६१
बुड्ढन २८१
बुद्ध १८७
बुद्धि रास २३०
बूंदी ३, ३५, १३७, १९०
बूड़ा ११३
बूसी १६२
बृन्दावन २२१, ३०२, ३०५, ३०६, ३०८, ३१५, ३१७, ३१९, ३२०, ३२३, ३२५
बृहद्गच्छ पट्टावली २२६
बेअर स्वामी रास २४१
बेचरदास जीवराज दोशी २९, ३०
बेणीमाधवदास ३११
बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ३२६
बैरमखां १४०
बोलसज्झाय २५४
बौद्ध तान्त्रिक मत ३१९
बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय ३१९
ब्रजरत्नदास २३६, २९७, ३००, ३१३
ब्रह्मचरि २५७
ब्रह्मचर्य दश समाधि स्थान कुलक २५४
ब्रह्म सम्प्रदाय २८२
ब्रिग्स ३१६

भ

भक्त का अंग ३०८
भक्त नामावली २८३, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, ३०६, ३०७, ३१८ ३१९
भक्तमाल १५२, १५४, २९५, ३०२, ३०३, ३०४, ३०७, ३११, ३१८
भक्ति-विजय ३०९
भक्ति रसबोधिनी टीका ३०४
भटनेर १००, १२१, २६३
भड़ली १९७

भड्डली ग्रंथ १९७
भदोरो (गाँव) १०७
भरत १७१, १७२, १७३
भरत (मुनि) १२, ३२
भरत नाट्यशास्त्र १६०
भरतपुर ३, ३४
भरत बाहुबलि गीत २६३
भरत बाहुबली रास ७१
भरतेश्वर बाहुबलि घोर २३०
भरतेश्वर बाहुबलि रास २३०
भरथ १७४
भरम विध्वंस का अंग २९३
भवानी छन्द २५९
भरह २११
भांडउ व्यास ९५, ९६
भांडियावास १५०
भाऊ भाट २६१
भागवत १५७, १६५, १७६, १९३, २११,
  २३६, ३१९
भागीरथी १६८
भाटी बूकण ७९
भाद्रेस १०४, १२५, १२७
भाना १४९
भामाशाह १३२, २४०
भामासाह बावनी २४०
भायाजी १७७
भारत के प्राचीन राजवंश १५४
भारथ २८७
भारमती ३०३, ३१४
भारमलजी १९४
भारमली १०५, १९४, ३०३
भावदेव २६३
भावन गीत २२३, २२८
भावना २५५
भावना संधि (जयसोम) २३७
भाव प्रकाशन २३५
भावा (गाँव) ७९
भाषाओं के चार प्राचीन उदाहरण २४५
भाषा छत्रीसी २५५
भाषा दसम स्कंध १६९
भिरड़कोट ७७, ७८
भीव २२७
भीमजनजी २७३
भीखा हेमारा ३४७
भीम १८२, १९३, १९६, २३९
भीमक १८२, १८३, १८४, २११, २१२
भीमप्रकाश ३०९
भीमसिंह अमरसिंघोत ३५४
भीमा आसिया १५०
भीवराज ३४६
भुवनु भानु केवलि चरित्र भाषा ३३८
भुवनसुन्दर २६६
भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' २९९, ३१३, ३१९
भूरसिंह शेखावत १४१
भूषण ७३, ३५६
भैंसासुर १०९
भोज ८६, १९५, २४६, ३३७
भोज चरित १९५, २४७
भोज प्रबन्ध २६३
भोजराइजी ३११
भोजराज (सागावत) ३०१, ३०९, ३११,
  ३१३, ३१४
भोजराज रूपावत १०१
भोपतजी ३४७
भोमे १३२
भ्रमर गीता फाग २२१
भ्रासड़ी १४७

म

मंगल कलश रास २६६
मंगलदास स्वामी २८२, २९१, २९२
मंगलमाणिक्य २४६, २४७ २७०
मछ ३४२
मजु० र० मजमुदार १५२, १६१, २०९,
  २३४, २३९, २४१,
मंडोर, मंडोवर ६७, ७५, ७९, ८२, ८८, ८९,
  ९०, ९६, ९९ १०६, २२४, २२५
  २९८, ३४३, ३५२
मंत्रराज-प्रकाश २९२
मंदसौर ३३
मंदोदरी ३५७
मंदाकिनी १६८
मदन भारती १२७
मणियड़ ७७
मग (आकाश गंगा) १६५
मतिशेखर २५१
मतिसार २४७
मत्स्य ३
मथुरा १३५, २२१

मद ३
मदन रास १९६
मद्रू जोइया ७८, ७९, ८१
मधुकीटक २६२
मधुकैटभ १५१
मधुसूदन १३८, १९७
मधुसूदन चिमनलाल मोदी ११
मन भमरा गीत २६३
मनुष्य भव लाभ २५०
मयणछन्द १९६
मयण कौतुहल १९६
मयण पुराण १९६
मयण भ्रम १९६, १९८
मयणरेहा सती रास २५१, २५२
मरवन खान पठाण ७७
मरू ४
मरुदेश ३, ४, १२
मलयचन्द्र २४६, २४७
मलिक शमसेर ३५०
मल्लीनाथ रावल ७६, ७७, ७८, ७९, ८२, १०६, २७२, २७४
मसऊद ३६७
मसकीन २८३
महपा पँवार ९१
महमंदशाह बेगड़ा ७७
महमूद ७८
महाकाल का मंदिर २०८
महादेव पार्वती री बेलि १९३
महापुराण १०
महापुर ३३७
महाबन २०८
महाभारत १८८, २५३
महाराज रतनसिंहजी री वचनिका (रतन रासौ) पिड़ियो जगो रचित ११५
महावीर २४०
महावीर पंच कल्याण स्तवन २६३
महावीर पारणा २६३
महावीर विवाहलउ (कीर्तिरत्न सूरि) २४४
महावीर वीनती २४९
महावीर स्तवन २५९
महावीरसिंह गहलोत २९७, ३००, ३१३
महिकरण २९८
महिला मृदुवाणी ३२६
महिषासुर १५१, २६१
महीपति ३०३, ३०९
महीपाल चौपाई २६६
महेवा १०६
महोदर १७५
मांगलियाणी (राणी) ७७, ७८, ७९, ८०
मांडण २४७
मांडलगढ़ १५५, १९४
मांडवी १७१
मांडू ७७, ७८, ८३, ११७
मांडोवरो १३६
मांनदान बारहट १२६
मानसिंघ ३४७
माखू २८३
माडवल्ल ३
माणिक्य ग्रंथ भंडार, भींडर ११५
माणिक्यचन्द्र सूरि ३३४
माताप्रसाद गुप्त डा० २३४
मातावाई २८२
माधव ९३, २०६, २०७, २०८, २०९, २८३
माधवानल २५९
माधवानल कामकन्दला ५, २०६, २०९, २४७
माधवानल चौपाई २५९
माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध ७३, १९६, २०६, २४०
माधोदास जी २७३
माधोदास दधवाड़िया ७०, १५०, १५६, १६९, १७०
मानकुतूहलम् १९६, १९७, १९८
मानवती विनयवती रासक १९६
मानस (रामचरित) ३२१
मानसरोवर १५९
मानसागर २२४
मानसिंह ६७, १५०
मान्धाता १३२, २९७
मान्धातापुर २९७
मायेरा ३०७
मारवणी २०२, २०३, २०४, २०५, २२१, २६०, २६१, २६२
मारवाड़ ३, ४, ५, ७, १२, ३४, ६७, ७४, ८३, ८८, ८९, ९३, १०६, ११३, १३०, १३२, १३५, १३९, १५०, १९४, २०५, २२७, २७२, २९१, ३१२, ३४९, ३५४
मारवाड़ि ३४१
मारवाड़ि ३४३

मारू २०२, २०३, २०४, २०५, २६०, २६१
मार्कण्डेय ३३, ३४
माल १२०, २६३, २६४, ३४३
मालदे १२०, १४५, २२६
मालदेव (चौहान) ९३, ९५
मालदेव (जैन कवि) ५३, २२६, २४३, २४७, २६३
मालदेव (राव राठौड़) १०४, १०५, ११२, १२०, १२४, १३६, १४९, २२६, २९८, ३१२, ३४५, ३४६, ३५२, ३५५
मालराव १२४
मालरी महिमा २७३
मालविणी २०२, २०३, २०४, २०५, २६०
मालशिक्षा चौपाई २६३
मालणी प्रदेश २७२
मालैसलपाणी ७५
माल्हड़ बरसड़ा ३५५
मावदानजी भीमजी भाई रतनूं १२६
माहप २९७
माहेरै २१३, २१६
मिश्रबन्धु १४८, १५५, १६६, १६९, ३१३, ३५६
मिश्रबन्धु-विनोद १७०, १९८
मिस्कीनदास २८२
मीरा २९७, २९८, २९९, ३११, ३१२, ३१९, ३३३
मीरा की शब्दावली ३२६
मीराबाई (पुस्तक) ३६४
मीरा-मंदाकिनी २९५, ३२२, ३२३
मीराशाह् २९७
मीरा स्मृति ग्रंथ ३२३
मीरां २९८, २९९, ३२५,
मीरां-दर्शन ३२५
मीरां बाई का काव्य ३२६
मीरां ३८, ४९, ६५, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०३, ३०४, ३०५ ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२५, ३२७, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२ ३३३, ३५६, ३६३, ३६४
मीरांबाई १५१, २९५, २९६, २९८, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३११, ३१४, ३२०, ३२१, ३२२, ३२५, ३५५, ३६३, ३६४, ३६५
मीरां बाई के भजन ३२६
मीरां-सुधा-सिंधु ३१८, ३२५
मुंतखाब उत तवारीख १५४, ३४६
मुंशी अजमेरी २८
मुकनसिंह बीदावत १५३, १५४
मुख वस्त्र का विचार २६४
मुक्तकलानुप्रास ३३५
मुनिपति चौपाई २६४
मुनिमालिका २५८
मुरलीधर श्रीवास्तव २९९, ३१३, ३२५, ३२६ ३२९
मुरारीदान महामहोपाध्याय १२
मुल्तान ९०, ९९
मुहणोत नैणसी १५४
मुहपति छत्रीशी २५४
मुहम्मद १०१
मुहम्मद तुगलक १३७
मुहम्मद साहब १८७
मूलदेव चौपाई २६९
मृगाक पद्मावती रास २६३
मृगापुत्र संधि (कल्याणतिलक) २३७
मृगावती २४०
मृगावती चौपाई २५७
मेड़ते, मेड़तौ, मेड़ता १२०, १५०, १६९, २९७, ३०२, ३०५, ३०७, ३०८, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१९, ३२०, ३४५, ३४६, ३४७
मेड़तणी ३११, ३१३
मेघनाथ १७२
मेघमाला ग्रंथ १९७
मेदपाट ३
मेरवाड़ा ३५
मेरा ८३, ८८, ९१, २९८
मेरुगिरि १५९
मेरुतुंग १९५
मेरुनन्दन २३१। मेरुसुन्दर ३३५, ३३६
मेवाड़ २६, ३५, ६३, ६४, ६७, ८३, ८८, ८९, ९१, ९३, ९९, १०६, ११०, १२०, १३१, १३७, १४२, १४४, २२४, २५२, ३०९, ३१०, ३११, ३१४, ३३०, ३४९, ३५२
मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स १५४
मेह ११३, ११५। मेहा ११४, ११९, ३०४

मेहाचारण ६८
मेहाजी मांगलिया ३१, २७२
मेहासधु (सद्र) ६९
मैक्स आर्थर मैकालिफ ३१३
मैड़ी ११५
मैहमंद ७८
मोकल राणा ८३, ८४, ८५, ८८, ९१, ९९, ११०, १४७, १५०, २२४, २२५, २९८, ३५८
मोट ८०
मोहल ७९
मोती कपासिया संवाद (हीरकलश) २४५, २६५
मोतीचन्दजी खजांची संग्रह, बीकानेर १७०
मोतीलाल मेनारिया डा. ७, १२, १४, १५, २९, ३४, ३६, ७४, ८३, १२७, १२८, १३६, १४०, १४१, १४२, १५५, १६१, १६३, १७०, २०१, २०२, २३३, २८१, २९१, ३००, ३१३, ३२५
मोरवी (गाँव) १५०
मोहन २८३, ३३१
मोहनसिंह कविराव ३४९
मोहनसिंह डा० ३६४
मोहवत खांन १४५
मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या २३३
मौलदुल भाट ९६

य

यमकिंकर ३३८
यमुना १३, ९५, १७८, १७९, १८१, २२१
यशोदा १७८, १७९, १८०
यादव गहड़ हमीरौत रो गीत १२५
युधिष्ठिर १८८
योगमूल सुखयोग ग्रन्थ २९४
योधपुर ३४७
योधरायां नंदण ३४३
योधाराव १६६
यौवन जरा संवाद (सहजसुन्दर) २४५, २५३

र

रंगरेलो बीठू १३०
रघुनन्द १७३
रघुनाथ ४४, १७४
रघुनाथ भट्ट ३१९
रघुनाथ रूपक गीताँरो ३४२
रघुराज सिंह ३११
रघुवीरसिंह डा० ९८, १५४
रज्जब २७३, २८३, २८६, २८७, २८८, २८९
रज्जब पंथी २८८
रज्जबान २८८
रणछोड़जी ३०२, ३०६
रणथंभौर ८६, ९६, ९७
रणधीर ८८
रणमल (राठौड़) ६७, ८३, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९९, ११६, ११७, २२४, २२५
रणमल (हम्मीर चौहान का मंत्री) ९६, ९७
रणमल्ल छन्द १०, ३१, ७१, ७५, १५२
रतनउ १२२
रतनसाहजी २१३
रतनसेन २६७
रतन हाडा राव १९०
रतना २२८, २२९
रतना खाती २१२, २१३, ३०७, ३२३
रतनसी खींवावत १२२
रतनसी री वेलि १२१
रतलाम ३५
रत्नचूड़ चौपाई २६५
रत्नमण्डण गणि २३१
रत्नमाला टीका ३४७
रत्नसमुद्र २५३
रत्न सार कुमार चउपाई २५३
रत्नसिंह दूदावत ३१२, ३१३, ३१४, ३५५
रत्नसिंह राणा ११०, ११५
रत्नसुन्दर २४७
रविया २९५
रमैया ३३२, ३३३
रळतळी (तलवार) ८२
रवीन्द्रनाथ ठाकुर ६९
रसावला ११५
रहीम खानखाना १५५, ३५४
राणकदेव भाटी ७६, ८२
रांम ११९
रांमण १७४
रांमसंपजी ३४५
रांमेसर १९४
रांवण १३३, १६७
रांवणि ११९
राइ लुणकरण रौ कवित्त प्रवाडौ रौ २३१
राउ चंद्रसेण रा रूपक १०५, १२३
राउ श्री सुरतांण रा कवित्त १४३, १४४, १४५

रागकल्पद्रुम ३२६
राग गोविन्द ३२३
राग सोरठ ३२३
राघव १७३, १७४, १७५
राघव चेतन २६८
राघोदास १५४, २८३, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, ३०३, ३०७, ३१८
राढ़धरो ७७
राजधर दास २०९
राजमती ३३०
राजरसनामृत ९
राजरूपक ३, ९
राजवल्लभ ३३५
राजशील २४७, २५७
राजशेखर ३२, २३१
राजसिंह रत्नावती संधि २६५
राजसी पड़िहार ११७
'राजस्थान' (टाड) १५४
राजस्थान-भारती १४
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ११५, १७०, ३०४, ३१०
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता १३६
राजस्थानी (कलकत्ता) २४५, ३०४, ३११
राजस्थानी भाषा और साहित्य ७४
राजस्थानी वीर गीत ११७
राजस्थानी साहित्य की रूप-रेखा ७४
राजस्थानी हिन्दी कोश १४
राजान राउत रो बात वणाव ३६५
राजा भोज अर पांडे बुररुचरी बात ३६५
राजा सिवराव जैसिंघ री बात ३६५
राजावांरी जन्मपत्रियाँ ३४७
राजिमती २४०, २४२
राजुल नेमिनाथ धमाल २६३
राठौड़ रतनसी खींवावत री बेलि १२२
राठोड़ां री वंशावली नैं पीढ़ियाँ नैं फुटकर वार्ता २९८
राठौड़ां री बात राव सीहैजी सूं रायसिहजी तांई ३४५
राणकं'रा खंगार २२०
राणं हमीर रिणथंभोर रै रा कवित्त ९७
रात्रि भोजन रास (जयसेन चोपई) २५२, २५३
राधा १५१, २९५
राधाकृष्ण १५१
राम ९९, १०१, १३३, १३८, १५१, १६७, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १८७, १९२, १९३, २८५, २८७, २९०, २९३, २९४, ३१०, ३११, ३२०, ३२९, ३३२, ३३३, ३५२, ३५६, ३५७, ३६४
रामकर्ण आसोपा ९, ७४, ७६, ८३, १४०
रामकुमार वर्मा डा० १६१, १६६, २८२, ३१३, ३२१
रामचन्द्र ७४
रामचन्द्र शुक्ल २३३, २८४, ३१३
रामचरणदास २८८
रामण ४६, १७४, १७५, १७६
रामतियाला शिष्य प्रबन्ध २२२, २२३, २२७
रामतीर्थ २९५
रामदान लालस ३०३, ३०९
रामदास पुरोहित ३०६, ३२१
रामदेवजी तंवर ३१, २७२, २७३, ३४४, ३५८
रामदेव राजा २१७
रामनिवास शर्मा हारीत ६६
रामरासो १६९, १७०, १७१, ३५७
रामलीला १५०
रामसनेही संप्रदाय २८८
रामा १५९
रामादल १७३
रामानन्दजी २८१, ३१५, ३६३, ३६७
रामा सांदू १२०, १६२
रायचंद २०८
रायदेव हमीरदेव चौपाई ९५
रायपुर ३४४
रायमल राणा ११०, ३००, ३१४
रायमल राठौड़ १२४, १३१
रायमधजी ३४५
रायसल सुजावत ३४७
रायसिंह १०८, १३०, १३२, १३३, १३४
रायसिंह झाला मानसिंघोत १२७, १२८, १२९
रायसिंह ४६, ६७, ७५, १०७, १०८, १०९, १२१, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १४०, १४२, १४३, १५०, १५२, १६२, ३४६, ३४७
रायसिंहजी री बेलि १२१
राय हमीरदेव चोपाई ९५
रायसिंघ १०८, १२१, १३४

राव अमरसिंहजी रा दूहा १९०
राव जैतसी रा कवित्त ११९
राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द २७, २८, ९२, ९७, १०१, १२२
रावण ४६, १३८, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १९२, ३५७
रावण मंदोदरी संवाद (लावण्यसमय, श्रीधर) २४५
राव योधा की सारवाली रानी १६६
राव रिणमल रो रूपक ८७, ८८
रावल माला रो गुण १०४
रावल माला सलखावत रो गुण १०५
रावल माले ७५
रावलूणकरण रा कवित्त ११९
रास कैलास १२७
रासमाला ७२
रास लीला १२७
रासल ३४१
राहप २९७
रिट्ठणेमि चरिउ (पुप्पदंत) ७१
रिणथंभ ९७
रिणथंभर १२४
रिणधवल ३४५
रिणमल कछवाहा ८५
रिणमल राठौड़ ८९, ९०, ९१, २४०, २९८, ३४३
रिणमल (सोढा) २९८
रिपुदारण रास २३६
रिलिजियस सैक्टस ऑफ दी हिन्दुज ३१७
रीछड़ी १८७
रीवा ३११
रुकमण २१५
रुकमणी मंगल २१०
रुकमयिया १८४
रुक्मैया २११, २१२
रुक्मांगदपुरी २०८
रुक्मणी, रुपमणि १४६, १५१, १५२, १५६, १५७, १५८, १५९, १६२, १६३, १६६, १६७, १८१, १८२, १८३, १८४, २१०, २११, २१२, २१५, २२१
रुपमणि हरण १५६, १७७, १७८, १८१
रुपमियो १८२
रुपमी १८२
रुद्रट ३३
रुद्रपल्लीय गच्छ ३४१
रुद्र महादेवी २०६, २०७
रूपमइयो २११
रूण २२४
रूपकमाला २५५
रूपगोस्वामी ३०२, ३१५, ३१९
रूपचन्द ३६१
रूपांदे २७२, २७३, २७९
रूपांदे री वेल २७३
रेवंतगिरि रास २३०, २३५
रैदास ३०१, ३०२, ३१७, ३२०
रैदासी संप्रदाय ३२०
रोहतक ३४
रोहिणी ३३९
रोहिणेय प्रवन्ध (रोहिणिया चोर रास) २५०
रोहिणेय रास २५७

ल

लंक १९२ ३५७
लंका ९०, ११९, १३३, १७२, १७३, १७४
लंकेस्वर १७१
लंकेसवरा १७५
लक्षमणायण १०५
लक्ष्मण १७१, १७२, १७४, १९२
लक्ष्मण श्रेष्टि ३३७
लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध १५६
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय डा० ३४८
लखनौती १९८, २००
लखमण १७४
लखमसेन १९८, १९९, २००
लखमसेन पदमावती चौपई ३१, १९७
लखमीवर १५६
लखवेरा ७९, ८०
लखु मोजावत ३४७
लछूसर ८२
लघु सहस नाम लेखन २६५
ललिता ३०६, ३१९
ललिताप्रसाद सुकुल २९५, २९७, ३२३
लाखा चारण १५६
लाखा फूलाणी २२६
लाखा १४८
लाट ४
लाखा राणा ६७, ८८
लाडणूं ३४६
लानोड़ा १३२
लाल २०९

लाल कुंवरि १९६
लालचन्द गांधी २४१
लालजी महडू ११७
लालदासजी २७३
लालनाथीजी २८०
लालसिंह हाड़ा १३७
लालां राणावत (लीलादेवी) १४७
लालादे १५२
लालासर २७७
लाल्यागीत २२३, २२८, २२९
लावा ३५
लाहौर १००, १०१
लिछमण ६९, ८१
लियोनिडस् ६६
लीलछा १७७
लीलावती २४७, २६६
लुणकंनि ११९
लूणकरण मेहडू १५०, ३५४
लूणकरण राव ९७, ९९, १०३, ११८, ११९, १२४, १३५
लूणी (नदी) १०६, १०८, १०९, १२७
लोका साह ३६१
लोदीराम २८१
लोमपद १७१
लोमश संहिता १७१
लोहटजी २७६, २७७
व
वंक चूल २३९
वंदन दोष ३२ कुलक (पार्श्वचन्द्र सूरि) २४५, २५४
वंशभास्कर ९
वइरसल्लपुर २३
वखनौ २८३
वड़दड़ा १३१
वचनिका (अचलदास खीची री) २०, ३०, ३१, ८४
वचनिका राठौड़ रतनसिंघजीरी महेसदासौतरी खिड़िया जगारी कही ११५, ११६
वच्छराज २४७
वज्रसेन सूरि २३०
वसदेव १८४
वनमाली २११
वनमाली १८१
वनमाली वल्ली बालावबोध (जयकीर्ति) १५६
वयरसल्ल ३४३
वरसिंह ११७
वर्ण रत्नाकर ३६०, ३७०, ३७१
वल्लभ ३२३
वल्लभाचार्य ३१५, ३२१
वल्लभ-संप्रदाय ३२१
वसंत गीत २२२
वसंत विलास १९६, २२०, २२१
वसंत विलास फाग २२१
वसदेव राव उत १६७, १६८
वस्तुपाल २४०
वस्तुपाल तेजपाल रास २५४
वाग्भट्ट ३३, २३५
वाग्भट्टालंकार ३३
वाग्विलास लघु कथा संग्रह २४८
वाघोर ८३
वाछलदे ११४
वाघ २४३
वाणी (रज्जबजी की) २८८
वात बींझरै अहीर री ३६५
वात राजा मानरी ३६५
वात सयणी चारणीरी ३६५
वातां मारवाडि री मारवाडि रां राठौडां री ३४५
वादलै, वादलइ २६
वादल २६७, २६९
वामण १८७
वामदेवानन्द स्वामी ३६४
वामन १८७
वाल्मीकि १७१
वाल्मीकि रामायण १७१
वासदेव १८८
वासिग फणि १९२
वासु २१६
विक्रम ११९
विक्रम १९५, १९८, २०८, २४७, २५८
विक्रम कथा २०९
विक्रम खापर चरित चोपई २५७, २५८
विक्रम खापरा चोर चोपई २४७
विक्रम चरित कुमार रास २४६
विक्रम चरित चउपई १९७
विक्रम चरित्र पंचदंड चौपई २६३
विक्रम पंचदंड चोपाई २५७
विक्रम रास २४६

विक्रम लीलावती चौपई २४७
विक्रम सेन रास (चुपई) २४६
विक्रमादित्य राणा ११०, २०९, २४६
विक्रमादित्य कुमार चोपई २०९
विक्रमादित्य चुपे २०९
विक्रमादीत (वीकाजी) ११७
विचित्र नाटक ७
विजयदेव सूरि २७०
विजयराय कल्याणराय वैद्य २३४
विजयशेखर २७०
विज्ञप्ति त्रिवेणी २४९
विद्यापति ३०१, ३१५, ३७१
विद्याविलास २४८
विद्याविलास पवाड़ो २३९
विट्ठलनाथ ३०७
विधि विचार २५४
विधि शतक २५४
विनयचन्द्र २३०
विनयप्रभ २३१
विनय मालिका ३०८
विनयसमुद्र २४६, २४७, २५७
विपिन बिहारी त्रिवेदी डा० २३४
विमल कीर्ति ३३६
वियोगी हरि २८२
विरक्त २८३
विरहाक २३४
विराट पर्व २३९
विलल कुंवरि १९६, १९७
विल्सन ३१७
विल्हण पचाशिका २४७
विवेक शतक २५४
विवेकसिंह २५२
विश्वनाथ कविराज २३६
विश्वनाथप्रसाद मिश्र २३३, ३४९
विश्वामित्र १७१, १७३
विश्वेश्वरनाथ रेउ७६,८३, १०५, ३१२, ३१६
वीवड २३ । वीवउ २३
वीकानेर २६
वीक्रम १३६
वीको २३, ११६, १६६
वीजाणंद २१९, २२०
वीझउ २२०
वीतराग बीनती २४९
वीतराग स्तवन २४९
वीतराग स्तवन ढाल २५४
वीदाजी ११७
वीदावतांरी विगत ३४६
वीदुर ३०७
वीदे ३४६
वीर परम्परा नामावली २६५
वीर प्रभु वीनती २४९, २५०
वीर बैताल २०९
वीरभाण २६८
वीरम राठौड़ ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ९१, १०२, १०६, ११७, २७२, ३४३, ३४६, ३४७ ३५०, ३५१, ३५३
वीरम (दे, देव) ९२, ९३, ९४, ९५, १५०
वीरमदेवजी १७७
वीरमायण ३०, ३१, ७४, ७७, ९२, १०६ ३१६
वीर विनोद १५४, ३१९
वीरांगद चौपई २६३
वील्हाजी २७७
वीस विहरमान जिनस्तुति २५५
वृंदावन १९३
वृत्त जाति समुच्चय २३४
वृद्धानन्द २८१
वृद्धिवादी २२६
वृहत् काव्य दोहन २९७, ३१४, ३२६
वृहद्गच्छीय गुर्वावली २६३
वृहद् गुर्वावली २६५
वेलि (पृथ्वीराज राठौड़ कृत) ४, ४१, १३५ १४६, १५३, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १८१, १९०
वेलि क्रिसन रुकमणी री २८, १५५
वेलि राणा उदैसिंघरी १२०, १६६
वेलि रा देईदास जैतावतरी १७०
वैताल पच्चीसी (ज्ञानचन्द, हेमानन्द) २४६
वैंगलपुर २३
वैराट ३५५
वैरीसाल १५०
वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय ३१९
व्याकरण १८१, २१३
व्यास १५७, १७१
व्यास (कानिराम बलदेवराम) ९२, २४२
व्याकरण (हेमचन्द्राचार्य कृत) २९

श
शंकरदान जेठीभाई देथा १३९, १४१
शंकर बारहट १३२, १४८
शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन २४९
शकुंतला २५३, २९५
शकुंतला रास २५२, २५३
शतक १९५
शत्रुंजय गिरि मंडण श्री आदीश्वर स्तवन २५७
शत्रुंजय चैत्य परिपाटी २६९
शत्रुंजय तीर्थ ४
शत्रुंजय यात्रा स्तवन २६९
शत्रुंजय स्तोत्र २५५
शत्रुघ्न १७१
शनिश्चर छन्द २६६
'शबद' ३०८
शब्द परीक्षायोग २९३
शमशेरसिंह नरूला ६, ११
शम्भुप्रसाद बहुगुणा २९८, ३१२
शरफुद्दीन १२०
शशिकला २४७
शांति जिन स्तवन २५५
शांतिनाथ विवाहलो धवल प्रबंध (आणदप्रमोद) २४४
शांतिनाथ वीनती २५०
शांतिविवाहलउ २४४
शांतिसागराचार्य ३४१
शारदातनय ३३, ३४, ३३५
शार्दूल परमार ३५३, ३५४
शालिभद्र विवाहलउ (लक्ष्मण) २४४
शालिभद्र सूरि २३०, २३१, २३५, २४०
शालिसूरि २३९
शाहजहाँ १४०, २९१
शाहपुरा ३
शिवनिधान १५६, ३३६
शिवसिंह ३१२
शिवानी वसु ३३३
शिविदेदा ३
शिशुपाल १५८, १८२, १८३, २११, २१२
शीत गीत २२३, २२८
शील बावनी २६३
शीलरास २५७
शीलसुन्दर २५१
शुकदेव १७१
शुक साहेली कथा रास २५३
शेखा राव ६९, २२५, ३५५
शेख फरीफुद्दीन शकरगंजी ३६७
शेख शरफुद्दीन बू अली कलन्दर ३६७
शेणी २१९
शेणी वीजाणंद ७३, २१७, २१९
शेरशाह सूर ११२, ३५५
शोध-पत्रिका ३०४, ३११
शोभितजी १०६
श्याम परमार ३६
श्यामलदास कविराज ६३, १४१, १५४, ३१२
श्यामलता १५५
श्यामसुन्दरदास डा० ११, ३५, २३६
श्रावक मनोरथ माला २५४
श्रावक विधि सम्यक्त्व स्वाध्याय २५५
श्रीकुमार अज्जाजीनी भूचर मोरीनी गजगत १४५
श्रीकृष्णलाल डा० ३००, ३१३, ३२९
श्रीकृष्ण गोपी विरह मेलापक भ्रमर गीता फाग २२१
श्री केशी प्रदेशी प्रबन्ध २५५
श्री जयसागर कृति सग्रह २५०
श्री जिनचन्द्र सूरि अष्टकम् २५९
श्रीधर १०, १५१, १५२
श्रीनाथजी ३०६
श्रीपालचरित २४७
श्रीमधरस्वामी स्तवन २४९, २५७
श्रीमद्भागवत् २३५
श्री यदुवंश प्रकाश अने जामनगरनो इतिहास १२६
श्री शालिसागर सूरि की वचनिका ३४३
श्री स्थूलिभद्र फाग २३०
श्री हरिपुरुषजी की वाणी ७९१
श्रृगमेर १७३
श्रुतांजलि ३६४
श्रृग ऋषि १७१
श्रृंगारशत १९५
श्रृगार शतक १९५
श्रेणिक राजानो रास २५०
ष
षडावश्यक पर बालावबोध ३३७
षडावश्यक बालावबोध ३३४
संकर २८३
संग्रामसिंह ३३४
संग्रामसूरि चौपाई २५७

संघरंघ प्रबन्ध २५४
संजीवनी १७२
संतदासजी २७३, २८३
संतवाणी संग्रहालय, जयपुर २९२
संदेशरासक १५९, १६१, १९५, २३४, ३६०
संदेह-पद प्रश्नोत्तर ३४०
संभारायले २७७
संयममूर्ति २५८
संवर कुलक २५५
संवेगदेव गणि ३३५, ३३७
संवेग बत्रीशी २५५
संस्कृत भाष्य (खरतरगच्छीय श्रीसागर) १५६
सईद हासिम कासिम ३४६
सगाळशा शेठ चोपई २१६
सतसल ८५
सती १९३
सत्तरखान ९६
सत्तर भेदी पूजा विधि गर्भित २५४
सत्ता राव ८८
सत्रुंजय आदिनाथ वीनती २४९
सत्य की चौपाई २६३
सत्यकेतु विद्यालंकार डा० ११४
सत्यदेव आढ़ा १३
सत्यभामाजीनो रूसणो ३२३
सत्येन्द्र डा० २३८
सदमालजी १८९
सदयवत्स चरित्र १९६
सदयवत्सवीर प्रबन्ध २३९
सधारू १९८
सनातन गोस्वामी ३०२, ३१५, ३१९
सपादलक्ष ३
सप्तक्षेत्री रास २३०, २३५
सप्तव्यसन गीत २६५
सप्तशती रा छन्द १५१
सभापर्व १२७
समकित गीत २६५
समयसुन्दर ५, २६, २७, २२३, २४५, २४८, २७०, ३३६, ३६१
समरसिंह २४०
समरा रासो २३०
समाचारी ३४१
समाद, समाध (बछेरी) ७८, ८१
समीयाणा ९३, ९४
सम्यक्त्व कौमुदी चोपाई २६५
सम्यक्त्व बारव्रत कुलक चोपाई २५०
सम्यक्त्व माई २३५
सम्यक्त्व माई चउपई २३०
सरयूप्रसाद अग्रवाल डा० १४१, १५२, १५५
सरसती १६५, २०४
सरसै (सिरसा) ३४६
सरस्वती २०६, ३३८
सरस्वती कंठाभरण १९५
सरस्वती भंडार, उदयपुर १६१
सरूप (घोड़ा) १०१
सर्वंगी (सरबंगी) २८७, २८८
सर्वजिन गणधर संख्या विनती २६५
सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन ३३४
सलखा राव ७७, १०२, १०६, २७२
सलाबत खाँ १४०
सलीम ९०
सवाईदासजी २८०
ससिपाल १३३
सहजसुन्दर २५३
सहजोबाई ३४
सहेली हो आवो मोरियो २२६
सांखला करमसी रूणेचा १६२
सांगड़ १३०
सांगा (राठौड़) १६२
सांगा राणा ६३, ६४, ७३, १००, १०९, ११०, १३७, १३८, ३०१, ३१३, ३१४, ३१५
सागानेर २२४, २८७, २८८
सागावत १२०
सांगै ११८
सांगो १४४
सांचौर १३९
सांडेसरा (डा० भोगीलाल) २४१
सांदू माला ७५, १०६, १०७, १३२, १४६, १४८, १५६
सांभर २८१, २८२
सांया झूला ७०, १५६, १७७, १८१, २३९
सावळ १५०
सांवलदास चौहान ३५१
सांवलदास सांगावत राठौड़ १६२
साइया १८४
साकड़े (परगना) १३५
सागरचन्द्र सूरि २६४
साठीका (गाँव) ९८
सातल ८४, ८७, १४२, १४१

सातलसिंह ९३, ९४
सादड़ी २६
सादा २८३
सादूळ १५०
साधु कीर्त्ति २४६, २६५, २७०, ३३५
साधु वन्दना २५४, २५७
साधुरत्न २५४
साधुहर्ष २५७
साबरमती २८१
साबुमती १०९
सामयिक बत्तीस दोष कुलक २६४
सामलियउ २२९
सामलिया २२८
सामोर नगर ३६०
सारंग १३५, १५६, २४७, २७०
सारंगदे ९३
सालवड़ि ९९
सालिभद्र कक्क २३०
साल्व जनपद ३
सावय धम्म दोहा १९५
सावलदास १६२
सावित्री सिन्हा डा० १६६, २९९, ३१३, ३२९,
साहली ! आवो मोरिओ, ए सी मोर्यां रे सखी २२६
साहसी रावल ९३
साहीवांण, साहवांण ७९, ८०, ८२
सिंघल २६७, २६८
सिंदूर प्रकरण बालावबोध २५८
सिंहकुल २४७
सिंहदेव ३३
सिंहलसी चरित (धनदेवचरित) २४७
सिंहासन बत्तीसी २४६
सिंहासन बत्तीसी चौपाई २५७
सिणलागर (तालाब) ७७
सिद्धराज १९८
सिद्धिसूरि २४६
सिरि थूलि भद्द फागु २४२
सिरोही ३, ३४, ६७, १३१, १३४, १४०, १४२, २८२, ३४७ ३५२
सिवदास गाडण चारण ७७, ८३, ३३५
सिवदत्य चारण उत्पत्ति कारण ३४४
सिवाले १३१
सिवाना १०६
सिसियाणा १४९
सिसपाल १८३, १८४, २१०, २१२
सीकरी २८२, २८८
सी० कुन्हन राजा ७२
सीणली (गाँव) ७८
सीत १७४
सीता ६९, ८१, १०१, ११०, १३८, १६७, १७१, १७२, १७३, १७४, १९५, २०४
सीता चरित्र भाषा ३३९
सीता चौपाई २६६, ३५७
सीताराम लाला ३१३
सीताहरण १९२
सीधर १५१
सीरोही ३४७
सीहड़ सांखला २२४
सुन्दरदास २८३, २८८, २९१, २९२, ३६२
सुन्दरदास कायस्थ ३०३, ३०९
सुकदेव १५७
सुकुमार सेन डा० ७५, ८७, ३२०, ३४९ ३५०, ३७१
सुखड़ पचक संवाद (नरपति) २४५
सुखदेव चारण १६९
सुखपाल ब्राह्मण ३११
सुगना २१८, २१९
सुग्रीव १७२, १७३
सुजानसिंह ६९
सुतहत्या १७१
सुदयवच्छ वीर चरित २४८
सुदर्शन रास २५२
सुदास २८३
सुधांजलि ३६४
सुधाकर द्विवेदी २८१
सुनीतिकुमार चटर्जी डा० ८, ९, १५, ३२, ३३, ३४, ३६, ७०, ७१, ७२, ३२५
सुपार्श्वजिन विवाहलो (ब्रह्म विनय देव आदि) २४४
सुपियारदे २२३, २२४, २२५
सुबाहु संधि २५८
सुबाहुसंधि (पुण्यसागर) २३७
सुबोध मंजरी टीका १५६
सुमितकुमार राय २५२
सुमित्रा १७१
सुरजन ८५
सुरजनदास २[illegible]

सुरताण राव ६७ १३१, १३४, १४०, १४२, १४३, १४४, ३५२
सुरसी २१७
सुरसुन्दर चौपाई २६३
सुरिजना ११५ । सुरिजन्न ११५
सुर्जन ११४
सुवाप (गाँव) ६८
सूजइ २४
सूजाजी १२६
सूजा बालेछा ३५२
सूजा वीठू २०, २७, २८, ९७, ९८, १०२, २४०
सूफीमत ६५
सूरजपाल ११४
सूरतसिंहजी (सुरजसिंहजी) मोहता (टाबरी), बीकानेर १७८
सूरदास ३०४, ३१६, ३६३
सूरसागर ७१
सूरसिंह १३२, १३३, १६९
सूरा वीठू ११८
सूरायच टापरिया १३८
सूरिजी (जिनचन्द्र) ३४३
सूर्यकरण पंडित व्यास ९
सूर्यकरण पारीक १५५, १६१, २७६
सूर्यमल्ल मिश्रण ८, ११४
सेजवाल विक्रम ९५
सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता १३०, १३६, १७०, १८१
सेनानी १५३
सैणी २१९
सैफी २९५
सोजत ९९, १४१, १८९
साढ राउ १४३
सोनगिरउ ९५
सोनीराम २२१
सोभितजी ७७ । सोम ८४, ८७
सोमनाथ ९३
सोमप्रभ १९५
सोमप्रभाचार्य १०
सोमभावना गीत २२३, २२८, २२९
सोममूर्ति २३०
सोमविमल सूरि ३३५
सोमसुन्दर सूरि ३३४, ३३६
सोरठ २२०
सोलंपिणी राणी ३४५
सोलणु २३०
सोलहर (गाँव) ३४७
सोलह स्वप्न सज्झाय २६५
सोहनलाल मुंशी १५४
स्तंमन पार्श्वनाथ स्तवन २५७
स्तंभनक पार्श्वनाथ विज्ञप्ति २४०
स्तम्भना पार्श्व स्त० २५९
स्तंभव पार्श्वनाथ स्तवन २४१, २५१
स्ट्रेटन ३१२
स्थूलभद्र फाग २५०
स्थूलिभद्र २४०, २४२, २५३
स्थूलिभद्र धमालि चौपाई २६३
स्थूलिभद्र मोहन वेलि (जयवंत सूरि) २४३
स्थूलिभद्र रास २३०
स्नात्र पूजा २५०
स्यामहिवर २८३
स्वयंभू ७१
स्वयंभूछन्दस् २३४
स्वरूपदे झाली राणी १४९
स्वामीदास चारण १७७

ह

हंसराय १९८, २००
हंसा बाई ६७, २९८
हंसावली १९५
हंसावली प्रबन्ध २३९
हडवूजी सांखला ३१, २७२
हड़ मान-हनुमान ४६
हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० २३४, २८१, २९१, ३१३
हणमत ८१, १२३, १८४, ३५२
हणवत ६९, १३६
हणूं १७५
हथणापुर १३८
हनमंत १९२
हनुमत ११९
हनुमानजी १७२, १७३, १७४, १९२
हनुमानगढ़ २६३
हमाऊ ११२, १४०
हमीर, हम्मीर राणा ६७, ८४, ८६, ८७, ९६, ९७, १२४, १३७
हमीरजी जाणी जाट २७९
हमीरसिंह २९०, २९२, २९३
हमीरायण ९६

हरखो १५०
हरजी २२१
हरजी भाटी २७३
हरजीरो व्यांवलो १८१, २१०
'हरण' १८१
हरणिया १८१
हरनाय १५०
हर-पार्वत री वेलि १९३, १९४
हरपाल १५०
हरप्रसाद शास्त्री ११, १५
हरमन गीज डा० ६६, २९५, ३०३, ३१३ ३१५
हरराज रावल १३०, १३४, १४९, १५२, २०१
हररावल २५९
हरविलास सारड़ा ३१२, ३१९
हरस जीण ३५८
हर समुद्र वाचक २५७
हरसिद्धभाई दिवेटिया २९९, ३१३
हरि २८३
हरिकान्त श्रीवास्तव डा० १९७, २०१
हरिकेशी सधि (कनकसोम) २३७, २६६
हरिचन्द पुराण १५१, २३९
हरिणाकुस ३५२
हरिदास निरंजनी २७३, २७५, २९०, २९१, २९२, २९३, ३१६
हरिदास बनिया ३०७,
हरिनारायण पुरोहित २९१, २९६, २९७
हरिबल संधि २६६
हरियाली २४५, २५०
हरिरस १२६, १२७, १६६, १८६, १८७, १८९
हरिलीला सोलह कला १९३
हरिवंश पुराण १९१
हरिवंश व्यास ३०७
हरिवल्लभ भायाणी डा० २३४
हरिश्चन्द्र महाराज १५१
हरिसूर बारहट ११७, ३५४
हरिस्यंघ २८२
हरी १९३
हरिदास केसरिया १३८
हरीया १९९, २००
हरीराम व्यास ३०३, ३०४
हरीसिंह २९०, २९२, २९३
हर्ष ६३
हलवद १२७, १२८
हल्दीघाटी १०७, ११०, १११, १३८
हस्तिनापुर १३८
हंसादेवी २७६
हांसू ८२
हाड़ोती २२४
हारीजी २८०
हालां झालां रा कुंडळिया १२७, १२९, १८५
हिंगलाज १२८
हिंगोल २८३
हिन्दी छन्द प्रकाश २३५
हिन्दी विश्वकोष ३१२
हिन्दी शब्दसागर २३३, २३८
हिन्दी साहित्यकोश २३६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय प्रयाग १९३
हिन्दुआना सूरज ३१५
हिन्दुस्तानी एकेडेमी २८, १६३
हित शिक्षा ३४१
हिमालय ४३, २१९
हिमालियै १२९
हिमाळी २६५
हिसार ८८, ९०
हीरकलश २४६, २४७, २६४
हीर भाट १९६
हीर विशाल शिष्य २४८
हीरादेवी ९५
हीरानन्द सूरि २३१, २३९, २४८
हीरालाल कापडिया २४३
हुमायूं ९७, ११२
हुसेनशाह १०९
हेमचन्द्र १९५, २३४, २३५, २३७
हेमचन्द्र (आचार्य) २९, ३०, ७१
हेमरत्न २६, २३२, २६६
हेमहसगणि २३५
हेमानन्द २४६, २४७
हेमू १४६
हैबतियान ८५
होगर १५९
होर्नले ७१
होशंग गोरी ८३

——:o:——